॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति

भाग - 8

भक्त को इसी जन्म में भगवान् के दर्शन

– अनिरुद्ध दास अधिकारी

मूल-प्रस्तुति
परमभागवत, श्रीहरिनामनिष्ठ
श्री अनिरुद्ध दास अधिकारी

सम्पादन एवं संयोजन
डॉ. भागवत कृष्ण नांगिया

आभार
आवरण के लिए श्री अम्बरीष दास प्रभुजी
अन्य चित्रों के लिए गूगल व समस्त सहृदय वैष्णव वृन्द का

प्रकाशक
श्री अनिरुद्ध दास अधिकारी, गांव पांचूडाला, छींड़ की ढाणी
वाया राजनोता, तहसील कोटपूतली, जिला जयपुर (राजस्थान), भारत
मो० 7742836121

प्रथम संस्करण-2000 प्रतियाँ
गुरु पूर्णिमा : 27 जुलाई 2018

अधिक जानकारी के लिए :
वैबसाइट : www.namanistha.com
ई-मेल : namanistha@gmail.com
फेसबुक : Aniruddhaprabhuji

मुद्रण-संयोजन एवं ग्रन्थ प्राप्ति स्थान
श्री हरिनाम प्रेस, हरिनाम पथ, लोई बाजार,
वृन्दावन-281121 - मोबाइल : +91 7500987654

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इसी जन्म में भगवद्-प्राप्ति

भाग – 8

कृपा आशीर्वाद

परमाराध्यतम नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108
श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी
परमाराध्यतम नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108
श्री श्रीमद् भक्तिबल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराज जी
एवं
परमाराध्यतम नित्यलीला प्रविष्ट त्रिदण्डिस्वामी
श्री श्रीमद् भक्तिसर्वस्व निष्किंचन महाराज जी

लेखक :
श्री रूप गोस्वामी के अनुगत एवं उनके प्रियजन,
विष्णुपादपद्मस्वरूप, नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद
108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज जी
के अनुगृहीत शिष्य

अनिरुद्ध दास अधिकारी

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

- समर्पण 7
- कृपा प्रार्थना 8
- वैष्णव प्रार्थना 9
- विनम्र निवेदन 10
- प्रस्तावना 11
- श्रीमद् अनिरुद्धदास अधिकारी जी का संक्षिप्त परिचय 13
- श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज का परिचय 15
- नित्य प्रार्थना – दो मिनट में भगवान् का दर्शन 19
- मंगलवर्धनी स्तुति 20

प्रवचन श्रृंखला

प्रवचन 1 : गोलोक धाम का टिकट 21

प्रवचन 2 : शुद्ध भक्त का जीवन चरित्र 27

प्रवचन 3 : अजनाभवर्ष : वैकुण्ठ का एक टुकड़ा 35

प्रवचन 4 : मन को सहारा चाहिए 40

प्रवचन 5 : सतीत्व की परीक्षा 48

प्रवचन 6 : सहज भगवद् प्राप्ति 56

प्रवचन 7 : भगवद्-स्मरण 66

प्रवचन 8 : भगवद् प्राप्ति की कुंजी 73

प्रवचन 9 : भगवद् स्मरण : केवल हरिनाम से ही संभव 83

प्रवचन 10 : दयासिन्धु महाप्रभु की कृपा 96

प्रवचन 11 : इंद्रियों में मैं मन हूँ 99

प्रवचन 12 : कीर्तनीय सदा हरि 109
प्रवचन 13 : 'हरिनाम' नामक एक प्रसिद्ध चोर 120
प्रवचन 14 : भक्ति की नींव 129
प्रवचन 15 : हरिनाम रूप में भगवान् का आविर्भाव 139
प्रवचन 16 : नामनिष्ठ का संग तीव्र गति का साधन है 150
प्रवचन 17 : चर-अचर में भगवद्दर्शन 161
प्रवचन 18 : सत्संग का प्रभाव 169
प्रवचन 19 : जैसा अन्न वैसा मन 181
प्रवचन 20 : गुरु महिमा 192
प्रवचन 21 : कलियुग का सर्वश्रेष्ठ गुण : हरिनाम से... 201
प्रवचन 22 : भगवद् नाम का प्रभाव 210
प्रवचन 23 : केवल 'एक नाम' ही पर्याप्त 222
प्रवचन 24 : समस्त धर्मशास्त्रों का प्राण : केवल हरिनाम 233
प्रवचन 25 : भक्ति-जननी एकादशी 244
प्रवचन 26 : निर्गुणता में ही भगवान् मिलते हैं 253
प्रवचन 27 : हरिनाम जप अर्थात् भगवान का सानिध्य 264
प्रवचन 28 : सब मन का ही खेल है 276
प्रवचन 29 : कलियुग में दयावतार : हरिनाम 286
प्रवचन 30 : हरि से बड़ा हरि का नाम 296
प्रवचन 31 : केवल भगवान् ही अपने हैं 307
प्रवचन 32 : अलौकिकता का प्रतीक : भगवद् नाम 318
प्रवचन 33 : कलियुग का सहारा : केवल हरिनाम 329
प्रवचन 34 : हरिनाम : कलियुग का महामंत्र है 341
प्रवचन 35 : कृष्णस्तु भगवान् स्वयं 349
प्रवचन 36 : सच्चे साधु की सेवा का फल 360
प्रवचन 37 : वासुदेव सर्वं इति 367
प्रवचन 38 : केवल कृष्ण ही हैं अपने 383

प्रवचन 39 : कलियुग का प्रकोप	389
प्रवचन 40 : भक्तिदायिनी 'वृन्दादेवी महापटरानी'	398
प्रवचन 41 : कलियुग का सुदर्शन चक्र : हरिनाम	409
प्रवचन 42 : हरिनाम कान से सुनो	420
प्रवचन 43 : कृष्ण ही बनने वाले एवं बनाने वाले हैं	429
प्रवचन 44 : एक नया उपाय	438
प्रवचन 45 : माया का प्रभाव	442
प्रवचन 46 : जो बोओगे सो पाओगे	452
प्रवचन 47 : भक्ति का मतलब है भगवान् में आसक्ति	461
प्रवचन 48 : केवल भगवान् ही भोक्ता हैं	473
प्रवचन 49 : लवमात्र साधुसंग	486
प्रवचन 50 : हरिनाम : एक अमर औषधि	500
प्रवचन 51 : निश्छल प्रेम	509
प्रवचन 52 : कलियुग में केवल हरिनामाश्रय	521
प्रवचन 53 : हरेर्नामैव केवलम्	530
प्रवचन 54 : गंभीर व मार्मिक प्रश्न	540
प्रवचन 55 : भगवत् प्रसाद	544
भगवान् के साक्षात् दर्शन करने का स्वच्छ दर्पण	549

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

समर्पण

परम करुणामय एवं अहैतुक कृपालु
अस्मदीय श्रीगुरु पादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट
ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव
गोस्वामी महाराज जी की प्रेरणा से यह ग्रंथ
प्रकाशित हुआ है
श्रीगुरुदेव की अपनी ही वस्तु,
उन्हीं के कर कमलों में
सादर, सप्रेम समर्पित है

'अनिरुद्ध दास'

कृपा – प्रार्थना

(अनिरुद्ध दास अधिकारी)

हे मेरे गुरुदेव करुणा–सिन्धु! करुणा कीजिये।
हूँ अधम, आधीन, अशरण, अब शरण में लीजिये।।
खा रहा गोते हूँ मैं, भव–सिन्धु के मँझधार में।
आसरा है न कोई, दूजा इस संसार में।।
मुझमें है जप तप न साधन, और नहीं कछु ज्ञान है।
निर्लज्जता है एक बाकी, और बस अभिमान है।।
पाप बोझे से लदी, नैया भँवर में जा रही।
नाथ दौड़ो और बचाओ, जल्द डूबी जा रही।।
कहाँ जाऊँ कहीं ठौर नहीं है, आप सिवा मेरा और नहीं है।
हे मेरे गुरुदेव माधव, मुझपे करुणा कीजिए।।
हूँ अधम, आधीन, अशरण, मुझे शरण में लीजिए।।
आप भी यदि छोड़ दोगे, फिर कहाँ जाऊँगा मैं।
जन्म–दु:ख की नाव कैसे पार कर पाऊँगा मैं।।
सब जगह मैंने भटक कर, अब शरण ली आपकी।
पार करना या न करना, दोनों मरजी आपकी।।
जन्म–जन्म का मैं तुम्हारा, मैंने जीवन तुम पे हारा।
हे मेरे गुरुदेव माधव, अपनापन निभा लीजिए।।
हूँ अधम, आधीन, अशरण, मुझ पे करुणा कीजिए।।

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

वैष्णव प्रार्थना !

प्रत्यक्ष प्रैक्टिकल अनुभव अनुसार

अनंतकोटि वैष्णवजन
अनंतकोटि भक्तजन
अनंतकोटि रसिकजन तथा
अनंतकोटि मेरे गुरुजन
मैं जन्म-जन्म से आपके
चरणों की धूल-कण
मुझको ले लो अपनी शरण
मेरे मन की हटा दो भटकन
लगा दो मुझको कृष्णचरण
लगा दो मुझको गौरचरण
यदि अपराध मुझसे बन गये
आपके चरणारविंद में
जाने में या अनजाने में
किसी जन्म में या इसी जन्म में
क्षमा करो मेरे गुरुजन
मैं हूँ आपकी चरण-शरण
पापी हूँ, अपराधी हूँ
खोटा हूँ या खरा हूँ
अच्छा हूँ या बुरा हूँ
जैसा भी हूँ, मैं तो आपका हूँ
मेरी ओर निहारो !
कृपादृष्टि विस्तारो
हे मेरे प्राणधन
निभालो अब तो अपनापन
मैं हूँ आपके चरण-शरण
हे मेरे जन्म-जन्म के गुरुजन

प्रतिदिन श्रीहरिनाम (हरेकृष्ण महामंत्र का जप) करने से पहले इस प्रार्थना को बोलने से श्रीहरिनाम में निश्चितरूप से रुचि होगी और अनंतकोटि वैष्णवजनों की कृपा भी मिलेगी। नित्य कम से कम 11 बार यह प्रार्थना बोलने से समस्त प्रकार की बाधाओं से व अपराधों से मुक्त होकर भक्ति में शीघ्र उन्नति होगी। – अनिरुद्ध दास

विनम्र निवेदन

प्रेमास्पद भक्तगण,

कृपया इस नराधम, अधमाधम, दासानुदास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार करें।

"इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति" के आठवें भाग का प्रथम संस्करण आपको सौंपते हुए मैं बहुत प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ।

इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति ग्रंथ में केवल मात्र श्री हरिनाम की महिमा का वर्णन हुआ है इसीलिए इन ग्रंथों को भक्तों में निशुल्क बांटने से भगवान् श्री कृष्ण की कृपा स्वतः ही बरसेगी। हिंदी भाषा में, इन ग्रंथों को छपवा कर उनको निशुल्क वितरण करने का अधिकार 'श्री हरिनाम प्रेस' वृंदावन को है, पर यदि कोई इन ग्रंथों को धनोपार्जन या अपने लाभ के लिए छपवाकर बेचेगा तो वह जघन्य अपराध कर बैठेगा तथा रौरव नरक में कष्ट भोग करेगा। ऐसा मेरे श्री गुरुदेव ने बोला है।

'एक शिशु की विरह वेदना', 'कार्तिक महात्म्य' तथा 'इसी जन्म में भगवत प्राप्ति' (1–7) के सभी भाग नियमित रूप से श्री हरिनाम प्रेस में निरंतर छप रहे हैं और उनका निशुल्क वितरण भी बहुत ही सुचारु रूप से वहाँ से चल रहा है जिसके लिए हम हृदय से उनके बहुत आभारी हैं। श्री गुरु एवं गौरांग की कृपा से विगत वर्षों में 35000 ग्रंथ छपे और वितरित हुए हैं। इन ग्रंथों की मांग दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और इनको पढ़कर लाखों लोग हरिनाम की 64 माला करने लगे हैं। भारत में मुंबई, बेंगलुरु, दिल्ली, पुणे, मथुरा, शिमला, चंडीगढ़, कोलकाता, सूरत आदि बड़े बड़े नगरों में ही नहीं, पंजाब, हरियाणा और हिमाचल के गांवों में भी इन ग्रंथों को बहुत सराहा गया है। कनाडा, अमेरिका, न्यूजीलैंड, ब्रिटेन, रशिया इत्यादि देशों में भी यह ग्रंथ इंटरनेट, ईमेल, वेबसाइट तथा फेसबुक द्वारा पहुंच चुके हैं।

अंत में मेरी सभी भक्तजनों से हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि वह मेरे गुरुदेव की इस अमृतवाणी का खूब प्रचार करें।

"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।"

इस महामंत्र की कम से कम 64 माला अर्थात् एक लाख नाम अवश्य करें। इस ग्रंथ को पढ़कर यदि एक व्यक्ति भी भक्ति में लग जाता है, तो मैं समझूंगा कि मेरा प्रयास सफल हो गया।

हरिबोल!

अनिरुद्ध दास

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

प्रस्तावना

प्रणाम मंत्र

नमो नामनिष्ठाय, श्रीहरिनाम प्रचारिणे।
श्रीहरिगुरु–वैष्णवप्रियमूर्ति, श्री अनिरुद्धदासाय ते नमः।।

इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति भाग–8 पुस्तक श्रीपाद अनिरुद्ध दास अधिकारी जी के उन प्रवचनों से उद्धृत है जो उन्होंने श्री द्वारकाधीश जी के स्वप्न आदेश होने के बाद 1 सितम्बर 2016 से 30 सितम्बर 2017 तक हर शुक्रवार को फोन द्वारा दिए। श्री द्वारकाधीश जी ने इस स्वप्न आदेश में उन्हें बताया कि यह प्रवचन वैकुण्ठ तथा गोलोक जाने का टिकट है और जो भी भाग्यवान व सुकृतिवान इन प्रवचनों को सुनेगा उसको वैकुण्ठ अथवा गोलोक जाने का टिकट 100% प्राप्त होगा।

अभी इन प्रवचनों को शुरू हुए केवल 2 महीने ही हुए थे कि बाबा (द्वारकाधीश जी) ने अपने प्यारे पोते (श्री अनिरुद्ध दास जी का ठाकुर जी के साथ नित्य सम्बन्ध दादा का है) को दिए इस वचन का पुष्टिकरण करते हुए नवम्बर 2016 एकादशी को दुबारा से स्वप्न में दर्शन देकर बताया, "मैंने उन सारे भक्तों का वैकुण्ठ का टिकट रिजर्व कर दिया है जो तुम्हारे साथ जुड़े हुए हैं। अब चाहे वे 10 साल के बाद या 50 साल के बाद भी अपना शरीर छोड़ें उनको वैकुण्ठ धाम की प्राप्ति होगी।"

अगले ही दिन बहुत सारे भक्त उनको मिलने के लिए एकत्र हुए तथा श्रील गुरुदेव इस स्वप्न को दुबारा बताते हुए अपने आँसुओं को नहीं रोक पाए और ठाकुरजी की इस कृपा और दयालुता को देख कर बार–बार रोये जा रहे थे। श्रील गुरुदेव ने बताया कि तुम सब की अब वैकुण्ठ की टिकट तो पक्की हो चुकी है परन्तु गोलोक धाम उतनी देर प्राप्त नहीं होगा जितनी देर तुम ठाकुर जी के लिए रोओगे नहीं तथा ठाकुरजी से विरह नहीं होगा। जैसे ही भक्त ठाकुर जी के लिए रोता है तो ठाकुर जी को विवश होकर उसको सम्बन्ध ज्ञान देना ही पड़ता है।

श्रील गुरुदेव ने इस पुस्तक के माध्यम से वैकुण्ठ तथा गोलोक जाने के रास्ते का प्रैक्टिकल (व्यावहारिक) वर्णन किया है। उन्होंने इस पुस्तक

में भगवद् प्राप्ति हेतु आध्यात्मिक पथ प्रदर्शन के साथ–साथ सांसारिक मर्यादाओं को भी प्रकाशित किया है जो हम आजकल की भागदौड़ में भूलते जा रहे हैं। यहाँ पर यह बताना अति आवश्यक है कि श्रीपाद अनिरुद्ध दास अधिकारी साधारण साधक न होकर गोलोक निवासी हैं और उन्होंने गोलोक के रास्ते को पहले ही देख रखा है और उनका आविर्भाव केवल हरिनाम का प्रचार करने हेतु ही हुआ है।

पृथु महाराज जी के जन्म उपरान्त जब जगद्गुरु ब्रह्माजी देवता और देवेश्वरों के साथ पधारे तो उन्होंने वेनकुमार पृथु के दाहिने हाथ में भगवान् विष्णु की हस्तरेखाएँ और चरणों में कमल का चिह्न देखकर उन्हें श्रीहरि का ही अंश समझा, क्योंकि जिसके हाथ में दूसरी रेखाओं से बिना कटा हुआ चक्र का चिह्न होता है, वह भगवान् का ही अंश होता है। (श्री भा. 4.15.9–10)

श्रीपाद अनिरुद्ध दास अधिकारी जी के हाथों में 7 भगवद् आयुध चिह्न शंख, चक्र, गदा, पद्म, वैजयंती माला तथा दो त्रिशूल हैं।

'इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति' (1–7 भाग) का निचोड़ श्री अनिरुद्ध दास अधिकारी जी ने इस पुस्तक (भाग 8) के माध्यम से बताया है इसलिए हर उस साधक के लिए यह पुस्तक पढ़ना अनिवार्य है जो इसी जन्म में ही भगवद् धाम को प्राप्त करना चाहता है।

इस पुस्तक को जल्द से जल्द छपवाने की इच्छा तथा लालसा को श्रील गुरुदेव में देखा गया है क्योंकि वे हमेशा पूछते रहते थे कि पुस्तक कब तक छप जाएगी जो कि इस पुस्तक के प्रति उनकी उत्सुकता और जीवों के प्रति करुणा को दर्शाता है। इसका एक उदाहरण है कि जब उन्होंने एक दिन कहा, "नित्य प्रति बहुत लोग मर रहे हैं और इस पुस्तक के लाभ से वंचित रह रहे हैं तथा यह मेरी आखिरी पुस्तक है इसलिए यह पुस्तक जल्द से जल्द छप जानी चाहिए।" उनके यह शब्द इस पुस्तक में छिपे हुए बहुत सारे गूढ़ रहस्यों की ओर संकेत कर रहे हैं जो कि साधकों के लिए भगवद् प्राप्ति का सरल मार्ग खोल रहे हैं।

श्रील गुरुदेव की सेवा में,

आपके दास

इस ग्रंथ के लेखक
महाभागवत श्रीहरिनामनिष्ठ
श्रीपाद अनिरुद्धदास अधिकारी जी का
संक्षिप्त जीवन परिचय

श्रीपाद अनिरुद्ध दास अधिकारी प्रभुजी आज 91 वर्ष की आयु में भी प्रतिदिन 3 से 5 लाख हरिनाम अर्धरात्रि 12 से 1 बजे जागकर एक ही जगह में बैठ कर करते हैं और प्रतिदिन केवल 3 से 4 घंटे रात्रि विश्राम करते हैं। आज तक ठाकुर जी ने आपको केवल हरिनाम पर 'इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति' नामक 8 ग्रन्थ लिखवाए हैं जिसमें भाग 1 से 7 ठाकुर जी ने आपको पत्रों के रूप में रात को लिखवाये तथा भाग 8 प्रवचनों के रूप में हर शुक्रवार को लगभग एक साल तक आपके मुख से बुलवाये।

आपका जन्म आश्विन शुक्ल पक्ष, शरद–पूर्णिमा (रास–पूर्णिमा) विक्रमी संवत् 1567 (23 अक्तूबर, सन् 1930) दिन शुक्रवार को रात्रि 10:15 बजे माता राजबाई व पिता श्रीमान भारु सिंह शेखावत जी, जो कि एक गृहस्थी होकर भी एक विरक्त संत स्वरूप थे, के घर छींड की ढाणी, तहसील कोटपूतली, जिला जयपुर (राजस्थान) में हुआ।

आप पेशे से एक सिविल इंजीनियर थे तथा इस पद पर बीकानेर में काम करते हुए आपको हनुमान जी के छद्म रूप में दर्शन हुए जिन्होंने आपको बताया कि आप एक साधारण मनुष्य न होकर गोलोक निवासी हैं जिसका पुष्टिकरण हनुमान जी ने आप को आपके हाथों में अंकित 7 भगवद् चिह्न दिखाकर किया और इस बात को 74 साल की आयु तक गोपनीय ही रखने को कहा और बताया कि 74 साल के बाद इस रहस्य को सब को बता देना वरना तुम्हारा प्रचार नहीं हो पायेगा। अतः आप केवल शिक्षा गुरु के रूप में सभी साधकों को हरिनाम करने की शिक्षा देते हैं तथा आज तक आपने कोई भी शिष्य नहीं बनाया है।

आप का आज तक लगभग 700 करोड़ से भी अधिक हरिनाम हो चुका है जिसके प्रभाव से आपको आज 91 साल की आयु में भी कोई रोग नहीं है तथा आपकी आँखें 5 साल के बच्चे की तरह और ताकत 20 साल के जवान की तरह है। आप नम्रता की साक्षात् मूर्ति हैं एवं अपने शिक्षा–

शिष्यों को भी अति स्नेह व प्यार देते हैं और सबको पूजनीय मानते हैं क्योंकि आप यह समझते हैं कि मेरा प्यारा (भगवान्) सभी के हृदय में बैठा हुआ है तथा किसी को पैर छूने, माला पहनाने, भेंट आदि देने की आज्ञा नहीं देते हैं। आपका भगवान् के साथ नित्य सम्बन्ध डेढ़ साल के बच्चे (दादा–पोते) का है व आप प्यार से भगवान् को बाबा कहकर बुलाते हैं।

आपको चंद्र सरोवर पर सूरदास जी की कुटीर में भगवान् के साक्षात् दर्शन प्राप्त हुए व आपके साथ वाले 10–11 भक्तों को कुछ नजर नहीं आया और उसी समय आपने भगवान् को प्रार्थना की, "बाबा, आप इनको भी दर्शन दो वरना यह मुझे झूठा समझेंगे।" आपकी इस प्रार्थना वश ठाकुर जी ने उनको दिव्य दृष्टि देकर छाया रूप में ही दर्शन दिए, साक्षात् दर्शन नहीं दिए क्योंकि वे ठाकुर जी के साक्षात् दर्शन का तेज प्रकाश सहन करने के योग्य नहीं थे। इन सभी भक्तों के नाम 'इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति' (भाग–1) में अंकित हैं। भगवान् के दर्शन तो बहुत भक्तों को हुए हैं परन्तु दूसरों को भगवान् के दर्शन करवाना उनके भजन–बल तथा उनके भगवान् से अति प्रिय सम्बन्ध का प्रमाण है।

दूसरी बार ठाकुरजी ने ट्रेन में एक छोटे बच्चे (छद्‌म रूप) में आकर, आपको भ्रमित करके खीर खिलाई तथा जब आपको ट्रेन रुकने के बाद अपने साथी मित्र से इस भ्रम का पता चला तो आपने ठाकुरजी द्वारा दिए हुए मिट्टी के करवे को रख लिया व अगले 6 महीनों में थोड़ा–थोड़ा तोड़कर खाया।

सब धरती कागद करूँ, लेखनी सब बनराय।
सात समुद्र की मसि करूँ, गुरु गुण लिखा न जाय।।

(संत कबीर जी का दोहा)

उत्तम वैष्णवों तथा गुरुदेव की महिमा का गान सात समुद्र के पानी को स्याही बनाने से, वनों के सब पेड़ों की कलम बनाने से तथा सारी धरती को कागज बनाने से भी नहीं किया जा सकता इसलिए हमने कुछ शब्दों में सूर्य को दीपक दिखाने का प्रयास किया है।

श्रील गुरुदेव की सेवा में,

आपके दास

॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

मेरे गुरुदेव
श्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज
का संक्षिप्त परिचय एवं विशेष अनुग्रह

नमः ॐ विष्णुपादाय रूपानुग प्रियाय च।
श्रीमते भक्तिदयितमाधवस्वामी–नामिने।।
कृष्णाभिन्न–प्रकाश–श्रीमूर्तये दीनतारिणे।
क्षमागुणावताराय गुरवे प्रभवे नमः।।
सतीर्थप्रीति सद्धर्म–गुरुप्रीति–प्रदर्शिने।
ईशोद्यान–प्रभावस्य प्रकाशकाय ते नमः।।
श्रीक्षेत्रे प्रभुपादस्य स्थानोद्धार–सुकीर्तये।
सारस्वत गणानन्द–सम्वर्धनाय ते नमः।।

श्री रूप गोस्वामी के अनुगत एवं उनके प्रियजन विष्णुपादपद्मस्वरूप, नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव महाराज को नमस्कार है। श्री कृष्ण की अभिन्न प्रकाशमूर्ति, दीनों को तारने वाले क्षमागुण के अवतार और अकारण करुणा–वरुणालय–स्वरूप गुरुदेव को, नमस्कार है। अपने गुरु–देव–भाईयों में प्रीतियुक्त, सद्धर्म परायण, गुरु–प्रीति के प्रदर्शक और श्रीधाम मायापुर में ईशोद्यान नामक स्थान के प्रभाव को प्रकाशित करने वाले गुरुदेव को नमस्कार है। श्रीपुरीधाम स्थित प्रभुपाद जी के जन्म–स्थान का उद्धार करने वाले, सुकीर्तिमान, सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद जी के प्रिय पार्षदों के आनन्दवर्धनकारी–गुरुदेव को नमस्कार है।

विश्वव्यापी श्री चैतन्य मठ एवं श्री गौड़ीय मठ समूह के प्रतिष्ठाता, नित्यलीला प्रविष्ट परमहंस ॐ 108 श्री श्रीमद् भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर 'प्रभुपाद' जी के प्रियतम पार्षद, श्रीकृष्ण–चैतन्य–आम्नाय धारा के दशम अध्यक्ष एवं अखिल भारतीय श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ प्रतिष्ठान के प्रतिष्ठाता, अस्मदीय गुरु पादपद्म, परमहंस परिव्राजकाचार्य, ॐ

विष्णुपाद 108 श्री श्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज शुक्रवार, 18 नवम्बर, सन् 1904 की एक परम पावन तिथि अर्थात् उत्थान एकादशी को प्रातः 8 बजे, पूर्व बंगाल (वर्तमान बांग्ला देश) में फरीदपुर जिले के कांचन–पाड़ा नामक गाँव में प्रकट हुए।

मेरे गुरुजी ने मुझे हरिनाम व दीक्षा एक ही बार में सन् 1952 में दी। यह उस समय की बात है जब परम पूज्य भक्ति बल्लभ तीर्थ महाराज जी, परम पूज्य भारती महाराज जी सब ब्रह्मचारी थे और एक भी मठ नहीं था और गुरुजी को राधा–कृष्ण के विग्रह लेने जयपुर खुद आना पड़ता था। पहली बार तो वे ऑर्डर देने आते थे कि इतने साइज (नाप) के राधा–कृष्ण होने चाहिएँ और आर्डर देकर चले जाते थे। फिर जब विग्रह बनने शुरू हो जाते तो वे बीच में एक बार देखने आते थे कि विग्रह कैसा बना और अगर कोई कमी होती थी तो बता देते थे, जैसे कि राधारानी का सिर मोटा है और इसको पतला करो और तीसरी बार विग्रह को लेकर जाने के लिए आते थे। इसलिए वे एक विग्रह के लिए तीन बार आते थे। उन्होंने मेरे परिवार के अलावा पूरे राजस्थान में किसी को शिष्य नहीं बनाया था। इसलिए मेरा संपर्क उनके साथ ज्यादा रहा। क्योंकि जब भीड़ होती है तो संपर्क कम हो पाता है और तब भीड़ ही नहीं होती थी तो अच्छी तरह से ठाकुर जी के बारे में गुरु जी से बातें होती रहती थीं। तो मैं गुरु जी को यही कहता था, "गुरुजी मुझे कुछ नहीं चाहिए मुझे भगवान् के दर्शन कब होंगे?" वे कहते थे, "हरिनाम से होंगे बस।" उनकी वजह से ही मुझे आज हरिनाम पर 100% निष्ठा हो गयी। इसलिए मैंने हरिनाम के अलावा कुछ नहीं किया और सारी जिंदगी मैंने हरिनाम ही किया है बस।

पुरश्चरण तो मैंने 2 बार पहले किया है। सबसे पहले तो मैंने कृष्ण मंत्र का पुरश्चरण किया। कृष्ण मन्त्र करने से विरह बहुत होता था और मुझे वाक्–सिद्धि प्राप्त हो गई और मैं जो भी बोलता था वह हो जाता था जैसे कि कोई पूछता, "मेरी नौकरी कब लगेगी?" तो मैं ऐसे ही कोई तारीख बोल देता था जैसे कि 27 मई को लग जाएगी और कोई पूछता था, "मेरी शादी कब होगी?" तो मैं बोल देता था कि 9 फरवरी को हो जाएगी तो उसी तारीख को उनका काम हो जाता था। एक बार गुरु जी जयपुर में विग्रह देखने के लिए आये हुए थे और एक चीफ इंजीनियर भी गुरुजी को मिलने आता था। एक दिन चीफ इंजीनियर ने गुरुजी के सामने ही यह सब कुछ कह दिया और फिर गुरुजी ने कहा, "अब तुम किसी का हाथ मत देखना।"

गुरुदेव जयपुर में कभी–कभी राधा–गोविन्द जी के गोस्वामीजी के घर, कभी सोमी हलवाई की धर्मशाला में तथा कभी जगदीश जी के यहाँ ठहरते थे तो मैं उनके पास जाता था। वे कहते थे, "मेरे पास आया करो और जब भी मैं आऊँ वहाँ पर आओ और वहीं प्रसाद पाओ।" तो गुरुजी जब भी जयपुर आते तो मैं जयपुर उनसे मिलने जाता। जयपुर में मैं जहाँ पर रहता था गुरुजी वहाँ उनके घर में भी आते थे। मेरी धर्म पत्नी गुरुजी को गरम–गरम फुल्के खिलाया करती थी।

एक बार मुझे पता चला कि मेरी साली में प्रेत आता है और मेरे ताऊ जी ने, बहुत पैसे वाले होने के कारण, बहुत बड़े–बड़े मौलवियों और पंडितों को बुलाया पर प्रेत नहीं निकला और अंत में उन्होंने मुझे कहा, "क्या तुम्हारे गुरुजी इस प्रेत को निकाल सकते हैं?" तो मैंने कहा, "हाँ।" और मैंने गुरुजी को याद करते हुए हरिनाम करके उनके गले में 7 गाठों वाला धागा बाँध दिया और वह प्रेत चला गया और फिर मेरे गुरुजी की कृपा से कभी नहीं आया।

फिर एक बार मेरे गुरुजी एक ही समय दो जगह पर प्रकट हुए। जब वे स्वयं आसाम में थे तो उसी समय मेरे ताऊ जी को हमारे गाँव में भी साक्षात् दर्शन दिए थे। ऐसा नहीं कि उनको स्वप्न में दर्शन दिया हो, साक्षात् दर्शन दिया था। ताऊ जी ने बाद में बताया, "उनके ललाट पर भी तुम्हारे जैसा तिलक था और 6–7 फुट लम्बे थे, भगवा कपड़े पहने हुए थे। बहुत सुन्दर थे।" तो मैंने कहा, "यह मेरे गुरु जी थे।"

मेरे ऊपर गुरूजी की बहुत कृपा थी क्योंकि मैं राजस्थान में उनका अकेला ही शिष्य था तथा उन्होंने और किसी को शिष्य नहीं बनाया और बाद में बस हमारे परिवार को शिष्य बनाया।

एक बार गुरुजी जयपुर में श्रीश्री राधा–गोपीनाथ जी के मंदिर में बैठे थे और मैं भी वहाँ पर ही था। मंदिर के गोस्वामी जी ने अचानक उनके चरण के तलवे को देखा कि उसमें भगवत् चिह्न है तो उसने फूल लाकर उनके चरणों में चढ़ाये और दण्डवत् किया तो गुरु जी ने अपने पैर को छिपा लिया।

श्रीश्री राधा–गोविन्द देव जी के मंदिर में जो कि श्री रूप गोस्वामी जी के श्रीविग्रह हैं, वहाँ पर गुरु जी बहुत जोर से नाचते थे। उनकी आवाज बहुत बुलंद थी। दीर्घाकृति, गौरवर्ण और बहुत लुभावने, सुन्दर थे

और मुझे केवल वही गुरु के रूप में पसंद आए। मुझे पहली बार गुरुजी के दर्शन वहीं श्रीराधा–गोविन्द देव जी के मंदिर में ही हुए और मेरी दीक्षा का पूरा खर्चा गुरु जी ने किया था क्योंकि मेरे पास कुछ था ही नहीं। मुझे कपड़े भी उन्होंने ही दिए, हवन सामग्री इत्यादि भी सब कुछ उन्होंने ही दिया। बाद में जब मुझे तनखाह मिलती तो मैं ग्यारह रुपये मनी–ऑर्डर से हर महीने गुरु जी को कलकत्ता में भेजता था।

27 फरवरी 1979 मंगलवार को शुक्ल प्रतिपदा तिथि को, प्रातः 9 बजे महासंकीर्तन के बीच मेरे गुरुदेव नित्यलीला प्रविष्ट हो धाम पधार गये।

मेरे गुरुदेव की अहैतुकी कृपा वर्षण एवं प्रेरणा के फलस्वरूप ही मैं "इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति" (भाग 1–8) ग्रंथ केवल एक ही विषय "हरिनाम" पर लिख सका। इन ग्रंथों में मेरे गुरुदेव की दिव्य वाणी का अमृत भरा हुआ है। मुझे जो भी प्राप्त हुआ है, उनकी असीम अनुकंपा से ही हुआ है। आज भी मैं अपने गुरुदेव को हर समय अपने साथ पाता हूँ।

– अनिरुद्ध दास
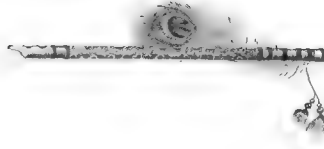
॥ श्रीश्रीगुरुगौरांगौ जयतः ॥

नित्य प्रार्थना

दो मिनट में भगवान् का दर्शन

पहली प्रार्थना

रात को सोते समय भगवान् से प्रार्थना करो – "हे मेरे प्राणनाथ! जब मेरी मौत आये और मेरे अन्तिम सांस के साथ, जब आप मेरे तन से बाहर निकलो तब कृपया मुझे आपका नाम उच्चारण करवा देना। भूल मत करना।"

दूसरी प्रार्थना

प्रातःकाल उठते ही भगवान् से प्रार्थना करो – "हे मेरे प्राणनाथ! इस समय से लेकर रात को सोने तक, मैं जो कुछ भी कर्म करूँ, वह सब आपका समझ कर ही करूँ और यदि मैं भूल जाऊँ, तो कृपया मुझे याद करवा देना। भूल मत करना।"

तीसरी प्रार्थना

प्रातःकाल स्नान इत्यादि करने तथा तिलक लगाने के बाद भगवान् से प्रार्थना करो – "हे मेरे प्राणनाथ! आप कृपा करके मेरी दृष्टि ऐसी कर दीजिये कि मैं प्रत्येक कण–कण तथा प्राणिमात्र में आपका ही दर्शन करूँ। और यदि मैं भूल जाऊँ तो कृपया मुझे याद करवा देना। भूल मत करना।"

आवश्यक सूचना

इन तीनों प्रार्थनाओं को तीन महीने लगातार करना बहुत जरूरी है। तीन महीने के बाद अपने आप अभ्यास हो जाने पर प्रार्थना करना स्वभाव बन जायेगा। जो इन तीनों प्रार्थनाओं के पत्रों को छपवाकर अथवा इसकी फोटोकापी करवाकर वितरण करेगा उस पर भगवान् की कृपा स्वतः ही बरस जायेगी। कोई भी आज़मा कर देख सकता है।

● तीनों प्रार्थनाओं के अन्त में 'भूल मत करना' यह वाक्य इसलिए कहा गया है, क्योंकि हम भूल सकते हैं, लेकिन भगवान् कभी नहीं भूलते। इसप्रकार 'भूल मत करना' इस सम्बोधन से हमने भगवान् को बाँध लिया। अब आगे वह भगवान् की जिम्मेदारी बन गयी और हम निश्चिन्त हो गए। इसलिए भगवान् को इस प्रार्थना के अनुसार बाध्य होकर हमारे जीवन में बदलाव लाकर हमारा उद्धार करना ही पड़ेगा। और हमें **इसी जन्म में भगवद्प्राप्ति** हो जायेगी।

● **नित्य प्रार्थनाओं के साथ हरे कृष्ण महामंत्र की नित्य कम से कम 64 माला (एक लाख हरिनाम) करना परमावश्यक है।**

मंगलवर्धनी स्तुति

वन्देऽहं श्रीगुरोः श्रीयुतपदकमलं श्रीगुरून् वैष्णवांश्च
श्रीरूपं साग्रजातं सहगणरघुनाथान्वितं तं सजीवम्।।
साद्वैतं सावधूतं परिजनसहितं कृष्णचैतन्यदेवं
श्रीराधाकृष्णपादान् सहगणललिता श्रीविशाखान्वितांश्च।

ॐ अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।

नमः ॐ विष्णुपादाय रूपानुगप्रियाय च।
श्रीमते भक्तिदयित माधवस्वामी–नामिने।।
कृष्णाभिन्न–प्रकाश–श्रीमूर्तये दीनतारिणे।
क्षमागुणावताराय गुरवे प्रभवे नमः।।
सतीर्थप्रीति सद्धर्म–गुरुप्रीति–प्रदर्शिने।
ईशोद्यान–प्रभावस्य प्रकाशकाय ते नमः।।
श्रीक्षेत्रे प्रभुपादस्य स्थानोद्धार–सुकीर्तये।
सारस्वत गणानन्द–सम्वर्धनाय ते नमः।।

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदं।
मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा।।
गुरु कृपा हि केवलं, गुरु कृपा हि केवलं।
गुरु कृपा ही केवलं, गुरु कृपा ही केवलं।।
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

साक्षाद्धरित्वेन समस्त शास्त्रै उक्तस्तथा भाव्यत एव सद्भिः।
किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य वन्दे गुरोः श्री चरणारविन्दम् ।।

नमो ब्रह्मण्य देवाय गोब्राह्मण हिताय च ।
जगत् हिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः।।

वृन्दाय तुलसी देव्यै प्रियायै केशवस्य च ।
विष्णुभक्तिप्रदे देवि! सत्यवत्यै नमो नमः।।

वांछा–कल्पतरूभ्यश्च कृपा–सिंधुभ्य एव च ।
पतितानां पावनेभ्यो त्रैकालिक वैष्णवेभ्यो नमो नमः।।

गोलोक धाम का टिकट

1 सितम्बर 2016
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण युगल में अधमाधम इस दासानुदास
अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा
अहैतुकी प्रेमाभक्ति की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

देखो भक्तगणों! आपको मैं वैकुण्ठ ले जाऊँगा, आप ध्यान से सुनो क्योंकि मैं गोलोक धाम से आया हूँ और गोलोक धाम का सर्टिफिकेट (प्रमाण पत्र) मेरे पास है इसलिए मैं आपको वैकुण्ठ ले जा सकता हूँ। अब मेरी बात सुनो!

हरि से बड़ा हरि का नाम, अंत में निकला यह परिणाम
हरि से बड़ा हरि का नाम, कृष्ण से बड़ा कृष्ण का नाम
अंत में निकला यह परिणाम, राम से बड़ा राम का नाम
अंत में निकला यह परिणाम, हरि से बड़ा हरि का नाम
हरि ने तारे भक्त महान और नाम ने तारे अनंत जहान
कृष्ण ने तारे भक्त महान और नाम ने तारे अनंत जहान
राम ने तारे भक्त महान और नाम ने तारे अनंत जहान
हरि से बड़ा हरि का नाम, अंत में निकला यह परिणाम

– अनिरुद्ध दास

अब देखो कि गुरु का आचरण कैसा होना चाहिए? तभी तो वह वैकुण्ठ ले जा सकता है तभी वह गोलोक ले जा सकता है। उसका आचरण कैसा होना चाहिए? यह मैं आपके चरणों में निवेदन करूँगा। जो मैं आपको कहता हूँ, उसे सुनो!

देखिये गुरु कैसा होना चाहिए? शिक्षा गुरु और दीक्षा गुरु, उसका चरित्र कैसा होना चाहिए? वह बता रहा हूँ।

- जिसका चरित्र, आचरण शुद्ध हो।
- जिस पर माया का प्रभाव न पड़ता हो।
- काम, क्रोध, लोभ, मोह, और अहंकार से दूर हो।
- जो निस्वार्थ भाव से सबका भला चाहता हो।
- जो कंचन, कामिनी, प्रतिष्ठा से बहुत दूर रहता हो।
- जो भजनशील हो।
- जो शास्त्रीय चर्चा से बाहर का साधन भी बताता हो और वह साधन प्रत्यक्ष में हो रहा हो तो समझो वह भगवान् का भेजा हुआ पार्षद है।
- जिसके हाथ, पैरों में भगवद् आयुधों के चिह्न होंगे, वही भगवान् का भेजा हुआ पार्षद है।
- जिसको भगवान् का साक्षात् दर्शन हुआ हो और अन्य को भी दर्शन करवाने का सामर्थ्य हो।
- जो असंभव कर्म को संभव करके दिखा रहा हो, वही भगवद् प्रेमी दूसरों को अपने साथ वैकुण्ठ ले जा सकता है।

जो स्वयं हरिनाम करता नहीं है और दूसरों को हरिनाम करने की प्रेरणा देता रहता है, उसका कोई भी प्रभाव नहीं होगा, वह केवल धर्म का व्यापारी है, वह किसी का उद्धार नहीं कर सकेगा। सच्चा चुम्बक ही जंग लगे लोहे को अपनी ओर खींच सकता है अर्थात् जो स्वयं हरिनामनिष्ठ होगा वही दूसरे को हरिनाम करवा सकेगा वरना सब व्यर्थ होगा। उदाहरण से एक आई स्पेशलिस्ट (आँखों का विशेषज्ञ) ही अन्य किसी को आई स्पेशलिस्ट (आँखों का विशेषज्ञ) बना सकता है वरना वह अन्य की आँख ही फोड़ देगा।

जो कर्महीन होगा वह भगवद् पार्षद के दर्शन से वंचित ही रहेगा जैसे कौरवों के साथ उनके घर पर भगवान् कृष्ण रहते थे, फिर भी वे उन्हें नहीं पहचान सके क्योंकि वे भक्त पांडवों के विरोधी होने से घोर अपराधी बन चुके थे। अतः भगवान् को एक साधारण मानव ही मानते थे। कहते हैं:

बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता

(मानस, सुन्दर. दो. 6 चौ. 2)

तुम सब भगवान् की ओर से बड़े भाग्यशाली हो जो आप मेरी ओर आ गए हो। पास के रहने वाला भी नहीं पहचान पाने के कारण दूर रहता है। बिना कृष्ण की कृपा से कोई नहीं आ सकता, दीपक के नीचे हमेशा अँधेरा ही रहता है और चारों ओर उजाला करता रहता है। गंगा के पास रहने पर भी गंगा स्नान नहीं कर सकते क्योंकि भगवद् कृपा से वंचित है। कलिकाल में सभी का सार खत्म हो चुका है। केवल हरिनाम करने वाला ही कलिकाल को जीत सकता है। जैसे प्रह्लाद 5 साल का बच्चा और पिता में दस हजार हाथियों का बल था। हिरण्यकश्यप उसको मार नहीं सका क्योंकि हिरण्यकश्यप के अंदर भी वही प्यारा भगवान् बैठा हुआ था, वह मारने कैसे देता? भगवान् उसके रक्षक एवं पालक थे। प्रह्लाद ने हरिनाम से हिरण्यकश्यपु को जीत लिया। हरिनाम से ही कलि को जीत सकते हैं। इसलिए इस कलियुग में हरिनाम ही सबकी रक्षा और पालन कर सकता है।

यह ध्यान से सुनो! हरिनाम करते समय भगवान् का सानिध्य परम आवश्यक है। मतलब भगवान् का उपस्थित रहना बहुत जरूरी है। एक उदाहरण से मैं समझा रहा हूँ, जैसे हमारे पास कोई मिलने के लिए आये और सामने बैठ कर उससे हम बातें करते रहते हैं वह हमारी बातें ध्यान पूर्वक सुन रहा है और फिर यदि हम पीठ मोड़ कर बैठ जाएँ या बाहर चले जाएँ तो जो आने वाला है, वह कितना दुखी होगा? इस प्रकार हमको भगवान् के सानिध्य में हरिनाम करना चाहिए यानि भगवान् को अपने पास रखते हुए हरिनाम करना चाहिए। तब वह नाम शुद्ध नाम होगा। वैसे अशुद्ध नाम से भी कल्याण तो हो जायेगा पर उसमें समय ज्यादा लगेगा। अतः जब हम हरिनाम कर रहे हैं तो हमारे पास भगवान् को बिठाना पड़ेगा वरना भगवान् का दोष लगेगा। हमारा मन जो भगवद् स्वरूप ही है यदि हम इसे इधर उधर ले जाएंगे तो हरिनाम शुद्ध उच्चारण नहीं होगा। मन के साथ में जीव यदि स्कूल, बाजार, खेत इत्यादि में चला जाए तो भगवान् उठ कर चले जाएंगे, क्योंकि भगवान् जानते हैं कि यह तो स्कूल को जप रहा है, बाजार को जप रहा है, खेत को जप रहा है लेकिन जहाँ पर भी नाम को ले जाएगा, उसका कल्याण तो निश्चित है। मान लो वह दुकान में चला गया तो दुकान का कल्याण हो जाएगा और दुकान में बिक्री अच्छी हो जाएगी, खेत में चला गया तो खेत की उपज अच्छी हो जाएगी क्योंकि नाम तो अपना प्रभाव डाले बिना रहता नहीं। कैसे भी लो!

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

आप मन से लो, बेमन से लो, सोते हुए लो, चलते–फिरते लो, गिरते–पड़ते लो, नाम तो अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकता, आपका कल्याण कर देगा, लेकिन प्यार नहीं आएगा। भगवान् का प्यार नहीं आएगा। प्यार आएगा बहुत समय के बाद में। अगला जन्म मिलेगा, फिर आप भजन शुरू करोगे, फिर धीरे–धीरे आपको ऊँची स्थिति मिलती जाएगी। जैसे किसी स्कूल में हम आठवीं कक्षा तक पढ़े हैं, वहाँ आठवीं कक्षा तक ही स्कूल है तो हम क्या करेंगे? हम उस स्कूल को छोड़ देंगे और दसवीं क्लास (कक्षा) के स्कूल में भर्ती हो जाएंगे। उसी तरह से भक्ति का है जितनी भक्ति हुई उतना हम करके यदि मर गए तो हमको दूसरा जन्म जरूर मिलेगा, भगवान् दूसरा जन्म देंगे फिर वह बचपन से ही भक्ति करने लगेगा और उसका जन्म कहाँ होगा? "भक्त के घर में होगा", जैसे श्रीमद्भगवद्गीता कहती है।

अब मैं आपको समझा रहा हूँ माया का चमत्कार। देखिए जो लड़की 25 साल तक माँ–बाप के घर में प्यार से रहती थी। वह शादी के एक दिन में ही किसी अनजान युवक की तरफ 90% हो जाती है केवल 10% ही माँ–बाप की रहती है तथा कुछ समय में अपना परिवार बना कर माँ–बाप को भी भूल जाती है। यह तो आप प्रत्यक्ष ही संसार में देख रहे हैं। यही माया का खेल है। यहाँ जो कुछ है सब कुछ माया ही माया है, अँधेरा ही अँधेरा है। इसलिए अँधेरे में हम टक्कर खाते रहते हैं लेकिन जो अपना भगवान् परमात्मा के रूप में शरीर के अंदर बैठा हुआ है, उससे पूरी उम्र में भी प्यार नहीं करते, जो कि अपना है। दूसरे अपने नहीं हैं, सब झूठे हैं। यही तो माया की अद्भुत लीला है। इस लीला को नामनिष्ठ संत ही समाप्त कर सकता है, अन्य से यह माया की लीला दूर नहीं हो सकती।

कलियुग में सभी मर्यादाएं समाप्त हो रही हैं अतः कहीं शान्ति नहीं है, दुखों का साम्राज्य हो रहा है। पैसे वाला भी दुखी, गरीब भी दुखी और अनंत रोगों का भरमार हो रहा है। खून का रंग सबका लाल ही होगा। सोचिये! लेकिन गुण भिन्न भिन्न हुआ करते हैं। अपने खून की सन्तान ही सुख दे सकती है, दूसरे की कभी भी नहीं दे सकती। राजपूत–राजपूतनी, ब्राह्मण–ब्राह्मणी, बनिया–बनियानी और चमार–चमारी ही शादी करने से सर्वोत्तम लाभ उपलब्ध कर सकेगा वरना स्वप्न में भी सुखी नहीं रहेगा क्योंकि रामजी ने यही मर्यादाएं बनाई हैं, तभी तो मर्यादा पुरुषोत्तम बोले जाते हैं। इन मर्यादाओं को तोड़ना जघन्य अपराध है। वही सुखी रहेगा जो मर्यादा में रहेगा।

समर्थ को कोई दोष करेगा तो नष्ट हो जायेगा। कहा गया है :

समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं।

(मानस, बाल. दो. 68 चौ. 4)

शिवजी ने जहर पी लिया, आप भी पी लो, नहीं पी सकोगे, आप मर जाओगे।

ध्यान पूर्वक मेरी बात सुनो! मैं किसी से कुछ नहीं चाहता, मेरे आदेश का पालन करोगे तो यहाँ भी सुखी और मरने के बाद भी सुखी हो जाओगे। मेरी मुख्य कामना यानि इच्छा यही है कि सभी मानव वैकुण्ठ में पहुँच जाएँ वरना यहीं कलियुग में ही जन्म लेना पड़ेगा। ऐसा समय आएगा कि जो भजन करेगा उसको जेल में ठूस दिया जायेगा और जो भजन के लिए समाज इकठ्ठा होगा, उसको सबके सामने जला दिया जाएगा। ऐसा समय आ रहा है। मैंने सुना है कि कहीं कहीं ऐसा है कि कोई भी संकीर्तन नहीं कर सकता, बाहर आवाज नहीं आ सकती, अंदर ही अंदर करते हैं।

देखो! मुझे भगवान् ने गोलोक धाम से भेजा है, और गोलोक का सर्टिफिकेट (प्रमाण पत्र) मेरे पास है, गोलोक से जो सर्टिफिकेट लाया हूँ, आप उसको देख सकते हो। वह भगवद् का दिया हुआ सर्टिफिकेट है 7–8 चिह्न (भगवान् के आयुधों के चिह्न) जो कि मैंने तो नहीं बनाये हैं और कोई बना भी नहीं सकता। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है, श्रीमद्भागवत महापुराण में एक जगह लिखा है कि पृथु महाराज के एक चिह्न था और मेरे 7 चिह्न हैं। मैं अपनी बड़ाई नहीं कर रहा हूँ, मैं इसलिए बोल रहा हूँ कि आप मेरे पर अटूट विश्वास रखो और मेरे आदेश के अनुसार अगर चलोगे तो आपको वैकुण्ठ और गोलोक धाम मिल सकता है। संसार का कल्याण हो सकता है। दूसरा उदाहरण है कि ऐसे मानव का आचरण और चरित्र देख कर भी श्रद्धा–विश्वास स्वतः ही हो जाया करती है। तीसरा उदाहरण जो शास्त्रों में नहीं है पर वह प्रत्यक्ष करके दिखा रहा है जैसे माला हमारी माँ है, तीन प्रार्थनाएं पूरे शास्त्रों का सार हैं, जो केवल 2 मिनट की हैं। एक ही विषय हरिनाम पर 'इसी जन्म में भगवद्प्राप्ति' की 7–8 पुस्तकें लिखना असंभव बात है क्योंकि मैं न तो अध्यापक था, न मैं कोई लेक्चरर था, मैं तो एक इंजीनियर था। इंजीनियर क्या लिख सकता है? यह सब मेरे बाबा, श्रीकृष्ण ने मुझसे लिखवाया है।

एक बात बताता हूँ। एक दंपत्ति को 20–22 साल से सन्तान नहीं हुई और डॉक्टरों ने मना कर दिया। फिर उनको संतान हुई, क्या कारण है? डॉक्टरों की डॉक्टरी फेल हो गयी। भगवान् क्या नहीं कर सकता? मैंने कहा, "हरिनाम करो, सब कार्य हो सकता है।" जब भी कोई परेशानी आती है तो उनको मैं यही बात बोलता हूँ कि हरिनाम करो। हरिनाम से सब कुछ हो सकता है, सभी मनोकामना पूरी हो सकती हैं।

जैसे कौरवों के घर में कृष्ण जाते थे। फिर भी कौरव उनको नहीं पहचान पाए क्योंकि भगवद् कृपा के बिना कोई किसी को नहीं पहचान सकता। अतः सबसे मेरी प्रार्थना है कि जैसा मैं बोलूँ उस पर चलकर सुख के रास्ते चल पड़ो। जो निस्वार्थ है, वही संत है और सब असंत हैं। जिसको संसारी भूख है वह संत कोटि में नहीं आ सकता, पर जिसको भगवान् व संतों की भूख है, वही संत सबको वैकुण्ठ ले कर जा सकता है, जो निर्लोभी है कुछ नहीं चाहता है। जो इतना ही चाहता है कि मेरे कहने से सब हरिनाम करके वैकुण्ठ चले जाएँ। जिसके पास नौका नहीं, वह भवसागर पार नहीं करवा सकता। जिसके पास निस्वार्थ नौका है वही भवसागर पार करवा सकता है।

देखिये! हम मन को कैसे रोक सकते हैं? मन का रुकना परम आवश्यक है, प्रत्येक प्राणी को किसी न किसी का सहारा बहुत जरूरी है, सहारे के बिना संसार नहीं चल सकता। जैसे पेड़ को पृथ्वी का सहारा है वरना पेड़ खड़ा नहीं रह सकता। पक्षी को आकाश का सहारा जरूरी है वरना उड़ नहीं सकता। जलचर को पानी का सहारा होगा नहीं तो जी नहीं सकता। मानव को समाज का सहारा जरूरी है वरना उसका जीवन नहीं चल सकता। जैसे खाती (बढ़ई) हमको पलंग बना कर देते हैं, किसान हमको अनाज देते हैं, दर्जी हमको कपड़ा सिल कर देते हैं और दुकान से हमको कपड़ा मिलता है। समाज का हमको बहुत सहारा है। इसलिए सबको सहारे की जरूरत है। एक शिशु को माँ–बाप का सहारा जरूरी है। छात्र को अध्यापक का सहारा होगा वरना पंडित नहीं बन सकता। शिष्य को गुरुदेव का सहारा जरूरी है वरना योग्यता उपलब्ध नहीं कर सकता। उसी प्रकार मन को भगवान् का सहारा जरूरी है वरना सुखी नहीं रह सकता। गीता का सार ही शरणागति है। शरणागति अर्थात् भगवान् का सहारा बहुत जरूरी है। माया का सहारा दुख है और संत, भगवान् का सहारा सुख है।

शुद्ध भक्त का जीवन चरित्र

9 सितम्बर 2016
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद करें।

मेरे श्री गुरुदेवजी ने बोला कि अनिरुद्ध दास! तुम कोई भी बात छिपाना नहीं। अपना अनुभव जो भगवान् के प्रति हुआ है तथा जो शास्त्रों में पढ़ा है, खोलकर सब भक्तों को बताओ। यदि ऐसा करने से तुम हिचकिचाओगे तो तुम भक्तों को भक्ति मार्ग के सही रास्ते पर नहीं ला सकोगे। ऐसा मेरा तुमको नम्र आदेश है।

मैंने बोला कि हे मेरे प्राणनाथ गुरुदेव, यदि मैं ऐसा करूँगा तो मेरी दुनिया में बड़ाई होगी, मेरा आदर सत्कार होगा। मुझे अहंकार आकर नष्ट कर देगा एवं मुझे जो भगवान् ने गोलोक से भेजा है, संसार का उद्धार करने हेतु, वह मुझसे नहीं हो सकेगा। इसलिए सभी मानवों को जानने के लिए मेरे दोनों हाथों में भगवद् आयुधों के चिह्न बनाकर भेजे हैं ताकि सभी मुझ पर पूर्ण श्रद्धा विश्वास कर, भगवान् की गोद में जा सकें। क्योंकि भगवान् ने ही सभी जीव मात्र को उनके कर्मानुसार योनि देकर मृत्यु लोक में भेजा है। यही मेरा गोलोक का सर्टिफिकेट है, जो दोनों हाथों में अंकित है।

श्री गुरुदेव बोले कि जो तुम अहंकार से डर रहे हो, तुम्हारा अहंकार तो जलकर भस्म हो चुका है। उसकी छाया भी तुम पर आ नहीं सकती क्योंकि तुम अब तक कई करोड़ हरिनाम कर चुके हो। इस हरिनाम से ही अहंकार भस्म हो चुका है, अतः निर्भय होकर सभी साधकों को खुलासा करके शास्त्रीय तथा अपने अनुभव, जो भी तुमको हुए हैं और हो रहे हैं,

बताना सर्वोत्तम होगा। मैं तुम्हारे पीछे से सब कर रहा हूँ और आगे भी करता रहूँगा। मेरे पीछे द्वारिकाधीश जो तुम्हारे दादा अर्थात् बाबा हैं, तुमको प्रत्क्षय प्रेरणा देते रहते हैं और देते रहेंगे। फिर चिंता किस बात की है। सभी अवस्थायें आपको उपलब्ध हो चुकी हैं एवं भविष्य में भी होती रहेंगी। तुम निश्चिंत होकर, सभी साधकों को भगवद् प्राप्ति का मार्ग बताते रहो। मेरी शुभकामनाएं तुम्हारे साथ हैं। कलियुग में भगवान् की कृपा बहुत शीघ्र मिल जाती है। कृपा ही नहीं, साधक को भगवान् के दर्शन भी सुलभ हो जाते हैं। जिस प्रकार भूतकाल में, गुरुवर्ग को हुए हैं एवं मुझे भी हुए हैं एवं मैंने अन्य को भी दर्शन करवाया है।

भगवान् ने कलि साधकों के लिए बहुत ही सरल मार्ग, उपलब्ध करने हेतु बताया है। इसका खास कारण यह है कि कलियुगी जीव बहुत कमजोर व थोड़ी आयु वाला होता है। भगवान् को कोई नहीं चाहता। केवल पैसा ही पैसा चाहता है, जो माया का मूल है। बड़े–बड़े संन्यासी भी पैसे के लिए धर्म शास्त्रों को बेच रहे हैं। ठौर–ठौर पर श्रीमद्भागवत हो रही है। वह भी कॉन्ट्रैक्ट (ठेके) पर की जाती है कि इतनी रकम लेंगे और भागवत सुना देंगे। श्रवणकारियों को भागवत सुनने पर कोई लाभ नहीं होगा, क्योंकि वहाँ विश्वसनीयता कहाँ है? जैसा प्रवचनकार होगा, श्रवणकारियों पर वैसा ही प्रभाव पड़ेगा। पैसे का लोभ बढ़ेगा। अतः ऐसी ठौर पर सुनने जाना ठीक नहीं होगा। अपने घर पर ही भागवत का पठन करना श्रेयस्कर तथा उत्तम होगा।

मार्मिक चर्चा को सुनो। सतयुग, त्रेता, द्वापर के मानव, साधक एवं स्वर्गीय देवता भी चाहते हैं कि हमारा जन्म कलियुग में हो जाए तो हम अपना उद्धार कर लें, अर्थात् इस जन्म मरण रूपी दारुण दुख से छुट्टी पा लें। जन्म मरण का दुख इतना भारी है कि बर्दाश्त हो ही नहीं सकता। लेकिन माया ऐसी है कि आंखें खुलने नहीं देती। सभी अचेत अवस्था में पड़े सोते रहते हैं। यदि कोई पीछे से संस्कारों की सुकृति जागृत हो जाए तो साधु का संग बन जाए और सही मार्ग मिल जाए। सच्चा साधु वही है, जो पैसे को जहर समझता है। कहते हैं कि मठ मंदिर का काम कैसे चलेगा? इसका मतलब यह हुआ कि साधु को भगवान् पर विश्वास नहीं अर्थात् शरणागति की विशेष कमी है। हम देखते हैं कि जो निस्वार्थ संत हैं, उसके यहाँ स्वतः ही ट्रकों में भर भर कर सामग्रियाँ आती रहती हैं। संत को माँगने की जरूरत ही नहीं पड़ती। जो मठ मंदिर के अंदर विराजमान है, क्या उस भगवान् को पता नहीं कि यहाँ किस वस्तु की

कमी है या जरूरत है? स्वतः ही किसी को प्रेरित कर मालगाड़ियां भिजवाता रहता है। संत वही है जो भगवान् के आश्रित है और उसी का साधकों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। बढ़िया चुम्बक ही जंग लगे लोहे को अपनी ओर खींच सकता है। खोटी चुंबक, शुद्ध लोहे को हिला भी नहीं सकती। पैसा ही माया है, जो बुरे से बुरा कर्म करवाता है। तभी भगवान् जिसे अपनाता है, उस साधक को निर्धन बना देता है। उस साधक के पास कोई जाता तक नहीं है। सभी उससे घृणा करते रहते हैं। कोई उससे प्यार नहीं करता, परिवार वाले भी उसे छोड़ देते हैं। संसार तो छोड़ेगा ही। अब दारुण दुख का वर्णन करता हूँ।

ध्यान देकर सुनने से सावधानी से जीवन व्यतीत होगा। प्रथम में समझना होगा कि मानव जन्म सुदुर्लभ है एवं गर्भाशय का दुख–कष्ट तो सुनने मात्र से कलेजा धड़कने लगेगा। मल–मूत्र में पड़ा पड़ा जीव, क्षण–क्षण बाहर आने का चिंतन करता रहता है। क्योंकि माँ का खाना, पीना कोमल त्वचा को जलाता रहता है, जिससे जीव अचेत सा हो जाता है। कभी बेहोश हो जाता है। कभी चेत हो जाता है, तो दुख कष्ट से तड़पता रहता है। वहाँ उसकी कोई सुनने वाला नहीं है। थोड़े दिन भी नहीं, 9 माह तक कष्ट भोग करता रहता है। जब सात–आठ महीने गर्भ में हो जाते हैं, तब उसे कुछ–कुछ ज्ञान होने लगता है, तो प्रार्थना करता है, "जिसने मुझे इस गंदे कुंड में डाला है, वह मुझे इससे कब बाहर निकालेगा।" जब 9 माह पूरे हो जाते हैं, तब प्रसव वायु, उसे योनि से बाहर धकेलती है, तो सिर नीचे और पैर ऊपर होते हैं। जिससे उसका साँस घुट जाता है। बड़े कष्ट से बाहर निकलता है। मल–मूत्र में गिरकर कीड़े की तरह छटपटाता है, रोता है, और फिर बाहर आने पर जो आत्मज्ञान हुआ था, भूल जाता है।

इससे अधिक कष्ट उसको तब होता है, जब माँ–बाप निर्दयी होकर उसका अबॉर्शन (गर्भपात) करवाते हैं। निर्दयी डॉक्टर छुरी से धीरे–धीरे उसके अंग को काटते हैं। वह अंदर ही अंदर तड़पता रहता है। कोई उसे बचाने वाला नहीं है, वहीं उसकी जान निकल जाती है। उसका मनुष्य जन्म बेकार। यह भ्रूण बेकार चला जाता है। यह पैसा ही सच्ची माया है। डॉक्टर कैसा घोर निर्दयी काम करते हैं। इनको भगवान् इसी जन्म में दुख देते हैं और भविष्य में कई कष्टदायक नरकों में गिराकर कष्ट देते हैं। इन डॉक्टरों की संतानें कोई लंगड़ा, कोई अंधा तथा बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। लड़कियों की शादी बड़ी धूमधाम से पैसे देकर कर देते हैं, बाद

में विधवा हो जाती हैं। जो लड़के होते हैं, वह माँ–बाप को दुखी करते रहते हैं और कटु वचनों से उनका दिल दुखाते रहते हैं। शास्त्र बोलता है कि डॉक्टर का पानी भी नहीं पीना चाहिए। वरना पीने वाला भी क्रोधी व निर्दयी बन जाएगा। यह भ्रूण हत्या है। मानव को शिशुकाल में मच्छर, खटमल खाते रहते हैं। इनकी कोमल त्वचा होती है। बोल सकते नहीं। केवल रोना ही इनका साथी है। माँ–बाप को अपने काम से ही फुर्सत नहीं है, शिशु को कौन संभाले? थोड़ा बड़ा होने पर जबरन पाठशाला में जाना पड़ता है। वहाँ उसका मन नहीं लगता। बेचारा अंदर ही अंदर रोता रहता है, खेलना बंद हो जाता है, खिलौने ही उसको रुचिकर रहते हैं, परंतु खेल नहीं सकता है। बड़ा होने पर पढ़ाई की चिंता, फिर नौकरी की चिंता, फिर शादी की लालसा, फिर कमाने की चिंता, फिर मकान की, गाड़ी की, एवं आराम की लालसा। फिर बुढ़ापा आने पर रोग घेर लेते हैं। खटिया पर पड़ा पड़ा, सारी जिंदगी की चिंता घेरे रहती है। अंत में इसे कोई नहीं पूछता। पानी, खाना भी समय पर परिवार वाले नहीं देते और सोचते हैं कि यह मर जाए, तो हमारा पिंडा छूटे। फिर मर कर दुखदाई नरकों में कष्ट पाता है क्योंकि इसने कभी अपने बाप, भगवान् को याद किया ही नहीं। जिंदगी भर अंधा बना रहा। अन्य को सब तरह का दुख देता रहा। 'आये थे हरि भजन को, ओटन लगे कपास। यही तो है माया का खेल, चमत्कार।

मेरे गुरुजी का आदेश है कि भजन की कोई बात छिपा कर मत रखो वरना आप पर कोई श्रद्धा विश्वास नहीं करेगा। अहंकार, आप को आएगा ही नहीं, क्योंकि वह हरिनाम से जल चुका है। अतः जब तक आपको मेरे पर श्रद्धा नहीं होगी, फायदा नहीं होगा। इसलिए मैं अपनी चर्चा सुना रहा हूँ। बड़ाई मत समझना। मै आज ऐसी चर्चा करूँगा, जिस चर्चा से भक्तगणों को मुझ पर अटूट श्रद्धा, विश्वास बन सके। मैं अपनी बड़ाई नहीं करता। बड़ाई कौन चाहता है? जिसके मन में कुछ लेने की इच्छा हो, मुझे तो कुछ चाहिए ही नहीं। झूठी बड़ाई करूँगा तो मेरा ही नुकसान होगा।

भक्त का जीवनचरित्र देखना जरूरी है कि इसका आचरण कैसा है? भूतकाल में ऐसे ऐसे प्रवचनकार सामने आए जो निरी कपट की खान थे। इस कारण, सच्चे प्रवचनकार पर भी श्रद्धा, विश्वास खत्म हो गया। भीष्म पितामह ने कौरवों को समझाया कि यह भगवान् हैं, पर वे नहीं समझे। अतः यह बहुत जरूरी है कि जो हरिनाम का अथवा शास्त्रीय चर्चा का प्रवचन कर रहा है, वह कैसा आचरणशील है? पैसे का लोभी तो नहीं है?

पैसा ही माया का मूल है। निर्मलता, सरलता, इसमें कैसी है? सबका भला चाहता है कि नहीं? काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार से दूर है कि नहीं? स्त्रियों से रुचिकर वार्तालाप तो नहीं करता? कंचन, कामिनी, प्रतिष्ठा से दूर है कि नहीं? परोपकारी स्वभाव का है क्या? भजनशीलता का स्तर कितना है? ब्रह्म मुहूर्त में कितने बजे उठता है? चार बजे उठने वाला भी भजनशील नहीं होता। नास्तिक स्वभाव वाले भी चार बजे उठा करते हैं। जिसको भगवद् भजन की भूख होगी, वह ब्रह्म मुहूर्त का समय नहीं देखता। बारह बजे चेत (जाग) हो गया, तो कभी एक बजे चेत हो गया, तो उसी समय बिस्तर छोड़कर भगवद् भजन में लग जाता है। साधु को देख कर आह्लादित होता है कि नहीं? निष्काम है कि नहीं? शिष्य से भी शरीर की सेवा कराता है कि नहीं? यदि करवाता है, तो निष्कपट साधु नहीं हो सकता। क्योंकि उसको मालूम नहीं कि इस शिष्य में भी मेरे प्यारे ठाकुर जी परमात्मा रूप से विराजते हैं। सच्चा साधु न पैर धुलवायेगा, न माला पहनवायेगा, न पैर छुवायेगा, न अपना जूठा प्रसाद शिष्य को देगा। बीमारी की बात अलग है। स्वस्थ शरीर से सच्चा साधु कभी भी अपनी सेवा नहीं करवाएगा। मन ही मन शिष्य को भी नमन करेगा क्योंकि इसमें भी मेरा प्यारा परमात्मा के रूप में विराजित है। जीव मात्र को भी नमन करेगा। शिष्य जो भी शंका, संशय करेगा, खुलासा करके, उसके प्रश्न का उत्तर देकर, उसे अपने पर श्रद्धा विश्वास करा देगा। किसी से कुछ नहीं चाहेगा, केवल उसको भक्ति के लिए प्रेरित करेगा।

कहने का मतलब इतना ही है कि नीचे लिखे अनुसार उसका स्वभाव हो :

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।

(श्री शिक्षाष्टकम् श्लोक 3)

अपने को सबसे नीच स्वभाव का महसूस करे कि मेरे जैसा नीच पामर कोई नहीं है। मैं तो भक्तों की चरण रज के बराबर भी नहीं हूँ। सब को इज्जत दे। वह अपना मान इज्जत न चाहे। यदि कोई बड़ाई करे तो सकुचा जाए। उपरोक्त स्वभाव का संत ही अन्य को भक्ति में लगा सकेगा। इसकी वाइब्रेशन (तरंगें) सामने बैठे मानव पर पड़ कर उसे भगवद् भक्ति की ओर मोड़ देंगी। कहा भी है कि संत दर्शन ही सबसे प्रभावशाली है और सब में इतनी शक्ति नहीं है, जो संत में है। तीर्थ आदि में जाने से

स्वभाव में देर से परिवर्तन होगा। अतः बोला भी है कि संत समागम बहुत दुर्लभ है। भगवत्कृपा बिना नहीं मिल सकता।

मेरे गुरुदेव ने बोला कि यदि अपने अनुभव की या शास्त्र की बात छिपाते रहोगे तो तुम संसार का उद्धार नहीं कर सकोगे, क्योंकि तुम एक छोटे से गाँव में रहने वाले साधारण गृहस्थी हो। तुमको कोई नहीं जानेगा। तुमको भगवान् ने गोलोक धाम से पृथ्वी पर भेजा है, सबको अपने पास लाने हेतु। इस तरह से भगवद् आदेश का पालन नहीं हो सकेगा। तुम्हें गोलोक से मृत्युलोक में आने का सर्टिफिकेट (प्रमाण पत्र) दिया गया है। वह सर्टिफिकेट क्या है? तुम्हारे दोनों हाथ में सात–आठ भगवद् आयुधों के चिह्न हैं, जिनको तुम दिखाने में हिचकते हो, जो ठीक नहीं है। जो देखना चाहें, फौरन दिखा दो, ताकि देखने वालों को तुम पर अटूट श्रद्धा, विश्वास बन जाए। इस प्रकार वह तुम्हारे भगवद् सम्बन्धी आदेश का पालन करेगा एवं उसका भवसागर से अर्थात् माया से अर्थात् दुखों से पिंडा छूट जाएगा।

मैंने बोला कि हे मेरे गुरुदेव! मेरी बड़ाई, प्रतिष्ठा होगी। मुझे अहंकार दुश्मन नष्ट कर देगा। अहंकार भगवान् का दुश्मन है। भगवान् अहंकार को चाहते ही नहीं हैं। अतः मेरा उद्धार कैसे होगा। श्री गुरुदेव बोले कि तुम यहाँ के नहीं हो। गोलोक धाम से आने वालों को अहंकार छूता ही नहीं है। अहंकार तो तुम्हारे हरिनाम से जल चुका है। यह तो एक साधारण सी चर्चा हुई। हरिनाम कोई भी करे तो अहंकार जलकर भस्म हो जाता है। तुम तो भगवद् पार्षद हो। तुम्हारा अहंकार क्या कर सकेगा?

श्री गुरुदेव ने पूरे राजस्थान में केवल मुझे ही शिष्य बनाया, अन्य कोई नहीं। तब से मैं बेफिक्र होकर सब भक्तों को मेरे अनुभव व सारी बातें खोलकर बताता रहता हूँ। क्योंकि गुरुदेव जी मेरे पीछे खड़े रहते हैं। मेरे बाप, दादा (भगवान्) मेरे पास में रहते हैं। मैं उनकी गोद में रहता हूँ। भ्रमण के समय गोद में लटका कर, वे मुझे कहीं भी ले जाते हैं। कभी मथुरा, कभी बरसाना, कभी नंदगाँव, कभी गोकुल। जहाँ भी जाते हैं, मैं जिद करके उनके साथ हो जाता हूँ क्योंकि मैं उनका पोता हूँ। पोता तो सभी को अधिक प्यारा होता है। डेढ़ साल की उम्र होने से मैं जिद कर के सबका भला करने की, मेरे बाबा से बोलता रहता हूँ, तो बाबा कहते हैं, "जो मर्यादा है, उसे मैं कैसे तोड़ूँ?" मैं कहता हूँ कि बाबा! आपके ऊपर तो कोई नहीं है, तो आप मर्यादा को भी तोड़ सकते हो और तोड़ना ही

पड़ेगा। जब अधिक पीछे पड़ जाता हूँ तो बाबा को मर्यादाएं तोड़नी भी पड़ जाती हैं। कभी–कभी कहते हैं, "तू बड़ा जिद्दी है। मुझे परेशान करता रहता है। मेरे कान खाता रहता है।" मैं कहता हूँ कि तो मैं किस का कान खाऊँ? मेरा दूसरा कोई है ही नहीं। तब बाबा मुझे गोद में उठाकर हँसते हुए चुंबन करते हैं। मैं उनके गले से लिपट जाता हूँ। यह है भगवद् प्यार की चर्चा। कोई भी ऐसा कर सकता है, परंतु सभी माया में लिप्त हैं। मैं भी सब पर ऐसी कृपा नहीं करता, मेरे बाबा ही सूक्ष्म रूप में प्रेरित करते हैं। तब किसी जीव के लिए बाबा से जिद हो जाती है, वरना नहीं। यह तो मेरे बाबा ही जाने।

भगवान् कृष्ण अर्जुन को ज्ञान का उपदेश दे रहे हैं, "अर्जुन! जो अहंकार, बल, घमंड, कामना और क्रोध आदि से दूसरों की निंदा में रत हैं, वे अपने व दूसरों के शरीर में स्थित, मुझ अंतर्यामी से द्वेष करते रहते हैं। उनको मैं सूकर, कूकर योनियों में गिराता रहता हूँ।" यह गीता के 16वें अध्याय के, 18वें श्लोक में बोला है।

17वें अध्याय के 6ठे श्लोक में भी बोला है, "हे पार्थ! जो शरीर रूप से स्थित, भूत समुदाय को और अंतःकरण में स्थित मुझ अंतर्यामी को कृश करने वाले, अर्थात् दुख देने वाले हैं, उन अज्ञानियों को तू आसुरी स्वभाव वाला ही जान। ऐसे मानव, शास्त्र के विरुद्ध, मनोकल्पित घोर तप को करते हैं। दंभ और अहंकार से कामना, आसक्ति और बल के अभिमान से युक्त रहते हैं, उनको मैं घोर दुखदाई नरकों में डालकर पीड़ा देता रहता हूँ।"

मैं सभी भक्त समुदाय को बताता रहता हूँ कि अपराधों से बचो। 10 अपराध शास्त्रों में एवं 84 जो शास्त्रों में नहीं है। वह विचार करने पर प्रकट होते हैं। 84 लाख योनियों में भी परमात्मारूप से भगवान् उनके हृदय मंदिरों में विराजमान रहते हैं। उनको भी दुखी मत करो। चींटी, मक्खी, पेड़ आदि के प्रति भी अपराध बनते रहते हैं। इसी कारण हरिनाम में भक्त समुदाय का मन नहीं लगता। इस प्रकार 94 अपराध हैं, उनसे बचकर रहने से भगवान् भक्त के पीछे छाया की तरह चिपके रहते हैं। भगवान् भक्त के पास जाकर दर्शन देते रहते हैं। भक्त भगवान् के पास नहीं जाता। भगवान् कितनी दया के समुद्र हैं, ऐसा विचार कर हरिनाम में मन लगाना चाहिए। हरिनाम जप ही कलिकाल का अमूल्य धन है। तीन युगों के मानव तथा देवता भी कलियुग में जन्म चाहते हैं। सतयुग, त्रेता, द्वापर में

भगवद्प्राप्ति का इतना सरल, सुगम साधन नहीं था, जितना कि कलिकाल में है। हरिनाम के अलावा कोई साधन करने की आवश्यकता नहीं है। केवल हरिनाम।

कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिर सुमिर नर उतरहिं पारा।।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

(चै. च. आदि 17.21)

तीन बार बोला। मोहर लगा दी।

लेकिन कलियुग में अरबों, खरबों में कोई एक भगवान् का प्यारा इस साधन को करता है। इस दुनिया की आबादी देखते हुए, अरबों खरबों में से कोई विरला ही केवल भगवान् को चाहता है। जो चाहता है, उसे भगवान् जल्दी मिल जाते हैं।

अब आप सभी भक्त समुदाय विचार करें कि जो टेक्निकल है तथा लेक्चरर, हैडमास्टर न रहा हो, क्या वह 7–8 पुस्तकें "इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति" केवल एक ही विषय, "हरिनाम" पर लिख सकेगा? असंभव! इसका कारण है कि यह साधारण मानव नहीं हो सकता। अतः इसकी भगवद् सम्बन्धी बातों को मानना चाहिए ताकि इसी जन्म में वैकुण्ठ व गोलोक धाम में पदार्पण हो सके। जो कर्महीन होगा, नहीं मानेगा। जैसे कौरवों के घर में 24 घंटे भगवान् कृष्ण रहते थे, परंतु भीष्म पितामह के बताने पर भी कृष्ण को कौरवों ने एक साधारण मानव ही समझा। अतः मारे गए। यह प्रत्यक्ष उदाहरण है, क्योंकि पांडव भक्त थे। इनका अपराध करने से कौरवों के ज्ञान नेत्र बंद थे।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

अजनाभवर्ष : वैकुण्ठ का एक टुकड़ा

16 सितम्बर 2016
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा अहैतुकी प्रेमा भक्ति की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

मनुष्य जन्म बहुत मुश्किल से मिलता है, वह भी भारतवर्ष में। भारतवर्ष वैकुण्ठ का टुकड़ा लाकर योगमाया ने मृत्यु लोक में रखा है, जिस प्रकार मृत्यु लोक को दो टुकड़ों में बांट रखा है, एशिया और यूरोप। इसी प्रकार वैकुण्ठ को भी बांट रखा है। इस टुकड़े का नाम अजनाभवर्ष है, जो पृथ्वी पर लाकर योगमाया ने रखा है। भगवान् ने जब मृत्युलोक में अवतार लेने को कहा तो योगमाया को आदेश दिया, "मैं मृत्यु–लोक में जाऊँगा, प्रकट होऊँगा। वहाँ मेरे रहने हेतु सब सुविधाओं का प्रबंध करो।" तो योगमाया ने वहाँ से नदियों के रूप में देवियों को यहाँ पर प्रकट किया। इसका नाम भरत राजा से, भारतवर्ष पड़ गया। जैसे अजनाभवर्ष है, इसी प्रकार यह भारतवर्ष है। इन दोनों के आगे वर्ष जोड़ा है, अजनाभ के आगे वर्ष है, इसी तरह भारत के आगे वर्ष है अतः यह ध्रुव सत्य नाम है। पृथ्वी के धूलकण व तारे गिने जा सकते हैं, परंतु भगवद् लोक नहीं गिने जा सकते। अनंत हैं। यहाँ वैकुण्ठ की देवियां नदियों के रूप में हैं, जैसे गंगा, यमुना, सरस्वती आदि। देवता पहाड़ों के रूप में, जैसे पार्वती हिमालय की पुत्री है, एवं समुद्र भी देवता रूप में है, जब भगवान् वैकुण्ठ जाने लगे तो समुद्र को बोले "7 दिन के अंदर द्वारका को डुबो देना। मेरा जो स्थान है, उसको मत डुबोना और पूरी द्वारका को डुबो देना" तो समुद्र ने एक सप्ताह के अंदर द्वारका को डुबो दिया। जब रामचंद्रजी लंका में जाने के लिए रामेश्वर पुल बांधने लगे तो जब वह बंधने में नहीं आया तो रामजी को बड़ा गुस्सा आ गया और समुद्र से बोले, "अग्निबाण से तुझे सुखा दूँगा।" तो डर कर समुद्र, अमूल्य रत्नों का थाल लेकर, उनको भेंट करने के लिए आया

और बोला, "मुझ से गलती हो गई और अब मैं भी सहायता करूँगा।" यह सब देवी देवता ही तो हैं इसलिए हम बड़े भाग्यशाली हैं कि भारतवर्ष में हमारा जन्म हुआ है नहीं तो कहीं विदेश में हो जाता। हम कितने भाग्यशाली हैं, भारतवर्ष में हम भगवान् को जल्दी प्राप्त कर सकते हैं।

सतयुग, त्रेता, द्वापर के मानव तथा देवता भी चाहते हैं कि हमारा जन्म भारत वर्ष में हो तथा कलियुग में ही हो, ताकि सरलता व सुगमता से हम वैकुण्ठ की उपलब्धि कर लें। जन्म मरण के दारुण दुख से छुटकारा पा लें। गर्भाशय का कष्ट बोला नहीं जा सकता कि शिशु गर्भाशय के अंदर कितना दुख पाता है? बोलने पर दिल थर्राने लग जाता है।

जब मरण का समय आता है तो प्राणी कितना दुख, कष्ट भोगता है। हजारों बिच्छुओं का दर्द होता है। जिससे प्राणी बेहोश हो जाता है। भगवद् स्मरण बिना जन्म पर जन्म तथा मरण पर मरण होता ही रहता है, इसका कभी अंत होता ही नहीं है। अतः भगवद् स्मरण ही से इस दुख से छुटकारा मिल सकता है। अन्य कोई उपाय नहीं है। सबसे सरलतम उपाय है भगवद् शरणागति। शरणागति कैसे होगी? केवल हरिनाम जप से। जो भी कर्म करें भगवान् का समझकर करें। अपना कर्म बंधन का हेतु होगा। उसमें मानव फँसता ही चला जाएगा। दूसरा सरलतम उपाय है जीव मात्र और कण–कण में भगवान् को ही देखें। फिर किस से बैर–विरोध करेगा? जब थोड़ा–थोड़ा अभ्यास करेगा तो दोनों साधन हृदय में बैठ जाएंगे। जल्दी तो होगा नहीं। धीरे–धीरे होगा। एकदम से कोई बात बनती नहीं है। एकदम से कोई पी–एच.डी. पास नहीं करता।

धीरे–धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आए फल होय।।

(संत कबीर जी)

कोई प्राणी गर्भधारण करे और चाहे कि अभी शिशु हो जाए तो क्या हो जाएगा? हर प्राणी के दिन निश्चित हैं। गाय के 10 माह, भैंस के 9 माह, मानव के भी 9 माह में शिशु प्रकट होता है। तो धीरे–धीरे भगवान् में मन लगता है और संसार से मन हट जाता है अर्थात् वैराग्य उदय हो जाता है। गीता में, भगवान् अर्जुन को बोल रहे हैं, "अर्जुन! अभ्यास और वैराग्य ही प्रत्येक साधन को प्राप्त करने का सरलतम उपाय है।" अभ्यास से पी–एच. डी. हो जाती है एवं वैराग्य से भगवद् की उपलब्धि हो जाती है, क्योंकि मन दो तरफ नहीं रह सकता। मन का एक ही तरफ झुकाव रहा करता है।

श्रीमद्भागवत पुराण के 11वें स्कंध के 28वें अध्याय में, उद्धव ने भगवान् से बोला, "हे मेरे प्राणनाथ! जो अपना मन, आपके चरणों में स्थिर नहीं कर सका है, उसके लिए तो आपको पाना बहुत ही दुर्लभ है। बड़े–बड़े योगी भी अपना मन स्थिर न होने से हार मान लेते हैं। हे भगवन्! मुझे ऐसा कोई सरल, सुगम साधन बताइए ताकि उसे करने से आपकी सन्निधि में आ सकूँ। जो योगी जन साधन करते हैं, अपने बल पर साधन करते हैं, उन्हें अहंकार दबा लेता है एवं आप के भक्त आप पर सब कुछ छोड़ देते हैं तो आप अपने भक्त की रक्षा, पालन करते रहते हो। माया स्वप्न में भी उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकती। जो मानव, अपने बल पर साधन–भजन करते हैं, उन पर आपकी माया हावी होकर, उनको अपनी कामना पूरी करने नहीं देती, क्योंकि उनको अपने साधन का घमंड हो जाता है। ऐसे कर्म योगी, ज्ञानी हुआ करते हैं। उनको भगवान् से कोई मतलब नहीं। अतः वे सिद्धियों में फंस जाते हैं। भगवान् का आश्रित भक्त बेफिक्र होकर अपना जीवन व्यतीत करता रहता है।"

फिर उद्धवजी ने भगवान् से पूछा, "हे अच्युत! कोई ऐसा सरलतम व सुगम साधन बताइए जिससे एक साधारण भक्त आपकी गोद में आ सके, क्योंकि आप ही तो सबके माँ–बाप हो।" माता की गोद में आने पर बच्चा मौज से खेलता रहता है। जिस प्रकार से एक डेढ़ साल का शिशु अपनी माँ की पूर्ण शरण में रहकर खेलता रहता है। माया की माँ ही जो इतना शिशु का ध्यान रखती है तो जो पूरे ब्रह्मांडों की माँ भगवान् हैं, क्या शरणागत की देखभाल नहीं करेंगे? प्रह्लाद तो बेचारा पांच साल का ही था और हिरण्यकश्यप जो दस हजार हाथियों का बल रखता था, उसे गला दबा कर मार सकता था। क्यों नहीं मारा? इसका कारण है कि हर हरकत, भगवान् की प्रेरणा से हुआ करती है। भगवद् प्रेरणा बिना तो पेड़ का पत्ता भी नहीं हिलता।

हिरण्यकश्यप के हृदय मंदिर में भी भगवान् ही विराजमान थे। भगवद् प्रेरणा बिना प्रह्लाद को उसका बाप कैसे मार सकता था? अंत में भगवान् ने प्रह्लाद की रक्षा करके हिरण्यकश्यप को नरसिंह रूप धारण कर अपने नाखूनों से उसका पेट फाड़ कर मारा। प्रह्लाद ने हाथ जोड़कर भगवान् नरसिंह से बोला, "हे भगवन्! मेरे पिता ने आप का विरोध किया तथा घोर अपराधी हुआ, वह तो नर्क में जाएगा, यही मुझे दुखी कर रहा है।" तब भगवान् बोले, "ओ प्रह्लाद! तेरे जैसा भक्त पुत्र जिसको हो जाए वह बाप कितना ही पापी हो, भक्त पुत्र की वजह से वैकुण्ठ में पदार्पण

करेगा। तू अपने पिता के लिए मुझ से विनती कर रहा है, तुम्हारी तो 21 पीढ़ियां वैकुण्ठ चली गईं।" जिस कुल में एक भक्त हो जाता है उसकी 21 पीढ़ियां वैकुण्ठ में चली जाती हैं।

जिसका बेटा मांस, मदिरा का सेवन करता रहता है, उसकी तो 28 पीढियां, अनन्त नरकों में जाकर दुख भोग करती रहती हैं। नरक भोगने के बाद 84 लाख योनियों में जाकर भोग भोगती हैं। दुख कष्टों में पड़ती हैं।

भगवान् को याद आई कि उद्धव! तूने मुझसे पूछा था कि कोई ऐसा सरलतम व सुगम साधन बताइए, जिससे साधारण मानव आपकी सन्निधि में आ सके। वैकुण्ठ गमन कर सके। तो भगवान् बोले, "तुमको मैं ऐसा सरलतम साधन बता रहा हूँ, जिससे मानव सरलता से मुझे प्राप्त कर सकेगा। मेरे भक्त को चाहिए कि सारे काम मेरे लिए ही करें और कर्म करते समय मुझे याद भी करता रहे। तो धीरे–धीरे उसका मन संसार से हट जाएगा और स्वतः ही वह मेरे भक्त, साधुओं से संपर्क करेगा। क्योंकि जो वह चाहता है मेरे साधु भी उसी मार्ग के पथिक हैं। उनसे भगवद् कथा सुनकर अपना मन निर्मल कर लेगा। उसमें दुर्गुण समाप्त होते रहेंगे और सद्‌गुण ह्रदय में आते रहेंगे, तो उसका मन मुझ परमात्मा में लग जाएगा।"

"प्राणी मात्र में परमात्मा विराजमान होने से धीरे–धीरे उसका मन सब को आदर की दृष्टि से देखेगा। मक्खी, मच्छर, हाथी, पेड़–पौधे में भी मुझे देखने की शक्ति उसमें उदय हो जाएगी। उसकी नजर मेरे सिवा कहीं भी देखने की नहीं होगी। दुश्मन को भी प्यार की दृष्टि से देखेगा, क्योंकि मेरे भक्त को महसूस होगा कि इस दुश्मन में भी मेरा प्यारा प्राणनाथ ही बैठा हुआ है। मेरा भक्त उसका भी भला ही चाहेगा।"

जब 24 घंटे, भगवद् की भावना या चिंतन रहेगा तो अंत समय में जब मौत आएगी तो भगवान् ही याद आएंगे। भगवान् को वैकुण्ठ छोड़कर तुरंत भक्त के पास आना पड़ेगा। भक्त भगवान् के पास कभी भी नहीं जाता। भगवान् ही भक्त के पास आते हैं। जैसे ध्रुव, प्रह्लाद आदि। भगवान् उसे अपने विमान में बिठाकर वैकुण्ठ में ले जाते हैं, वहाँ उसका भव्य स्वागत होता है। सभी वैकुण्ठवासी उससे बहुत प्यार का व्यवहार करते हैं। वैकुण्ठ में वह जीव अनंत युगों तक आनंद भोगता है। फिर किसी भक्त के घर भगवान् उसे जन्म देते हैं, ताकि वह प्रेम से भजन कर विरहमयी अवस्था उदय करके भगवान् से सम्बन्ध स्थापित कर ले। ऐसा

श्रीमद्भगवद्गीता बता रही है कि गोलोक धाम के लिए भगवान् से सम्बन्ध होना बहुत जरूरी है। सम्बन्ध के बिना गोलोक धाम में जीव नहीं जा सकता। वह सम्बन्ध दास का हो, दोस्त यानि सखा का हो, भाई का हो, बाप का, बेटे का हो, पति का हो, जैसा भी सम्बन्ध होता है, उसे भगवान् गोलोक धाम में ले जाते हैं। संसार के सम्बन्ध में एक उदाहरण द्वारा खुलासा से समझ में आ जाएगा। मानो किसी बेटी का सम्बन्ध एक युवक से कर दिया। बेटी अपने पास 25–30 साल तक रही। सम्बन्ध बनने से वह अपने माँ–बाप को तुरंत ही छोड़ देगी, और केवल एक रात में ही उस युवक से गहरा सम्बन्ध स्थापित कर लेगी। न लड़की उसे छोड़ेगी न युवक उसे छोड़ेगा एवं सारी उम्रभर माँ–बाप से बिछुड़ कर युवक के घर में ही अपना अलग से परिवार बना लेगी और माँ–बाप को भूल जाएगी। कभी–कभी बेमन से माँ–बाप से मिलने जाया करेगी। वह भी समाज के डर से कि समाज उसे क्या कहेगा। अतः जाना पड़ेगा।

भगवान् ने यहाँ तक कहा है कि किसी प्रकार त्रुटि पड़ना तो दूर रही, यदि इस धर्म का साधन जो पीछे बताया है, भय, शोक आदि के अवसर पर रोने–पीटने, भागने जैसा निरर्थक कर्म भी निष्काम भाव से उन्हें अर्पण कर दें, तो वह भी उनकी प्रसन्नता का कारण होगा। जो भक्त उनके भक्त को यह स्पष्ट करके समझाएगा तो ज्ञानदाता को प्रसन्न मन से सब कुछ अर्पण कर देंगे। वे उसके खरीदे हुए गुलाम बन जाते हैं। उसके आदेश का पालन करने में मजबूर हो जाते हैं। इस प्रकार का वर्णन श्रीमद्भागवत पुराण में लिखा मिलता है, मैं अपनी तरफ से कुछ नहीं बोलता। जो धर्म शास्त्रों में लिखा है, वही बोलता हूँ और जो अनुभव में आता है, वही बोला करता हूँ। श्रवणकारी इसे भगवत्कृपा का ही फल समझें। मेरा कुछ ज्ञान नहीं है। भगवान् जो प्रेरणा करते हैं प्रेरित होकर वही प्रसंग मैं आप सब भक्तों के चरणों में अर्पित कर देता हूँ। इसमें मेरा अपना ज्ञान कुछ भी नहीं है, क्योंकि मेरे गुरुदेव का आदेश है कि तुम सब खोलकर श्रवणकारियों को बताओ ताकि उनको भगवत्प्राप्ति लाभ हो सके। मैंने बोला कि मेरा आदर सत्कार हो जाएगा, मुझे अहंकार आकर दबा लेगा, तो मेरा नाश हो जाएगा। तो श्री गुरुदेव ने बोला कि तुमने इतना अधिक हरिनाम किया है जिससे अहंकार जलकर भस्म हो चुका है। तुम निश्चिंत होकर अपने अनुभव व शास्त्र सम्बन्धित बातें सभी को खोलकर बताओ। भगवान् तुम पर अति प्रसन्न होंगे। मैं तुम्हारी जिम्मेदारी लेता हूँ। तब मैं निश्चिंत हो गया। अब मुझे कोई भय नहीं रहा।

मन को सहारा चाहिए

4

23 सितम्बर 2016
श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, चंडीगढ़

अनंत कोटि भक्तजनों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार करें और हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद करें।

मैं दोबारा बोल रहा हूँ ताकि भक्त समुदाय की आंखें खुल जाएँ कि भारत में मानव पर जन्म से ही आध्यात्मिक प्रभाव रहता है। हम बड़े भाग्यशाली हैं जो भगवान् ने हमें भारत में जन्म दिया। हमारा भारत वर्ष वैकुण्ठ का टुकड़ा है। योगमाया ने इसे भगवान् कृष्ण के आदेश से मृत्यु लोक "अवनी" पर ला कर रखा है। इसका वैकुण्ठ में नाम है अजनाभवर्ष। राजा भरत के नाम से इसका नाम भारतवर्ष हो गया। दोनों स्थानों के आगे वर्ष शब्द इसी कारण से है। अजनाभवर्ष की देवियां नदियों के रूप में भारत में बहती रहती हैं। इनमें स्नान करने से हृदय निर्मल हो जाता है और पापों का सर्वनाश हो जाता है। इसी प्रकार वहाँ के देवता पहाड़ों के रूप में अपनी सीमा निर्धारित करते हैं। उनकी गोद में बैठ कर भक्त राजा भगवान् हेतु तपस्या करने जाते हैं। पार्वती, जो शिवजी की पत्नी हैं, हिमालय पहाड़ की बेटी हैं, यमुना अर्थात् कालिंदी भगवान् कृष्ण की पत्नी हैं।

समुद्र भी अजनाभवर्ष में देवता के रूप में हैं। वह भी भारतवर्ष में समुद्र के रूप में प्रकट हैं। जब भगवान् मृत्युलोक से जाने लगे, तब समुद्र को आदेश दिया कि मेरे जाने के बाद मेरी द्वारिका को डुबो देना, केवल मेरे महल को छोड़ देना। जो "भेंट द्वारका" नाम से जाना जाता है, अब भी मौजूद है।

हम कितने भाग्यशाली हैं कि भगवद् कृपा से हमारा जन्म भारत में हुआ है, फिर भी हम भगवान् को भूल रहे हैं। इस कलिकाल में भगवान् जो परम सुख की निधि हैं, भक्त को बहुत शीघ्र दर्शन देने के लिए आ जाते हैं। इसका खास कारण यह है कि कलियुग में मानव का मन माया की ओर अधिक झुका रहता है। भगवान् को कोई नहीं जानता। अतः भगवान् के चाहने वाले बहुत ही कम व्यक्ति हैं। भगवान् का मन भक्तों के बिना नहीं लगता है। भगवान् का जीवन ही भक्तों से है। अतः जो भी मानव थोड़ा–बहुत भगवान् को चाहता है, भगवान् उस पर जल्दी प्रसन्न हो जाते हैं।

कलिकाल में भगवान् इस कारण भी जल्दी प्रसन्न हो जाते हैं कि कलियुग में मानव हर प्रकार से कमजोर रहता है। एक तो थोड़ी आयु वाला है, संसार का वातावरण भी अनुकूल नहीं है। सत्संग की कमी रहती है, सच्चा साधु मिलता नहीं है। सभी धन की तरफ झुके रहते हैं, उनके लिए पैसा ही भगवान् है। पैसे हेतु बुरे से बुरा कर्म करते रहते हैं, सभी ओर स्वार्थ का बोलबाला है। रोग इतने फैल जाते हैं कि बताना दुर्लभ है। इसका कारण है दूषित अन्न, दूषित पानी और दूषित वातावरण। सभी मानव श्रीराम द्वारा स्थापित मर्यादाओं के विपरीत जीवन चलाते रहते हैं। मनमाने ढंग से धर्म शास्त्रों की चर्चाएं होती रहती हैं। जब पेट भरने की नौबत आ जाती है तो मानव साधु का भेष बनाकर जनता को ठगता रहता है। स्त्रियां दूषित हो जाती हैं। यहाँ तक कि पति को मरवा डालती हैं, अर्थात् कलियुग में कोई भी कर्म ठीक से नहीं होता।

अतः जो कोई मानव थोड़ा बहुत भी भगवान् को चाहता है तो भगवान् उस पर शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं, क्योंकि भक्तों की बहुत कमी रहती है। जो भक्त, शास्त्र में लिखे 10 अपराधों से तथा 84 अपराधों से बचता है (क्योंकि भगवान् 84 लाख योनियों के हृदय मंदिर में विराजते हैं) इनको कभी सताता नहीं है। जहाँ तक हो सकता है, इनकी तन–मन से सेवा करता रहता है। बस, भगवान् उस मानव के पीछे छाया की तरह चिपके रहते हैं एवं उसकी रक्षा, पालन, भरणपोषण करते हैं। सतयुग, त्रेता, द्वापर में भगवान् का दर्शन बहुत दुर्लभ होता है क्योंकि इन युगों में शास्त्र की मर्यादाएं रहती हैं। कलिकाल में सभी मर्यादाएं नाम मात्र की रहती हैं। यह सिद्धांत भी है कि जिस वस्तु की कमी रहती है उसकी चाहना सभी को अधिक होती है। ग्राहक की कमी होने से उसका मूल्य स्वतः ही बढ़ जाता है। यह ध्रुव सिद्ध सिद्धांत है।

कलिकाल में घर बैठे ही भगवान् मिल जाते हैं। कहीं दूर पहाड़ आदि पर जाने की जरूरत नहीं है। सर्दी, गर्मी, बरसात सहने की जरूरत नहीं है। कहीं भी बैठकर, किसी भी समय, बिना मन लगाए ही, केवल भगवद् नाम करते रहो तो भगवद् नाम करने वाले का चारों ओर सुख ही सुख बनता जाएगा। दुख का तो नामोनिशान भी नहीं रहेगा। तभी तो शास्त्र बोल रहा है :

कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिर सुमिर नर उतरहिं पारा।।

जैसे भी हो नाम करो, तो दसों दिशाओं में सुख ही सुख हो जाएगा। शास्त्र बोल रहा है :

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

लेकिन एक प्रसंग बहुत जरूरी है कि भगवान् के मिलने का मार्ग बताने वाला अध्यापक, परमावश्यक है क्योंकि धर्मशास्त्र पढ़कर 10% ही मन पर प्रभाव पड़ता है और पी–एच.डी. किया हुआ अध्यापक (गुरु) अच्छी प्रकार से ज्ञान मार्ग पर चलने वालों के प्रश्नों के उत्तर देकर, उनको आध्यात्मिक मार्ग पर सुचारु रूप से चला सकता है। संशय हृदय में रहने से भक्ति मार्ग रुक जाता है। ऐसा गुरु भी भगवद् कृपा के बिना नहीं मिल सकता। जिस जीव की सुकृति होगी उसे ही ऐसा गुरु उपलब्ध होगा।

सर्वप्रथम तो ऐसा गुरु हो जो बिल्कुल निस्वार्थी हो और सबका भला चाहता हो। दयावान हो, समदर्शी हो, कष्ट सहने वाला हो, भजनशील हो, दुश्मन का भी कल्याण चाहता हो, जीवमात्र को अपना समझता हो, आलसी न हो, निरोगी हो, अल्प खान–पान वाला हो, निद्रा आदि से ग्रसित न हो, अंदर के शत्रुओं जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, उसको छू तक न गया हो। कंचन, कामिनी, प्रतिष्ठा से घृणा करता हो आदि आदि गुण आश्रम को चलाने वाले गुरु में होने चाहिएँ। ऐसा गुरु स्वयं को तथा अन्य को जो आश्रम में रहते हैं, जन्म–मरण से छुड़ाकर वैकुण्ठ ले जा सकता है। श्रद्धावान मानव गुरु की पहचान करने में असमर्थ रहता है, अतः कपटी, स्वार्थी गुरु के चक्कर में फँस जाता है। जैसाकि कलियुग में, ऐसे गुरु जनता के सामने आए हैं। यह स्वयं भी डूबते हैं और शिष्यों को भी डुबो देते हैं। भवसागर तो दुखों का भंडार है। इसमें डूब कर अनंत युगों तक दुख व कष्टों की चक्की में पिसते रहते हैं। मानव जन्म सुदुर्लभ है।

अतः सोच समझ कर गुरु करना चाहिए। चाहे कुछ समय लग जाए। कभी भी जल्दी नहीं करनी चाहिए। जल्दी में सभी काम बिगड़ जाते हैं, अन्यों को भी पूछना चाहिए। स्वयं भी उनका आचरण देखना चाहिए। कुछ दिन पास रहकर पता करना चाहिए।

कलिकाल में भगवद्प्राप्ति का रास्ता केवल हरिनाम जप करना ही है, जो श्री चैतन्य महाप्रभुजी ने स्वयं आचरण करके सभी को बतलाया है कि मानव को एक लाख नाम अर्थात् 64 माला नित्य जपना अति आवश्यक है। चाहे मन लगे चाहे न लगे, तो उसका वैकुण्ठ वास हो जाएगा। यदि मानव 94 अपराधों से बचने का यथासंभव प्रयत्न करता है, तो कोई अपराध होने पर भी भगवान् उसे अगला जन्म मानव का ही देंगे, ताकि अगले जन्म में वह सुधर जाए। जैसे विद्यार्थी नवीं, दसवीं पास करके कॉलेज में जाता है। यदि दसवीं करके घर पर ही बैठ जाएगा तो उसे पढ़ने का लाभ नहीं मिलेगा और यदि कॉलेज में पढ़ने हेतु जाता रहा तो उसे उसका लाभ अवश्य ही मिलेगा। नौकरी या बिजनेस अच्छी प्रकार से कर सकेगा। इसी प्रकार भक्त की भक्ति में कमी रहने से भगवान् उसे अगला जन्म मनुष्य का ही दिया करते हैं, ताकि इस जन्म में वह हरिनाम जप करके भगवान् से प्रेम का वातावरण बना सके एवं संसार से वैराग्य कर सके।

श्रीमद्भगवद् गीता बता रही है कि अभ्यास तथा वैराग्य से ही मानव का दुख और कष्टों से उद्धार हो सकता है। अभ्यास क्या है? हरिनाम जप। और वैराग्य क्या है? साधु संग होने से संसार से मन हटना। कुटुंब परिवार से मोह दूर होना एवं भगवद् भक्तों में प्रेम होना। भगवान्, भक्त के प्यार के बिना नहीं मिलते। भक्त को आसरा लेना ही पड़ेगा वरना सारा जीवन बेकार में ही चला जाएगा। जैसे स्वप्न का खेल न के बराबर है, वैसे ही संसार की आसक्ति भी न के बराबर है। सभी नश्वर है। भगवान् कृष्ण उद्धव को जो उनका बहुत ही हृदय से प्यारा है, बोलते हैं, "उद्धव! मैं ही सब कुछ हूँ। मैं बनता भी हूँ और बनाने वाला भी हूँ। जो कुछ जगत में दिखाई देता है या महसूस होता है, मेरे से अलग नहीं है। सब कुछ मैं ही हूँ। ऐसी वृत्ति, जिस मानव या भक्त की है, उससे मैं कभी अलग नहीं होता और भक्त भी मुझसे ओझल नहीं होता।" इस गहराई को समझ कर तुम अपना जीवन चलाते रहो। तुमको कभी भी दुख, कष्ट नहीं छुएगा एवं तुम आनंद सागर में सदा तैरते रहोगे।

इस ब्रह्मांड को बलदाऊजी ने शेषनाग के रूप में, जिसके हजारों फन हैं, एक फन पर धारण कर रखा है। जिसे वे सरसों के एक दाने के भार बराबर महसूस करते हैं।

इस अखिल ब्रह्मांड में सभी को किसी का सहारा बहुत ही आवश्यक है। बिना सहारे कोई भी टिक नहीं सकता। इसी प्रकार मानव को भगवान् की भक्ति का सहारा होना चाहिए। यदि मानव को भगवान् का सहारा नहीं है तो मानव डाँवाडोल स्थिति में रहेगा। सदैव दुख पाता रहेगा। इसी प्रकार दसों इंद्रियों को वश में करने हेतु संत का सहारा बहुत आवश्यक है, नहीं तो इंद्रियां दुख सागर में डुबोती रहेंगी। इन इंद्रियों के साथ ही मन, बुद्धि, अहंकार रहता है। यदि इनको भगवद्कथा का सहारा नहीं है तो यह तीनों विकृत अवस्था में रहेंगी अर्थात् अशांत अवस्था में डूबी रहेंगी। भगवत् कथा के अभाव में माया इन पर हावी रहेगी एवं इनको दुख, कष्ट ही व्यापता रहेगा। अतः भगवत् कथा हरपल सुनते रहना चाहिए ताकि माया का प्रभाव न हो सके। माया का मतलब है अज्ञान, अंधेरा, नासमझी, नश्वरता, अनित्यता आदि।

भगवान् ने ही सब अवस्थाएं रची हैं। जो रची हैं, वह भी स्वयं वे आप ही हैं। भगवान् के बिना अनंत कोटि ब्रह्मांडों में कुछ भी नहीं है। सब भगवान् की लीला मात्र है, लेकिन मानव इतना अज्ञानी तथा मूर्ख है कि सब कुछ अपना समझ कर व्यवहार करता है। अतः दुख सागर में गोता खाता रहता है।

भगवान् ने कृपा करके जीव को मानव योनि प्रदान की है। जीव अज्ञान के अंधेरे में भटक रहा है, जगह–जगह ठोकरें खा रहा है, इस को कौन समझाए? अतः भगवान् स्वयं ही गुरु रूप में आकर मानव को अपनाते हैं और ज्ञान का चश्मा इसकी आंखों पर चढ़ाते हैं, ताकि यह सुखी मार्ग पर चलकर उनके पास आ सके। क्योंकि यह अनंत समय से उनसे बिछुड़ा हुआ है अतः सुख की नींद सो सके। गुरुदेव ही इसका कर्णधार हैं। गुरुदेव पर अटूट श्रद्धा, विश्वास रखकर अपना मार्ग तय कर सकता है, जिस मार्ग पर चलकर साधु वर्ग इस परमात्मा से मिल सके हैं।

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास।।

(मानस, उत्तर. 103 (क))

केवल हरिनाम जप कर। अन्य कोई भक्ति साधन करने की आवश्यकता नहीं है। इस हरिनाम से कैंसर, लीवर, हृदय के दोनों ओर के वाल्व ठीक हो गए। जबकि डॉक्टरों के सब साधन फेल हो गए। डॉक्टर इस प्रकार से हरिनाम की महिमा सुनकर चकित हुए और वे भी स्वयं इसको अपना कर जीवन चला रहे हैं। सत्संग की बड़ी महिमा है। क्षणभर का सत्संग ही जीवन को बदल देता है। लेकिन होना चाहिए किसी उन्नत भक्त का, ताकि उसका श्रवणकारी पर गहरा प्रभाव पड़ सके।

बढ़िया चुंबक जंग लगे लोहे को भी अपनी ओर खींच लेता है अर्थात् सत्संग नास्तिक मानव को भी आस्तिक बना देता है। घटिया चुंबक बढ़िया लोहे को अपनी ओर नहीं खींच सकता। यह एक सच्चा उदाहरण संतगण दिया करते हैं कि जैसे मीठा चीटियों को अपनी ओर खींच लेता है तथा जीव मात्र की भूख अपने खाने की वस्तु की तरफ स्वयं ही खिंची चली जाती है। जिस जीव की सुकृति है भगवान् उस जीव को संत के पास भेज देते हैं।

बिनु हरि कृपा मिलें नहीं संता।

(मानस, सुन्दर. दो. 6 चौ. 2)

सुकृति बढ़िया कब जागती है? जब उससे किसी शुद्ध, सच्चे संत की सेवा बन जाए। भगवान् सदैव ही भक्त के पीछे लगे रहते हैं, क्योंकि भक्त ही भगवान् का सब कुछ है। भगवान् को अन्य से कुछ लेना–देना नहीं है। भगवान् का जीवन ही संत से है। संत किसे कहते हैं? जिसने अपनी दसों इंद्रियों को एवं मन को भगवान् में लगा रखा है। उसे ही संत का पद उपलब्ध होता है। जो भगवान् एवं भक्त पर पूर्ण शरणागत है।

श्रीमद्भगवद् गीता का सार अर्थात् प्राण 18वें अध्याय का 66वां श्लोक है, "शरणागति"। जैसे उदाहरण स्वरूप बताया जा रहा है कि एक डेढ़ साल का शिशु पूर्ण रूप से अपनी माँ के शरणागत होता है। सभी जानते हैं कि शिशु बेफिक्र होकर अपना जीवन यापन करता रहता है। माँ इसका 24 घंटे कितना ख्याल रखती है, जो कि माया मिश्रित माँ है। भगवान् जो अनंत कोटि ब्रह्मांडों की माँ है, उनकी शरणागति लेने से क्या हो सकता है, आप स्वयं विचार कर देख सकते हैं। कलियुग में शरणागति का एक ही मार्ग है, केवल हरिनाम जप, कीर्तन एवं भगवद् कथा। भगवद् कथा के अभाव में हरिनाम रुचिपूर्वक नहीं होगा। जबरदस्ती ही होगा। लेकिन जबरदस्ती भी श्रेयस्कर है।

धीरे–धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आए फल होय।।

(संत कबीर जी)

एकदम से किसी ने पी–एच.डी. पास नहीं की है। एल.के.जी.–यू.के. जी. में बैठकर ही आगे का मार्ग मिल सकेगा। जो भर्ती ही नहीं होगा, पी–एच.डी. स्वप्न में भी नहीं कर सकेगा।

मेरे गाँव का नाम पांडववाल है, लेकिन अब इसका नाम बिगड़कर, पांचूडाला हो गया है। यहाँ से 7 किलोमीटर दूर विराटनगर है। जहाँ पांडवों का एक साल का अज्ञातवास हुआ था। वहाँ पर भीम लता मौजूद है, जो अथाह पानी से भरपूर रहती है। इसकी गहराई का किसी को मालूम नहीं है। शिवजी यहाँ पांडवों से मिलने आया करते थे। यहाँ पहाड़ में महादेव के तीन कुंड मशहूर हैं, जहाँ पानी अखंड भरा रहता है। हमारे चारों ओर पहाड़ हैं, जहाँ तपस्वी कई जगह तपस्या करते रहते हैं। मेरे पड़–दादाजी महात्मा को रोज दूध पिलाने जाया करते थे। एक बार बरसात का मौसम था। नाला बहुत जोर से बह रहा था जिसमें 25 किलोमीटर लम्बी पहाड़ी का पानी तूफान की तरह आ रहा था।

मेरी पड़–दादी ने उस दिन पड़दादा को दूध पिलाने के लिए जाने हेतु मना किया। लेकिन पड़–दादा ने एक न सुनी और वह बहते नाले में उतरकर साधु के पास पहुँच गए, तो वहाँ क्या देखते हैं कि दो शेर धूने पर साधु के पास बैठे हैं। तो पड़–दादा जोर से चिल्लाये, "बाबा! दूध लाया हूँ। कैसे आऊँ?" साधु ने चिमटे से इशारा किया तो दोनों शेर जंगल में भाग गए।

जब संत के पास पड़–दादाजी पहुँचे, तो संत महाराज नाराज होकर बोले, "तू बह जाता तो मैं क्या जवाब देता?" उनकी वापसी पर बाबा ने नाले में रास्ता बना दिया। अतः वह बहे नहीं। तब संत खुश होकर बोले, "जा तेरे कुल में हर पीढ़ी में एक भगवद् का प्यारा पुत्र होगा और नहरुआ रोग (नारू रोग) पीड़ित को, यदि तुम्हारे परिवार के लोग, चाहे शिशु ही हाथ फेर देगा, तो तुरंत ठीक हो जाएगा।

नहरुआ (नारू) एक रोग होता है, इसमें जोरदार बुखार आता है। एक फोड़ा शरीर में होता है, उसमें से धागे जैसा तार निकलता है। वह

एक कीड़ा ही होता है, जो अधिकतर उदयपुर, कोटा, राजस्थान के इलाकों में लोगों को हो जाता है। मैं जब राजकीय नौकरी में था तो मैंने मकान के बाहर बोर्ड लगा रखा था कि इस रोग का यहाँ मुफ्त इलाज होता है, तो बहुत रोगी आते थे।

हमारे यहाँ पांडवों के पास कृष्ण भी आते थे। पांडवों ने यहाँ पर एक ही रात में 52 बावडियां बनाई थीं, जो अब मिट्टी में दब गई हैं। कुछ अभी भी बाकी हैं। इसमें 10–10 फुट के पत्थर लगे हैं। चूना आदि कोई मसाला नहीं है। यहाँ पहाड़ों में कई जगह साधु–संत तपस्या करते रहते हैं।

यहाँ एक सिद्ध का स्थान है, जो मेरे मकान से लगभग 3 किलोमीटर दूर पहाड़ में है। वहाँ मुनि महाराज को पहाड़ में से निकाला गया था। जिसमें न मांस था न चमड़ा था, केवल हड्डियों का कंकाल ही था और ॐ की ध्वनि शरीर से निकल रही थी। सब की प्रार्थना से संत ने लगभग 10 हाथ गहरे कुंड में गंगा को बुलाकर भरा है। जहाँ हजार फुट पर पानी नहीं है, वहाँ इस कुंड में 4–5 फुट पर ही पानी रहता है। कितना ही निकालो, कभी कम नहीं होता। मेरे यहाँ आने वालों ने इसका दर्शन किया है।
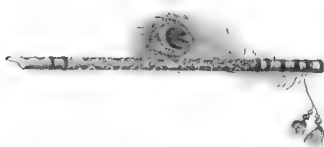
संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : मैं एक साल से 3 लाख हरिनाम कर रही हूँ, केवल संख्या हो रही है पर रुचि नहीं आ रही है, मैं क्या करूँ ? क्या इसका फल केवल वैकुण्ठ होगा और मैं गोलोक नहीं जा सकूँगी ?

उत्तर : नहीं ! नहीं ! गोलोक तो जा ही नहीं सकोगी पर वैकुण्ठ चले जाओगे, 3 लाख कर रहे हो तो वैकुण्ठ चले जाओगे। तुम्हारा मन लगे चाहे नहीं लगे। एक लाख वाला भी चला जायेगा। जो एक लाख से कम करेगा, उसको वैकुण्ठ तो नहीं मिलेगा पर दुबारा मनुष्य जन्म जरूर मिलेगा।

सतीत्व की परीक्षा

30 सितम्बर 2016
श्रीराधाकुण्ड

समस्त भक्तों के चरण युगल में अधमाधम इस दासानुदास
अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो
एवं हरिनाम रुचि होने की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

सभी भक्त समुदाय ध्यानपूर्वक सुनें। श्री रामजी ने जो मर्यादाएं रखी हैं, उन्हें अपनाकर सुखी रहें। उदाहरण के तौर पर श्रीगुरुदेवजी की चर्चा ध्यानपूर्वक सुनने की कृपा करें। शिशु अर्थात् मानव का प्रथम गुरु माँ–बाप ही होता है। जो युवक माँ–बाप की सेवा करेगा तो युवक के पुत्र भी उसकी सेवा करेंगे वरना नहीं। यह ध्रुव सत्य सिद्धांत है। रामसुखदासजी जो विरक्त निरहंकारी संत थे, कहा करते थे कि भक्तो! अभी तो तुम्हें घर में रहना नहीं आता है, तो समाज की सेवा क्या करोगे एवं भगवद् भक्तों की सेवा कैसे करोगे? जिस प्रकार जो पत्नी पति के अनुकूल नहीं रहती, वह स्वप्न में भी भगवद्भक्ति नहीं कर सकती अर्थात् हरिनाम जप जो कलिकाल का सर्वोत्तम साधन है, नहीं कर सकती। उसी प्रकार पत्नी का पति, जो पत्नी की राय बिना कुछ कर्म करता है, वह भी स्वयं में भक्त नहीं बन सकता। इसके घर में रिद्धि–सिद्धि नहीं रहती। जो शिष्य गुरुदेव के आदेश का पालन नहीं करता, वह शिष्य भगवान् व भक्त की सेवा कभी नहीं कर सकता। जो भाई, भाई की राय लिए बिना कर्म करता है, उसका कर्म निष्फल हो जाता है।

कलिकाल में ऐसा ही होता है कि भाई, भाई से राय न लेकर रिश्तेदारों से राय लेते हैं। उनका जीवन सुखमय नहीं रह सकता। ऐसे ही बहुत से सिद्धांत हैं। अतः भक्त समुदाय सोच समझकर जीवन बिताएं, ताकि उनका जीवन सुखमय बीते। भक्तों के साथ साथ मानव भी, शास्त्रों ने जो मर्यादाएं बांधी हैं, उन पर गहरा ध्यान देकर अपना जीवन यापन

करें तो श्रेयस्कर होगा। शादी अपने कुल में ही करें, वरना आपस में दंपत्ति की स्वप्न में भी नहीं बनेगी। कबूतरी की शादी कौवे से की जाए, तो कैसे बनेगी। दोनों का खून भिन्न भिन्न है। उदाहरण स्वरूप अस्पतालों में तब तक खून नहीं चढ़ाते, जब तक खून अनुकूल न हो, वरना रोगी की मृत्यु हो जाएगी। इन्द्रिय तर्पण करना नरक का द्वार है। वर्णसंकर संतानें, माँ–बाप को ही नहीं बल्कि सात पीढ़ियों को नर्क में ले जाती हैं। आत्मा, परमात्मा को सब का लेखा जोखा रहता है। इसमें एक अपवाद यह है कि जिसकी स्थिति व अवस्था ऐसी हो जाए अर्थात् तुरीय या परमहंस अवस्था तो उसके लिए मर्यादा स्वयं ही छूट जाती है। उक्त लिखित तो नीचे के स्तर वालों के लिए है। प्रेम अवस्था में मर्यादा नहीं रहती।

विराट नगर का वर्णन पीछे रह गया था, वह अब कर रहा हूँ। मेरे गाँव से लगभग 15–20 किलोमीटर दूर एक पहाड़ है, जहाँ अत्रि मुनि ने तपस्या की थी। उनकी पत्नी अनुसुइया थी। वहाँ स्नान के लिए पहाड़ की चोटी पर 3–4 कुंड हैं, जहाँ महिलाएं तथा पुरुष स्नान करते हैं। एक कुंड ऐसा है, जिसका पानी अत्रि–अनुसुइया मंदिर के अर्चन, पूजन के लिए है।

एक बार ब्रह्माणी, लक्ष्मी, पार्वती को अहंकार हो गया था और उन्होंने नारदजी से बोला कि उनके बराबर कोई भी संसार में सती नहीं है। नारदजी ने बोला, "घमंड क्यों करती हो? तुमसे अधिक तो भारतवर्ष के राजस्थान में अत्रि मुनि की धर्मपत्नी है।" ब्रह्मा, विष्णु, महेश को यह सुनकर दुख हुआ और तीनों ने सोचा कि हम उसका पति धर्म बिगाड़ कर आएंगे। उनकी धर्मपत्नियों ने कहा कि वे तुरंत जाकर अनुसुइया का पतिधर्म नष्ट कर आयें। तीनों साधु का वेश धर कर अत्रिजी के आश्रम पर गए और अनुसुइया को बोले, "मातेश्वरी! भिक्षा दो।" अनुसुइया ने बोला कि वह अभी ले कर आती हैं तब तक तीनों चटाई पर विराजे। तब तीनों बोले कि वे भिक्षा ऐसे नहीं लेंगे, तो अनुसुइया बोली कि कैसे लेंगे? उन्हें कौन सी भिक्षा चाहिए? तीनों ने बोला, "माता जी! आप हमको निर्वस्त्र होकर खाना खिलाओ, नहीं तो हम जाते हैं।" यह सुनकर अनुसुइया घबरा गई कि ये बिना खाये चले गये, तो ठीक नहीं होगा। ऐसा आज तक नहीं हुआ कि बिना भिक्षा के कोई यहाँ से गया हो।

तब अनुसुइया ने पति अत्रि के पास जाकर सब बातें बताईं। अत्रिजी बोले, "बिना भिक्षा दिए तो हमारा धर्म नष्ट हो जाएगा।" अनुसुइया बोली कि वह क्या करे? तो अत्रि मुनि बोले, "मेरा ध्यान करते हुए उनके चरणों

को धोओ। हमारा धर्म है कि साधु के चरण छूएं, यही हमारी तपस्या है।" अब अनुसुइया संकट में पड़ गई कि निर्वस्त्र होकर उनको प्रसाद कैसे खिलाये। तो अनुसुइया को हृदय में ही उनका शिशु रूप में दर्शन हुआ। यह अत्रिजी के प्रताप से ही हुआ। फिर वह निडर होकर बोली, "आप तीनों खाट पर बैठ जाओ।" तीनों खाट पर बैठ गए। अनुसुइया ने जैसे ही पैर छुए। तीनों साल–साल भर के शिशु बन गए। उसने उनपर पंचपात्र का जल छिड़का था।

अब अनुसुइया ने तीनों को अपने स्तनों का दूध पिलाया। जब अत्रिजी बाहर आए तो क्या देखते हैं कि तीनों ही शिशु बनकर पालने में सो रहे हैं। अत्रिजी ने भगवान् को नमस्कार किया और बोले, "भगवन्! आप तो सदैव ही भक्तों की रक्षा करते आये हो। मैं तो ऐसा भक्त भी नहीं हूँ। यह तो आपकी महानता ही है।" और नाचने लगे और अनुसुइया भी ताली बजा रही है और अत्रिजी के चरणों में लोट रही है।

ब्रह्माणी, लक्ष्मी और पार्वती आपस में बातें कर रही हैं कि उनके पतिदेव को गए बहुत समय हो गया। क्या बात है? अभी तक नहीं आए। किससे पूछें? इतने में नारद मुनि आ गए। तब तीनों ने नारदजी से पूछा कि क्या बात है कि उनके पतिदेव, अब तक क्यों नहीं आए? नारदजी बोले, "अरे संतों के पास जाने से क्या कोई जल्दी आ सकता है? हो सकता है 10–20 दिन लग जाएँ।" नारदजी को तो सब मालूम था, परंतु बताया नहीं। तीनों ने नारदजी से पूछा कि क्या वे उन्हें ढूंढने जाँए? तो नारदजी बोले, "अवश्य जाओ। उनका कुछ मालूम नहीं, हो सकता है साल भर न आए"। तीनों बोलीं, "तो नारदजी! हम अभी जाती हैं"।

अत्रि मुनि का पता पूछते पूछते तीनों अतेल गाँव में पहुँचीं, जो अत्रि मुनि के नाम से बसा हुआ है। उन्होंने गाँव वालों से पूछा, "क्या कोई तीन संत यहाँ आये हैं"? तो गाँव वालों ने बोला कि कुछ दिन पहले तीन साधु आए थे, अब मालूम नहीं कहाँ चले गए होंगे। "तुम किसलिए पूछ रही हो?" तीनों बोलीं, "अजी! वे हमारे गाँव में ही भिक्षा करते हैं। हमको उनका सत्संग का लाभ होता रहता है। अब सत्संग से वंचित हो गए हैं। अतः हम उन्हें ढूंढने आई हैं। मिल जाएंगे क्या"? तब गाँव वाले बोले, "हम नहीं कह सकते, ऊपर एक अत्रि संत रहते हैं, पर वे आश्रम में आने को मना करते हैं। अतः हम उनके पास नहीं जाते हैं, क्योंकि वह विरक्त संत हैं। उनके पास एक महिला भी रहती है। हमें तो उन पर कोई श्रद्धा–विश्वास है

नहीं। कभी–कभी बाहर से आने वाले वहाँ जाते रहते हैं। हम गाँव वालों में से तो कोई नहीं जाता। संत को स्त्री से क्या मतलब। अतः गाँव वालों को उन पर कोई श्रद्धा विश्वास नहीं है।"

पास वालों को कभी श्रद्धा नहीं होती, ऐसी ही भगवद् माया है। तीनों ब्रह्माणी, लक्ष्मी और पार्वती ने बोला, "हम जाती हैं।" तो सबने पूछा कि वहाँ जाकर क्या करेंगी? वहाँ जाने से क्या लाभ होगा ? तीनों ने उत्तर दिया, "हमने सुना है कि वहाँ पहाड़ की चोटी पर 3–4 कुंड हैं। हम वहाँ का दर्शन ही कर आयें"। गाँव वाले बोले, "यह तुम्हारी मर्जी है। तुम जा सकती हो"।

तीनों ऊपर गईं तो रास्ते में एक नवयुवक ब्रह्मचारी से भेंट हुई। उससे पूछा, "यहाँ अत्रि–अनुसुइया कहाँ रहते हैं?" ब्रह्मचारी बोला, "ऊपर चले जाओ। वहाँ दोनों ही मिल जाएंगे"। तीनों ने पूछा, "आप कौन हैं?" तो वह बोला, "मैं उनका सेवक हूँ। जैसी आज्ञा होती है, मैं कर देता हूँ।" तीनों ने फिर पूछा, "वहाँ की कोई नई बात जानते हो?" तो बोला, "हाँ! जानता हूँ। पहले तो माताजी अकेली ही रहती थीं। अब तो उनके पास तीन शिशु पालने में झूलते रहते हैं। शिशु क्या हैं, माता जी! वह तो सुंदरता की मनमोहक मूर्ति हैं। मैंने माताजी से पूछा था, परंतु माताजी ने अनसुनी कर दी, तो डर के मारे मैंने दोबारा पूछा ही नहीं।"

यह सुनकर तीनों घबरा गईं और आपस में बोलीं, "ये शिशु हमारे पति भी हो सकते हैं। हम तो मारी गईं।" आपस में कहने लगीं, "सतीत्व के अहंकार ने हमें नष्ट कर दिया। अब आगे क्या होगा? हे परमात्मा! हमारी रक्षा करो।" घबराती, थर्राती ऊपर पहुँचीं तो देखा कि अनुसुइया पालने में सोए हुए शिशुओं को झुला रही हैं। तीनों अचेत होकर गहरी नींद में सो रहे हैं। उन्होंने जाकर अनुसुइया के पैर छुए और अनमनी–सी होकर पास में बैठ गईं। अनुसुइया ने पूछा, "आप कौन हो? कहाँ से आई हो?" तीनों ने कहा, "हम आपके चरणों की दासी हैं।" उन्होंने पूछा, "यह तीनों शिशु आपके हैं क्या?" अनुसुइया ने उत्तर दिया, "हां! मेरे ही हैं।" इतने में अत्रि मुनिजी आ गए और पूछने लगे, "माताओ! आप कौन हैं? कैसे आई हैं?" तो तीनों डर गईं कि झूठ बोलेंगे तो अनर्थ हो जाएगा। उन्होंने सच–सच बता दिया कि वे ब्रह्माणी, लक्ष्मी और पार्वती हैं और अपने पतियों को लेने आई हैं। अत्रि मुनि बोले, "तो ले जाओ। अनुसुइया! इनको इनके पतियों को सौंप दो।" पतिदेव की आज्ञा से अनुसुइया बोली,

"अपने अपने पतियों को ले लो"। तो तीनों घबरा गईं कि यदि गलत हाथ लग गया तो पतिधर्म नष्ट हो जाएगा क्योंकि तीनों शिशु एक ही सूरत के थे। कैसे पहचानें? तीनों अनुसुइया के चरणों में पड़कर बड़े जोर से रोने लगीं, "माँ! हमारी रक्षा करो। हमारे धर्म की रक्षा करो।" अनुसुइया बोली, "ले जाओ न। मैं कब मना कर रही हूँ।" तीनों बोलीं, "हम इनमें से अपने अपने पति को कैसे पहचानें, हमारी सामर्थ्य के बाहर है।"

अत्रिजी बोले, "अनुसुइया! ज्यादा परीक्षा मत लो। यह मेरा पंचपात्र का जल लो और इन पर छिड़को।" अनुसुइया ने वैसा ही किया और तीनों, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव अपनी अवस्था में आ गए और अत्रि व अनुसुइया के चरणों में गिरकर कहने लगे कि यह है भगवद्भक्ति व पतिधर्म का साक्षात् रूप। कभी भी किसी अवस्था का अहंकार नहीं करना चाहिए। अहंकार ने सबको कितना दुख–कष्ट दिया है। भक्ति तत्व एवं सती तत्व मिलकर क्या नहीं कर सकते, भगवद् तत्व को अपने अधिकार में कर सकते हैं। तब वहाँ से विदा होकर सब अपने अपने धाम चले गए।

इसी प्रकार से हमारे यहाँ पहाड़ों पर तपोभूमि के अनेक स्थान हैं, जो दर्शन योग्य हैं। लगभग 40 स्थान हैं जिसमें संतों व शिवजी के अधिक स्थान हैं। हमारे पास ही तालवृक्ष में गर्म कुंड तथा ठंडा कुंड है, जो पहाड़ी तलहटी में ही है। यहाँ पर मार्कण्डेयजी ने तपस्या की थी। नलदेश्वर महादेव जी, पहाड़ों के बीच में हैं, जहाँ पर एक झुकी हुई चट्टान है, जैसे अभी गिर जाएगी। वहाँ नल की तरह से महादेवजी पर पानी गिरता रहता है। यह अलवर के रास्ते में है। इस स्थान को इसी वजह से नलदेश्वर बोलते हैं। इसी प्रकार से लगभग 40 जगह हैं, जहाँ पर महादेवजी व संतों के तपोमय स्थान हैं। बहुत से संत, गुफाओं में तप करते रहते हैं। इस कलिकाल में उनका दर्शन होना दुर्लभ है।

इसी प्रकार से पराशर ऋषि, वीर हनुमान, भानगढ़ सती, संत रामेश्वर, सुंदरदासजी, संत उदयनाथजी, धूणीनाथजी, नीलकामंगलदासजी, संत शीतलनाथजी, तखीजी धाम लोहागरजी, देवनारायण अवतारी, खाटू श्यामजी, जीण माता, नारायणी माता, कूल के कुंड, गरबाजी, संत बत्रामानसून, पांडुपोल, संत परमानंद छत्रसाल, संत चित्रदास, जितने संत मुझे याद हैं, आप भक्तों की कृपा से मैंने आपके चरणों में निवेदन कर दिया है। अभी तो बहुत हैं जो मुझे याद नहीं हैं। कलियुग में ऐसे संतों के दर्शन होना बहुत दुर्लभ है। उनके पानी के कुंड आदि के दर्शन कर सकते हैं, जैसे

अत्रि–अनुसुइया तपोभूमि है। उन संतों के दर्शन अब कहाँ हैं, केवल उनके स्थान हैं जो दर्शन कर सकते हैं।

अधिकतर संत पहाड़ों में ही तपस्या किया करते हैं और करते थे क्योंकि यह पहाड़ वैकुण्ठ के देवता हैं, उनकी गोद में बैठकर संतजन तपस्या करते रहते हैं। आजकल पहाड़ भी नग्न अवस्था में हो गए, क्योंकि इस कलिकाल में 25–30 वर्ष से बरसात नहीं हो रही है, अतः हरे–भरे नहीं हैं।

मैं भी किसान कुल से ही हूँ, लेकिन पिताजी ने पढ़ने को बैठा दिया था। इंजीनियर के पद पर कार्यरत था, लेकिन गुरुजी की कृपा से राजकीय (सरकारी) एक पैसा, न तो खाया और न ही किसी को खाने दिया। राजकीय सेवा दुविधापूर्वक की। अतः बदली होती रही। मैंने सोचा घर के बाहर तो है ही चाहे कहीं भी भेजो, मुझे क्या फर्क पड़ता है। सचिवालय में 12 साल सेवा में रहा, फिर बाद में राजाओं की जमीन सीलिंग में सेवा देता रहा। वहाँ से 4 साल पहले वोलंटरी रिटायरमेंट (स्वैच्छिक अवकाश) लेकर घर आ गया तब भगवद् भजन में लग गया। बेटे, पोते सब भगवद् कृपा से राजकीय सेवा में लग गए। मैं सबसे निवृत्त होकर हरिनाम की शरण में चला गया, तो परम सुखी हो गया। मैं इस शरद पूर्णिमा (2016) को 89 वर्ष का हो जाऊँगा। भगवद् कृपा से अब तक कोई रोग नहीं है। रात में 12–1 बजे उठ कर हरिनाम करता हूँ। सुबह तक मन माफिक हरिनाम पूर्ण हो जाता है। मन भी भगवद् कृपा से इधर–उधर नहीं जाता, मन स्थिरता में ही रहता है अतः सभी भक्त समुदाय को कहा करता हूँ कि शुद्ध कमाई हो और भगवान् में मन हो तो मन स्थिर हो जाएगा। यह सब मन का ही खेल है। जिसने मन बस में कर लिया उसने संसार को जीत लिया।

जब भगवान् अपने हो गए तो दूर कौन रहेगा?

जा पर कृपा राम की होई। ता पर कृपा करहिं सब कोई।।

उसको सांप, बिच्छू, बाघ आदि भी कुछ नहीं कहेगा क्योंकि उनके हृदय मंदिर में भी वही प्यारा बैठा हुआ है। बिना भगवद् प्रेरणा के तो पेड़ का पत्ता भी नहीं हिलता। प्रत्येक जीवमात्र में ही उस प्यारे की उपस्थिति देखो। जानवर बोलता नहीं है, परंतु हाव–भाव सबके पहचानता है। कबूतरों को छत पर दाना डालता रहता हूँ, तो कबूतर मेरे कंधे पर आकर

बैठ जाते हैं, गोद में दाना डालने पर गोद में आकर चुगने लग जाते हैं। जीवमात्र सब के भावों को पहचानता है केवल बोलता नहीं है। हिंसा प्रेमी को देखते हैं, तो उड़ जाते हैं। और मोर भी नजदीक में आकर नाचते रहते हैं। मुझे देखकर कितना सुख होता है यह मैं ही महसूस कर सकता हूँ। टेबल (मेज) पर दूध की बूंद गिर जाती है तो चींटी उसे खाने लगती है, मैं सोचता हूँ कि बेचारी भूखी है अतः मैं उसको हटाता नहीं हूँ। ऐसी दृष्टि भक्त समुदाय की होने से भगवान् उससे कभी किसी क्षण में दूर नहीं होते, क्योंकि सभी जीव मात्र भगवान् के पुत्र समान हैं। उनके कर्मों के अनुसार ही उनको चींटी की योनि प्रदान की है। चींटी में भी मेरा प्यारा बैठा हुआ है। हम उसे भगाएंगे तो प्यारे को कष्ट होगा। भगवान् इस कारण से ही तो जीव से दूर रहते हैं क्योंकि ऐसी दृष्टि किसी विरले की ही होती है। यदि ऐसी दृष्टि बन जाए तो भगवान् दूर नहीं रह सकते। मेरे बाबा ने तीन प्रार्थनाएं भक्त समुदाय को बताई हैं। सोते समय, सुबह जागते ही और स्नान के बाद, जो पूरे शास्त्रों का सार है। ये प्रार्थनायें मेरी सभी पुस्तकों "इसी जन्म में भगवद्प्राप्ति" में विस्तार से लिखी हुई हैं।

हमको इस अवस्था में ही भगवान् को उपलब्ध करना है, देर क्यों? गया समय हाथ नहीं आता, बाद में पछताने के सिवा कुछ नहीं मिलता।

पूरे राजस्थान में मेरे गुरुदेव का मैं ही एक शिष्य हूँ तथा मेरा परिवार है। वे परीक्षा करके शिष्य बनाते थे। उन्होंने मुझे सन् 1952 में हरिनाम व दीक्षा एक साथ दी थी। 23 नवंबर 1952 को मेरा स्वर्णिम दिन था, जब मुझे गुरुदेव की शरणागति उपलब्ध हुई। तब एक भी मठ नहीं था अतः श्रीविग्रह के हेतु 50–60 बार गुरुदेव जयपुर पधारते थे। तीर्थ महाराज, भारती महाराज आदि सब ब्रह्मचारी थे। अतः स्वयं ही आकर राधा–कृष्ण के श्रीविग्रह बनवाकर ले जाते थे। मैं उनसे केवल एक ही चर्चा करता था कि भगवान् मुझको कब मिल सकते हैं?

श्री गुरुदेवजी कहते कि केवल हरिनाम ध्यानपूर्वक करने से भगवान् मिल जाएंगे। उनके आशीर्वाद से ही भगवान् मुझे दो बार मिले। गुरुदेव, मुझे बोलते थे कि कभी 'रासपंचाध्यायी' मत पढ़ना और श्रीमद्भागवत महापुराण पढ़ते रहना। जहाँ रास हो तो कभी भूल कर भी मत जाना। रामलीला अवश्य देखने जा सकते हो। उन्होंने कभी मधुर–भाव के प्रवचन नहीं किए। गुरुदेव बोलते थे कि हम इस योग्य ही नहीं हैं कि मधुर–भाव के प्रवचन सुनकर मन को शुद्ध रख सकें। इसमें गोपियाँ उच्चतम

भाव–राज्य में है। संसारी मानव इसको समझ नहीं सकता, अपराध कर बैठेगा। जो हमारे गुरुवर्ग थे, वे तो भगवद् पार्षद थे, अतः मधुर–भाव में ओत–प्रोत थे। हम साधारण भक्त हैं, हमसे अपराध बन जाएगा। हरिनाम से ही यह मधुर–भाव हृदय में प्रकट होगा। अपने प्रयास से मधुर–भाव की भक्ति नहीं हो सकती। आप देख भी रहे हो कि क्या मधुर–भाव के व्यक्ति को कभी भगवान् के लिए रोना आता है या भक्ति सम्बन्धित स्वप्न आते हैं? स्वप्न आते हैं तो केवल संसार के। तो यह स्पष्ट है कि मनगढ़ंत भाव कभी सफल नहीं हो सकता। हरिनाम अर्थात् भगवान् ही यह भाव देंगे। मधुर–भाव को सुनकर कोई भी उन्नत नहीं हुआ है।

पुराणों में भी श्रीमद्भागवत पुराण सर्वश्रेष्ठ है इसके अध्ययन करने से संसार से वैराग्य और कृष्ण की प्रेम भक्ति उपलब्ध हो जाती है। भगवान् के नामों का कीर्तन सारे पापों को निर्मूलता से नष्ट कर देता है और भगवान् को आत्मसमर्पण सब प्रकार के भय का नाश कर देता है।

जब भगवान् कृष्ण धराधाम को छोड़कर अपने धाम गोलोक में जाने लगे तो उद्धव बोले, "आपके बिना मैं कैसे रहूँगा?" ऐसे ही ब्रह्माजी बोले, "आपके बिना मैं सृष्टि रचना कैसे करूँगा?" शिवजी बोले, "सृष्टि का संहार कैसे करूँगा?" तीनों ने भगवान् से निवेदन किया तो भगवान् बोले, "तुम चिंता मत करो, मैं श्रीमद्भागवत के रूप में पृथ्वी पर रहूँगा। इसका अध्ययन करते रहना। तीनों को उससे शक्ति प्राप्त होती रहेगी।" तब तीनों को शांति मिली। कहने का तात्पर्य यह है कि सभी जीव इस भागवत का नित्य सेवन करें, तो सदैव सुख ही सुख में रहेंगे। दुख तो समूल नष्ट हो जाएगा। मैं तो इस पुराण का सदा ही सेवन करता रहता हूँ। कभी 2 माह में और कभी 3 माह में अध्ययन पूरा हो जाता है। मैं सदा सुखी रहता हूँ। कभी कोई चिंता नहीं रहती है। हरे कृष्ण!
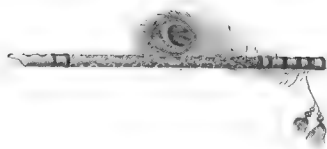
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

सहज भगवद् प्राप्ति

7 अक्तूबर 2016
चाणक्यपुरी, दिल्ली

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में इस दासानुदास अधमाधम अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

मेरे ठाकुरजी मुझे बता रहे हैं कि भगवान् को प्राप्त करना बहुत सरल है। सरल कैसे है? वह नए भक्तों को आश्वासन दे रहे हैं कि भगवान् को प्राप्त करना मुश्किल नहीं है। कलियुग में भगवान् सहज ही मिल जाते हैं, सतयुग में हजारों वर्ष तपस्या करने पर भगवान् दर्शन देते थे, त्रेता में कई प्रकार के यज्ञ करने पर भगवान् यज्ञ अग्नि से प्रकट हो जाते थे, द्वापर में स्वच्छ हृदय से भगवान् के विग्रह का अर्चन–पूजन करने पर भगवान् श्री विग्रह से प्रकट हो जाया करते थे और कलियुग में तो भगवान् अपने नाम से ही प्रकट हो जाते हैं, केवल 64 माला प्रतिदिन कान द्वारा सुनकर जीभ से उच्चारण कर लो। कहीं पर जाने की आवश्यकता नहीं है, घर के ही किसी कोने में बैठ कर भगवान् के नाम को, कान द्वारा सुनकर, भगवान् का छद्म दर्शन किया जा सकता है। इसमें कोई पैसा नहीं लगता। सर्दी हो तो कंबल ओढ़ सकते हो और गर्मी हो तो पंखा, कूलर, ए.सी. आदि चला सकते हो। इसलिए भगवान् कलियुग में बहुत सरलता से मिल जाते हैं। इसमें कोई स्नान करने की भी जरूरत नहीं है, जैसी भी हालत हो वैसे ही आप बैठकर हरिनाम कर सकते हो क्योंकि मैं एक उदाहरण आपको दे रहा हूँ कि चंडीगढ़ के श्री दुग्गलजी के गुरुदेव रेलविभाग में गार्ड की पोस्ट (पद) पर नियुक्त थे और एक दिन भगवान् का हरिनाम करते–करते उन्हें समय का कुछ भी ध्यान नहीं रहा और वे परम आनंद में डूब गए। भगवान् स्वयं उनके हमशक्ल बन कर उनकी ड्यूटी करते हुए रेलगाड़ी ले गए। यह बात लगभग 50 वर्ष पहले की है। इसी प्रकार आज से लगभग

500 वर्ष पहले हमारे गुरुवर्ग श्रीरूप, सनातन, माधवेंद्रपुरी, नरसी मेहता, कबीर, रविदासजी आदि ने हरिनाम जप कर ही भगवान् का दर्शन किया है। त्रेतायुग में महाराज खट्वांग ने दो घड़ी में भगवान् का दर्शन किया था।

भगवान् क्या कह रहे हैं :

जौं सभीत आवा सरनाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं।।

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 4)

भगवान् कह रहे हैं, "जो जीव दुख पाकर के भी मेरी शरण में आ जाता है तो उसे मैं प्राणों से भी प्यारा रखता हूँ।"

भगवान् अर्जुन से कह रहे हैं, "रजोगुण से उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध का रूप धारण कर लेता है। यह काम ही, लुभाने वाला और बड़ा पापी है, इसको तो इस विषय में अपना शत्रु ही मान। इस पाप के महान् प्रतीक 'काम' वैरी (शत्रु) को मार डाल।"

इसका अर्थ है संसार की आसक्ति का न होना। जो इच्छाएँ हैं उनको दमन कर।

जब संसार की आसक्ति ही मन में नहीं रहेगी तो भगवान् को उपलब्ध करना बहुत सुगम हो जाएगा। यह फसावट ही भगवान् और जीव के बीच में दीवार का काम कर रही है। जब इन इच्छाओं से हृदय रूपी सिंहासन खाली हो जाएगा तो भगवान् बड़ी शीघ्र आकर हृदय रूपी सिंहासन पर विराजमान हो जाएंगे।

देखिए संसार की यह चल और अचल आसक्ति ही माया की सशक्त बेड़ी है जो जीव के पैरों में बंधी पड़ी है। इस बेड़ी को खोलने में कोई भी सक्षम नहीं है। माया की इस सशक्त बेड़ी को तोड़ने में केवल नरसिंह भगवान् ही सक्षम हैं क्योंकि उनका अवतार भक्तों की हर प्रकार से रक्षा करने हेतु हुआ है। माया इनकी दासी है और इस दासी को दूर करना उनके लिए बहुत आसान है इसलिए भक्त को, हर साधक को चाहिए कि वह भगवान् नरसिंह के चरणों में बैठकर हरिनाम की कुछ मालाएँ उच्चारण पूर्वक कान से सुनकर कर लिया करें, यह परम आवश्यक है। नरसिंह भगवान् न केवल हमारे विघ्नों का नाश करेंगे बल्कि भक्ति मार्ग में आने वाली सभी बाधाओं को वह दूर करके शुद्ध भक्ति प्रदान करेंगे। उनका

आविर्भाव ही भक्तों की रक्षा के लिए हुआ है। रात को सोते समय, प्रातः काल उठते ही तथा दिन में दो बार अपनी सुविधा के अनुसार नरसिंह भगवान् जी की स्तुति अवश्य कर लिया करें, इससे आपका जीवन ही बदल जाएगा।

इतो नृसिंहः परतो नृसिंहो, यतो यतो यामि ततो नृसिंहः।
बहि र्नृसिंहो हृदये नृसिंहो नृसिंहं आदिं शरणं प्रपद्ये।।

नमस्ते नरसिंहाय, प्रह्लादाह्लाददायिने।
हिरण्यकशिपोर्वक्षः, शिलाटंकनखालये।।
वागीशा यस्य वदने लक्ष्मीर्यस्य च वक्षसि।
यस्यास्ते हृदये संवित् तं नृसिंहमहं भजे।।
श्रीनृसिंह जय नृसिंह जय जय नृसिंह।
प्रह्लादेश ! जय पद्मामुखपद्म – भृंग।।

(नरसिंह पुराण) (श्लोक 3 : श्री. भा. 10.87.1 (टीका श्रील श्रीधर स्वामी))

यह स्तुति भी कर लेना अच्छा है और इनके चरणों में बैठकर हरिनाम करना भी बहुत ही उत्तम है, सर्वोत्तम है तो आपके भजन में कोई रुकावट नहीं आएगी। इस प्रकार हरिदासजी की, गणेशजी की, महादेवजी की और गुरुदेव के चरणों में बैठकर कुछ मालाएं करना अच्छा है, यह सभी नामनिष्ठ हैं। हनुमानजी नाम के प्रेमी हैं उनके चरणों में बैठकर हरिनाम करना चाहिए। हरिनाम को कान से सुनने से स्वतः ही भगवद् रूप हृदय में प्रकट हो जाएगा। कहते हैं, देखो! शास्त्र कह रहा है :

सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें।
आवत हृदयँ सनेह बिसेषें।।

(मानस, बाल. दो. 20 चौ. 3)

जो हृदय में प्यार से प्रकट हो जाएगा, नाम जब कान में पड़ेगा तो हृदय रूपी जमीन में अंकुरित हो जाएगा। अंकुरित क्या होगा? राधा–कृष्ण प्रकट हो जाएंगे। किसी भी नामनिष्ठ के चरणों में बैठकर हरिनाम करते हुए यही मूल प्रार्थना करनी चाहिए कि मेरा मन संपूर्ण रूप से हरिनाम में लग जाए। हनुमानजी सभी संसारी संकट हरने वाले हैं। हरिनाम करने में जो संकट आते हैं, विघ्न आते हैं, उन्हें नरसिंह देव ही हटा देते हैं क्योंकि माया इनके चरणों की दासी है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

हनुमानजी कह रहे हैं कि संकट तब ही आते हैं जब हम भगवान् को भूल जाते हैं।

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई।।

(मानस, सुन्दर. दो. 31 चौ. 2)

संकट तब ही आते हैं जब भगवान् का सुमरिन नहीं होता है। कलियुग में इस धरातल पर भगवान् नाम रूप से ही पधारे हैं। जो साधक कान से सुनकर नाम बोलता है वह इसी जन्म में अर्थ, काम, धर्म, मोक्ष और पंचम पुरुषार्थ श्रीकृष्णप्रेम प्राप्त कर लेता है। नाम भगवान् से, साधक जो कुछ भी माँगता है नाम भगवान् उसे वही पदार्थ दे देते हैं क्योंकि भगवान् का नाम वांछा कल्पतरु है, चिंतामणि है लेकिन नाम निरंतर हो और भक्त अपराध नहीं होना चाहिए। भक्त अपराध तो नाम को समूल ही नष्ट कर देता है। सभी 11 इंद्रियों को भगवान् की सेवा में लगाने से इसी जन्म में भगवद् दर्शन हो जाते हैं। प्रश्न उठता है कि इन 11 इंद्रियों में उपस्थ इंद्रिय भी आती है तो यह इंद्रिय भगवान् की सेवा में कैसे लग सकती है? इसका उत्तर है कि ब्रह्मचर्य का पालन करने से तथा कीर्तन में नृत्य करने से उपस्थ इंद्रिय भी भगवान् की सेवा में लग जाती है। विचार कर लो चाहे। जो नाचेगा उसकी यह इंद्रिय सेवा में लग जाएगी।

इसकी सेवा तो बाकी दसों इंद्रियों की सेवा से अधिक हो जाती है। देखिए! जिह्वा द्वारा पेट को रूखा–सूखा आहार, कम मात्रा में देने से यह इंद्रिय भी सेवा में लग जाएगी। ध्यान से सुनो! अगर जिह्वा वश में है तो यह सुगमता से वश में हो जाती है। जिह्वा का और इस इंद्रिय का एक ही कनेक्शन (संपर्क) होता है। जिह्वा से ही यह जागृत हो जाती है। इसलिए रूखा सूखा खाओ और काम को भगाओ। कम आहार करने से मन की चंचलता कम हो जाती है तथा शरीर भी स्वस्थ रहता है। यह शरीर मोक्ष का द्वार है, शरीर बिगड़ जाने से साधक का मन नहीं लग सकता है, भक्ति पथ पर नहीं चल सकता है। पेट से इस इंद्रिय का सीधा संपर्क रहता है इसलिए हमारे पूर्व गुरुवर्ग सायं में भोजन नहीं करते थे। प्रातः काल 7–8 बजे के स्नान करने के बाद ही संध्या–वंदन किया करते थे इसलिए साधक को उनके आनुगत्य में ही अपना जीवन बिताना

चाहिए। जैसे हमारे गुरुवर्ग जीवन बिता रहे थे, वैसे ही हमें भी बताना चाहिए तभी तो भगवान् की कृपा मिलेगी। जब उपरोक्त प्रकार से भजन–साधन होता है तो अष्टविकार होना शुरु हो जाता है। जब अष्टविकार होने लग जाता है तो साधक बिलख–बिलख कर रोने लग जाता है। तब गुरुदेव तथा भगवान् इसे सम्बन्ध ज्ञान करवा देते हैं। सम्बन्ध ज्ञान दास का, सखा का, भाई का, माँ–बाप का, शिष्य का, मंजरी आदि–आदि का उस साधक के हृदय में जगा देते हैं। कोई भी साधक इस प्रकार से साधन करके देख सकता है, क्योंकि प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं हुआ करती है। आप करके देख सकते हो। भगवान् तो 2 मिनट में ही मिल जाते हैं। आप भी कहोगे कि कैसा झूठा आदमी है यह? ऐसे कैसे हो सकता है? मैं आपको बताता हूँ सुनो –

जब आपको नींद आने लगे तब आप बोलो, "हे मेरे प्राणनाथ! जब मेरी मौत आए और मेरे तन से बाहर निकलने लगो तब आपका नाम उच्चारण करवा देना और भूल मत करना।""हाँ! भूल मत करना" और भगवान् को बाँध भी दिया तो भगवान् नहीं भूलेंगे। हम भूल जाते हैं। देखो! इसमें कितना समय लगा? 10–15 सैकंड लगे।

अब दूसरा, जब आप सुबह निद्रा से उठो तब बोलो, "हे मेरे प्राणनाथ गोविन्द! अब से लेकर और जब तक मैं सोऊँ तब तक, जो भी काम करूँ आपका ही समझकर करूँ और भूल जाऊँ तो आप मुझे याद दिला देना, भूल मत करना। प्रभु भूलना मत।"

तीसरी बार जब आप स्नान करने के बाद संध्या करने बैठो तब बोलो, "हे मेरे प्राणनाथ! मेरी ऐसी निगाह बना दो, ऐसी दृष्टि बना दो कि कण–कण में और प्राणी मात्र में मैं आपका ही दर्शन करूँ और यदि मैं भूल जाऊँ तो मुझे याद दिला देना।"

भगवान् को तीनों समय भक्त ने बाँध दिया तो भगवान् नहीं भूलेंगे, हम भूल जाते हैं। इसमें तो, 2 मिनट भी नहीं लगे तो इन तीनों प्रार्थनाओं के सिवा शास्त्र में कुछ भी नहीं है। पूरे शास्त्रों में यह तीनों ही प्रार्थनायें हैं, इससे अलग और कुछ नहीं है। यह निष्काम कर्मयोग हो गया। जीव की अंत में जैसी भावना होती है उसके अनुसार उसका जन्म होता है और हर प्राणी में जो भगवान् को देखेगा, वह किसको सताएगा? किसी को नहीं सताएगा, चींटी को भी नहीं सताएगा, किसी जीव को भी नहीं सताएगा। तो देखो! कितना सरल रास्ता है, यह शास्त्र में कहीं भी नहीं लिखा हुआ

है, लेकिन मेरे ठाकुरजी ने बताया है। कुछ चीजें ऐसी है जो शास्त्रों में नहीं हैं और प्रत्यक्ष में हो रही हैं, यह मेरे ठाकुरजी बताते रहते हैं। मैं कहता हूँ, "बाबा! कोई सरल सा रास्ता बता दो न।" तो बोले, "सरल रास्ता बता दूँगा तो मेरी सृष्टि कैसे चलेगी?" मैंने कहा, "सृष्टि तो चलती रहेगी अब मुझ को बताना पड़ेगा।" तो उन्होंने बता दिया कि 2 मिनट में ही मेरे को प्राप्त कर सकता है। अब ध्यान देकर सुनिए! जब आप भगवान् का दर्शन करने के लिए मंदिर जाते हो तो इन नेत्रों से दर्शन नहीं हुआ करता है इनसे तो जड़ दर्शन ही होता है। असली दिव्य दर्शन तो हृदय के नेत्रों से होते हैं, तो ऐसे दर्शन किया करो। मूक प्रार्थना ही दिव्य होती है। इससे भगवान् के नैन चलते हुए तथा मूक प्रार्थना का जवाब देते हुए भक्त को महसूस होने लगता है। आप करके देखो। सच को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती है। जब ठाकुरजी के सामने सभी का नृत्य होता है वह नृत्य हृदय से नहीं होता वह शरीर से होता है अतः किसी को भी पुलक तथा अश्रुपात नहीं हुआ करता। ठाकुरजी की सेवा जो मन से नहीं होती, वह सेवा भी बनावटी होती है, कपटी होती है।

यदि सेवा प्रेम सहित हो तो पल–पल में शरीर पुलकित होने लगता है, आँसू आने लगते हैं। हरिनाम से तो धीरे–धीरे प्रेम भी प्रकट हो जाएगा। जब किसी साधक की नित्यप्रति हरिनाम की 64 माला होने लग जाती हैं तो उसकी सेवा भी रसमयी होने लगती है। अगर 64 माला नहीं होती हैं तो वह सेवा भी नीरस रहती है। साधक को छिप–छिप कर रोने, पुलक के भाव प्रकट होने लग जाते हैं। जब अधिक भाव से हरिनाम में मन रमने लग जाता है तो फिर हृदय से रोने का स्रोत बहने लगता है, फिर उसे रोका नहीं जा सकता। साधक भाव में तल्लीन हो जाता है, फिर उसे कोई भक्त कहे या अभक्त कहे उसके बस की बात नहीं रहती क्योंकि उसके मन का तार ठाकुरजी के तार से जुड़ जाता है, फिर तो रोने का तांता ही लग जाता है। फिर भगवान् कैसे रह सकते हैं? भगवान् कहते हैं, "भक्त जब रोता है तो मैं भी उसके लिए रोता हूँ।" भक्त कभी भगवान् के पास नहीं जाता, भगवान् ही भक्त के पास आया करते हैं। तो फिर उसको क्या होता है? फिर उसे भगवान् के बिना यह संसार सूना–सूना दिखाई देने लगता है। कण–कण में तथा जीव मात्र में भगवान् के दर्शन करने से उसे संसार में खुशियां ही खुशियां नजर आने लगती हैं। वह ऐसी मस्ती में झूमता है जैसे कोई मादक रस पीकर अलमस्त हो जाता है। यह मस्ती अलौकिक हुआ करती है, इसे कोई बता नहीं सकता, अकथनीय है।

इसको कहीं चैन नहीं पड़ता है, रात में नींद नहीं आती है, दिन में भूख नहीं लगती है और बस रोता रहता है, "हा मेरे प्राणनाथ! आप कब मिलोगे। मैं कहाँ जाऊँ? कहाँ पाऊँ आपको? अब मेरा एक क्षण भी युग के समान बीत रहा है, आप मुझे कब अपनाओगे? हे प्रभु!" और रो–रो कर पछाड़ खाता है।

जब भक्त रोता है तो भगवान् भी रोते हैं। जब भगवान् से भक्त पूछता है, "आप क्यों रोते हो?" भक्त तो पूछेगा ही भगवान् से, "आप क्यों रोते हो?" तो भगवान् जवाब देते हैं, "मैं इसलिए रोता हूँ कि तू मुझे रुलाता रहता है। मैं रोता नहीं हूँ, तू मुझे रुलाता है। तेरा मेरा सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। तू नाचता है तो मैं भी नाचता हूँ, तू मौन धारण करता है तो मैं भी मौन धारण कर लेता हूँ, तू मुझे जो भी आदेश करता है, मुझे उस आदेश का पालन करना पड़ ही जाता है क्योंकि मैं मजबूर हूँ, तूने प्रेम की रस्सी से मेरे पैरों को बांध रखा है।"

मेरे ठाकुरजी बोल रहे हैं, "यदि साधक 10 दिन उक्त प्रकार से ठाकुरजी का दर्शन लाभ करता है तो वह रोये बिना नहीं रह सकता, शर्त यह है कि उससे भक्त अपराध न हुआ हो।" तब साधक भगवान् से कहता है, "मेरे प्राणनाथ! मुझे कब दर्शन दोगे? हे मेरे प्राणनाथ!" उसे अहंकार, घमंड, गर्व नहीं होता है। "मैं, आपके चरणों से दूर न हो जाऊँ। प्रभु! ऐसी कृपा करना कि माया का आवेश मुझ पर नहीं हो। मेरी प्रतिष्ठा होगी तो मेरा पतन हो जाएगा।" भगवान् साधक भक्त को भी जवाब देते हैं, भगवत्कृपा से जिसको प्रतिष्ठा जहर लगेगी तो वह सबके सामने खुलकर रोएगा जैसे गौरहरि सबके सामने जोर जोर से बिलख–बिलख कर रोते थे, उनके रोने से पशु–पक्षी, सब जानवर तक बेहाल हो जाते थे। यह रोना भी एक छूत का रोग होता है, पास वाले को भी सुबक सुबक कर रुला देता है। जो भक्त के रोने को झूठा या बनावटी समझने लगे, वह ठाकुरजी का बैरी हो जाता है। उसका लक्षण सबके सामने आ जाता है। उसे कोई बीमारी पकड़ लेती है, हरिनाम में अरुचि होने लगती है, ज्ञान मार्ग या कर्म मार्ग में फंस जाता है, घर कलह का स्थान बन जाता है, माँ–बाप, भाई–बहन, सगे–सम्बन्धी भी शत्रुता करने लग जाते हैं। इस प्रकार उसका सारा जीवन तड़पने में ही बीत जाता है क्योंकि सभी के हृदय में भगवान् रहते हैं इसलिए वह केवल दुखी ही रहता है, फिर कहीं भी शांति नहीं मिलती। जैसा कि प्रत्यक्ष में हो रहा है कि अपराध से क्या नहीं हो सकता!

इंद्र कुलिस मम सूल बिसाला। कालदंड हरि चक्र कराला।।
जो इन्ह कर मारा नहिं मरई। बिप्र द्रोह पावक सो जरई।।

(मानस, उत्तर. दो. 108 घ चौ. 7)

जो अपराधु भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई

(मानस, अयोध्या. दो. 217 चौ. 3)

यह भगवान् का वचन है। पावक ऐसी आग होती है जो लोहे को पिघलाकर पानी बना देती है, उसको ऐसा दुख होता है, ऐसा कष्ट होता है कि ऐसा अपराधी, उसी समय नहीं मरता। जिंदगी भर अशांति में रहता है। इसलिए कहा गया है कि करोड़ों में से कोई विरला ही भगवान् को प्राप्त कर सकता है। इस मार्ग में काँटे ही काँटे हैं, इनसे पार होना बड़ा मुश्किल है लेकिन नाम से पार हो सकता है। केवल नाम रक्षा करता है। नाम करो और कान से सुनो। अतः भक्त अपराध से बचकर रहना चाहिए। इससे बड़ा कोई अपराध नहीं है। भक्त का थोड़ा सा अपराध भी भगवान् को सहन नहीं होता। भक्त चाहे कितना ही बड़ा हो अपराध होने पर वह भी नहीं बचेगा। वैसे तो शास्त्र ने 10 अपराध लिखे हैं लेकिन अपराध चौरानवें (94) होते हैं।

जब एक बार नारदजी भगवान् के वैकुण्ठ में पहुँचे तो भगवान् बोले, "नारद! तू सब जगह जा रहा है, क्या हालचाल है?" तो नारदजी बोले, "हे भगवान्! सब दुखी हैं, कोई भी सुखी नहीं है।" भगवान् बोले, "जो माँ–बाप से बिछुड़ जाता है तो वह कैसे सुखी रह सकता है? मैं तो सब का माँ–बाप हूँ, सब मुझे भूल गए हैं, इसलिए दुखी ही रहेंगे।" तो नारद बोले, "भगवान् आप कहाँ रहते हो यह तो बताओ?" तो भगवान् बोलते हैं, "नारद! मैं 84 लाख योनियों के हृदय मंदिर में रहता हूँ और उनके कर्मानुसार उनको योनि देता हूँ। जो उस योनि को नष्ट करता है तो उसी योनि में फिर उसको जन्म लेना पड़ेगा।" इसीलिए किसी को मत सताओ। इसलिए 94 अपराध होते हैं। भगवान् कहते हैं, "एक तरफ तो मुझसे प्यार करता है और दूसरी तरफ मुझे ही सिर में डंडे मारता है।" यह डंडे मारना ही तो हुआ। मक्खी को अपने हाथ से मार दिया तो मक्खी बनना पड़ेगा। मच्छर आया तो मच्छर को मार दिया तो मच्छर बनना पड़ेगा। इसलिए इनका यह अपराध होता रहता है।

कहते हैं कि मनुष्य जन्म सुदुर्लभ है। इसीलिए सुदुर्लभ है कि हम उनकी तरफ ध्यान ही नहीं देते। 10 अपराध हैं उनकी तरफ तो थोड़ा बहुत ध्यान देते हैं और ध्यान चला जाता है लेकिन इनकी तरफ कोई ध्यान नहीं देता। इसलिए यदि किसी का इनकी तरफ ध्यान हो जाए तो भगवान् छाया की तरह उसके पीछे रहते हैं। भगवान् कहते हैं, "ऐसे भक्त को मैं छोड़ नहीं सकता। मेरे अंदर शक्ति नहीं है कि मैं उससे अलग हो सकूँ। काल और महाकाल मेरे से थर–थर काँपता रहता है लेकिन मैं ऐसे भक्त से थर–थर काँपता हूँ। वह जो आदेश देता है उसका मैं पालन करता हूँ। मैं तो उसका नौकर बन जाता हूँ, गुलाम बन जाता हूँ।" इसलिए अपराध से बचो। देखो! दुर्वासाजी, जो भगवान् शंकर के परम भक्त थे, कोई छोटे–मोटे भक्त नहीं थे। फिर भी अम्बरीष महाराज के प्रति अपराध करने पर उन्हें कितना दुख उठाना पड़ा, यह तो आप शास्त्र में पढ़ते ही रहते हो। अपनी रक्षा के लिए भगवान् के पास गए तो भगवान् ने यह कह दिया, "मेरा हृदय तो अम्बरीष ने ले रक्खा है, मेरे पास नहीं है। क्षमा तो हृदय से होती है और मन से होती है तो मेरा मन तो मेरे पास है ही नहीं। अतः तुम अम्बरीष के पास चले जाओ। उसके चरणों में पड़कर क्षमा माँगो तब मेरा सुदर्शन चक्र तुम्हारा पीछा छोड़ देगा।" बहुत भागते फिरे लेकिन किसी ने उनकी रक्षा नहीं की। शिवजी के पास गए तो शिवजी बोले, "तुम मेरा शिव–लोक ही गिरा दोगे, भाग जाओ यहाँ से।" ब्रह्मा के पास गए तो ब्रह्माजी ने भी जवाब दिया, "तुम यहाँ से जाओ, तुम मेरा ब्रह्मलोक जला दोगे, भाग जाओ। इसके बिना तुम्हारे बचाव का कोई उपाय नहीं है, यह उपाय भी मैंने, तुम्हें बेमन से बता दिया है। बताना तो नहीं चाहता था लेकिन क्योंकि तुम शिवजी के भाई हो इसलिए बता दिया।" अब जब दुर्वासाजी ने अम्बरीषजी से क्षमा माँगी, तब सुदर्शन चक्र ने दुर्वासाजी का पीछा छोड़ा।

इसलिए भक्त–अपराध बहुत खतरनाक है। भगवान् स्वयं बोल रहे हैं, "यदि मेरा हाथ भी भक्त–अपराध कर दे तो मैं इस हाथ को काट के फैंक दूँ।" तो इससे ज्यादा कोई क्या कर सकता है। इसलिए ठाकुरजी सावधान कर रहे हैं कि जो शुभ अवसर आपको मिला है वह फिर भविष्य में नहीं मिलेगा। एक तो कलियुग में जन्म दिया जिसमें भगवत्प्राप्ति बहुत सरल व सुगम हो जाती है, दूसरा भारतवर्ष में जन्म दिया यहाँ भगवान् का अवतार होता है वरना तो विदेश में जन्म दे देते। यहाँ गंगा–यमुना, राधा–कुंड, श्याम–कुंड आदि में स्नान करने से पापों से निवृत्त हो जाते

हैं। तीसरा भक्त के घर में जन्म हुआ, चौथा सद्गुरु की प्राप्ति हुई और गौरहरि की गुरु–परंपरा में जुड़ना हुआ और पाँचवाँ शुद्ध सत्संग उपलब्ध हुआ। फिर यह सब कोई कम सौभाग्य तो नहीं है। तब भी नहीं किया, फिर भी समय को बर्बाद किया तो दिल दहला देने वाले नरकों की यातनाओं की ओर जाना पड़ेगा। कितने दुर्भाग्य की बात है!
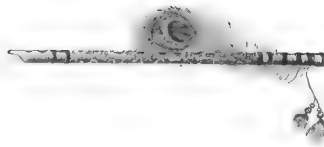
संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : भौतिक संसार में रहते रहते कई बार ऐसी स्थितियाँ आ जाती हैं कि उसमें हमें प्रतिक्रिया देनी पड़ती है। प्रतिक्रिया कर बैठते हैं, तो यह हमारी भक्ति में कैसे बाधा बनता है। यह भक्ति के प्रतिकूल तो नहीं है ?

उत्तर : प्रतिक्रिया करो तो ऊपर से करो। किसी का बुरा मत सोचो। प्रतिक्रिया गहराई से मत करो। केवल ऊपर–ऊपर से बोलो। पहले प्रेम से समझाओ उसको कि ऐसा नहीं करना चाहिए। अगर अंदर से करोगे तो उसमें आत्मा दुखी हो जाएगी। आत्मा दुखी हो जाये तो भजन नीचे गिर जाता है। ऐसे तो बड़े–बड़े महात्मा भी क्रोध कर बैठते हैं। क्रोध से शिष्य को बोलते हैं, लेकिन ऊपर से ही बोलते हैं, अंदर से नहीं बोलते। अंदर से बोलने पर आत्मा को टच (स्पर्श) हो जाएगा और भजन गिर जाएगा।

कहते हैं न कि किसी की आत्मा मत सताओ। आत्मा अगर सताई जाती है तो उसका भजन नीचे गिर जाता है। अगर भगवान् को दुखी कर लोगे तो आपको शांति कैसे मिलेगी। गीता में भी कहते हैं कि “मुझे दुःख देते हैं” ऐसे बोलो कि वह शब्द आत्मा तक नहीं पहुँचे। जैसे माँ–बाप बच्चों को ऊपर से डांटते हैं, अंदर से नहीं डांटते। ऊपर से डांटते हैं ताकि गलत काम न करे। ऊपर से डांटना और अंदर से डांटने में रात–दिन का अंतर होता है।

भगवद्-स्मरण

18 नवंबर 2016
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में इस दासानुदास अधमाधम अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा प्रार्थना है हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

जैसे स्वप्न झूठा होता है, वैसे ही यह मानव जीवन भगवद्–स्मरण बिना झूठा होता है। जैसे स्वप्न में सुख–दुख झूठा होता है वैसे ही मानव जीवन में सुख–दुख झूठा होता है। जैसे पूर्व जन्मों के संस्कारवश सुख–दुख बिना विचारे ही उपलब्ध होता रहता है वैसे ही पूर्व जन्म के संस्कारवश, स्वप्न में सुख–दुख महसूस होते रहते हैं। इनका कोई सार नहीं।

यह सब कर्मानुसार सत, रज, तम गुणों के ही आश्रित हैं। यह गुण ही मानव को क्षण–क्षण में नचाते रहते हैं। मानव का इसमें कोई वश नहीं है, पूर्व संस्कार के वश ही यह गुण आते रहते हैं अतः जीव परतन्त्र है, स्वतन्त्र तभी हो सकता है कि जब इनसे पिंडा छूट जाए। कलिकाल में पिंडा छूटने का केवल मात्र एक ही उपाय है, भगवद्–स्मरण। वह चाहे कैसे भी हो? प्यार से हो, दुश्मनी से हो, आलस्य से हो, किसी के कहने से हो, पूर्व संस्कारवश हो। और कलिकाल में स्मरण का आधार है, केवल हरिनाम। हरिनाम स्मरण ही हरि की याद करवाता रहता है, वह हरिनाम चाहे मन से हो, चाहे बेमन से हो। हर क्षण सुख का विधान बनाता रहता है।

अब सुख क्या है? वह यह है कि मन की हर इच्छा पूरी हो अर्थात् अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष ही इसका सार है। मानव का प्रथम कर्म अथवा धर्म है कि उसकी अपनी कमाई धर्म में खर्च हो। अब धर्म का क्या मतलब है? भगवान् की साँस से उद्भूत हुए शास्त्रों में जो वर्णित है उसको धारण

करना ही धर्म कहा जाता है। धर्म से ही मानव को असीम सुख की प्राप्ति तथा मूल सहित दुख का नाश हो सकता है।

धर्म वही कहा जाता है जिससे जीव मात्र का भला हो। अधर्म उसे कहा जाता है जिससे जीव मात्र की हानि हो। लेकिन देखा जाता है कि धर्म से, कोई मानव कर्म नहीं करता। अपने परिवार के लिए ही कर्म करके अधर्म कमाता रहता है जैसे पुत्र होने पर समाज को स्वादिष्ट भोज करवाता है। पुत्र पुत्रियों की शादी में अनाप शनाप पैसा खर्च करता रहता है। अपनी ऐश आराम की सुविधाओं के हेतु आलीशान मकान बनाता है, घूमने हेतु कार खरीदता है, आने जाने में खर्च करता रहता है वह भी दो नंबर पैसे की कमाई होती है। दूसरे का हक छीन कर सुख का विधान करना कैसी मूर्खता है, जिससे पैसा छीनता है इसको मालूम नहीं कि यह उसका कर्जवान बनता जा रहा है, मरने के बाद ऊँट, बैल बन कर कर्ज चुकाएगा। खाने पीने को कुछ मिलेगा नहीं, प्यासा भूखा रह कर उसकी सेवा करनी होगी। उसके वश में रह कर जीवन काटेगा, नाक में नकेल डालकर उससे बेरहमी से काम करवाया जायेगा। जिससे उसको भूख व प्यास की वजह से नींद भी नहीं आएगी तो कमजोरी की वजह से भार ढो नहीं सकेगा तो पीछे से मालिक उसको चाबुक से मार–मार कर काम करवाएगा। वह बोल तो सकता नहीं, अंदर ही अंदर दुखी होता रहेगा और अन्त में मर कर नर्क में अनेक युगों तक यातनाएं भोगता रहेगा। फिर नर्क भोग कर 84 लाख योनियों में कर्मभोग भोगेगा।

30 लाख तरह के पेड़ पौधो में भोग भोगना पड़ेगा, 20 लाख तरह के पक्षी, उड़ने वाले जानवरों में भोग भोगेगा, 20 लाख जलचर जानवरों में भोग भोगेगा, 10 लाख चौपाये पशुओं में भोग भोगना पड़ेगा एवं 4 लाख तरह की मनुष्य जातियों में भोग भोगना पड़ेगा। इसको जोड़ कर 84 लाख योनियां होंगी। इसमें अत्यंत युग बीत जाएंगे। 4 लाख 32 हजार वर्ष का कलियुग का समय है इससे दुगना द्वापर, इससे तिगुना त्रेता, इससे चौगुना सतयुग। सतयुग, त्रेता, द्वापर के मनुष्य भी चाहते हैं कि कलियुग में उनका जन्म हो जाये।

अब विचार करो कि कब मनुष्य जन्म मिल सकेगा? तभी तो हमारे शास्त्र चेता रहे हैं, आंखें खोल रहे हैं कि मानव जन्म सुदुर्लभ है। फिर भी मानव बुरा कर्म करके फिर इसमें जाने की तैयारी कर रहा है। कितनी मूर्खता है। अतः दुख सागर में गोता खाता रहेगा।

1966 में, जब मैं 38 साल का था, तब मैं एक रोज लंच (दोपहर का भोजन) में जा रहा था और रास्ते में सड़क की तरफ एक 80–90 साल का बूढ़ा बैठा हुआ था, उसने बोला, "बेटा! इधर आना, इधर आना।" पहले मैंने सोचा कि कोई भिखारी है और पैसे मांगेगा तो मैंने कहा, "बाबा मेरे को टाइम (समय) नहीं है, मैंने ऑफिस (दफ्तर) जाना है।" बूढा बोला, "अरे! थोड़ी देर के लिए आ जा।" तो मैंने सोचा कि बुजुर्ग है, अगर कहना नहीं माना तो दोष लगेगा। इसलिए मैं उसके पास चला गया। जब उसके पास गया तो बोले, "बैठ जा" और मैं बैठ गया। कहते हैं, "तेरा हाथ दिखा" तो मैंने कहा," मैं किसी को हाथ नहीं दिखाता।" मैंने सोचा यह मुझसे पैसा लेगा। उसने कहा, "मैं तेरे से पैसा नहीं लूँगा, बस हाथ दिखा दे।" मैंने हाथ दिखाया तो उसने आगे पीछे की सब बातें बता दीं। यह मेरी पुस्तक 'इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति' में भी लिखा है पर डिटेल (विस्तार) में नहीं है। उसने सब कुछ बता दिया और फिर बोला, "तुम तो यहाँ के नहीं हो।" तो मैंने पूछा, "मैं कहाँ का हूँ?" वे बोले, "तुम तो गोलोक धाम से आये हो।" मैंने कहा, "बाबा! क्यों झूठ बोलते हो?" मैंने सोचा कोई ज्योतिषी होगा। वह कहने लगे, "नहीं! सच बोल रहा हूँ।" मैंने कहा, "मैं कैसे मान लूँ कि मैं वहाँ से आया हूँ?" तो बोले, "देखो! तुम्हारे हाथों में 7 चिह्न हैं। शंख, चक्र, गदा, पद्म, वैजयंती माला इस तरह से दोनों हाथों में तुम्हारे चिह्न हैं। श्रीमद्भागवत में लिखा है कि जिसके एक चिह्न होता है, वह भगवान् का पार्षद होता है और तुम्हारे तो 7 चिह्न हैं।" फिर उसने बोला, "तुम 74 साल की उम्र से पहले किसी को मत बताना और उसके बाद ही बताना तो तुम पूरी दुनिया में हरिनाम का प्रचार कर लोगे।" उसने पूछा, "तुम्हारा ऑफिस (दफ्तर) कहाँ है?" और मैं ऐसे मुड़कर अपने हाथ से बताने लगा कि उधर ऑफिस है तो फिर जब मैंने वापिस मुड़ कर देखा तो वह बूढ़ा गायब हो गया। यह और कोई नहीं, हनुमानजी थे क्योंकि मैं रात को हनुमानजी को एक डेढ़ घंटे तक रामायण सुनाया करता था। इसलिए हनुमानजी मेरे पर बहुत राजी (खुश) थे और जब मैं सुनाता था, तो कमरे में कई बार इतनी सुगंध आ जाती थी कि जैसे अलौकिक सुगंध हो, तो मैं समझ जाता था कि हनुमानजी सुनने के लिए आये हैं। इस तरह से मुझे हनुमानजी मिले थे।

मानव भक्त कहता है, "हमें सुख कैसे मिलेगा?" हरिनाम करने से ही सुख मिलेगा। भगवान् मुझे बोलते हैं, "यह सभी मेरे बच्चे हैं और मुझ से बिछुड़े हुए हैं, परंतु मेरी गोद में कोई आना नहीं चाहता है।" जिनको

संसार में रहना ही नहीं आया वे भगवान् के पास कैसे जा सकते हैं? पहले घर में रहना तो सीखो, फिर समाज में रहना सीखो, फिर गाँव और शहर में रहना सीखो, फिर देश में रहना सीखो। अभी तो कहीं भी रहना नहीं आया तो भगवान् कैसे मिलेगा? स्वप्न में भी नहीं मिलेगा। घर में रहकर माँ–बाप से लड़ते रहते हो, भाई–भाई से लड़ते रहते हो, आस–पड़ोस से लड़ते रहते हो। रिश्तेदारों से प्यार करते हो और उनसे सलाह लेते हो और भाई से पूछते भी नहीं हो। कैसा, यह कलियुग आया है, फिर तुम्हें भगवान् कैसे मिलेगा?

कहावत है कि किसी की आत्मा मत सताओ, ऐसा तो नहीं कहते कि किसी का शरीर मत सताओ। शरीर तो आत्मा का मकान है, सताने से आत्मा दुखी होती है न कि शरीर। जब आत्मा को दुख देंगे तो क्या परमात्मा खुश रहेंगे? अभी तक तो भक्ति पथ बहुत दूर है। प्रथम में एल. के.जी. में भर्ती होना पड़ेगा, तभी पी–एच.डी. में जा सकोगे। पहले घर में रहना तो सीखो, तब ही भक्ति पथ पर जा सकोगे। भगवान् ने मोहल्ला, गाँव इसीलिए बनाये हैं कि मानव मिलजुल कर सुखी रहना सीख सके, परंतु यदि मर्यादाओं को तोड़ दो तो सुखी होने का सवाल ही नहीं। जब घर में ही रहना नहीं आया तो समाज में, गाँव में, शहर में और देश में रहना, कैसे आ सकता है? पहले नींव मजबूत बनाओ, तभी भक्ति महल खड़ा कर सकोगे वरना महल का निशान ही नहीं होगा।

यदि मानव दो साधन मन में धारण कर ले, केवल दो साधन, तो सारा बखेड़ा ही मिट जाए।

1. पहला है, अपने घर की और वैभव की आसक्ति दिल से निकाल दें, आसक्ति ही दूसरा जन्म दिलाती है, तो यह सारा रोग ही खत्म हो जाए।
2. दूसरा साधन है संग्रह–परिग्रह इतना ही रखो कि अपना जीवन सुचारु रूप से चलता रहे। जितना संग्रह–परिग्रह रहेगा, उतना ही मन फंसता चला जायेगा और भगवान् की तरफ मन नहीं जायेगा। हरिनाम में मन नहीं लगेगा।

ये दो साधन अगर कोई कर ले तो भगवान् की प्राप्ति बहुत सुचारु रूप से, जल्दी हो जाए।

हमारे गुरुवर्ग तो दो करवे रखते थे। एक तो शौच जाने के लिए और दूसरा प्रसाद पाने के लिए। एक झौंपड़ी में रह कर हरिनाम जप करते

रहते थे। हमें विचार करना होगा कि हम गृहस्थी हैं, हमें सब कुछ चाहिए तो इतना ही रखो कि मन उसमें फंसे नहीं। ज्यादा जरूरत का सामान ही घर में रखो, फिजूल का सामान रखने से मन को हरिनाम करने में हानि होती रहेगी क्योंकि मन उसमें फंसता रहेगा। भगवान् ऐश आराम से नहीं मिलता। त्याग और तपस्या से ही भगवान् मिला है और मिलेगा। त्याग है नींद का त्याग। ब्रह्ममहूर्त में जल्दी उठो और हरिनाम करो। रात में 1–2 बजे जाग कर हरिनाम करना चाहिए। और तपस्या क्या है? हरिनाम करना। इस प्रकार त्याग है निद्रा का त्याग और तपस्या है हरिनाम करना।

श्रीमद्भगवद् गीता में भगवान् ने भी यही कहा है, "अभ्यास व वैराग्य।" अभ्यास है हरिनाम जप और वैराग्य है आसक्ति का मन में न रहना। यह आसक्ति ही अगला जन्म करवाती है। आसक्ति, भक्त और भगवान् में रहे तो जन्म मरण का कारण दुख हमेशा के लिए विलीन हो जाए। दुख का जड़ सहित नाश और सुख का असीम आनंद हो जाये। अगर यह बात हो जाए तो सदैव के लिए आनंद समुद्र उपलब्ध हो जाए। भगवान् की भूख नहीं है, भूख है संसार की। अतः 84 लाख योनियों में चक्कर लगाते रहो और दुख भोग भोगते रहो। यही तो माया राज्य है, माया का मतलब है अँधेरा, माया का मतलब है अज्ञान, माया का मतलब है झूठ, माया का मतलब है सपना, माया का मतलब है अनित्यता, माया का मतलब है अंधकार। मानव, इसमें फंसता जा रहा है। यह फसावट सत्संग से ही दूर हो सकती है। सच्चा सत्संग कैसे और कहाँ मिले? जो इस संग का राहगीर है, वह है साधु। लेकिन 'बिनु हरि कृपा मिले नहीं संता।' भगवान् सामने आ जाए, तब भी भगवान् को पहचान नहीं सकते। भगवत्कृपा के बिना नहीं पहचान सकते। क्या कारण है? कृष्ण भगवान् तो कौरवों के घर में 24 घंटे विराजते थे, परन्तु कौरव उनको एक साधारण मानव ही मानते थे क्योंकि उन पर हरि की कृपा नहीं थी।

हरिनाम जपते हुए भगवान् का सानिध्य परम आवश्यक है जैसे हमारे पास कोई आगंतुक (अचानक आ जानेवाला) आवे और हम सामने बैठ कर उससे बात करते हैं और वह हमारी बातें ध्यान पूर्वक सुन रहा है। फिर कुछ देर बाद यदि हम पीठ मोड़कर बैठ जाएँ या वहाँ से चले जाएँ तो आगंतुक को कितना बुरा लगेगा? इसी प्रकार हम हरिनाम कर रहे हैं तो हमारे पास भगवान् को बिठाना पड़ेगा वरना हमें भगवान् का दोष लगेगा। हमारा मन जो भगवद् स्वरूप है, उसे हम यदि इधर उधर ले जाएंगे तो

हरिनाम शुद्ध उच्चारण नहीं होगा। मन के साथ में जियो। यही मूल बाधक है। यदि हमारा मन स्कूल, दुकान, खेत में चला जाएगा तो भगवान् उठकर चले जाएंगे। इसलिए जब हरिनाम करें तो भगवान् को संग में रखना चाहिए। उनके चरणों में बैठ कर के हरिनाम करना चाहिए।

देखो! हरिनाम कितना चमत्कारी है? शिमला की, अभी 5–6 महीने की ही बात है। शिमला में, मेरे गुरु भाई तीर्थ महाराज के शिष्य हैं, उनको हृदय में कैंसर हो गया था। तो वह बोला, "मैं तो मरूँगा क्योंकि कैंसर का तो कोई इलाज नहीं है तो आप बताओ क्या करूँ?" मैंने कहा, "मैं ठाकुरजी से पूछूँगा।" मैंने ठाकुरजी से पूछा कि वह बेचारा डेढ़–दो लाख नाम कर रहा है और उसको कैंसर हो गया है तो उसका क्या इलाज है? ठाकुरजी ने बोला, "उसको बता दो कि तू जितना हरिनाम करता है उससे डबल कर दे। मैंने पूछा कि क्या कैंसर खत्म हो जायेगा? ठाकुरजी ने कहा, "क्यों नहीं होगा? इसका मतलब हरिनाम छोटा हो गया और कैंसर बड़ा हो गया।" मैंने फोन पर कह दिया, "जितना आप नाम करते हो, उससे डबल कर लो।" तो उन्होंने डबल किया तो डेढ़ महीने के बाद में तीन अस्पतालों में चैक करवाया तो तीनों अस्पताल कहते हैं कि कैंसर का नाम निशान भी नहीं है। यह प्रत्यक्ष हरिनाम का प्रभाव देख लो। कैंसर तक खत्म हो गया।

जयपुर में 23 साल का लड़का जिसका 95% लीवर खराब था और डाक्टरों ने कह दिया कि उसको घर ले जाओ, अब वह बच नहीं सकता। उसके दोस्त ने मुझे फोन किया कि ऐसी–ऐसी बात है तो मैंने कहा कि उसे हरिनाम करवाओ। "उससे एक लाख हरिनाम करवाओ और गोविन्द देवजी का चरणामृत दिन में तीन बार सुबह–दोपहर–शाम दो।" तो उसने चरणामृत लिया और एक लाख हरिनाम किया। उसने सोचा कि अब मरना तो है ही तो एक लाख नाम करके ही मरूँ तो अच्छा है। एक लाख हरिनाम किया। अभी की बात है, यह भी ज्यादा दिन पुरानी बात नहीं है। एक हफ्ते के बाद में उसको प्यास लगी। पहले पानी की प्यास ही नहीं लगती थी, तो अब प्यास लगी और पानी डाइजेस्ट (पच गया) हो गया फिर 20 दिन के बाद में भूख लगी तब उसने खाया और डाइजेस्ट (पच गया) हो गया। अब उसने सोचा कि अब बच गया। वह अब एकदम से स्वस्थ है। डॉक्टर के पास गया, तो डॉक्टर अचम्भा करने लगा कि ये कैसे हुआ? उसने कहा कि ऐसी–ऐसी बात है। तो उसके डॉक्टर भी मेरे पास आए थे और बोले कि क्या हरिनाम में इतनी शक्ति है? मैंने कहा, "हरिनाम

में इतनी शक्ति है कि त्रिभुवन को हिला सकता है। आपको मालूम नहीं है कि भगवान् का नाम कितना शक्तिशाली है?" डॉक्टर बोला, "हमको बता दो।" तो मैंने कहा, "आप भी हरिनाम करो।" तो वह भी हरिनाम करने लगे। तो मैं आपको बता रहा हूँ कि हरिनाम में क्या शक्ति है।

हरिनाम से बढ़कर तो कोई शक्ति नहीं है। यदि ऐसा न हो तो फिर कैंसर तो हरिनाम से बलिष्ठ हो गया और हरिनाम कमजोर हो गया। यह कैसे हो सकता है? अब यह देखिये! कि कैसे-कैसे चमत्कार हैं हरिनाम के? हरिनाम से मौतें ही टल जाती हैं। इसलिए सबको हरिनाम करना चाहिए।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : क्षण भर का विरह, क्या आप इसे विरह कहेंगे या कल्पना कहेंगे ?

उत्तर : भगवान् के प्रति क्षण भर का विरह है, बहुत अच्छा है भगवान् के लिए यह विरह हुआ है न, यह उन्नति का कारण है। फिर धीरे-धीरे ज्यादा होगा। जैसे-जैसे संसार से मन हटेगा, तो विरह भी धीरे-धीरे बढ़ता जाएगा। कभी-कभी ऐसा होता है परंतु लगातार नहीं होता है। लगातार इसलिए नहीं होता है क्योंकि एक तो संग नहीं मिलता है ऐसा, और हमारा 'जैसा अन्न-वैसा मन' होता है। जब किसी के घर खाने के लिए चले जाते हैं तो वहाँ कैसी कमाई का अन्न होता है क्या मालूम ? इसलिए उसका प्रभाव भजन में पड़ता है, यही कारण है। परंतु विरह होना अच्छा है। यह उन्नति का प्रतीक है।

भगवद् प्राप्ति की कुंजी

8

25 नवंबर 2016
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण युगल में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा अहैतुकी प्रेमा भक्ति की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

यदि यह 15 पोएन्ट (बिंदु) धारण हो जाएँ। यदि 15 में से 1 पोएन्ट (बिंदु) भी धारण हो जाए तो उसका उद्धार हो जाए।

1. तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना – अगर ऐसा स्वभाव बन जाए तो फिर भगवान् दूर नहीं हैं।

2. कंचन, कामिनी, प्रतिष्ठा से दूर रहें – कंचन में सब आ गया पैसा, वैभव इत्यादि। कामिनी में कोई भी हो बच्ची हो, जवान हो उसे माँ समझे। फिर क्या है प्रतिष्ठा। प्रतिष्ठा शूकर विष्ठा। जब बड़ाई हो तो ऐसा समझे कि सब मेरी बड़ाई क्यों कर रहे हैं? मेरे में तो कोई गुण नहीं है जो भी है वह हरिनाम की वजह से है।

3. आसक्ति न हो। वैभव से आसक्ति न हो। जो भी कुछ है जमीन है, मकान है, कुछ भी है, सब भगवान् का है।

4. संग्रह–परिग्रह कम रखो। संग्रह–परिग्रह उतना ही रखो जितने में काम चल जाए। कहते हैं, "हम तो गृहस्थी हैं और हमको तो संग्रह करना ही पड़ता है।" लेकिन उतना ही करो, जितने से काम चल जाए।

5. हरिनाम में भगवान् को पास रखो।

6. भगवान् के लिए त्याग और तपस्या होनी चाहिए। त्याग और तपस्या क्या है? भगवान् आराम से कभी नहीं मिलते। 1:00 से 2:00 बजे उठकर हरिनाम जप करना चाहिए। कहते हैं, "हमको नींद आती है।" मैं

कहता हूँ, "नींद नहीं आती, शाम का भोजन बहुत कम करना चाहिए या दूध पी कर सो जाना चाहिए।" धीरे–धीरे आपको आदत पड़ जाएगी और आप 1:00 से 2:00 बजे उठोगे और आपका हरिनाम होने लग जाएगा।

7. श्रीमद्भागवत का पठन करना चाहिए। देखो! जब भगवान् वैकुण्ठ जाने लगे तो ब्रह्माजी बोलते हैं, "प्रभु! आप जा रहे हो और मैं तो सृष्टि रचना करने में असमर्थ हो जाऊँगा। मैं सृष्टि नहीं कर सकूँगा। तो ब्रह्मा को भगवान् ने कहा, "मैं स्वयं श्रीमद्भागवत में स्थित हूँ, तुम श्रीमद्भागवत का पाठ करते रहो। तुम्हारी सृष्टि रचना अपने आप होती रहेगी। इसलिए श्रीमद्भागवत पाठ करो।" फिर शिवजी ने भी ऐसे ही कहा, "आपके जाने के बाद में मारण शक्ति मेरे अंदर नहीं रहेगी, मैं क्या करूँ?" तो उन्होंने कहा, "मैं यहाँ पर ही हूँ श्रीमद्भागवत के रूप में, तुम श्रीमद्भागवत प्रतिदिन पाठ करो। कभी पार्वती आपको श्रीमद्भागवत सुनाएगी और कभी तुम सुनाओ। जब तुम सुनाओगे तो 2 महीने लगेंगे जब पार्वती सुनाएगी तो उसे ज्यादा समय लगेगा।"

8. परहित सरिस धर्म नहिं भाई। दूसरे का हित करोगे तो तुम्हारा बेड़ा पार हो जाएगा। दूसरे का हित करना ही सच्चा धर्म है। इसलिए दूसरे का हित करो।

9. किसी की आत्मा मत सताओ। यह शरीर क्या है? आत्मा का घर है, तो दुख आत्मा को होता है, शरीर को नहीं होता है। यह शरीर तो जड़ है। शरीर को कभी भी दुख नहीं होगा। आत्मा को दुख होगा। तभी तो कहते हैं कि किसी की आत्मा मत सताओ ऐसा तो नहीं कहा कि किसी का शरीर मत सताओ।

10. ब्रह्मचर्य व्रत– ब्रह्मचर्य व्रत किसको कहते हैं? 11 इंद्रियां हैं उनसे ही ब्रह्मचर्य होता है। 11 इंद्रियों को अपने गोलकों में रखो, माया की तरफ मत जाने दो। जैसे कान को भगवान् की कथा सुनाओ, जिह्वा से नाम जपो। ऐसे 11 इंद्रियों को भगवान् की तरफ नियोजित करो, वह ब्रह्मचर्य कहलाता है। ब्रह्मचर्य का विस्तृत रूप है 11 इंद्रियों को भगवान् की तरफ लगाना।

11. भगवान् दो चीजों से बहुत प्रसन्न होते हैं। एक साधु की सेवा से भगवान् बहुत खुश होते हैं। दूसरा सांड की सेवा से, सांड को दलिया खिलाने से। क्योंकि सांड से गायों की जनरेशन (संख्या) बढ़ती है। देखो! जब कोई मरता है तो गरुड़ पुराण सुनाते हैं, गरुड़ पुराण में लिखा है कि

जो मरने वाले के ऊपर सांड छोड़ता है तो मरने वाला भी वैकुण्ठ जाता है और छोड़ने वाला भी। इसीलिए हम जीते जी ही सांड की सेवा करें तो कितना लाभ होगा। तो हमको सांड को दलिया खिलाना चाहिए। दलिया, अपनी सामर्थ्य के अनुसार खिलाओ। सवा 5 किलो, सवा 11 किलो, सवा 21 किलो, जितनी भी सामर्थ्य हो, उतना दलिया खिलाओ। दलिये में एक चौथाई गुड़िया शक्कर (गुड़ वाली शक्कर) मिला दो। एक परात में उसको रख दो और उसके ऊपर तुलसीदल डालो तो भगवान् के अर्पण हो गया। फिर उसकी चार परिक्रमा करो और उस को दण्डवत् करो, जिसके लिए दलिया खिला रहे हो उसको तुलसीदल खिला दो। फिर एक सांड को सवा किलो से ज्यादा मत खिलाना क्योंकि ज्यादा खिलाने से उसका पेट खराब हो जाएगा। इस तरह 10–15 सांडों को जाकर के खिला दो, गौशालाओं में खिला दो और कहीं भी इधर–उधर होंगे वहाँ पर खिला दो।

यह पॉइंट (बिंदु) हैं जो भगवान् को प्रसन्न करने वाले हैं और यह भगवान् के पास पहुँचाने वाले हैं।

12. पैसे से घृणा रखो। जितने में काम चले उसमें संतोष रखो। यह पैसा ही खास माया है, यही सब को परेशान कर रहा है इसलिए पैसे से ज्यादा प्यार मत रखो।

13. और ये तीन प्रार्थनाएं जो हैं – रात को सोते वक्त, सुबह उठते वक्त और स्नान करने के बाद। यह तीन प्रार्थनाएं पूरे शास्त्रों का सार है। शास्त्र में और कुछ नहीं है यह तीन प्रार्थना ही लिखी हैं। शास्त्र पढ़ने में तो कितने साल लग जाएंगे लेकिन तीन प्रार्थनाओं में दो ही मिनट लगते हैं। एक प्रार्थना में तो 2–4 सैकंड ही लगते हैं। प्रार्थना करते रहो, कभी भूलो मत। जो ऐसा करेगा उसको स्वयं भगवान् लेने आएंगे, अपने पार्षदों को नहीं भेजेंगे।

14. नाम करते रहो। हरिनाम को मत छोड़ो। कलियुग में नाम ही भगवान् को प्राप्त करवाने वाला है।

15. वृंदा माँ की सेवा – वृंदा माँ, भगवान् को प्राप्त करवाने वाली हैं। यह माँ हैं माँ। हम वृंदा माँ की गोद में बैठकर ही तो जप करते हैं, हम वृंदा माँ की गोद में बैठ जाते हैं और बाप को फिर याद करते हैं, बाप को बुलाते हैं 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे' उनकी गोद में बैठकर ही तो करते हैं तो यह माँ ही अपने पति से मिलवा देती है।

इनमें से यदि कोई एक भी करेगा तो वह भगवान् को प्राप्त हो जाएगा। उसका बेड़ा पार हो जाएगा। यह 15 पॉइंट (बिंदु) हैं।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

देखिए! आज उत्पन्ना एकादशी है और नरहरि ठाकुर का आज तिरोभाव है। हमारे गुरुवर्ग का आविर्भाव व तिरोभाव जब होता है तो उनको याद करने से उनकी कृपा मिलती है इसलिए उनको याद करना चाहिए।

शुद्ध एकादशी का पालन यथासम्भव करना चाहिए। शुद्ध एकादशी होती है कि दशमी को एक समय प्रसाद पाओ। एकादशी को निराहार रहो और द्वादशी को पारण करके शाम का भोजन मत करो। यह है शुद्ध एकादशी यानि शुद्ध एकदम सुपीरियर (श्रेष्ठ)। और ऐसा भी है कि दशमी को भी दो बार खा लेते हैं, द्वादशी को भी दो टाइम खा लेते हैं और एकादशी को फलाहार करते हैं। तो यह एकादशी भी भगवान् को प्राप्त करवा देगी क्योंकि सभी तो निर्जला नहीं कर सकते लेकिन ऐसे एकादशी को तो सभी कर सकते हैं।

जो गोलोक धाम या वैकुण्ठ धाम से आता है तो उसको खुद को मालूम नहीं रहता कि मैं वैकुण्ठ या गोलोक धाम से आया हूँ क्योंकि इस मृत्यु लोक में माया का साम्राज्य रहता है अतः यहाँ ज्ञान या अंधकार रहता है। प्रत्यक्ष उदाहरण है कि श्रीचैतन्य महाप्रभुजी के पार्षद इस मृत्युलोक में प्रकट हुए, इनको यह मालूम नहीं था कि कृष्ण के समय में हमारा क्या रोल (भूमिका) था अतः चैतन्य महाप्रभुजी ने उन्हें बताया कि, "हे स्वरूप दामोदर! तुम ललिता के अवतार थे। जब मैं कृष्ण था और तुम ललिता थी।" पुंडरीक विद्यानिधि को बताया कि, "उस समय तुम वृषभानु के अवतार थे।" फिर रामानंद रायजी को बताया और इसी प्रकार श्रीचैतन्य महाप्रभुजी ने सभी पार्षदों को अपने अवतार से अवगत कराया था क्योंकि यह मृत्यु लोक है, इसमें माया का साम्राज्य है, इसलिए मालूम नहीं होता। इसलिए भगवान् ही बताते हैं।

यदि कोई भेंट देना चाहे तो मेरी भेंट इतनी ही है कि अधिक से अधिक हरिनाम करो, यही मेरी भेंट है, यही मेरी सेवा है। किसी का जीवन चरित्र देख कर भी विश्वास, श्रद्धा हो जाता है। उसके वचन से भी सच्चाई

मालूम हो जाती है जैसे कि मृत्यु से बचाना, रोग का छुटकारा पाना और डॉक्टरी घटनाएं सत्य होना आदि आदि से भी श्रद्धा बन जाती है। अनंत घटनाएं ऐसी हैं जो 100% सत्य हो रही हैं। इसलिए हरिनाम की बड़ाई है। हरिनाम की वजह से हो रहा है। (हँसते हुए) मेरे घरवाले कहते हैं कि, "यहाँ जो आते हैं आपको लूटने के लिए आते हैं क्योंकि आपको वाक–सिद्धि भी है। आप किसी को बच्चे देते हो, किसी की बीमारी ठीक कर देते हो, किसी के अनबन झगड़े होते हैं, उनको सुधार देते हो, किसी को मौत से ही बचा लेते हो अतः आपका भजन लूटकर ले जाते हैं।" मैं जवाब देता हूँ, "शास्त्र का वचन है 'पर हित सरिस धर्म नहिं भाई' दूसरे का हित करना ही सबसे बड़ा धर्म है, दूसरे का हित करना भगवान् का ही हित होता है क्योंकि भगवान् सबके हृदय में बैठे हुए हैं। भगवान् अंतर्यामी हैं, भगवान् खुश होते हैं। किसी की आत्मा को खुश करना ही भगवान् की आत्मा को खुश करना है क्योंकि भगवान् आत्मा के रूप में सब में विराजमान हैं। शरीर तो एक मकान है, दुख मकान को नहीं होता है, दुख तो आत्मा को होता है। फिर मैं कौन सा बुरा काम कर रहा हूँ? भला ही तो कर रहा हूँ।" इसी कारण घरवाले नीचे आते ही नहीं हैं कि पिताजी ठीक नहीं कर रहे हैं, भजन को लुटा रहे हैं। कौन आया है, वह देखते ही नहीं हैं। घरवाले ज्यादा बोलते नहीं हैं कि यदि पिताजी रुष्ट हो जाएंगे तो कुछ मुख से गुस्से में बोल देंगे तो उनका अनिष्ट हो जाएगा। अतः चुप ही रहते हैं। प्रेम से ही समझाते रहते हैं, "फोन को मत रखो, किसी को बुलाओ नहीं, कहीं जाओ नहीं। किताबें लिख दी हैं उनको बोलो कि किताबें पढ़कर भजन करते रहो। आगे आगे सुझाव देते रहो।" लेकिन मैं उनकी सुनता नहीं हूँ। अपने मन की ही करता रहता हूँ। जब भगवान् ने भेजा है तो मैं किसी की क्यों सुनूँ? विरोधपना तो होता ही रहता है, भक्त का हर जगह विरोध हुआ है इसलिए मैं सोचता हूँ करने दो, ये ऐसे ही करते रहेंगे।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

माला जपने का अर्थ है कि हम माँ वृंदा की गोद में बैठ करके अपने पिता को बोलकर, उन्हें बुला रहे हैं कि, "हम को गोद में ले लो।" क्योंकि भगवान् के सभी जीव मात्र शिशु ही हैं। तो शिशु का स्वभाव ही ऐसा हुआ करता है कि शिशु सदा बाप की गोद में चढ़ कर आनंद महसूस करता रहता है। तो वृंदा माँ माला हमारी जन्म–जन्म की माँ हैं और भगवान् हमारे जन्म–जन्म के पिता हैं। हम उनकी गोद में रहकर ही खुश रह

सकते हैं, आनंद से रह सकते हैं। यदि ऐसा नहीं होगा तो माया हमें तरह–तरह से दुखी करती रहेगी। कोई भी मनोकामना पूरी होने नहीं देगी। अतः माँ–बाप को पुकारो 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे' तो भगवान् को जब पुकारेंगे तो हमारे पास भगवान् आ जाएंगे। भगवान् को उपलब्ध करने हेतु दो अड़चनें मन में से हटा दो तो भगवान् तुरंत मिल जाएंगे।

एक तो आसक्ति को हटा दो। आसक्ति भगवान् में लगाओ या संतों में लगाओ। आसक्ति किसकी? गृहस्थी की आसक्ति। गृहस्थी में जो खेत, दुकान, मकान हैं उनकी आसक्ति भी मिटा दो और संग्रह–परिग्रह कम रखो क्योंकि उसमें मन फंसेगा। इतना ही रखो जिससे अपना जीवन चल सके, आसानी से चल जाए बस। ऐश और आराम से भगवान् नहीं मिलते। आज तक न ही किसी को मिले हैं, न ही मिलेंगे। त्याग और तपस्या ही भगवान् को खींच कर लाती है। त्याग क्या है? निद्रा का त्याग करो। देखो हमारे गुरुवर्ग ने निद्रा को त्याग कर ही तो भगवान् को प्राप्त किया था। तो निद्रा का त्याग करो और तपस्या क्या है? हरिनाम करो। रात को जल्दी जाग कर हरिनाम करो। ऐसे त्याग और तपस्या से भगवान् मिलते हैं। भगवान् को जबरदस्ती आना ही पड़ेगा। भगवान् तो चाहते ही हैं कि, "उनका बच्चा उनके पास आ जाए।" लेकिन हम नहीं चाहते। भगवान् को आना ही पड़ता है कोई शक्ति उन्हें रोक नहीं सकती। भक्त के इस साधन से भगवान् कमजोर (विवश) पड़ जाते हैं। जैसे सुदामाजी का जीवन था। सुदामा का जीवन कैसा था? अकिंचन एवं भक्तिमय। यदि हम सुदामा जैसा स्वभाव बनाते हैं तो भगवान् रुक नहीं सकते।

भक्त रूपी चुंबक लोहे रूपी भगवान् को खींच लाएगा। यह शत–प्रतिशत सिद्धांत है। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। दो–चार दिन कर के देखो, मन में धारण कर लो, संग्रह–परिग्रह, आसक्ति हटा दो और फिर आपको भगवान् मिल जाएंगे। यह आसक्ति ही तो हमको दूसरा जन्म दिलाती है।

इस कलियुग में भगवद् उपलब्धि बहुत सहज है, बहुत सरल है यदि सभी जीव–मात्र पर दया की जाए, किसी को सताया नहीं जाए। हम जीवों पर ध्यान नहीं देते हैं इसलिए सताया जाता है, भगवान् की आत्मा सताई जाती है। आत्मा को परमात्मा का बेटा समझ लो। बेटे को जो दुख देगा तो क्या परमात्मा राजी (खुश) होगा? क्योंकि सभी चराचर भगवद्

संतानें हैं उन पर दया करने से भगवान् बहुत शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। कोई भी अपने बच्चे को किसी के द्वारा प्यार करता हुआ देखे तो चाहे वह अनजान ही क्यों न हो, उस पर स्वतः ही प्यार की दृष्टि आ जाएगी। मानव तो माया का पुतला है फिर भी उसको अनजान से प्यार बन जाता है तो भगवान् तो दयानिधि हैं और त्रिलोकी व अनंत ब्रह्माण्डों के बाप हैं तो फिर दया से वंचित कैसे रख सकते हैं? उस जीव पर असीम कृपा बरसा देंगे। जहाँ पर भगवान् की दया हो गई वहाँ सुख की कमी नहीं रह सकती और दुख का तो मूल–सहित ही नाश हो जाएगा।

देखो! आयुर्वेदाचार्य धन्वन्तरि वैद्य थे क्योंकि देवताओं का उपचार करते थे। जब देवता और राक्षसों ने समुद्र मंथन किया, तो यही धन्वन्तरि जो आयुर्वेद के प्रवर्तक थे, अमृत का कलश लेकर बाहर आए थे। समुद्र से 14 रत्न निकले थे। उन्होंने समुद्र मंथन इसलिए किया कि हम को अमृतरस मिलेगा। देवताओं ने राक्षसों को कहा कि यदि वे राक्षस, उनकी सहायता करेंगे तो उन्हें भी अमृतरस मिलेगा। तो राक्षस बोले, "हां! जरूर करेंगे।" तो राक्षस एक तरफ हो गए और देवता दूसरी तरफ हो गए और समुद्र को मन्दराचल पहाड़ की मथानी बना कर मथने लगे तो पहाड़, समुद्र में डूबने लगा। तब भगवान् ने कच्छप रूप से उसको अपनी पीठ पर रख लिया। उन्हें पीठ में हल्की हल्की खुजलाहट होने लगी और उनको नींद आ गई। नींद में तो साँस ज्यादा चलता ही है तो समुद्र में ज्वार भाटा आने लगा। तभी से समुद्र में ज्वार–भाटा आता रहता है, समुद्र कभी शांत नहीं रहता। अब देवता तो भगवान् की शरण में थे लेकिन राक्षस, उस अमृत कलश को छीन कर भाग गए। तब देवता निराश हो गए, भगवान् से प्रार्थना की, "हमने भी इतनी मेहनत की और अब हम तो अमृत पी नहीं सकेंगे क्योंकि राक्षस छीन कर ले गए हैं।" भगवान् ने कहा, "चिंता मत करो।" भगवान् ने इतना सुंदर मोहिनी रूप धरा कि राक्षस उनकी तरफ देखकर मोहित हो गए और उनके पास में आए और बोले, "यह अमृतरस है जो आप हमको बाँट दो।"

भगवान् बोले, "देखो! तुम्हें स्त्री का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। जो स्त्री होती है, उसका कोई विश्वास नहीं होता।" तो राक्षस बोले, "नहीं! हमको आप पर विश्वास है, आप बाँट दो।" मोहिनी रूप भगवान् बोले कि ठीक है। और बोले, "मैं जैसे जैसे कहूँ वैसे वैसे करना।" राक्षस उत्साहित हो कर बोले, "ठीक है।" मोहिनी बोली, "एक पंक्ति बना लो। देवता एक पंक्ति में बैठ जाओ और तुम भी एक पंक्ति में बैठ जाओ।"

तो भगवान् मोहिनी, अमृत रस का कलश ले कर राक्षसों के पास गई और वहाँ से फिर इधर देवताओं की तरफ आई और उनको सबको अमृतरस पिलाने लगी। अब यह राक्षस सोच रहे हैं कि उनकी तरफ भी अभी आकर पिलाएगी। परंतु उसने तो पूरा ही अमृतरस देवताओं को ही पिला दिया और राक्षसों को पिलाया ही नहीं। वह तो निराश हो गए। मोहिनी भगवान् तो अदृश्य हो गए, अप्रकट हो गए और वे देखते ही रह गए। इसका मतलब है कि जो भगवान् की शरण में होता है, उसको सब चीजें मिल जाती हैं पर जो भगवान् की शरण में नहीं होता वह कितनी भी मेहनत करे, उसके पास कुछ नहीं रहता जितनी भी मेहनत करेगा, सब असफल हो जाएगी। इसलिए भगवान् की शरण में रहना चाहिए।

अब आपको हरिनाम की महिमा ही बताता हूँ। देखो! अब मैं 89 साल का हो गया और फिर भी मेरे अंदर 20 साल के नवयुवक जैसी ताकत है। मेरे शरीर में कोई रोग नहीं और मेरी आंखों की दृष्टि 5 साल के बच्चे जैसी है। अब बताइए यह क्या है? हरिनाम की महिमा है, मैंने हरिनाम किया है और अभी भी करता ही रहता हूँ। यह हरिनाम का ही अमृत बरसता है। हरिनाम करते–करते अमृत भर गया और जहर निकल गया। जहर क्या है? माया का जो परिवार है : काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष यह सब निकल गए। उदाहरण के लिए मान लो कि एक घड़ा है उसमें शराब भरी पड़ी है और आप गंगाजल डालते रहो, डालते रहो तो शराब तो निकल जाएगी और गंगाजल रह जाएगा। ऐसे अमृत ही पूरे शरीर में भर गया और जो जहर था वह निकल चुका। और भी आपको बहुत अच्छी बातें बता रहा हूँ कि हरिनाम में कितनी शक्ति है?

देखो! कई जगह दूर–दूर तक अमेरिका आदि देशों में मेरे नाम से (मेरे फोन नम्बर से) फोन चले जाते हैं अब वह फोन चले जाते हैं और वे मुझ को वापिस फोन करते हैं कि आपका फोन आया था और आपने कोई बात नहीं की। तो मैं बोलता हूँ, "मैं आपसे बात कैसे करूँगा? जब मेरे पास आप का फोन नंबर ही नहीं है।" वे पूछते है कि फिर यह फोन किसने किया है? यह किसने बात की है? मैंने कहा, "यह तो आप समझो, किसने फोन किया है। अरे! यह तो ठाकुरजी ने किया। ठाकुरजी का मन लगता नहीं है भक्तों के बिना और कलियुग में बहुत कम भक्त होते हैं। ठाकुर का मन तो लगता नहीं है और अब यह फोन से लीला करते रहते हैं। अब यह बताओ मैं बोलता हूँ कि आपका फोन नंबर ही मेरे पास नहीं है तो मैं कैसे बात करूँगा? यह तो बहुत बार होता रहता है। कई जगह यहाँ इंडिया में

भी काफी होता रहता हैं कि मेरे नाम से फोन चले जाते हैं। भगवान् ही फोन करते हैं। ऐसा है कि भगवान् की कृपा के बिना फोन नहीं जाते। विदेशों में भी भक्त हैं तो उनसे भी भगवान् फोन के द्वारा लीला करते रहते हैं। इस तरह की घटनाएं होती रहती हैं।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

देखो! मुसलमान के यहाँ 'हरामी' एक गाली है। हरामी एक बुरा शब्द है, लेकिन उसमें 'राम' आ गया तो उनका उद्धार हो गया। अब बताओ! कि नाम को आप कैसे भी जपो, भगवान् को तो सब मालूम है।

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

भाव से लो, बेमन से लो, चलते–फिरते लो, सोते हुए लो। मैं उदाहरण देता हूँ जैसे एक छोटा सा, डेढ़ साल का शिशु है। वह रोता रहता है, घर में बहुत परेशान करता है, घर में तोड़ा–फोड़ी करता है, इसलिए उसको खिलौने के साथ, बाहर चबूतरे पर बैठा देते हैं और वह खिलौनों में लग जाता है। अतः फिर वह कुछ समय तो माँ–बाप को भूल जाता हैं। हम भी खिलौनों में लगे हुए हैं, कोई खेती करता है, कोई दुकान करता है, कोई नौकरी करता है और हम भी माँ–बाप को भूल जाते हैं। लेकिन जब वह ऊब जाता है तब रोता हुआ बोलता है, "मम्मी–मम्मी–मम्मी–मम्मी।" तो उसकी मम्मी जितना भी कोई जरूरी काम हो, उसको छोड़ कर भाग कर उसके पास आ जाती है और उसको गोद में ले लेती है। तो ऐसे ही जब हम भगवान् का नाम लेते हैं तो भगवान् आ जाते हैं। तो इसलिए नाम जप करते समय भगवान् को पास में रखना चाहिए, तब वह शुद्ध नाम कहलाता है।

शुद्ध नाम बोलना शुद्ध नहीं होता। आप कृष्ण की जगह 'कृ' ही बोल दो और राम की जगह 'र' ही बोल दो। यह भी शास्त्रों में लिखा है कि नाम, अशुद्ध शुद्ध भी बोल दो तो कोई फर्क नहीं पड़ता। शुद्ध नाम कौन सा होता है कि जिस को बुलाया है तुमने, वह आपके पास में तो रहे। उसको अपने पास में रखो। जब आप हरिनाम कर रहे हो तो आप ध्यान करो कि मेरे भगवान् मेरी बात सुन रहे हैं या रत्न–सिंहासन पर बैठकर मेरी बात सुन रहे हैं, जब ऐसा करोगे, ऐसा सुनोगे तो आपको बहुत जल्दी

विरह होगा। आप नाम तो लेते हो और आपका मन कहाँ–कहाँ चला गया। लेकिन जहाँ भी मन गया, कल्याण कर देगा। मान लो आपका मन खेती में चला गया, वहाँ नाम को लेकर तुम गए हो तो उस खेती का कल्याण हो जाएगा, उस बाजार का कल्याण हो जाएगा, उस दुकान का कल्याण हो जाएगा। जहाँ पर भी तुम उसको ले जाओगे वहाँ पर कल्याण हो जाएगा। आपका भी कल्याण होगा पर आपका ज्यादा फायदा तभी होगा, जब भगवान् को पास में रखोगे। ऐसे धीरे–धीरे अभ्यास करने से भगवान् पास में रहेंगे। या फिर ऐसे करो कि नाम लेते हुए गिरिराजजी की परिक्रमा करते रहो या फिर उनकी कोई लीलाएँ स्मरण करते रहो। लेकिन मन संसार में नहीं जाना चाहिए। जब हरिनाम करो तो संसार मन में नहीं आना चाहिए। संसार मन में आ जाता है तभी तो कोई आगे नहीं बढ़ सकता। कहते हैं हम तो खूब हरिनाम भी करते हैं लेकिन हमें रुचि नहीं हो रही है। रुचि कैसे होगी? तुम हरिनाम तो कर रहे हो पर रुचि तो तुम्हारी संसार में है।

तुम्हारा 80% मन तो संसार में लगा हुआ है और 20% भगवान् की तरफ है। बताओ! इसमें भगवान् क्या करें? 80% अगर भगवान् की तरफ हो और 20% माया की तरफ हो तब तो भगवान् की कृपा मिल जाएगी। वैसे तो कृपा अभी भी मिल रही है लेकिन बहुत टाइम लगेगा, इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति नहीं होगी, फिर कई जन्म लग जाएंगे। कलियुग से महत्वपूर्ण कोई युग नहीं है। सतयुग, त्रेता, द्वापर के सब लोग और देवता लोग तरसते हैं कि हमारा कलियुग में जन्म हो जाए और भारतवर्ष में हो जाए तो हम भगवान् के पास चले जाएंगे।

हम कितने भाग्यशाली हैं कि हमारा भारतवर्ष में जन्म हुआ और फिर हमको सब सुविधाएं भी मिल गईं और हमको भगवान् का रास्ता भी मिल गया, गुरुजी भी अच्छे मिल गए, सत्संग भी अच्छा मिल गया तो हम कितने भाग्यशाली हैं। इससे बढ़कर क्या होगा? बताओ? लेकिन समय को ऐसे ही बर्बाद कर दोगे तो आगे आपको फिर से जन्म लेना पड़ेगा।

भगवद् स्मरण :
केवल हरिनाम से ही संभव

9

2 दिसंबर 2016
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास
अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा
हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद करें।

आज थोड़ी देर माखन ही माखन खिलाएँगे और आप को अमृत पिलाएंगे। कृपा करके ध्यान पूर्वक सुनें! देखिये! श्री चैतन्य महाप्रभुजी के समान कोई दयालु नहीं है।

कितनी खुशी की बात है इसलिए चैतन्य महाप्रभुजी कृष्ण से अधिक दयालु हैं। क्यों हैं? कृष्ण ने अपने आयुध यानि सुदर्शन चक्र आदि से दुष्टों का उद्धार किया था और चैतन्य महाप्रभुजी ने अपने नाम से ही उद्धार किया है। अपना नाम स्वयं जप कर सबको शिक्षा दी और बोले, "जो 64 माला अर्थात् 1 लाख नाम जप करेगा, उसके घर ही मैं जा कर प्रसाद पाउँगा अर्थात् उससे ही बात करूँगा और जो एक लाख हरिनाम नहीं करेगा, उसके घर मैं न जाऊँगा, न उससे बात करूँगा।" उन्होंने इतनी कठोरता क्यों की? इसलिए कि किसी तरह मानव जीवन सफल हो जाए। इतना कठोर आदेश क्यों किया? इसलिए किया था क्योंकि वो दया के अवतार हैं। उनको दुखी जीवों पर दया आयी कि किसी तरह मानव उनका नाम जप कर वैकुण्ठ चले जाएँ वरना भविष्य में इनको मानव देह मिलने वाली नहीं है। तो उनकी सन्निधि में ही एक लाख नाम जपने वाले संत हो चुके थे, लेकिन उन्होंने केवल इतना कहा, "जो एक लाख नाम नित्य करेगा, उसका जन्म मरण निश्चय ही छूट जायेगा।" जन्म मरण छूट

जायेगा, क्या इतना कहना ही वैकुण्ठ की प्राप्ति हो गयी? तो जन्म मरण छूटने के बाद जायेगा कहाँ? वैकुण्ठ के सिवाय कहाँ जगह है? कहाँ जायेगा? कहीं नहीं, इसलिए मेरे बाबा द्वारकाधीश, सत्संग एवं हरिनाम करवा कर सबको वैकुण्ठ ले जाना चाहते हैं। जो भी यह करेगा, उसका वैकुण्ठ धाम निश्चित हो गया और रिजर्वेशन का आश्वासन तो एकादशी पर उन्होंने ही दिया था।

{श्रील गुरुदेव (श्रील अनिरुद्ध दास अधिकारी) को एकादशी वाले दिन ठाकुरजी ने बताया कि उनसे जुड़े हुए भक्तों का जो एक लाख हरिनाम करते हैं, वैकुण्ठ का टिकट पक्का हो गया है} और ऐसा बोला है कि नाम में मन लगे या न लगे, तब भी वैकुण्ठ मिल जायेगा। अजामिल का नाम में मन कहाँ लगा था, उसने अपने बेटे नारायण को पुकारा था। 'नारायण' ही नाम लिया था। केवल नाम से ही वैकुण्ठ मिल जायेगा। बोला भी हैः

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

दसों दिशाओं में मंगल हो जायेगा, दसों दिशाओं के अलावा ग्यारह दिशा तो होती ही नहीं हैं, अर्थात् मंगल हो जायेगा। जब यह बोल दिया तो फिर अमंगल कहाँ रहा? अमंगल का तो स्थान ही नहीं है, क्योंकि उन्होंने कहा, "दसों दिशाओं में मंगल हो जायेगा।" इसका मतलब है वैकुण्ठ की प्राप्ति निश्चित रूप से हो जाएगी।

अधिकतर मानव 64 माला करते हैं, पर फिर प्रचार में फंस जाते हैं अतः वैकुण्ठ से वंचित रह जाते हैं क्योंकि पहले नाम को स्टोर (भंडार में रखना) करो और फिर प्रचार करो। नाम का स्टोर (भंडारण) नहीं हुआ तो प्रचार में असर नहीं होगा। जब स्टोर होगा तो आपका प्रचार स्वतः ही होने लगेगा। अगर नाम नहीं किया और प्रचार करने लगे तो उसका असर नहीं होगा। यही तो माया है। सुकृति की कमी के कारण माया ने हरिनाम पर श्रद्धा होने नहीं दी। यह माया है। जिसने हरिनाम पर श्रद्धा की, उन पर माया का वश नहीं चल सकता क्योंकि हरिनाम कौन है? भगवान्। और भगवान्, माया के स्वामी हैं इसलिए उन पर कोई असर नहीं होता क्योंकि हरिनाम स्वयं भगवान् ही हैं। अतः जो प्रचार करता रहता है उस पर अहंकार हावी हो जाता है फलतः हरिनाम से वंचित रह जाता है। उसकी अंदर की धारणा कुछ पैसे की होती है, भगवान् की तो नहीं होती है।

देखिये! खास बात ध्यान पूर्वक सुनें कि भगवान् का स्मरण ही भगवान् को प्राप्त करने का मुख्य साधन है। तभी तो यह आविष्कार किया कि हरिनाम करो। हरिनाम से ही स्मरण होगा। वैसे होगा नहीं। हरिनाम से ही स्मरण होगा। स्मरण सबसे प्रभावशाली है। पूतना ने भी स्मरण किया था तो उसे माता की गति दे दी। वह तो स्तनों में जहर लगा कर मारने के लिए आयी थी। लेकिन मरते समय भगवान् का स्मरण तो किया। भगवान् दुश्मनी, प्यार कुछ नहीं देखते, वह तो स्मरण देखते हैं कि मुझको कैसे स्मरण करता है। देखो! राक्षसों ने भी तो स्मरण ही किया और पुंडरीक ने तो भगवान् को बोला, "मैं भगवान् हूँ, तुम भगवान् नहीं हो।" भगवान् का चिंतन करता रहा तो इसलिए उसका भी उद्धार हो गया। उसने तो स्वयं यह बोला था, "कृष्ण! तुम भगवान् नहीं हो, मैं भगवान् हूँ।" तो देखो, उसका स्मरण से ही उद्धार हो गया। इसलिए स्मरण बहुत आवश्यक है। स्मरण कैसे होगा? हरिनाम से।

अब ध्यान पूर्वक सुनो, देखो मन भगवान् ही है। जैसा कि गीता में बोला है, "हे अर्जुन! ग्यारह इन्द्रियों में मन मैं ही हूँ।" परन्तु अब प्रश्न यह उठता है कि पंच तत्त्व के शरीर में दो भगवान् कैसे हो सकते हैं? देखो! आप ध्यानपूर्वक सुनें। इसका उत्तर है कि परमात्मा तो भगवान् है जो भोग्य नहीं है, भोक्ता है। लेकिन दूसरा भगवान्, जो मन है वह ब्रह्मा का प्रतीक है। ब्रह्मा का प्रतीक कैसे है? ब्रह्मा सृष्टि का रचयिता है, इसी प्रकार मन भी संकल्प विकल्प करता रहता है। यह भी सृष्टि (मन की) का रचयिता है। यह मन क्या करता है?...कि, "मकान बना लूँ, कार ले लूँ, ऐसा कर लूँ, वैसा कर लूँ।" इस प्रकार यह सारी उधेड़बुन करता रहता है। यह मन ही भगवान् को प्राप्त करा सकता है और यह मन ही है, जो नर्क में ले जाता है। तो यह मन भी रचयिता का ही प्रतीक है। मन ही अनंत कोटि ब्रह्मांडों में मुख्य है। इसी से ब्रह्माण्ड की रचना होती रहती है। परमात्मा यह रचना नहीं करता क्योंकि वह केवल देखता रहता है कि मन तन, मन, वचन से क्या-क्या करवाता है। जैसा मन कर्म करता है वैसा ही जीव को भोग भोगना पड़ता है। जीव मन की वजह से ही दुख सुख भोगता रहता है। भगवान् कहते हैं, "मन मैं ही हूँ।" मेरे गुरुदेव ने इसमें लिखा है कि मन को कैसे वश में किया जाये? भक्तगण इसका ध्यान पूर्वक विचार करके समझ सकते हैं। मन क्या करता है? मन एक क्षण भी चुपचाप नहीं रहता, कुछ न कुछ उधेड़बुन करता ही रहता है। लेकिन यदि

मानव उसे रोक दे, तब उसका उद्धार होगा। यह रुकता नहीं, हमेशा चंचल रहता है। इसको रोकना बहुत जरूरी है। कहते हैं कि :

मन के कहने में न चालिये जो चाहो कल्याण।

मन के कहने से आप चलोगे तो खड्डे में डाल देगा। इसलिए मन पर विश्वास कभी न करो। मन को किसी न किसी काम में लगाए रखो। जैसा मन, तन, वचन से कर्म होता है वैसा ही जीव को भोग करना पड़ता है। यह मन ही करता है अर्थात् तन, मन, वचन यह सब मन की प्रेरणा से ही कर्म करते हैं। यह सब कुछ मन ही करवाता है। यह जैसा कर्म करवाता है वैसा ही जीव को भोगना पड़ता है और ऐसा न हो तो संसार चल ही नहीं सकता। यही माया का व्यापार है। योगमाया ही भगवद् संसार का नियमन करती है। जीव मन की वजह से ही दुख–सुख भोग करता है। अब प्रश्न उठता है कि इस मन को कैसे समझाया जाए ताकि दुख मूल सहित नष्ट हो जाए? यह मन ही दुख का कारण है और मन ही सुख का कारण है। तो जिस जीव–आत्मा ने मन को समझाने का मार्ग देखा है वही सभी राहगीरों को समझा सकता है। इसमें लिखा राहगीर कौन है? राहगीर वही है जो भगवान् की गोद से बिछुड़ गया है और भगवान् को चाहता है और वापिस उसी की गोद में जाना चाहता है। अतः जो इस मन को ठीक कर सकता है वह कौन है? वह है सच्चा संत, नामनिष्ठ संत ही बता सकता है कि मन को कैसे समझाया जाए। सिर्फ संत समझा सकता है और कोई नहीं समझा सकता क्योंकि संत ने उस रास्ते को देखा है। मन को उसने वश में किया है। किस अभ्यास (प्रैक्टिस) से किया है, वह साधक को बता सकता है कि किस तरह से मन वश में आ सकता है।

ऐसा संत राहगीर को क्या बोलेगा यह अब बताया जा रहा है।

मन ही सृष्टि रचना करता रहता है। देखिये, इस संसार में बिना सहारे के कोई आज तक नहीं टिका। बिना किसी सहारे के अनंत कोटि ब्रह्माण्ड स्थिर नहीं रह सकते। जब ब्रह्माण्ड तक स्थिर रह नहीं सकते तो मन बेचारे का स्थिर रहने का प्रश्न ही नहीं उठता। मन कैसे स्थिर रहेगा? इसको भी सहारा चाहिए। मन स्थिर रखने हेतु, मन की चंचलता दूर करने हेतु कोई साधन होना तो परमावश्यक है। वह साधन क्या हो सकता है? साधन वही हो सकता है जो मन को रोक सके। मन का सम्बन्ध किससे है? मन का सम्बन्ध भगवान् से ही तो है। सम्बन्ध मन के टिकाव से ही होगा अन्य से कभी नहीं हो सकता। मन का टिकाव कैसे हो सकता है? हरिनाम से।

हरिनाम क्या है? हरिनाम स्वयं भगवान् है। प्रथम हरिनाम रूपी एल.के.जी. पाठशाला में बैठना पड़ेगा तो हरिनाम से ही मन टिकेगा। उस पाठशाला में कैसी शिक्षा उपलब्ध की जाएगी? भगवान् के सम्बन्ध की।

प्रथम में हरिनाम को हृदय में बिठाओ और वृंदा महारानी जो भगवान् की असीम प्यारी है, उसका सहारा ले लो। बिना वृंदा महारानी के सहारे से मन नहीं टिकेगा। उसकी शरणागति लो तो भगवान् की शरणागति स्वतः हो सकती है। तो हृदय से वृंदा माँ के पास बैठकर हरिनाम करें अर्थात् भगवान् संग में हैं, वृन्दा महारानी के चरणों में हरिनाम लें, उससे मन को बहुत सहायता मिलेगी। वृंदा माँ कौन है? जपमाला ही वृंदा माँ है। जपमाला की गोद में बैठ कर यानि वृंदा माँ की गोद में बैठ कर अपने बाप को पुकारो, जैसे शिशु माँ की गोद में बैठ कर बाप को पुकारता है कि नहीं! "पापा! पापा! पापा!" ऐसे ही आप पुकारो।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

ऐसे पुकारो तो भगवान् आप के पास में आकर खड़े हो जाते हैं। भगवान् के पास में आते ही उनके चरण पकड़ कर "पिताजी! पिताजी!" ऐसा सोचते हुए हरिनाम करते रहो। जब पिताजी को बोलोगे तो पिताजी आपको गोद में उठा लेंगे। हरिनाम करते करते पैर में पड़ जाओ और फिर रोओ, रोना भी नहीं आये तो पिताजी! पिताजी! ही करते रहो यानि हरिनाम करते रहो, पैरों में चिपके रहो तो मन कहीं नहीं जायेगा। इसकी चंचलता निर्मल हो जाएगी। अगर ऐसा करोगे तो मन संसार में नहीं जायेगा क्योंकि इसको सहारा मिल गया। मन को उसके पिताजी के पैरों को पकड़ने का सहारा मिल गया इसलिए अब वह संसार में नहीं जायेगा। कुछ दिनों के बाद में स्वतः ही ऐसे करते करते आपको रोना आ जायेगा, विरह प्रकट हो जायेगा। हम भगवान् को पुकारते हैं, पुकारते ही भगवान् तो आ जाते हैं और हमारा मन कहाँ चला जाता है? वह बाजार में चला जाता है, स्कूल में चला जाता है, खेत में चला जाता है तो भगवान् कहते हैं, "तूने मुझे बुलाया था मैं आया तो कहाँ चला गया?" ऐसे जप से सुकृति तो इकट्ठी हो जाएगी और मन जहाँ नाम को ले जायेगा, उसका कल्याण हो जायेगा। जैसे मन नाम को लेकर खेत में चला गया तो खेत की उपज अच्छी हो जाएगी। मान लो दुकान में चला गया तो दुकान का कल्याण हो जायेगा।

मन, नाम को जहाँ भी ले जायेगा वहीं कल्याण करेगा। यदि आप अपने लिए करोगे तो आपका कल्याण हो जायेगा। वैसे सुकृति इकट्ठी होते होते आपका भी कल्याण तो करेगा पर उसमें समय अधिक लग जाएगा। ऐसा कहा है कि नाम कैसे भी जपो, वह तो मंगल विधान ही करेगा। अब जैसे अग्नि में जान के या अनजाने से हाथ लगाओ। उसका स्वभाव है कि जलाये बिना नहीं रहेगी, इसी तरह से आप नाम कैसे भी लो, नाम अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहेगा, आपका मंगल कर देगा। तभी तो बोला है :

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

दसों दिशाओं में मंगल हो जाएगा, ग्यारह दिशा तो होती नहीं। दसों दिशाओं में यहाँ मंगल बोल दिया तो फिर अमंगल का तो प्रश्न ही नहीं उठता। अमंगल तो रहा ही नहीं, वह तो समूल ही नष्ट हो गया। बेमन से चलते–फिरते, खाते–पीते, सोते–जागते, हरिनाम बोलकर करते रहो, तब भी भगवद् कृपा बन जाएगी और मन में शान्ति हो जाएगी, लेकिन इसमें समय अधिक लग जाएगा। आप यदि भाव–कुभाव से भी करोगे, तो वैकुण्ठ की प्राप्ति हो जाएगी। यह तो निश्चित है कि आप बेमन से भी भगवान् का नाम लोगे तो वैकुण्ठ तो प्राप्त हो ही जायेगा, क्योंकि चैतन्य महाप्रभुजी ने बोल दिया कि "मैं भी जप रहा हूँ तुम भी जपो।" दया करके वो उद्धार करना चाहते हैं इसलिए ही स्वयं ने आचरण करके दूसरों को बताया, "तुम हरिनाम करो, एक लाख हरिनाम करना पड़ेगा।"

अच्छा! अब मेरे गुरुदेव और ठाकुरजी बता रहे हैं कि नाम को किस तरह से जपना चाहिए? जैसे सीताजी जपती थीं वैसे जपना चाहिए। सीताजी कैसे जपती थीं ?

जेहि बिधि कपट कुरंग सँग धाइ चले श्रीराम।
सो छबि सीता राखि उर रटति रहति हरिनाम।।

(मानस, अरण्य. दो. 29 ख)

रटना अर्थात् जीभ से बोलती रहती थीं।

Chanting Harinama sweetly and listen by ears-

प्रेम से हरिनाम जपो और कानों से सुनो।

रावण के कहने पर मारीच राक्षस ऐसा बढ़िया हिरण का सुंदर रूप जो सोने की तरह चमक रहा था, बन कर रामजी की कुटिया के पास आया। उसे देख कर सीताजी बोलीं, "रामजी! इसको मार कर इसकी खाल ले आओ और इसकी मृगशाला पर बैठ कर हम दोनों हरिनाम करेंगे।" रामजी हिरण के पीछे दौड़े। वही छवि सीताजी ह्वदय में धारण कर के नाम जपती रहती थीं। जेहि बिधि कपट कुरंग सँग धाइ चले श्रीराम... ऐसा चिंतन कर रही थीं। स्मरण कर रही थीं। सो छबि सीता राखि उर रटति रहति हरिनाम.... वही छवि ह्वदय में रखकर हरिनाम कर रही थीं। ऐसे हरिनाम हमको करना चाहिए यानि जिसको हम याद कर रहे हैं, उसकी छवि साथ में रहनी चाहिए, ह्वदय में रहनी चाहिए पर हमारे ह्वदय में रहती नहीं है इसलिए प्रेम जल्दी नहीं आता है।

अब भरत जी कैसे जपते थे?

पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू।।

(मानस, अयोध्या. दो. 325 चौ. 1)

पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू.... ह्वदय पुलकित हो रहा है, और रामचंद्रजी का ध्यान कर रहे हैं, "जो मेरा भईया है, नंगे पैर जा रहा है, बालू बहुत तप रही है, ऊपर से सूर्य तप रहा है, ऐसे सोचकर रो रहे हैं।"

देखिये! नाम तो जपो और सब कुछ करो, लेकिन संत अपराध मत करो। संत अपराध बहुत खतरनाक है क्योंकि संत भगवान् के प्यारे बेटे हैं। बेटे को कोई परेशान करे तो पिता को कैसे बर्दाश्त हो सकता है? जैसे दुर्वासा ऋषि। वह साधारण भक्त नहीं थे, फिर भी जब उन्होंने अम्बरीष का अपराध किया तो सुदर्शन से दुखी हो कर भागते रहे और अंत में अम्बरीष ने ही उनको बचाया। भगवान् भी नहीं बचा सके, क्योंकि भगवान् ने तो सीधा सा जवाब दे दिया। कहा, "मेरा मन तो मेरे पास है ही नहीं, मेरा मन तो मेरे प्रिय भक्त अम्बरीष ने ले रखा है। मन से ही तो अच्छा बुरा हो सकता है, अब तुम उसके पास ही जाओ, वही तुम्हे शान्ति मिल सकती है क्योंकि मेरा मन वहाँ पर है।" इसलिए अपराध से बचो। अपराध बहुत खतरनाक होता है। कहते हैं :

इंद्र कुलिस मम सूल बिसाला। कालदंड हरि चक्र कराला।।
जो इन्ह कर मारा नहिं मरई। बिप्र द्रोह पावक सो जरई।।

(मानस, उत्तर. दो. 108 घ चौ. 7)

शिवजी कहते हैं कि इंद्र का वज्र, मेरा त्रिशूल, यमराज का दंड और भगवान् का सुदर्शन चक्र, इनसे भी जो नहीं मरे, साधु का द्रोह करने से, साधु को सताने से, पावक में जल जायेगा। पावक कैसी होती है? पावक ऐसी होती है जो लोहे को पानी बना दे। ऐसे वह जल जल कर मरेगा, वह तुरंत नहीं मरेगा वह तड़प–तड़प कर मरेगा। ऐसी अग्नि में जल कर मरेगा। कभी भी संत का अपराध मत करो। भगवान् श्रीमद्भागवत में भी कहते हैं, "मैं संत को तीन बार नमस्कार करता हूँ।" और भगवान् ने ब्राह्मण का नाम लिया। ब्राह्मण वही संत है जो ब्रह्म को जानता है। "मैं ब्राह्मण को तीन बार नमस्कार करता हूँ, ब्राह्मण मेरे सिरमौर हैं" इसलिए संत तो भगवान् के सिरमौर हैं। इसलिए साधु के अपराध से बचो और जहाँ तक हो सके, साधु की सेवा करो और साधु यदि मार भी दे तो उसके आगे हाथ जोड़ दो तो आपका जीवन बहुत सुखमय हो जायेगा, नहीं तो आपका हरिनाम ही नहीं बढ़ पायेगा।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इसलिए हरिनाम को ऐसे जपो जैसे सीताजी जपती थीं, भरतजी जपते थे, इस तरह से नाम को जपना चाहिए।

देखिये! वैसे तो हमारे शास्त्रों में दस अपराध बताये हैं लेकिन अपराध केवल 10 ही नहीं हैं, अपराध 94 होते हैं। क्योंकि 84 लाख योनियां हैं उनमें भी भगवान् परमात्मा रूप से विराजते हैं। उनको यदि हम सतायेंगे तो वह भी अपराध है। जैसे चींटी है, चींटी में भी भगवान् बैठे हैं इसलिए चींटी चलती फिरती है। हाथी में भी भगवान् है। पेड़ में भी भगवान् है। उनका भी अपराध मत करो उनसे भी बचो। अगर आप इन 94 अपराधों से बच जाओगे तो भगवान् आपके पीछे छाया की तरह चिपके रहेंगे। देखिये! कहते हैं कि किसी की आत्मा मत सताओ, यह नहीं कहते कि किसी का शरीर मत सताओ। शरीर तो आत्मा का मकान है, आत्मा इस मकान में रहता है। मकान तो निर्जीव है। अब मेरे मकान की कोई खिड़की तोड़े तो मकान थोड़ी रोएगा, मैं रोऊँगा। इसलिए जब हम किसी से द्वेष करते हैं तो वह आत्मा (परमात्मा) से द्वेष होता है। इसलिए किसी की आत्मा मत सताओ और किसी का जी मत दुखाओ। यह 84 लाख योनियों के लिए है। चींटियां हमारे आँगन में आयी और हम झाड़ू से उसको हटाने लगे तो उसमें दो–चार चींटी मर गयी तो आपको चींटी बनना पड़ेगा क्योंकि भगवान् ने उसको

उसके कर्मानुसार चींटी बनाया था, आप ने उसको मार दिया तो उसी योनि में जाना पड़ेगा। इसीलिए मान लो, हमारे यहाँ आँगन में चींटियाँ आ गयी तो हम क्या करेंगे? भगवान् ने हमें बुद्धि दी है। हम दरवाजे के बाहर पताशे या चीनी वगैरा डाल दें तो चींटी 10 मिनट में ही अपने आप वहाँ चली जाएंगी क्योंकि उनका नाक बहुत तेज है और आप पाप से बच जाओगे। इसलिए 84 लाख योनियों की तरफ तो कोई ध्यान ही नहीं देता है और न ही कोई बताता है। बताना चाहिए। अरे! भगवान् परमात्मा रूप में उनमें भी तो विराजते ही हैं इसलिए उनको भी बचाओ। अरे! उनको बचाओगे तो भगवान् छाया की तरह आपके पीछे रहेंगे। इसीलिए तो तीन प्रार्थनाएं बोली हैं : तीसरी प्रार्थना है –"हे मेरे प्राणनाथ! मेरी ऐसी दृष्टि बना दो कि मैं कण–कण और हर जीव मात्र में आपका ही दर्शन करूँ।"

तो जिसका ऐसा स्वभाव हो जायेगा वह किसी को दुख नहीं देगा और चींटी को भी दुख नहीं देगा। वह तो कहेगा "अरे! मेरा प्यारा तो इस चींटी में भी बैठा हुआ है। मेरा प्यारा तो इस मक्खी में भी बैठा हुआ है।" अतः वह किसी को दुख नहीं देगा। एक उदाहरण देता हूँ जैसे हम दूध पी रहे हैं और हमारे सामने एक टेबल (मेज) है और टेबल पर एक बूंद पड़ गया और एक–दो चींटी आ कर उस बूंद को पीने लगी तो साधारणतया हम उस बूंद को पोंछ देते हैं। बेचारी चींटी तो भूखी थी तो उसका अपराध हो गया। उस बूंद को वहीं रहने दो, बाद में चींटी उस बूंद को पी कर 4–5 मिनट में दूर चली जाएगी। फिर उसको साफ कर दो। ये मैंने उदाहरण दिया है कि ऐसे हम किसी की सेवा करें, किसी को दुख नहीं दें, इस तरह जो करेगा वह तो साक्षात् भगवान् का रूप है और वह निश्चित रूप से भगवान् के यहाँ चला जाएगा।

ऐसा प्रश्न आता है कि मैं तो वैकुण्ठ जाना नहीं चाहता। तो कहाँ जाना चाहते हो? बोलते हैं कि, "हम तो गोलोकधाम जाना चाहते हैं।" मैंने कहा, "गोलोक धाम जाने की आपके अंदर योग्यता भी तो होनी चाहिए।" बोले, "वह क्या योग्यता है बताओ?" "गोलोक धाम वह जाता है जो भगवान् के लिए तड़पता है। अरे! तुम हरिनाम करते हो, पर एक आंसू भी तो नहीं आता है। हरिनाम करते हो, तुमको वैकुण्ठ तो मिल ही जायेगा लेकिन गोलोक धाम कैसे मिलेगा? गोलोक धाम तो तब मिलेगा, जब तुम भगवान् के लिए तड़पोगे। भगवान् के लिए तड़पो। एक आंसू भी नहीं आता है और गोलोक धाम चाहते हैं। तुम्हारी कुछ भी योग्यता नहीं है, तुम तो अभी दसवीं में बैठे हो, पी–एच.डी. तो की नहीं तुमने, फिर तुम्हें सर्टिफिकेट कैसे मिलेगा?"

तुम गोलोक धाम जाना चाहते हो तो मैं बता रहा हूँ कि उसके लिए स्वभाव कैसा होना चाहिए? गोलोक धाम वाले को संसार में 1% भी आसक्ति नहीं रहेगी। भगवान् के लिए वह तड़पेगा, न उसे भूख लगेगी, न उसे नींद आएगी और भगवान् को "हा प्राणनाथ! कब मिलोगे मेरे को? हा प्राणनाथ! आप कहाँ चले गए? मैं कैसे मिलूँ? कहाँ जाऊँ? कहाँ पाऊँ? आपको।" ऐसे जो तड़पेगा उसको खुद भगवान् कहते हैं कि, "जो मेरा भक्त तड़पता है मैं भी वैसे ही तड़पता हूँ। इसलिए मेरे से रहा नहीं जाता।" इसलिए इस अवस्था का जो भक्त होगा, उसको गोलोक धाम मिलेगा तो भगवान् उसको सम्बन्ध ज्ञान दे देंगे और फिर वह भगवान् के पास चला जायेगा।

जैसे उदाहरण है, हमारी बच्ची 25 साल तक हमारे पास रही। अब नवयुवक से उसका सम्बन्ध करवाया तो नया सम्बन्ध होने से वह 25 साल तक रहने पर भी माँ–बाप को छोड़ देगी और नवयुवक के पास सारी उम्र बुढ़ापे तक वहीं रहेगी। न तो नवयुवक उसको छोड़ेगा और न ही वह बच्ची उसको छोड़ेगी। इसी तरह से जब ऐसा भक्त होगा तो वह भगवान् के बिना नहीं रहेगा और भगवान् भी उसके बिना नहीं रहेंगे और तब भगवान् उसको सम्बन्ध ज्ञान दे देंगे कि वह भगवान् का दोस्त है, बेटा है आदि आदि। भगवान् जानते हैं कि इसकी अंदर से क्या भावनाएं हैं, वैसा ही उसको रिलेशन (सम्बन्ध) दे देंगे। अभी तो तुम्हारा केवल वैकुण्ठ का रिजर्वेशन (आरक्षण) हुआ है और अभी जितना भी जीवन शेष है तो ऐसा हरिनाम करो कि जिससे भगवान् के लिए तड़पन हो जाए। कैसे होगी वह तड़पन? जब तुम हरिनाम करो तो भगवान् को साथ में रखो, भगवान् के पैरों में चिपके रहो और 'हरे कृष्ण' करते रहो, "पापा! पापा!" करते रहो। हरिनाम का मतलब है "पिता जी! पिता जी!" करो और आप चरणों से चिपके रहो तो फिर धीरे धीरे आपको विरह हो जायेगा, रोना आ जायेगा। अच्छा! यदि भगवान् को पास में नहीं रखोगे तो बहुत समय के बाद में रोना आएगा।

हरिनाम करते हुए भगवान् पास में रहेंगे तो रोना आ जायेगा, रोना आएगा तो भगवान् को बर्दाश्त नहीं होगा और भगवान् उसको हृदय से चिपका लेंगे। तो ऐसे होना चाहिए। अभी हम हरिनाम करते हैं और एक मिनट तो भगवान् रहते हैं फिर मन पता नहीं कहाँ कहाँ चला जाता है तो उससे रोना कैसे आएगा? आपका मन तो संसार में है अभी, (80% तो संसार में और 20% है भगवान् में) तो तुमको गोलोक धाम कैसे मिलेगा? वैकुण्ठ तो मिल जायेगा पर गोलोक धाम नहीं मिलेगा। गोलोक धाम तब मिलेगा जबकि मन 80% भगवान् में हो और 20% संसार में हो। सच्चे भक्त

का तो मन 20% भी संसार में नहीं होता। उसका तो 1% भी नहीं होता है। वह तो भगवान् के लिए ऐसा व्याकुल हो जाता है कि नींद भी चली जाती है और खाना पीना भी उसका बंद हो जाता है और तड़पता रहता है वह तो एक मिनट भगवान् को नहीं भूलता। "हाय हाय, हाय हाय करता रहता है, "भगवान् कब मिलोगे? कब मिलोगे? रोयेगा, किस से पूछूँ? कहाँ जाऊँ? कहाँ मिलोगे आप?" जब ऐसी अवस्था होगी तब गोलोक धाम मिलेगा।

हमारा यह स्थूल शरीर है इसमें 11 इन्द्रियाँ हैं और सूक्ष्म शरीर में भी इन्द्रियाँ हैं। देखो! नाक, कान, आँख यह सब कुछ अंदर भी हैं जैसे मान लो हम अमेरिका गए हैं एक बार और फिर हम यहाँ बैठे–बैठे अमेरिका को देख लेते हैं। हमें इन आँखों से तो दिख नहीं रहा तो वह अंदर की आँखों से दिखता है। ऐसे कान भी सुनते हैं। जैसे एक बार देवता, राक्षसों से बहुत परेशान हो गए तो इन्द्र सब देवताओं को लेकर ब्रह्मा के पास जाते हैं कि "ब्रह्माजी! राक्षस हमें बहुत परेशान कर रहे हैं।" तो ब्रह्माजी बोले, "आप बैठो! मैं भगवान् से पूछता हूँ।" तो वह अंदर जाकर हृदय में भगवान् को याद करते हैं और अंदर से आकाशवाणी होती है, वह हृदय आकाशवाणी कहलाती है, वह कान से भी सुनाई देती है। भगवान् कहते हैं कि, "उनको जाकर कह दो कि थोड़े दिन की परेशानी और है, फिर बाद मैं खुद ही अवतार ले कर आऊँगा।" इसी तरह मुझ से कोई पूछता है तो मैं पहले भगवान् को पूछता हूँ कि भगवान् ऐसा है कि वह परेशान है इसलिए उसके बारे में बताओ तो भगवान् बताते हैं। कभी कभी तो जवाब देते हैं, कभी नहीं देते हैं।

जब तक ठाकुरजी नहीं बोलते, तब तक मैं एक भी शब्द बाहर नहीं निकालता। ठाकुरजी से पूछ लेता हूँ, कभी तो जवाब देते हैं कभी–कभी तो जवाब ही नहीं देते। वह तो ठाकुरजी जानें क्यों नहीं देते और कई जगह दे भी देते हैं। ऐसे बहुत से उदाहरण भी हैं कि कइयों की मौत टल गयी, कइयों के बच्चे हो गए। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं तो ठाकुरजी बता देते हैं। अरे! सब को बताएंगे। ठाकुरजी सब को बताएंगे, अगर हरिनाम हो जाए और आसक्ति संसार से हट कर भगवान् में ज्यादा हो जाए तो ठाकुरजी सब के लिए सब को बता सकते हैं। सब के हृदय में ठाकुरजी बैठे हैं और सभी इस योग्य बन सकते हैं। लेकिन योग्यता होनी चाहिए, तभी तो ठाकुरजी जवाब देंगे और योग्यता नहीं है, तो ठाकुरजी से पूछोगे तो जवाब आपको मिलेगा ही नहीं। वह योग्यता सब में आ सकती है अगर कोई चाहे तो। क्योंकि 80% तो संसार में मन फँसा हुआ है और 20%

भगवान् में है तो भगवान् कैसे जवाब देंगे? जवाब तब देंगे अगर हमारा ज्यादा झुकाव भगवान् की तरफ होगा। भगवान् से नजदीक तो हमारे पास कोई है ही नहीं, सबसे ज्यादा नजदीक तो भगवान् ही हैं। हमारे अंदर ही बैठा हुआ है लेकिन उसे हम बाहर ढूँढ़ते हैं। अंदर बैठा हुआ है फिर हम बाहर क्यों ढूंढ रहे हैं? और फिर वह युक्ति भी बता दी कि भाई! ऐसा–ऐसा करो तो भगवान् की प्राप्ति हो जाएगी। लेकिन वे करते ही नहीं हैं क्योंकि माया है। सब माया में फँसे हुए हैं। सबसे आसक्ति है। गृहस्थी में है, वैभव में है। आसक्ति संसार में लगी हुई है, भगवान् की तरफ कम है।

अब कहते हैं कि हमारा हरिनाम में मन नहीं लगता। हरिनाम में मन कैसे लगेगा? तुम्हारी आसक्ति तो संसार में ज्यादा है और हरिनाम में कम है। हरिनाम में ज्यादा होगी तो अपने आप ही सब काम हो जाएंगे। पर फिर भी आप बेमन से भी करो हरिनाम, वैकुण्ठ तो आपको मिल ही गया। अब इससे ज्यादा क्या होगा? अब अगर आप गोलोक धाम जाना चाहते हो तो ऐसी अवस्था लाओ कि भगवान् के लिए रोओ। सबसे सरल तरीका यही है कि जिसको आप बुला रहे हो उसको पास में रखो। जिसको आप नाम सुना रहे हो उसको पास में तो रखो। आप पास में रखते नहीं हो और नाम कर रहे हो, जिसको नाम सुनाया उसके पास तो रहते नहीं हो और कहीं–कहीं भाग जाते हो तो भगवान् आपसे कैसे बोलेगा ? भगवान् आप की बात क्यों सुनेगा? यह कठिन काम है लेकिन धीरे धीरे अभ्यास करने से हो जाता है। भगवान् को देखो कि मेरे पास ही बैठे हुए हैं, भगवान् अब चल रहे हैं और अब हँस रहे हैं। ऐसे–ऐसे आप चिंतन करते रहो और हरिनाम करते रहो। एक दम से तो हो नहीं सकता। पी–एच.डी. एक दम से थोड़ी होती है, धीरे धीरे एल.के.जी., यू.के.जी. में बैठने के बाद में ही तो धीरे–धीरे होती है। हर चीज धीरे–धीरे होती है। अभ्यास से सब होगा। गीता में भगवान् कहते हैं, "अर्जुन! अभ्यास और वैराग्य (वैराग्य का मतलब है संसार से विरक्ति) से धीरे धीरे सब काम हो जाते हैं।" देखो! त्याग और तपस्या से भगवान् मिला है, ऐश आराम से किसी को आज तक नहीं मिला। त्याग और तपस्या करो। त्याग क्या है? त्याग है कि आप निद्रा का त्याग करो। रात को 12–1–2 बजे जाग कर हरिनाम करो, यह त्याग है। तपस्या क्या है? तपस्या है कि एक जगह पर बैठ कर हरिनाम करो। यह तपस्या है। त्याग और तपस्या करो। ऐश आराम से भगवान् कभी नहीं मिला और न ही मिलेगा।

कलियुग में तो बहुत जल्दी भगवान् मिलते हैं क्योंकि उनके ग्राहक नहीं हैं। जिस चीज की कमी रहती है उसकी कीमत बढ़ जाती है। तो इस समय दुनिया की पापुलेशन (जनसंख्या) देखते हुए अरबों खरबों में कोई एक ही भगवान् को चाहता है और जो एक भी भगवान् को चाहता है तो वह भी कैसे चाहता है कि मेरे घर में सुख शांति रहे। अब उन अरबों खरबों में भी कोई एक विरला ही ऐसा चाहता है, "भगवान्! मैं तो आपको ही चाहता हूँ और मैं किसी को नहीं चाहता हूँ।" बताओ! भक्तों की कितनी कमी है? इसलिए भगवान् जल्दी प्रसन्न हो जाते हैं। इसलिए तो हमारे गुरुवर्ग को भगवान् ने दर्शन दिया था।

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई।

(मानस, उत्तर. दो. 40 चौ. 1)

क्योंकि सबसे बड़ा यही है कि 'पर हित सरिस धर्म नहिं भाई।' दूसरे का हित करना भगवान् का हित करना ही है। दूसरे का हित करना सबसे बड़ा धर्म है, क्योंकि जिसका हित करते हो उसमें मेरे भगवान् ही तो बैठे हैं। प्यारे ही तो बैठे हैं। इसलिए सबका हित करो। यही सब से ज्यादा भगवान् को प्रसन्न करने वाला है। किसी को दुख नहीं देना चाहिए। मैं तो किसी से कुछ छिपाऊँगा नहीं। मेरे घर वाले कहते हैं, "अरे! यह जो सब आते हैं आपको लूटने के लिए आते हैं क्योंकि आपको वाक्सिद्धि है। चाहे जिसको आप बोल देते हो और आपका भजन जाता है।" तो मैंने कहा, "समुद्र में से अगर कोई घड़ा निकाल लिया जाए तो क्या समुद्र कम हो जायेगा? मालूम है मैंने कितना हरिनाम किया है? और अब भी कर रहा हूँ। मेरा हरिनाम तो उल्टा बढ़ रहा है, कम नहीं हो रहा है।" अब घरवाले भी ज्यादा क्लेश नहीं करते क्योंकि उनको भी डर लगता है कि पिताजी अगर नाराज हो गए और उनके मुँह से कुछ निकल गया तो हमारा तो अनिष्ट हो जायेगा। इसलिए प्यार से ही कहते हैं कि, "आप किसी को बुलाओ मत।" मैंने कहा, "मैं तो बुलाता नहीं हूँ वे तो अपने आप आते हैं। मैंने तो कार्तिक में भी बोला था कि कार्तिक में मेरे पास टाइम नहीं है। अब मत आना।" वे कहते हैं "हम तो आएंगे। आप हमको 10 मिनट तो दोगे?" मैं सोचता हूँ, "इतनी दूर से आएंगे और मै 10 मिनट भी न दूं तो, यह तो बड़ी अपराध की बात है। तो ठीक है आ जाया करो।" इसलिए 2 घंटे तो देना ही पड़ता था।

दयासिन्धु महाप्रभु की कृपा

9 दिसंबर 2016
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा अहैतुकी प्रेमा भक्ति की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

भगवान् के जितने भी अवतार हुए हैं उनमें श्रीचैतन्य महाप्रभु के अवतार के समान कोई भी अवतार दयालु नहीं है। विचार करने से मालूम होता है कि महाप्रभु जबरन सबको भवसागर पार कराना चाहते थे और अपने धाम में ले जाना चाहते थे अतः स्वयं अपना नाम तुलसी माला पर नित्य इस कारण जप करते हैं कि दूसरे भी उनके आचरण को देखकर हरिनाम जप में जुट जायेंगे। जैसे एक माँ अपने बच्चे का फोड़ा डॉक्टर से चिरवाती है, बच्चा रोता है फिर भी सहन करती रहती है कि भविष्य में बच्चा ठीक हो जाएगा। जबरन दुखी होकर भी वह दुखदाई अवस्था को सहन करती रहती है। इसी तरह से श्रीचैतन्य महाप्रभुजी इतने कृपालु हैं कि जबरन हरिनाम करवाकर, सब जीवों को सुखी करने हेतु अपने धाम में ले जाना चाहते हैं क्योंकि महाप्रभु अति दया के अवतार रूप हैं। 553 वर्ष पहले जो एक लाख हरिनाम जप कर रहा था उसका महाप्रभुजी ने धाम का रिजर्वेशन (आरक्षण) करवा दिया था, लेकिन बाहर घोषणा नहीं की थी। अतः द्वारकाधीश के रूप में चैतन्य महाप्रभुजी ने यह घोषणा एकादशी के दिन कर दी है कि "जो एक लाख नाम करता है उसका रिजर्वेशन हो चुका है। जो एक लाख से कम करता है या भविष्य में भी कम करेगा, उसे दुबारा मनुष्य जन्म दिया जाएगा। उस जन्म में वह एक लाख करके फिर धाम में जा सकता है। मेरा नाम चाहे मन से करें या बेमन से करें, तो भी मेरे धाम में जाएगा। नामाभास से भी भगवान् का धाम मिल जाएगा। इसकी गारंटी मैं ले रहा हूँ। अतः निश्चिंत होकर जीवन

बसर करते रहो। अपना कर्म भी करो और मेरा नाम जप कर नित्य स्मरण भी करते रहो।"

बेमन से या भार रूप समझ कर, अवहेलना पूर्वक, जबरदस्ती भी हरिनाम जिसके मुख से निकलता है उसे वैकुण्ठ निश्चित रूप से उपलब्ध होगा।" इसे नामाभास बोला जाता है।

यह भगवान् के शास्त्र के वचन हैं। ऐसा हरिभक्तिविलास में भी घोषणा की है जो गौड़ीय संप्रदाय का माना हुआ ग्रंथ है। इसलिए शास्त्र कह रहा है कि –

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

भाव से लो, प्रेम से लो, चाहे बेमन से लो, खाते–पीते लो, सोते–फिरते लो, जैसे भी लो, तो दसों दिशाओं में मंगल हो जाएगा। दसों दिशाओं के अलावा ग्यारहवीं दिशा तो होती नहीं है। यह शास्त्रों के वचन हैं, दसों दिशाओं में मंगल अर्थात् वह वैकुण्ठ धाम चला जाएगा, जहाँ दुख का नामोनिशान ही नहीं है।

अब मेरे गुरुदेव बता रहे हैं, कि गोलोक धाम किसको मिल सकता है? जरा ध्यानपूर्वक सुनें! भगवान् उसी जीव को गोलोक धाम ले जाते हैं, जिसका पूर्ण रूप से मन का संसार से लगाव हट जाता है। अतः जिसकी संसार से आसक्ति मूल–सहित नष्ट हो जाती है ऐसे जीव पर चाहे कितने संकट आ जाएं, कितनी मुश्किलों का पहाड़ टूट पड़े, पर वह उन से घबराता नहीं है। अशांत नहीं होता। उसका मन चंचल नहीं होता क्योंकि वह जान लेता है, कि भगवान् हर क्षण उनके साथ में है। साक्षात् रूप में वह अपने स्वामी को अपने पास, अपने साथ में महसूस करता रहता है। वह जान लेता है कि यह संकट, यह दुख–तकलीफ मेरा क्या बिगाड़ सकती है? मेरे भगवान् मेरे साथ हैं। वह स्वयं इनको संभाल लेंगे। मेरा इससे कुछ लेना देना नहीं है। वह बेफिक्र रहता है। यही अवस्था है पूर्ण शरणागति की। उदाहरण स्वरूप यदि घर में कोई मुसीबत आ जाती है, या संकट आ जाता है, और घर का मालिक, पिता है, तो पुत्र का मन अशांत नहीं होता क्योंकि पिताजी अपने आप संभाल लेंगे, वह अपने पिता पर पूर्णरूप से आश्रित है, पूर्णरूप से शरणागत है और वह सोचता है कि उसका पिता इस संकट को स्वयं झेल लेगा। वह इसकी चिंता क्यों करे?

ठीक इसी प्रकार वह भक्त, साधक, अपने स्वामी के चरणों में पूर्णरूप से शरणागत होता है तो उसका भार भगवान् को उठाना पड़ता है। यह संकट का भार भगवान् सहन करते हैं।

जब महाभारत का युद्ध हो रहा था और पांडवों पर घोर संकट आया था तो वे बिल्कुल भी नहीं घबराए, क्योंकि वह भगवान् श्री कृष्ण पर पूर्णरूप से आश्रित थे। उनकी भगवान् में पूर्ण शरणागति थी। महाभारत के युद्ध में पांडव पूरी तरह से शांत रहे, क्योंकि उन्हें मालूम था कि उन पर भगवान् श्रीकृष्ण का हस्त कमल है, वे ही उनके रक्षक हैं, वे ही इस संकट को संभालेंगे। फिर वे चिंता क्यों करें? जब भक्त की इस प्रकार भगवान् में पूर्ण शरणागति हो जाती है, तो भगवान् हर पल उसके अंग–संग में रहते हैं। एक पल के लिए भी उससे दूर नहीं होते। यह भाव, यह अवस्था करोड़ों मनुष्यों में से किसी एक की ही आती है। बहुत उच्च स्थिति है, जो केवल हरिनाम के शरणागत होने पर स्वतः ही आ जायेगी। हरिनाम, केवल हरिनाम, केवल हरिनाम और किसी से नहीं।

कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिर सुमिर नर उतरहिं पारा।।

केवल यही रास्ता है और दूसरा रास्ता नहीं है। कलियुग केवल नाम अधारा, नाम का ही आधार है कलियुग में। नाम से ही कलियुग में भगवान् की प्राप्ति हो जाती है और जन्म–मरण हट जाता है। यह बहुत ऊंची स्थिति है जो केवल हरिनाम के शरणागत होने पर स्वतः ही आ जाएगी। मुख से उच्चारण करके तथा कान से सुनकर, जब हम हरे कृष्ण महामंत्र जप और कीर्तन करते हैं तब हमारा बड़ी तेजी से विकास होने लगता है। हम बड़ी तेजी से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने लगते हैं। हरिनाम में पूर्ण–श्रद्धा, पूर्ण–विश्वास, पूर्ण–शरणागति, जब तक नहीं होगी, तब तक यह अवस्था नहीं आएगी।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

इंद्रियों में मैं मन हूँ

16 दिसंबर 2016
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तजनों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार करें और हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद करें।

मेरे गुरुदेवजी ने मुझे आदेश दिया है, कि केवल भगवद् नाम की महिमा ही सदैव बोलते रहो और कुछ भी नहीं बोलना है। अतः मैं, गुरुजी की शक्ति से उनके आदेश का पालन करने का प्रयास कर रहा हूँ। कृपया भक्त ध्यानपूर्वक सुनने की कृपा करें!

553 वर्ष पहले स्वयं भगवान् ने श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुजी के रूप में, राधाजी के भाव से ओतप्रोत होकर अवनी (पृथ्वी) पर अवतार लिया था। ऐसा अवतार इस अवनी पर कभी नहीं हुआ है। अनंत ब्रह्मांड हैं, उन ब्रह्मांडों का कुछ मालूम नहीं है। विचार करने पर दयालु स्वभाव होने से वहाँ भी चैतन्य महाप्रभुजी का अवतार हुआ होगा, कह नहीं सकते। उन्होंने जीवों का उद्धार करने हेतु, स्वयं अपना नाम जप कर, जीवों को अपने नाम में लगाया और आदेश दिया कि "जो लखपति होगा, उसके यहाँ पर ही मैं प्रसाद पाऊँगा।" तो सभी जबरन 64 माला अर्थात् एक लाख नाम करने लग गए। शास्त्र के अनुसार, केवल एक भगवद् नाम से ही उद्धार हो जाता है, तो 64 माला करने से तो 100% उद्धार होगा ही क्योंकि इतने नाम जपने में कुछ तो शुद्ध नाम निकलता ही है। महाप्रभु का उद्देश्य था जो भी इतना नाम नित्य करेंगे, उन्हें वैकुण्ठ या गोलोक धाम जाने में, स्वप्न में भी रुकावट नहीं हो सकती। कोई शक्ति उनको वहाँ जाने से नहीं रोक सकती।

'शब्द' में बहुत प्रभाव करने वाली शक्ति होती है। उदाहरण के लिए, किसी ने किसी को माँ–बहन की गाली दी, तो सामने वाले को इसका इतना प्रभाव हुआ और इतना क्रोध आया कि उसने उसका गला ही काट दिया। यह शब्द का प्रभाव था। एक शब्द ऐसा होता है कि किसी ने बोला, "भैया! मैं तुम्हारी शरण में हूँ। आप मेरे हो और मैं तुम्हारा हूँ।" तो कैसा प्रभाव होगा? सुखदायक होगा, इससे प्रेम उमड़ आएगा। अतः शब्द में बहुत बड़ी शक्ति है। तो इसी प्रकार 'हरे कृष्ण, हरे राम' शब्द ऐसा प्रभावशाली है, कि मानव का दिल समदर्शी, अमृतमय, आनंदमय बनाकर सामने वाले को भी इसके प्रभाव से ओत–प्रोत कर सकता है। 'शब्द' के बिना संसार का काम चल ही नहीं सकता। शब्द ही कर्म को जन्म देता है शब्द नहीं तो कर्म हो ही नहीं सकता। बिना शब्द कुछ नहीं हो सकता। यदि कोई सब्जी बनाना चाहेगा तो उस सब्जी का नाम उसको लेना पड़ेगा, नहीं तो सब्जी की उपलब्धि नहीं होगी। इसलिए 'हरे कृष्ण' और 'हरे राम' का शब्द इतना प्रभावशाली है कि त्रिलोकी को हिला सकता है।

श्रील नरोत्तम दास ठाकुर कहते हैं, "गोलोक धाम का प्रेम धन हरिनाम संकीर्तन है।" हरिनाम संकीर्तन के द्वारा ही सभी पतितों, दीनजनों का उद्धार हुआ है। इस बात का प्रमाण है, जगाई–मधाई। एक कीर्तन होता है वह तो इंडिविजुअल (एकाकी) करता है, और जब जोर–जोर से हरिनाम करते हुए बोलता है वह कीर्तन होता है और जो सामूहिक कीर्तन होता है, वह संकीर्तन कहलाता है।

दीनहीन यत छिलो, हरिनाम उद्धारिलो। ता'र साक्षी जगाइ–माधाइ ।।3।।

(भजनः हरि हरि बिफले जनम)
(नरोत्तम दास ठाकुर, ग्रन्थ : प्रार्थना)

दुर्भाग्यपूर्ण मनुष्य, सुदुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर भी श्री राधाकृष्ण का भजन नहीं करता, इसलिए वह अशांत है, दिन–रात संसार रूपी विषयानल में उसका हृदय जलता ही रहता है। अतः इस मनुष्य जन्म को बेकार न करें। देखा जाता है कि थोड़ा सा संकट आने पर भक्त घबरा जाते हैं जिसका अर्थ है कि उनकी भगवान् में पूर्ण शरणागति नहीं है। जब भक्त की भगवान् के चरणों में पूर्ण शरणागति बन जाती है तो उसमें विरहावस्था की स्थिति स्वतः ही आने लगती है। यह विरहावस्था भगवान् के लिए तड़पन पैदा करती है अतः मन भगवान् को मिलने के लिए व्याकुल हो जाता है। वह दिन–रात हर समय दर्शन के लिए आतुर हो जाता है।

जब भक्त की ऐसी अवस्था हो जाती है तो पूर्णरूप से उसका मन संसार से हट जाता है। वह दिन–रात भगवान् के विरह में तड़पता रहता है। उसके लिए खाना–पीना, सोना–जागना, चलना–फिरना सब भार बन जाता है। वह पागलों की तरह हँसने लगता है, कभी रोता है। ऐसी गहरी स्थिति में पहुँचकर वह शरीर की सुध–बुध भूल जाता है। लोग उसे पागल समझते हैं, पर उसकी वास्तविक स्थिति को कोई नहीं समझता। कोई अनुभवी संत ही उसे पहचान सकता है।

जिस भक्त की स्थिति ऐसी बन जाती है, तो भगवान् उसे अपना पारिवारिक सम्बन्ध दे देते हैं। जिस भाव से वह भगवान् को भजता है, याद करता है, उसी भाव के अनुसार भगवान् उसे सम्बन्ध ज्ञान दे देते हैं क्योंकि भगवान् तो अंतर्यामी हैं। सबके हृदय की बात जानते हैं। अतः उसके मन के अनुरूप ही उसे पुत्र, भाई, सखा, मंजरी इत्यादि का सम्बन्ध प्रदान कर देते हैं। उसके हृदय में स्फुरित कर देते हैं। जब तक सम्बन्ध ज्ञान नहीं होगा तब तक श्री कृष्ण–प्रेम की प्राप्ति नहीं होगी। सम्बन्ध ज्ञान होने पर ही विरह उत्पन्न हो जाता है। भगवान् के लिए तड़पन होने लगती है। सम्बन्ध ज्ञान होने पर ही भगवद् दर्शन होने लगता है।

मीराबाईजी भगवान् के प्रति कहती हैं :

जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।
मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई।।

(मीराबाई)

ऐसी स्थिति में, जब हमें सम्बन्ध ज्ञान मिल जाता है तो किसी से क्या लेना–देना। कभी–कभी भक्त प्रेम के वशीभूत होकर ठाकुर से शिकायत भी करता है, उसको न्योहरा भी मारता है, ताने भी देता है, जैसे नरसी भक्तजी ने भात भरने पर ताने दिए। स्वामी हरिदास जी का मंजरी भाव था, उन्होंने श्री बांके बिहारी जी को प्रकट किया। इस प्रकार हर भक्त का अपना–अपना भाव होता है, जिसके अनुसार ही वह भगवान् से अपने हृदय की बात करता है। अब मेरा शिशु भाव है, मैं भगवान् का एक छोटा सा शिशु हूँ। उनकी गोद में चढ़ जाता हूँ, उन्हें परेशान करता हूँ, कभी रोने लगता हूँ, तो वह मुझे चुप करा देते हैं, रुक्मिणीजी की गोद में बिठा देते हैं, रुक्मिणी मेरी दादी है। मुझे दुलारते हैं, पुचकारते हैं और प्यार करते हैं। कई बार

उन्हें मेरे गुस्से को भी सहन करना पड़ता है। मेरी जिद भी पूरी करनी पड़ती है क्योंकि मैं उनका शिशु हूँ, उन्हें मेरी बात सुननी पड़ेगी।

वास्तव में भाव की गति विचित्र है, इसे समझना असंभव है। जब तक सम्बन्ध ज्ञान नहीं होगा तब तक गोलोक धाम की प्राप्ति नहीं होगी। सम्बन्ध ज्ञान होने के बाद ही गोलोक धाम की प्राप्ति हो सकती है। जिन भक्तों का कोई सम्बन्ध नहीं बना तो वे वैकुण्ठ में ही जा सकते हैं। जहाँ से अंतर्यामी भगवान्, उसके अंतःकरण में थोड़ा सा सम्बन्ध का भाव देकर, इस धरातल पर किसी भक्त के घर में जन्म दे देते हैं। फिर उसी भाव में भक्ति करके वह सम्बन्ध ज्ञान का अधिकारी बन जाता है। सम्बन्ध ज्ञान होने के बाद उसे गोलोक धाम उपलब्ध हो जाता है।

उपरोक्त जो भी बातें कही गई हैं, वह सब बातें मेरे गुरुदेव सभी भक्तों को समझा रहे हैं। इन बातों को समझकर भक्ति मार्ग में आगे बढ़ा जा सकता है, इस प्रकार भक्ति में आगे बढ़ना ही श्रेयस्कर होगा। देखो! गोलोक धाम भी एक नहीं है, बहुत से गोलोक धाम हैं। जिस भक्त का जैसा भाव होता है, उसे उसी भाव वाले गोलोक धाम में भेजा जाता है। इसी प्रकार वैकुण्ठधाम भी अनेक हैं। वैकुण्ठधाम तो भगवान् की कृपा मिलने पर ही उपलब्ध हो जाता है, पर जब तक संसार की आसक्ति बनी रहेगी बार–बार जन्म लेना ही पड़ेगा। भगवान् सबके हृदय की बात जानते हैं। साधक के अंतःकरण में जो भाव होता है, वह बाहर भी प्रकट हो जाता है। जिस भक्त का मन संसार से पूर्ण रूप से नहीं हटा, उसे भगवान् बार–बार अपने भक्तों के घर में जन्म देते रहते हैं, ताकि धीरे–धीरे भक्ति करके, सम्बन्ध ज्ञान होने पर उसे गोलोक धाम उपलब्ध हो सके। ऐसे भक्त को गोलोक धाम मिलने में ज्यादा समय लग सकता है। इस प्रकार जब कोई बच्चा स्कूल में जाता है, तो हर साल अगली कक्षा में जाता है तथा दूसरी, तीसरी, चौथी, सातवीं, दसवीं और फिर कॉलेज यूनिवर्सिटी की पढ़ाई पूरी करके उसे नौकरी मिल जाती है। परंतु पढ़ाई किए बिना नौकरी नहीं मिलेगी। अब सम्बन्ध ज्ञान उदय कैसे होगा? सम्बन्ध ज्ञान उदय होगा, केवल तीन लाख हरिनाम नित्यप्रति करने से और कान से सुनने से तथा मन एकाग्र होने पर ही। जब तक मन संसार की ओर भागता रहेगा, हरिनाम में एकाग्रता नहीं बनेगी। भजन होगा, पर अनमने मन से होगा।

अधिकतर भक्तों को नामाभास ही हुआ करता है, जिसके कारण वे विरहावस्था से दूर रहते हैं। विरहावस्था तभी होगी जब सम्बन्ध होगा, सम्बन्ध ज्ञान हुए बिना विरह उदय नहीं होगा। विरहावस्था हुए बिना पूर्ण शरणागति का भाव भी नहीं बनेगा और पूर्ण शरणागति हुए बिना गोलोक धाम की प्राप्ति भी नहीं होगी। यह स्थिति बहुत ऊंची है। इस प्रकार गोलोक धाम को कोई विरला ही पा सकता है। उसी प्रकार वैकुण्ठधाम भी किसी विरले को ही प्राप्त होता है। इसका कारण है नामापराध। नाम अपराध होने से भक्ति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है और बार–बार नामापराध होने से उसका किया कराया सब नष्ट हो जाता है। कई लोग मुझे आकर पूछते हैं कि वे हरिनाम करते हैं और भगवान् के शरणागत भी हैं, पर उन्हें विरह नहीं होता, उनकी भक्ति बढ़ नहीं रही है तो उन सभी भक्तों के लिए मेरे गुरुदेव ने एक नहीं, बहुत बार बोला है कि यह सच्ची भक्ति नहीं है। सभी ऊपर से कहते हैं कि हम हरिनाम करते हैं। क्या वे पूरी तरह से भगवान् पर निर्भर हैं? नहीं! नहीं! वास्तव में कोई भी भगवान् को नहीं चाहता। सभी अपने परिवार की खुशहाली चाहते हैं। खुशहाली तो हो जाएगी, भगवान् को तो कोई विरला ही चाहता है।

जब तक आप मेरे गुरुदेवजी की वाणी को कान से नहीं सुनोगे, एकाग्रता से उस पर ध्यान नहीं दोगे, उसके अनुसार नहीं चलोगे, तो अपराध होगा ही। फिर कैसे हरिनाम होगा? कैसे हरिनाम में रुचि होगी? कैसे विरह उदय होगा? कैसे भगवद् प्राप्ति होगी? ऐसे साधक को स्वप्न में भी भगवद् प्राप्ति नहीं हो सकती। जिसको हम सुनते हैं उसको हृदय में धारण करना चाहिए। इस कान से सुना, दूसरे कान से बाहर निकाल दिया। फिर क्या लाभ हुआ? भक्ति से अभी कोसों दूर है। उसे निष्ठा और श्रद्धा के साथ कम से कम एक लाख हरिनाम उच्चारण के साथ कान से सुनकर करना चाहिए।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

मेरे गुरुदेव, एक उदाहरण देकर सभी भक्तों को समझा रहे हैं, कि जब तक संसार में आसक्ति है, विरह उदय नहीं होगा। एक पतिव्रता स्त्री का पति परदेस में रहता है और वह दिन–रात उसके लिए तड़पती रहती है। पर समाज के भय से, शर्म के कारण अपना दुख किसी से कहती नहीं। अंदर ही अंदर घुटती रहती है, रोती है।

जैसे एक वर्ष के बच्चे की माँ परलोक सिधार गई। वह शिशु माँ की गोद के लिए बेचैन रहता है। स्तनपान के लिए छटपटाता है। वह न खिलौने से खेलता है, न कुछ खाता है। बस रोता ही रहता है। सभी उसे खिलाने की कोशिश करते हैं, चुप कराते हैं पर उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता, उसे तो अपनी माँ चाहिए। अपनी माँ की गोद चाहिए। माँ की गोद के सिवाय कोई भी चीज उसे वह सुख नहीं दे सकती। यही है पूर्ण शरणागति का भाव। यदि भक्त का भाव उस पतिव्रता स्त्री जैसा बन जाए, शिशु जैसा बन जाए, तभी समझना चाहिए कि वह भगवान् के शरणागत है।

अब ध्यान से सुनो जो बात गुरुदेव कह रहे हैं। मेरे गुरुदेव ने सब को समझाने के लिए ही यह उदाहरण दिया है। अब जो भी साधक या भक्त कर रहे हैं वह नाम स्मरण नहीं, केवल नामाभास है। मेरे गुरुदेव सब स्पष्ट कह देते हैं। साधकगण, भक्तगण नाराज न हों, वरना घोर अपराधी बन जाएंगे। मेरे गुरुदेव तो सभी का कल्याण चाहते हैं और चाहते हैं कि सभी इस जन्म मरण के चक्कर से छूट जाएं। इसमें उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं है। सभी के उद्धार के लिए इतने पत्र लिखवा चुके हैं, जो "इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति" (भाग 1–7) नामक पुस्तको में संकलित हुई हैं। ऐसा इसलिए हो रहा है कि भक्त जनों की पूर्ण शरणागति बनी रहे। लेकिन भक्तजनों का मन तो संसार में फंसा हुआ है। मन तो एक ही है, उसे चाहे भगवान् में दे दो या संसार को दे दो। भगवान् को मन देने से संसार अपने आप पीठ करने लगेगा, फिर भगवान् की जिम्मेदारी हो जाती है हमारे परिवार को चलाने की, संसार को चलाने की, पर हमें विश्वास नहीं होता। विचार कीजिये कि हमें अपने आप पर विश्वास है या भगवान् पर विश्वास है? एक बार अपने जीवन की नैया की बागडोर भगवान् के हाथों में सौंप कर देखो तो सही। कहने से नहीं, करने से होगा। इसलिए मैं बार–बार कहता हूँ कि प्रतिदिन कम से कम एक लाख हरिनाम जरूर करो। उच्चारण करो और कान से सुना करो।

श्रोताओं में से ऐसा एक भी नहीं जिसे विरह उदय हुआ हो। इसका कारण साफ है, संसार की आसक्ति और संसार में मन की फँसावट।

भगवान् कह रहे हैं कि, "हे अर्जुन! मुझ में मन लगाओ, मेरा भक्त बनकर, मेरा पूजन करने वाला हो, मुझे प्रणाम कर, ऐसा करने से तू मुझे ही प्राप्त होगा। यह मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा कर रहा हूँ क्योंकि तू मेरा

अत्यंत प्यारा है।" यह तो भगवान् ने अर्जुन को कहा है, "तेरा यह मन केवल मेरा है। यह जो मन है, यह मेरा है। तूने जबरदस्ती ले रखा है, जो तूने अपना अधिकार समझकर अपने काबू में कर रखा है। इस मन को माया का दास बना रखा है। इसी कारण तू दुखी हो रहा है। "हे अर्जुन! किसी दूसरे की वस्तु पर अधिकार जमा कर कोई सुखी नहीं रह सकता।" यह सिद्धांत है, पक्का सिद्धांत, यह अटल सिद्धांत है। "अतः तू इस मन को, जो मेरा है मुझे सौंप दे। तू सुखी हो जाएगा। जब तू यह मन मुझे दे देगा, तो दसों इंद्रिया भी इस मन के साथ आ जाएंगी। जब यह मेरी वस्तु तू मुझे सौंप देगा और अपने आप ही तुझमें शरणागति का भाव उदय हो जाएगा और तू परम सुखी हो जाएगा। फिर तुझे शरणागत होने का प्रयास भी नहीं करना पड़ेगा।"

जब तुझमें शरणागति का भाव उदय हो जाएगा, तो तेरे जीवन का सारा भार मैं अपने ऊपर ले लूँगा और तू, मुझ को ही प्राप्त हो जाएगा। तेरे सारे दुखों का बखेड़ा ही मूल सहित खत्म हो जाएगा। बस एक बार अपना मन मुझे सौंप कर तो देख। मैं तेरे लिए क्या करता हूँ? अभी तक तूने इसे अपने पास रखा है, इसीलिए तू दुखी है। इसीलिए मैं कहता हूँ, यदि तू शाश्वत सुख चाहता है, मेरे पास, मेरे धाम में आना चाहता है, तो इन चारों बातों को कर। अपना मन मुझे सौंप दे, मेरा भक्त बन जा, मेरी पूजा कर और मुझे प्रणाम कर।"

मन भगवान् को सौंपने का अर्थ है, कि हर समय हरिनाम करते रहना। यही सम्बन्ध तो सोचने का है परन्तु हमें तो संसार का चिंतन होता रहता है। मन को संसार में फंसा रखा है, मन संसार को दे रखा है। भगवद् नाम करते रहना और कान से श्रवण करते रहना ही मन का भगवान् को सौंपना है। बस इतना करो। कान से सुनो, हरिनाम करते रहो। कान से नहीं सुनोगे, तो मन भाग जाएगा। मन को भगवान् को सौंपना है। मेरे गुरुदेव स्पष्ट कह रहे हैं :

chanting harinam sweetly, listen by ear-

जब हम उच्चारण पूर्वक हरिनाम करेंगे और कान से श्रवण करेंगे, तो स्वतः ही भगवान् के लिए तड़पन पैदा होने लगेगी, उनके दर्शन के लिए झटपट होने लगेगी, मन अकुला उठेगा, शरीर पुलकित होने लगेगा, अश्रुपात होने लगेगा और धीरे–धीरे मन संसार से हटता जाएगा। इतना सरल रास्ता है, फिर भी हम ऐसा करते नहीं है। भगवान् के नाम स्मरण

में रुचि बढ़ती जाएगी। इस बात को कोई भी आजमाकर देख सकता है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

ऐसा करो कि एक एक माला करो, और विचार रहे कि मैं एक माला कर रहा हूँ, मेरा मन इधर उधर नहीं जाना चाहिए। ऐसी कोशिश करने से मन धीरे–धीरे रुक जाएगा। एक माला में रुकेगा, दो माला में रुकेगा, फिर तीन माला में भी रुकेगा। धीरे–धीरे ऐसे रुकता जाएगा।

मैं आप को कह रहा हूँ। मैं अपनी बड़ाई तो कर नहीं रहा हूँ, लेकिन मैं तो रोज 12–1 बजे जाग जाता हूँ और मेरा मन तो कहीं भी नहीं जाता। मेरा मन तो स्थिर रहता है। भगवान् की तरफ ही रहता है। ऐसे, जब मेरा लग सकता है तो आप का भी लग सकता है। मैं कोई अलग थोड़े ही हूँ। आपका भी मन रुक सकता है। मेरे गुरुदेव बता रहे हैं कि जब किसी कन्या का विवाह, किसी लड़के के साथ माँ–बाप कर देते हैं, उसे अपने माँ–बाप का घर छोड़कर अपने पति के घर जाना पड़ता है। 25 साल तो माँ–बाप के पास रही और उसके बाद में, शादी होते ही माँ–बाप को छोड़ देती है। वह पूर्ण शरणागत होकर पति की सेवा करती है और उसकी सारी जिम्मेवारी उसका पति अपने सिर पर ले लेता है। ऐसे ही भगवान् भी ले लेते हैं। वह कन्या, अपने पति के चरणों में रहकर अपना पूरा जीवन बिताती है। देखो! इस बात को ध्यान से समझो कि जब तक कन्या–रूपी, यह जीवात्मा अपने पति–रूपी परमात्मा के चरणों में पूर्णरुप से समर्पित नहीं होगी, पूर्णरूप से उसकी शरणागत नहीं होगी, तब तक उसे परमानंद की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। भगवद् धाम की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। अपने पति–रूपी परमात्मा के धाम में निवास करने के लिए, अपने माँ–बाप के घर को छोड़ना ही पड़ेगा यानि संसार को छोड़ना पड़ेगा। संसार छूटेगा तभी तो भगवान् के चरण मिलेंगे। संसार का त्याग करना ही पड़ेगा। यह परमावश्यक है। माँ–बाप का घर छोड़े बिना, माँ–बाप का त्याग किए बिना, उसे पति का धाम उपलब्ध नहीं हो सकता। संसार को छोड़े बिना, भगवान् के पास नहीं जा सकते। यही बात विचारने की है। यही है सम्बन्ध ज्ञान का महत्वशील चिन्मय विचार। भगवत्कृपा बिना यह भी समझ में नहीं आ सकता। जिस पर गुरु–वैष्णवों की कृपा होगी, वही इस तत्व को समझ लेगा। वैदिक परंपरा के अनुसार माँ–बाप ही अपनी कन्या का वर खोजते हैं और पूरी सामाजिक परंपराओं के साथ उसकी शादी एक योग्य, बुद्धिमान्, विद्वान् और सुशील लड़के से कर देते हैं जो जीवन भर उनकी कन्या की जिम्मेदारी उठा सके। बड़ी सोच विचार करके माँ–बाप अपनी

कन्या का सम्बन्ध उसके पति से करते हैं। जो पहले एक पुत्री थी, अब वही पत्नी बनेगी और माँ–बाप ही उसे यह सम्बन्ध ज्ञान देंगे कि आज के बाद यह अमुक पुरुष उसका पति होगा। यह सम्बन्ध ज्ञान हो गया। इसी प्रकार से गुरुदेव अपने शिष्य का सम्बन्ध परमात्मा से जोड़ते हैं। वह जीवात्मा जो पहले पुत्र, भाई और पति था, अब गुरुदेव की कृपा से एक शिष्य बन जाता है और गुरुदेव की कृपा से उनके आदेश का पालन करता है, उनके मार्गदर्शन में हरिनाम करने से, उसे सम्बन्ध ज्ञान प्राप्त हो जाता है तो वह उसे गोलोक धाम प्राप्त करा देता है। नामाभास से वैकुण्ठ मिल जाएगा और वैकुण्ठ में दुख की छाया भी नहीं है। वहाँ पर परमानेंट (स्थायी) सुख बहता रहता है तथा भगवान् का प्रेम मिलता रहता है और जब तक सम्बन्ध ज्ञान नहीं होगा तब तक गोलोक धाम की उपलब्धि नहीं होगी। पूरे प्रसंग का सार यही है कि हरिनाम पर ही आश्रित होना पड़ेगा।

जिन्ह कर नामु लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं।।

(मानस, बाल. दो. 314 चौ. 1)

चाहे जितने भी दुख हैं, वह जड़ से खत्म हो जाएँगे। जब दुखों की जड़ ही नहीं रहेगी तो दुख कैसे होगा? इतना सरल रास्ता है। सतयुग, त्रेता, द्वापर में बहुत मुश्किल से साधन होते थे पर अब तो इतना सरल साधन है कि आप कहीं भी बैठ कर हरिनाम कर सकते हो। किसी भी समय कर सकते हो। नहाने धोने की भी जरूरत नहीं है।

हम कहते हैं कि शुद्ध नाम करो। शुद्ध नाम अर्थात्, शब्द बोलो। शुद्ध बोलने की जरूरत नहीं है। जैसे एक छोटा सा शिशु होता है और वह माँ–बाप को तोतली भाषा में अधूरा शब्द बोलता है तो माँ–बाप नाराज नहीं होते हैं, बहुत खुश होते हैं। वह तोतली भाषा में अधूरा शब्द बोलता है, तो क्या हमारे जन्म–जन्म के माँ–बाप, अनंतकोटि जन्मों के माँ–बाप, नाराज होंगे? नहीं होंगे। आप कृष्ण की जगह 'कृ' ही बोल दो, राम की जगह 'रा' ही बोल दो। वाल्मीकि को नारदजी ने कहा, "तुम राम–राम करो।" वह बोले, "मैं राम–राम नहीं कर सकता क्योंकि मैंने तो उम्र भर मारा ही मारा है तो मैं मरा–मरा कर सकता हूँ।" तो नारदजी बोले, "मरा–मरा करो।" मरा–मरा बोलते–बोलते राम–राम आ गया, तो त्रिकालदर्शी हो गया, तो भगवान् का शुद्ध नाम, क्या है?

शुद्ध नाम होता है कि जिसको आप बोल रहे हो वह आपके पास में है। जैसे हमने किसी को फोन से घर पर बुलाया और आपस में बात करने

लगे। थोड़ी देर बात की और उठ कर चल दिए और उसे बोला भी नहीं कि आप जा रहे हो और चुपचाप चले गये। अब वह जो आया है, उसको कैसा लगेगा? क्या करेगा? वह दुखी हो जाएगा और चला जाएगा। ऐसे ही हम भगवान् को बुलाते हैं, फिर हम क्या करते हैं? एक मिनट भगवान् आते हैं फिर हम बाजार चले जाते हैं, हम स्कूल चले जाते हैं, हम खेत में चले जाते हैं। तो भगवान् क्या कहेंगे? कि, "मेरे को बुलाया और चला गया।" लेकिन उसमें भी सुकृति होगी। जब खेत में नाम को लेकर जाएगा तो फसल अच्छी हो जाएगी। जहाँ भी नाम को लेकर जाएगा, उसका कल्याण हो जाएगा और यदि अपने स्वयं के लिए करेगा तो अपना स्वयं का कल्याण होगा।

इसलिए नाम को जपते हुए, भगवान् को पास में रखना चाहिए। भगवान् की कई तरह की मुद्राएं (पोज) होती हैं, बैठे हुए हैं, चलते–फिरते हैं, उन्हें भी अपने पास बिठाकर हरिनाम करो, उनके चरणों में बैठकर करो, उनके चरणों का ध्यान करके करो, उनके चरणों में खड़े होओ। उनके पास में उनका पीताम्बर पकड़ कर, उनको प्रार्थना करते रहो। "मेरे को संग में ले लो, मेरे को संग में ले लो।" ऐसे बहुत से विचार हैं और भाव हैं, उनको ले लोगे, तो मन इधर–उधर नहीं भागेगा। मन को भी कोई न कोई सहारा तो चाहिए। सहारे के बिना तो कहीं न कहीं जाएगा ही। सबको ही सहारा चाहिए। जैसे पेड़ है, तो पेड़ को जमीन का सहारा चाहिए। बच्चे को माँ–बाप का सहारा चाहिए। शिष्य को गुरु का सहारा चाहिए। ऐसे सबको सहारा चाहिए। मन को भी सहारा चाहिए। मन को भगवान् के चरणों का सहारा दो। जब ऐसा होगा, तो बहुत जल्दी भगवान् का विरह हो जाएगा। जब तक सहारा नहीं होगा, तो संसार में मन रहेगा। मन इधर–उधर जाएगा। यह केवल नामाभास हुआ। नामाभास से वैकुण्ठ की प्राप्ति हो जाती है। अजामिल को नामाभास ही हुआ था। अजामिल ने अपने बच्चे को पुकारा था ,"नारायण!" उसके बच्चे का नाम था। उसने भगवान् को थोड़े ही पुकारा था। उसको वैकुण्ठ प्राप्त हो गया। भगवान् का नाम ऐसा ही है।

कीर्तनीय सदा हरि

23 दिसंबर 2016
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण युगल में अधमाधम इस दासानुदास
अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो एवं
हरिनाम में रुचि होने की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

भगवान् साधक के साथ हरदम नहीं रह सकते, भले ही उसका भगवान् के साथ कोई भी सम्बन्ध हो। ऐसी स्थिति में साधक की विरहावस्था जागृत होती रहती है। इसी विरह में, इस मस्ती में, जो आनंद है, वह बताया नहीं जा सकता। जिसको ऐसी विरह अवस्था उपलब्ध हो जाती है, वही इस अवस्था का आनंद भोग सकता है और बता सकता है। जिसको यह आनंद आता है, वही जानता है। उस साधक का जीवन ऐसा होता है कि जब वह इस संसार में रहता है, प्रत्येक प्राणी में भगवद् दर्शन का अनुभव करता रहता है। यह तीन प्रार्थनाओं में लिखा हुआ है। हर चर–अचर में उसे भगवान् का दर्शन होता है। सभी जनों की भलाई करने में वह लग जाता है। किसी जीव को दुख देने से उसका हृदय कांप उठता है। ऐसा साधक तन–मन से जो भी कर्म करता है, वह भगवान् का कर्म समझकर ही करता है। तीनों प्रार्थनाएं इसमें आ चुकी हैं। भगवान् के निमित्त भजन करता है, इस प्रकार उसका रात–दिन का अर्थात्, 8 घड़ी 24 घंटे का भजन हो जाता है। वह अपना मन, इंद्रियों सहित भगवान् के लिए, भगवान् की सेवा में ही लगाए रहता है। उसके मन में जो भी संकल्प–विकल्प होते हैं, वह सब भगवान् के लिए होते हैं। ऐसे साधक से माया बहुत दूर रहती है। संसार से उसका बिल्कुल कट–ऑफ (नाता टूट) हो जाता है। माया उसको सताती नहीं है। माया, प्रत्येक क्षण उसका साथ भी देती रहती है।

ऐसा साधक, हर क्षण भगवद् नाम में रत रहता है। नामापराध उसे सपने में भी नजर नहीं आते। उसका तो नींद में भी, हर क्षण नाम स्मरण

चलता रहता है। सोते–सोते भी वह रोता रहता है, भगवान् के विरह में रोता रहता है। उसके अंतःकरण में अलौकिक मस्ती छाई रहती है। भगवान् अपने भक्त के माध्यम से किसी को श्राप या वरदान दिया करते हैं। भक्त के अंतःकरण में जो भी प्रेरणा होती है, वह भगवान् के करने से ही होती है। अभक्त अथवा नास्तिक को जो प्रेरणा होती है, वह उसके भावानुसार– सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण के अनुसार होती है। इसमें भगवान् का कोई लेन–देन नहीं है। भगवान् का लेन–देन केवल भक्त से है। भूतकाल में जितने भी धर्म–ग्रंथों का प्रकाश हुआ है, या अब हो रहा है, वह भगवान् ने प्रेरणा करके अपने भक्तों के माध्यम से ही किया है। इसमें भक्त की अपनी प्रेरणा कुछ भी नहीं होती है। भक्त तो भगवान् की प्रेरणा से ही अपना जीवन धारण करता है। एक तरह से वह भगवान् की कठपुतली ही बना रहता है।

भगवान् भी भक्त के आश्रित होकर प्रेरक बनते रहते हैं। दोनों का सम्बन्ध ऐसा रहता है– जैसे दूध और पानी। दूध में पानी दिखाई नहीं देता है। इसी प्रकार भक्त और भगवान् भी आपस में मिले हुए रहते हैं, पर भगवान् अपने भक्त की बात कभी नहीं टालते और भक्त भी भगवान् की रुचि के विरुद्ध कुछ नहीं करता। जिस प्रकार अरणि में आग छिपी रहती है और रगड़ने पर प्रकट हो जाती है, उसी प्रकार भगवान् और भक्त के अंतःकरण का भाव मिला रहता है और समय आने पर प्रकट हो जाता है। साधारण साधक इसी चीज को नहीं समझ सकते। किसी के आचरण या भाव को, भगवद्–कृपा बिना समझना असंभव है। जिस पर भगवान् की कृपा होती है, वही इस भाव को समझ सकता है। ऐसे भावुक संत का दूसरों पर बहुत शीघ्र प्रभाव पड़ जाता है और ऐसा संत समागम बहुत दुर्लभ है। भगवद्–कृपा बिना ऐसा संयोग बनता नहीं। जिस पर भगवद्–कृपा होती है, वही इस संत से मिलता है। भगवान् का मन अपने भक्त के साथ लीला करने में ही खुश रहता है। लीला बिना भगवान् का मन कहीं भी नहीं लग सकता। अतः भगवान् ही प्रेरक बन जाते हैं और भक्त से श्राप और वरदान दिला देते हैं, ताकि उन्हें लीला करने का अवसर उपलब्ध हो सके। धर्म ग्रंथों में ऐसे बहुत से उदाहरण मौजूद रहते हैं। नारदजी ने विवाह करने के लिए भगवान् से एक सुंदर रूप मांगा था, तो भगवान् ने उसे बंदर का रूप दे दिया। भगवान् ने ऐसा इसलिए दिया क्योंकि वह जानते हैं कि नारद उनका भक्त है विवाह करने के बाद वह बेचारा संसार में फंस जाएगा। इसलिए भगवान् ने सोचा कि उसे वे ऐसा रूप दें कि उसे संसार की कोई

भी लड़की शादी में वरण न करे। भगवान् भक्त का बहुत भला चाहते हैं, लेकिन भक्त जानता नहीं है और वह उन से रुष्ट हो जाता है।

यह सब भगवान् की इच्छा थी। वे चाहते थे कि किसी प्रकार कोई लीला विधान हो और वे इस लीला में आनंद लूट सकें। इसलिए भगवान् ने लीला करने के लिए देवऋषि नारदजी को इसका माध्यम बनाया। जब नारदजी ने देखा कि भगवान् ने उन्हें धोखा दिया है, तो उन्हें क्रोध आ गया और उन्होंने भगवान् को श्राप दे दिया कि जैसे उन्हें पत्नी के लिए तड़पना पड़ा है, उसी प्रकार भगवान् भी पत्नी के लिए जंगलों में रोते फिरेंगे। भगवान् भी भक्तों से ही श्राप लेते हैं। इस प्रकार भगवान् अपने भक्त के मुखारविंद से ही श्राप या वरदान दिलाते रहते हैं, क्योंकि उन्हें अपना लीला विधान करना होता है। भगवान् बोलते हैं कि वे अपने भक्त के मुखारविंद से ही प्रसाद ग्रहण करते हैं। उनकी हर हरकत ही भक्त के द्वारा हुआ करती है। इसलिए मैं कहता हूँ, जो भी मैं बोल रहा हूँ, पीछे से कोई शक्ति मेरे को बुलवा रही है। मैं कुछ भी नहीं जानता, मैं तो एक साधारण पुरुष हूँ। भगवान् कहते है, "अनंत कोटि अखिल ब्रह्मांडों में मेरा भक्त ही मुझे सबसे प्यारा लगता है। भक्त के बिना मेरा मन नहीं लगता।"

ऐसी ही लीला भगवान् ने सनकादिक के द्वारा की और अपने द्वारपालों जय–विजय को श्राप दिलाया कि वे तीन जन्म तक राक्षस बन जाएँ। अब तो भगवान् को लीला करने का बहुत बड़ा अवसर मिल गया। भविष्य में भी देखा जाएगा कि लीला करने हेतु भगवान् को किसी भक्त के द्वारा ही श्राप और वरदान दिला दिया जाएगा। भगवान् बड़े कौतुकी हैं, कुछ न कुछ करते ही रहते हैं और साधक गणों को इन लीलाओं से भजन में रत रहने का मसाला देते रहते हैं। अनंत कोटि ब्रह्मांडों में भगवद् लीलाएँ चलती ही रहती हैं, कभी बंद नहीं होतीं। किसी ब्रह्मांड में रामावतार की लीला चल रही है, किसी ब्रह्मांड में कृष्ण अवतार लीला चल रही है। कहीं कपिल, कहीं वामन आदि की लीलाएँ, प्रत्येक ब्रह्मांडों में चलती रहती हैं। इनका स्मरण कर साधकगण भगवद् प्राप्ति कर लेते हैं।

भगवान् से ही भगवद् सृष्टि बनती है। इस सृष्टि से लीलाएँ प्रकट होती रहती हैं। भगवान् के बिना तो सृष्टि में एक कण मात्र भी नहीं हिलता। यह सभी भगवद् माया का साम्राज्य है। माया को अंगीकार कर भगवान् लीलाएँ करते रहते हैं, इन लीलाओं का कभी अंत नहीं होता। अंत केवल जीव मात्र का ही होता है। इस संसार में सुख की छाया भी नहीं

है। यह संसार दुखों का घर है, क्योंकि माया सब जीवों पर छाई रहती है। यह माया केवल मात्र भगवद् के चिंतन से ही दूर हो सकती है अन्य कोई उपाय नहीं है। भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति समस्त कर्मों को समर्पित कर देना, इस संसार के तीन तापों को दूर करने की एकमात्र औषधि है। जितने भी कर्म हैं, यदि वे भगवान् के निमित्त नहीं किए जाएंगे, तो वे जन्म–मरण के चक्कर में डालते रहेंगे। तन से या मन से यही कर्म, जब भगवान् के निमित्त किए जाते हैं, तो इन कर्मों का कर्तापन ही नष्ट हो जाता है।

तीन प्रार्थनाओं में साधकों को बोला है कि प्रातः काल नींद से जागते ही भगवान् से यही प्रार्थना करनी है, "हे मेरे प्राणनाथ! आज मेरे द्वारा इस तन, मन से जो भी कर्म हो वह आप के निमित्त हो। मुझे ऐसी शक्ति प्रदान करें, कि जब मैं कर्म समर्पण करने की भूल कर बैठूं, तो आप मुझे याद करवाने की कृपा करें।" भगवान् दयालु हैं। जब साधक ऐसी प्रार्थना करेगा तब उसका ऐसा स्वभाव बन जाएगा कि उसका कर्तापन ही नष्ट हो जाएगा और उसे सहज में ही भगवद् शरणागति उपलब्ध हो जाएगी। जब साधक को भवरोग आक्रांत करता है, सताता है, तो ऐसा इंजेक्शन भगवान् को देना पड़ता है। जब साधक उपरोक्त साधन करता है, तो उसका मन हरिनाम में सहज लगना आरंभ हो जाता है और जब मन हरिनाम में लगने लग जाता है तो दसों इन्द्रियाँ एक ठौर आ कर रुक जाती हैं, एकाग्रता आ जाती है। तब इन्द्रियों का संसारी व्यापार समाप्त हो जाता है। तब भगवद् व्यवहार उदय होकर विरहाग्नि प्रकट कर देता है, जब विरहाग्नि प्रकट हो जाती है, तब भगवान् को सम्बन्ध ज्ञान प्रदान करना ही पड़ता है। जब साधक को सम्बन्ध ज्ञान उपलब्ध हो जाता है, तो उसे सहज में ही गोलोक धाम मिल जाता है। कभी–कभी भक्तगण मुझे कहते हैं, कि हम तो गोलोक धाम जाएंगे, "भैया! गोलोक धाम तो जाओ, लेकिन तुम्हारी ऐसी अवस्था होनी चाहिए कि भगवान् का नाम लेते ही आप तड़पने लगो। आपकी नींद, खाना–पीना सब हराम हो जाए।" तब जाकर भक्तों को गोलोक धाम मिलेगा और यह मिलेगा केवल हरिनाम से। कोई दूसरा साधन नहीं है, नहीं है, नहीं है। अब बताओ इसमें कौन सा श्रम करना पड़ता है? कौन सी मेहनत करनी पड़ती है? सहज में ही भगवान् की प्राप्ति हो जाती है।

हम कितने भाग्यशाली हैं, कि हमारा जन्म कलियुग में हुआ है और हमारा जन्म इस भारतवर्ष में हुआ है। हम कितने भाग्यशाली हैं इस काल

में भगवान् के ग्राहक नहीं के बराबर हैं, इसीलिए यदि थोड़ा सा भी मन हरिनाम में लग जाता है, भगवान् बड़ा अहसान मानते हैं। भगवान् में लग जाने का मेरे गुरुदेव ऐसा सरल उपाय बताते हैं, फिर भी साधकगण सोते रहते हैं। कितने दुख की बात है। यह समय निकल जाएगा, यह समय फिर नहीं आएगा, बुढ़ापा आ जाएगा तो कितने ही रोग आकर तुमको आक्रांत करने लग जाएंगे।

गोलोक धाम उपलब्ध करने वाले साधक का स्वभाव सरल, शंका–रहित, सबका हित करने वाला, दूसरों के दुख में दुखी होने वाला, परहित करने में आतुर रहने वाला, जीव मात्र का प्यारा आदि गुणों का भंडार होता है। इन लक्षणों से समझा जा सकता है। वह एकांतसेवी व भगवद् नाम में रत रहने वाला होता है। कंचन, कामिनी और प्रतिष्ठा की छाया भी उसे छू नहीं सकती। ऐसा जो मानव है, वह दूसरों को भी ले जा सकता है। उसे हर समय मस्ती छाई रहती है। वह तो अलौकिक आनंद का भंडारी होता है। वह प्रत्येक प्राणी में भगवद् दर्शन के भाव में ओतप्रोत होता रहता है। कण–कण में उसको भगवान् दिखाई देते हैं। हिंसक प्राणी की भी सदा रक्षा पालन करता है। दुश्मन को भी अपनाता है। संत सेवा तो उसका जन्मजात स्वभाव ही होता है। निद्रा अवस्था में भी नाम स्मरण और जप करता रहता है तथा भगवद् अभाव में अश्रुपात करता रहता है, रोता रहता है।

श्री चैतन्य महाप्रभुजी बहुत दुखी होकर बोल रहे हैं कि एक प्रसिद्ध संन्यासी, उसका नाम लेना उचित नहीं है। वे साधकों को भ्रमित करते रहते हैं, कि एक लाख हरिनाम करने की क्या जरूरत है। केवल 16 माला ही करना चाहिए, वह भी स्पष्ट, मन सहित होनी चाहिए। वे संन्यासी, साधकों को 16 माला करने को कहते हैं। वे इसलिए कहते हैं कि 16 माला से अधिक करना व्यर्थ है क्योंकि वे कहते हैं कि महाप्रभु ने एक लाख हरिनाम करने की बात जो कही है, उसका अर्थ है एक लक्ष, अर्थात् एक लक्ष्य। वह गलत अर्थ करते हैं। यह कोई संन्यासी ने ही अर्थ का अनर्थ कर दिया। जो लोग एक लाख हरिनाम नहीं करते, या करना नहीं चाहते या जिनका एक लाख हरिनाम होता ही नहीं, वे ही ऐसा कहते हैं। वे एक लाख हरिनाम करने वालों को भी भ्रमित करते रहते हैं। हरिनाम तो सदा ही करते रहना चाहिए, खाते–पीते, चलते–फिरते नाम करते रहना चाहिए। मैं किसी की बुराई नहीं करता हूँ, पर चैतन्य महाप्रभुजी के आदेश को तो मानना चाहिए। उन्होंने एक लाख नाम के लिए बोला है। साफ–साफ बोला है। शुरू में 16 माला से अधिक अर्थात् एक लाख हरिनाम

करने को वह इसलिए नहीं कहते क्योंकि वह जानते हैं कि यह साधक अभी नया है यदि वे उसे एक लाख हरिनाम अर्थात् 64 माला करने को कहेंगे और यदि यह न कर सका तो गुरु आदेश का पालन नहीं होगा, इसलिए गुरु अवज्ञा होने से उसको अपराध बन जाएगा। इसलिए शुरू में 16 माला के लिए ही कहते हैं।

शुरू शुरू में गुरुदेव अपने शिष्यों को लालायित करने को बोलते हैं। कुछ साल में गुरुदेव अपने शिष्यों को एक लाख हरिनाम अर्थात् 64 माला करने का आदेश बीच–बीच में देते रहते हैं कि, "तुम अब एक लाख नाम करो। एक लाख या उससे अधिक हरिनाम करना तुम्हारे लिए अच्छा होगा। ऐसा करने से कुछ हरिनाम शुद्ध भी होने लगेगा। जब ज्यादा हरिनाम करोगे, तो कुछ तो शुद्ध हरिनाम निकलेगा।" महाप्रभुजी का यह स्पष्ट आदेश है कि नित्य एक लाख हरिनाम करना परम आवश्यक है। महाप्रभुजी भी दिन–रात माला पर हरिनाम इसलिए करते थे कि सभी उनके आचरण के अनुसार करेंगे।

एक बार महाप्रभुजी ने नित्यानंद प्रभु से बोला, "मैं अकेला वृंदावन जाऊँगा।" तब नित्यानंद प्रभुजी बोले, "आपके एक हाथ में हरिनाम की माला रहेगी और दूसरे हाथ में झोला रहेगा, तो फिर अपना संन्यास दंड कैसे पकड़ेंगे? इसलिए आपको एक व्यक्ति को संग ले जाना पड़ेगा।" तब महाप्रभुजी बोले, "आप ने ठीक ही कहा है, मैं एक व्यक्ति को ले जाऊँगा।" इससे स्पष्ट हो गया कि महाप्रभु भी हरदम माला जपा करते थे। महाप्रभुजी ने हम सबको यह शिक्षा दी है कि हर क्षण नाम जपना है। कभी भी नाम को छोड़ना नहीं है।

धर्म शास्त्रों में भी नाम की महिमा के अनंत उदाहरण मौजूद हैं। देवऋषि नारद ने बाल्मीकिजी को सदा 'राम' नाम जपने को बोला था। इसी जप को करके वह त्रिकालदर्शी बन गए और रामावतार से बहुत काल अर्थात् हजारों साल पहले ही उन्होंने वाल्मीकि रामायण लिख दी थी। शिवजी ने 100 करोड़ रामायण में से एक 'राम' नाम चुना और पार्वतीजी को संग में बिठा कर हर क्षण 'राम' नाम जपते रहते हैं। त्रिदंडी श्रील भक्तिवेदांत स्वामीजी महाराज ने वृंदावन के श्री राधा दामोदर मंदिर में 100 करोड़ हरिनाम का अनुष्ठान किया था। नारदपुराण में नारदजी कहते हैं कि कलियुग में भगवद् प्राप्ति का साधन एकमात्र हरिनाम ही है। इसके सिवाय कोई भी साधन भगवत्प्राप्ति कराने वाला नहीं है।

कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिर सुमिर नर उतरहिं पारा।।

कृत युग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पाबहिं लोग।।

(मानस, उत्तर. दो. 102 ख)

नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू।।
कालनेमि कलि कपट निधानू। नाम सुमति समरथ हनुमानू।।

(मानस, बाल. दो. 26 चौ. 4)

केवल हरिनाम, केवल हरिनाम जपो, हरिनाम से उद्धार हो जाएगा। कुछ करने की जरूरत नहीं है। नहाने की जरूरत नहीं है। आप हरिनाम लेते ही अंदर बाहर से पवित्र हो जाते हैं और नाम में मन लगे, चाहे न लगे, तब भी भगवत्प्राप्ति हो जाएगी, वैकुण्ठ प्राप्ति हो जाएगी। तभी तो कहा है –

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

बिना मन लगाए जप से ही जब दसों दिशाओं में मंगल हो गया, तो वह तो स्वतः ही वैकुण्ठ में पहुँच गया। हरिनाम सदा जपते रहना चाहिए। इसके अनेक उदाहरण हैं। हरिभक्ति विलास में स्पष्ट लिखा है कि यदि जल्दी–जल्दी में नाम अधूरा हो, खंडित हो, तो भी कोई नुकसान नहीं है। मेरी समझ से वह 713 पेज पर है।

नामैकं यस्य वाचि स्मरणपथगतं श्रोत्रमूलं गतं वा,
शुद्धं वाऽशुद्धवर्णं व्यवहितरहितं तारयत्येव सत्यम्।
तच्चेद्देहद्रविणजनतालोभपाखण्डमध्ये,
निक्षिप्तं स्यान्न फलजनकं शीघ्रमेवात्र विप्रः।।

(श्रीहरिभक्तिविलास, एकादश–विलास, श्लोक 527)
(श्रील सनातनगोस्वामिकृत दिग्दर्शिनी टीकोपेतः,
श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामिविलिखितः श्रीहरिभक्तिविलासः, पृष्ठ संख्या 713)

"हे प्रिय, केवलमात्र भगवान् का एक नाम, प्रसङ्ग क्रम से जिसके वचनगत, कथान्तरित स्मृति–पथगत, स्मरण–पथगत अथवा श्रोत मूलगत

होता है, वह यदि शुद्ध वर्ण, अशुद्ध वर्ण, अथवा खण्डोच्चारित होता है, तो भी वह नाम ग्रहणकारी का उद्धार करता है, यह सत्य है।"

भगवान् तो भावग्राही हैं। नाम लेने वाले पर सदा प्रसन्न रहते हैं। शुरु–शुरु में नाम खंडित व अधूरा होता है, पर बाद में शुद्ध हो जाता है। जिस प्रकार कोई शिशु तोतली बोली में अधूरा बोलता है, तो क्या उसके माँ–बाप नाराज हो जाते हैं? इसी प्रकार भगवान् तो हम सबके माँ–बाप हैं। वह हमसे कभी नाराज नहीं होते, वे तो प्रसन्नता की मूर्ति हैं। हम अनुभव करते हैं, कि जब शिशु बड़ा हो जाता है, तो अपने आप शुद्ध बोलने लग जाता है। ऐसे ही अभ्यास होने पर साधक भी शुद्ध हरिनाम करने लग जाता है। भगवान् नामाभासी को भी नरक में व 84 लाख योनियों में नहीं भेजते, यद्यपि नामाभासी में भी नाम अपराध है, तो भी भगवान् उसे वैकुण्ठ देने के बाद सम्बन्ध ज्ञान प्राप्त करने हेतु किसी भक्त के घर में जन्म देते हैं। जैसे किसी के चार लड़के हैं। एक नालायक है, तो क्या माँ–बाप उसे त्याग देते हैं? माँ–बाप उसे नहीं त्यागते, उसे समझाने की कोशिश करते हैं। उसी तरह भगवान् भी दोबारा जन्म देते हैं। अगर उसने हरिनाम नहीं किया है, या थोड़ा ही किया है, तो उसे दोबारा भक्त के यहाँ जन्म देते हैं तो फिर वह संस्कार के अनुसार हरिनाम में लग जाता है और लगते–लगते उसे भगवान् से प्यार हो जाता है। सम्बन्ध ज्ञान ही भगवद् प्राप्ति की अंतिम सीढ़ी है, साधन है। इसके बाद कुछ भी करना बाकी नहीं रहता। इसके बाद जन्म–मरण नहीं होता।

हम तो बड़े भाग्यशाली हैं, कि हम चैतन्य महाप्रभुजी के आश्रय में हैं। उनके चरणों में हैं, हमारा तो उद्धार हो ही गया। चिंता की बात नहीं है, हमारा उद्धार हो चुका है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण नारायण के द्वारपाल जय–विजय हैं। उन्होंने सनकादि के चरणों में अपराध कर दिया था। उन्हें तीन जन्म राक्षस योनि में जन्म लेना पड़ा और फिर वह वापिस वैकुण्ठ के द्वारपाल बन गए। भगवान् ने उन्हें नर्क में या 84 लाख योनियों में नहीं भेजा। जिसको भगवान् एक बार पकड़ लेते हैं, उसे जाने ही नहीं देते। जैसे चीता है वह एक बार किसी को पकड़ लेता है तो उसको छुड़ाने में वह टूट जाएगा लेकिन छोड़ेगा नहीं। भगवान् भी अगर किसी को हरिनाम के द्वारा पकड़ लेते हैं तो फिर उसे छोड़ते नहीं हैं। समय लग सकता है, जन्म हो सकते हैं, लेकिन उसको छोड़ेंगे नहीं। इसका निष्कर्ष यही निकलता है, कि भगवान् का नाम लेने वाले का स्वप्न में भी अमंगल नहीं हो सकता। उनका मंगल होने में देर हो सकती है, पर अंधेर नहीं।

नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

मैं तो आपके सामने बैठा हूँ। आप ऐसा मत समझना कि मैं अपनी बड़ाई कर रहा हूँ। मैं तो 89 साल का हो गया। मैं तो हरिनाम की महिमा गा रहा हूँ। हरिनाम से मेरे को क्या–क्या मिल गया। मैंने हरिनाम किया और मुझे एक रत्ती भर भी रोग नहीं है। मुझे बुखार हुए भी 30–40 साल हो गए और मेरे आंखों की दृष्टि 5 साल के बच्चे जैसी है। आज 30–40 साल हो गए, 12–1 बजे जाग कर के सुबह तक हरिनाम करता हूँ। न कमर में दर्द होता है, न घुटनों में दर्द होता है और न मेरे को थकान होती है। दिन में भी नहीं सोता हूँ। कभी–कभी तो सो लेता हूँ, लेकिन कभी–कभी भक्त मेरे पास आ जाते हैं तो सोने का समय ही नहीं मिलता। फिर मेरा हरिनाम रह जाता है। हरिनाम नहीं हुआ, बहुत देर हो गई, 3–4 घंटे तो मेरे सत्संग में हो गए। अब हरिनाम पूरा हुआ नहीं। क्या करूँ? तब मैं दिन में शाम को 6:00 बजे ही सो जाता हूँ और फिर 11:00 बजे जाग जाता हूँ तो ऐसे हरिनाम में मुझे कोई भी थकान नहीं होती। कोई भी बीमारी नहीं आती। हरिनाम से अमृत बरसता है। अमृत बरस गया, जैसे एक घड़े में शराब रखी है और उसमें आप गंगाजल डालते रहो, डालते रहो, तो शराब निकल जाएगी और गंगाजल रह जाएगा। ऐसे हरिनाम से अमृत भर गया और जहर निकल गया। माया का जहर – काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, ईर्ष्या, द्वेष यह सब अवगुण हैं। यह अवगुण तो निकले और सब सद्‌गुण आ गए। अच्छी चीज आ गई, बुरी चीज निकल गई। यह सब कैसे हुआ? केवल हरिनाम से, केवल हरिनाम से। मैं भी तो एक साधारण गृहस्थी हूँ। बस एक हरिनाम ही तो जपा है। हरिनाम में पूर्ण निष्ठा है।

पूर्ण निष्ठा होनी चाहिए हरिनाम में, तभी जाकर आपको भी सब कुछ मिल जाएगा। जपने वाले का दसों दिशाओं में मंगल हो जाता है। इस प्रकार माता–पिता जब तक अपने पुत्र को अच्छी तरह पढ़ाई लिखाई करा कर, ऊंची शिक्षा देकर या पी–एच.डी. आदि करवा कर, पास नहीं करवा देते, तब तक वह उस पर, बेपरवाह होकर पैसा खर्च करते रहते हैं या नहीं? क्योंकि पढ़–लिख कर वह अच्छी जगह चला जाएगा। कोई भी माँ–बाप यह नहीं चाहता, कि उसका बेटा अपनी पढ़ाई बीच में ही अधूरी छोड़ दे। वे तो यही चाहते हैं कि उनका बेटा अपनी पढ़ाई पूरी करके

अपना रोजगार प्राप्त करे। इसी प्रकार भगवान् हमारे माँ–बाप हैं। सब के हितैषी हैं। जब तक सम्बन्ध ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक भगवान् उसे कई युगों तक वैकुण्ठ में वास कराते हैं फिर सम्बन्ध ज्ञान उत्पन्न कराने के लिए उसे अपने किसी भक्त के यहाँ जन्म देते हैं। भगवान् भी कसर नहीं छोड़ते, जो उनकी शरण में चला गया, उसको ऐसा पकड़ते हैं कि पकड़ छूटती नहीं है। गोलोक धाम ले जाकर ही रहते हैं। बचपन से वह भक्ति में लग जाता है और भक्ति में आगे बढ़ता रहता है। उसे भक्त माँ–बाप का सत्संग मिलता रहता है और शुद्ध हरिनाम करने का अवसर मिलता रहता है। यह तो संसारी माँ–बाप ही हैं और वह तो अलौकिक माँ–बाप हैं। वह तो सदा के माँ–बाप हैं, अमर माँ–बाप हैं, वह उसको कैसे छोड़ेंगे? बिल्कुल नहीं छोड़ सकते। इसलिए, हमको तो खूब आनंद में होना चाहिए कि हम भगवान् के प्यारे हो चुके हैं।

भगवान् की कृपा के बिना कोई एक भी हरिनाम नहीं ले सकता। एक नाम भी किसी के मुख से नहीं निकल सकता। यह तो भगवान् की असीम कृपा है कि हमारा, एक–एक, दो–दो लाख नाम हो रहा है। इसलिए चिंता की बात ही नहीं है। जब शुद्ध नाम होने लगता है, तो भगवान् के प्रति छटपट, पुलक होना आरंभ हो जाता है तब उसके मन के अनुसार भगवान् उसे सम्बन्ध ज्ञान प्रदान कर देते हैं। इसलिए चिंता मत करो। सम्बन्ध ज्ञान होने से गोलोक धाम मिल जाएगा। कई–कई लोग तो वैकुण्ठ धाम नहीं जाना चाहते। वैकुण्ठ धाम भी बहुत आनंद का स्थान है। गोलोक धाम जाना चाहते हो, तो हरिनाम करो। वह सखा, पिता, भाई, जमाई, मंजरी आदि का सम्बन्ध ज्ञान प्रदान कर देते हैं। जब उसे सम्बन्ध ज्ञान हो गया, फिर तो उसकी पी–एच.डी. की पढ़ाई पूरी हो गई तो भगवान् उससे सम्बन्ध ज्ञान की डिग्री, सर्टिफिकेट दे देते हैं अर्थात् उसे गोलोक धाम में अपनी सेवा प्रदान कर देते हैं। ऐसे गोलोक धाम भी अनंत हैं और वैकुण्ठधाम भी अनंत हैं। जिसका जैसा भाव हो जाए उसे उसी भाव के स्थान में भेज देते हैं। अनंत ब्रह्मांड हैं। अनंत गोलोक धाम हैं और अनंत ही वैकुण्ठ धाम हैं तो सब जगह भगवान् अवतार लेते रहते हैं। इस प्रकार, माँ–बाप ने अपने बेटे को पी–एच.डी. करवा दी और उसे राजकीय पद मिल जाता है, फिर उसे जीवन भर किसी बात का डर नहीं रहता। पूरी जिंदगी श्रम करके अपने माता–पिता, परिवार का पालन, भरण–पोषण करता है। पूरा जीवन सुखमय हो गया। ठीक उसी प्रकार सम्बन्ध ज्ञान हो जाने पर सदा–सदा के लिए गोलोक धाम में आनंद लेता रहता है और

जब भगवान् का अवतार होता है तो गोलोक धाम से किसी–किसी को भगवान् लीला कराने के लिए साथ में ले आते हैं। अकेले भगवान् लीला नहीं कर सकते, इसलिए साथ में जो चाहता है, उसे ले आते हैं। उनको पूछते हैं पहले कि क्या वह लीला में साथ चलना चाहता है? शामिल होना चाहता है? यदि हां। तो ठीक है, उसको ले आते हैं और कोई यह भी कहता है, कि नहीं, वह तो वहाँ आनंद में है और नहीं जाएगा, तो भी ठीक है। भगवान् अपने भक्त की इच्छा के अनुसार ही सब करते हैं।

संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : यह जो पंचतत्व मंत्र है "जय श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानंद श्री अद्वैत गदाधर श्रीवासादि गौर भक्तवृंद" यह मंत्र हम हरिनाम जप की हर माला से पहले, एक बार करते हैं। हम जानना चाहते हैं कि आप स्वयं क्या इसे तीन बार करते हैं ?

उत्तर : इसका कीर्तन किया जाता है। जैसाकि चैतन्य महाप्रभुजी ने किया, हमें वैसा ही करना चाहिए । महाप्रभु के आश्रित जैसे स्वरूप दामोदर, राय रामानंद, इस मंत्र का, "श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानंद" का कीर्तन किया करते थे। माला में इसे नहीं जपते थे। माला में केवल हरिनाम जपना पड़ेगा। हर माला पर इसे जपने की जरूरत नहीं है। जब माला हाथ में लोगे तब एक बार इस मंत्र को ध्यान से बोलो और फिर हरिनाम करो। इस तरह उनकी कृपा मिलेगी। नहीं तो समय लगेगा और माला पूरी नहीं होगी। शुरू में एक–दो बार इसका कीर्तन कर लो। फिर हरिनाम करो।

'हरिनाम' नामक एक प्रसिद्ध चोर

13

30 दिसंबर 2016
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में इस दासानुदास अधमाधम
अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा
हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

आज बहुत अंदरूनी, गहरी एवं गूढ़ चर्चा होगी। जिस की सुकृति होगी वही समझ सकेगा। कृपा करके ध्यान देकर सुनें! यह चर्चा नवयुवकों के लिए होगी। भगवान् ने जब सृष्टि रची, तब चार युग प्रत्येक ब्रह्मांड में सृजन किए। उनके नाम रखे, सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग। सतयुग में चराचर का स्वभाव, सच्चाई धारण करता था। स्वभाव, सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण के प्रभाव से होता है। भगवान् भी जब अवतार लेते हैं, तो इन तीनों गुणों को अपनाना पड़ता है। योगमाया द्वारा ही भगवान् हर ब्रह्मांड में लीलाएँ करते रहते हैं।

कलियुग से बचने का एक ही उपाय है, केवल भगवान् का नाम। हरिनाम एक ऐसी दवा है कि समस्त रोग शरीर में आने से डरेंगे। रोग पहले से यह विचार करेंगे कि शरीर में जाएंगे तो हमारा कल्याण नहीं होगा। हम सदा के लिए नष्ट हो जाएंगे। अब देखिये! आप सोचोगे कि अपनी बड़ाई कर रहा है। लेकिन मुझे देखिए कि अब मैं 90 साल का होने वाला हूँ। मेरे अंदर कोई रोग नहीं है।

श्रीमद्भागवत पुराण में लिखा है कि एक बार शिवजी व कृष्ण का आपस में युद्ध हुआ, क्योंकि शिवजी बाणासुर के गुरु थे। बाणासुर को शिवजी ने वरदान दिया था कि वे उसकी रक्षा करेंगे। इसीलिए कृष्ण से युद्ध करना पड़ा और कृष्ण ने एक रोग शिवजी पर भेजा। जिससे शिवजी को उबासी पर उबासी आने लगी, तो शिवजी को ऐसी उबासी आई कि

शिवजी एकांत में जाकर बैठ गए, लड़ना बंद कर दिया, लेकिन वह रोग हमेशा के लिए नष्ट हो गया क्योंकि शिवजी पार्वतीजी के संग हरिनाम करते रहते हैं। अतः वह उबासी वाला रोग समस्त ब्रह्मांडों से सदा के लिए समाप्त हो गया। अब इसका नाम निशान ही नहीं है। जब शिवजी को थोड़ा उबासी आना बंद हुआ, तब शिवजी ने भी एक ज्वर कृष्ण पर भेजा, तो कृष्ण ने भी ज्वर को भेजा, तो दोनों में मुक्का–मुक्की हो गई। बड़े जोर से आपस में लड़ाई करने लगे तो कृष्ण के ज्वर ने शिवजी के ज्वर को खत्म कर दिया। अब शिवजी ने कृष्णजी के चरणों में माफी मांगी कि उनसे गलती हो गई।

यह श्रीमद्भागवत पुराण में, एक उदाहरण के रूप में, लिखा हुआ है। किसान रूपी बाप, बाजरा रूपी बीज दरबासे (माँ) रूपी जमीन में डालता है। बड़े ध्यान से सुनोगे तभी समझ में आएगा, कि किसान रूपी बाप, बाजरा रूपी बीज, दरबासे (माँ) रूपी जमीन में डालता है, तो उससे बाजरे का अंकुर निकलेगा। फिर कुछ दिन बाद, एक बालिश्त का यानि एक हाथ का सिरा, बाजरे के रूप में, जिसमें कई बाजरे के बीज होंगे, आता है अर्थात् बाजरे के बीज से बाजरा ही पैदा होता है। इसी प्रकार मानव या पशु पक्षी का अपने शरीर का बीज भी होता है। वह स्वयं भी जन्म लेता है। लेकिन अपने स्वभाव के अनुसार ही लेता है।

जिस समय बोता है, उस समय सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण का स्वभाव अर्थात् जैसा मन रहेगा, वैसा ही स्वभाव का मानव जन्म लेगा। इस कलिकाल में अधिकतर तामस, राजस के स्वभाव के हैं। अतः जब मानव बीज बोता है, उस समय जैसा उसका स्वभाव होता है, जैसे यदि तामसिक है तो वह मानव तामसी बच्चे के रूप में जन्म लेकर, पूरी उम्रभर तामसिक स्वभाव का ही होगा। जिस प्रकार बाजरा बोने पर बाजरा ही जन्म लेता है। इसी प्रकार तामसी व राजसी स्वभाव वाला मानव, जैसा बीज उस समय बोएगा, वैसा स्वभाव होगा, वैसा ही बोने वाले से जन्म लेगा। वह पूरी उमर भर तामसी, राजसी स्वभाव में ही अपना जीवन बसर करता रहेगा। अतः जैसा स्वभाव होगा, वैसा ही बीज बोएगा तो बच्चा भी वैसा ही जन्म लेगा। बाप ही बच्चे के रूप में आता है। जैसे बाजरे के रूप में बाजरा ही आया था। वैसे ही बाप ही बेटे के रूप में पैदा होता है। यह सब श्रीमद्भागवत में भी लिखा है। जो तामसी और राजसी स्वभाव का जन्म लेगा, वह पूरी उम्र–भर हाय–धाय ही करता रहेगा। माँस, मदिरा

खाएगा, अभक्ष्य खाएगा और पैसे के पीछे भागेगा। यह चर्चा इसलिए की है कि नवयुवक इस मार्ग को समझकर भविष्य का जीवन सुखमय बना सकें। तब ही तो मेरे गुरुदेव ने मनमाफिक संतान के लिए 21 दिन तक तीन लाख हरिनाम का आदेश दिया है ताकि उनमें सात्विकता आ सके और तब जो शिशु जन्म लेगा, वह साधु स्वभाव का ही होगा। जिन्हें यह सब नहीं पता था, उन्होंने जैसा किया वैसा पाया, क्योंकि उनको रास्ता मालूम नहीं था। इसमें उनका कोई भी दोष नहीं है।

भगवान् कलियुग में इसी जन्म में मिल जाते हैं। कलियुग में बहुत जल्दी मिल जाते हैं क्योंकि कलियुग में भगवान् के ग्राहक नहीं हैं। यह प्रत्यक्ष सिद्धांत है कि जिस चीज की कमी होती है, उसका महत्व बहुत बढ़ जाता है। बहुत कम भक्त होते हैं इसीलिए भगवान् जल्दी मिल जाते हैं। जो जीव भगवान् को थोड़ा बहुत भी चाहता है, तो भगवान् उस जीव पर शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। लेकिन प्रसन्न क्यों नहीं होते हैं? इसका एक खास कारण है, कि मानव भक्तों की पाठशाला में भर्ती नहीं होता। जो भक्त ही नहीं हुआ, उसे भक्ति से वैकुण्ठ जाने का टिकट कैसे मिल सकता है? भक्त की पाठशाला में भर्ती ही नहीं हुआ और वह चाहता है कि वह वैकुण्ठ एवं गोलोक जाये।

मानव ने वैकुण्ठ जाने की पहली सीढ़ी पर ही पैर नहीं रखा तो आगे कैसे जा सकता है? पहली सीढ़ी है, अपने माता–पिता की सेवा। जिन्होंने 20–25 साल तक अपने पुत्र की तन, मन, वचन तथा धन द्वारा सेवा की है। इसका ऋण पुत्र कभी भी नहीं उतार सकता। श्रीमद्भागवत में लिखा है कि सौ साल तक भी अगर उनकी सेवा करे तो भी उनसे उऋण नहीं हो सकता। यह भक्ति पथ का पथिक, माँ–बाप की सेवा बिना कभी भी भगवान् का प्यार उपलब्ध नहीं कर सकता। माँ–बाप यदि नास्तिक हों, दुराचारी भी हों, तब भी पुत्र के लिए तो पूजनीय ही हैं। यही है भक्ति पाठशाला की एल.के.जी. में भर्ती होना। जो मानव ऐसी पढ़ाई नहीं करेगा उसे पी–एच.डी. अर्थात् वैकुण्ठ प्राप्ति, स्वप्न में भी उपलब्ध नहीं हो सकती। जिसकी फाउंडेशन (नींव) ही कमजोर है वह आगे कैसे बढ़ सकता है? आगे उसका कुछ भी साधन सफल नहीं हो सकता।

बहुत से भक्तों की समस्या यही है कि उनका मन हरिनाम में लगता नहीं। लगेगा कैसे? उसने माँ–बाप के हृदय में बैठी आत्मा को सताया है। तीसरी प्रार्थना यही तो है कि "चर–अचर, जीव मात्र में आपका दर्शन हो।"

जिसने जड़ में ही जहर घोल रखा है तो भविष्य का तो नाम निशान ही मिटा दिया। सुख कैसे हो सकता है?

आप देख सकते हो, श्रीमद्भागवत पुराण में 10वें स्कंध के 45वें अध्याय में लिखा है कि सौ साल तक माँ—बाप की सेवा करें तो भी उनसे उऋण नहीं हो सकता। इसी प्रकार जो स्त्री पति परायण नहीं होती, जो शिष्य गुरुदेव की आज्ञा का पालन नहीं करता, जो मानव संत का सम्मान नहीं करता, जो भक्त का सम्मान नहीं करता, इन सबको स्वप्न में भी भगवत्प्रेम नहीं मिलेगा। यह है फाउंडेशन (नींव)। इस एल.के.जी. में भर्ती होना पड़ेगा क्योंकि इसने प्रेम में जहर घोल रखा है इसलिए नींव कमजोर है। अतः अपने स्वभाव को सुधारो, तब कहीं आगे जा सकोगे तब संसार का सुख होगा अगर भगवान् से पीठ बनी तो दोनों तरफ से हाथ धो बैठोगे। न संसार का सुख मिला, न भगवान् का प्यार मिला। भक्ति पथ बहुत सरल भी है और बहुत कठिन भी। मानव जन्म दुबारा नहीं मिलने वाला। कितनी बार मानव जन्म मिल गया है परंतु सही मार्ग पर चले ही नहीं। अतः समय व्यर्थ में ही चला गया। मानव जन्म भगवत्कृपा से मिलता है, उसे व्यर्थ के कामों में लगा दिया तो भगवान् उसे दुबारा मानव जन्म, अनंत अरबों चतुर्युगी के बाद दया करके देते हैं।

कितना मुश्किल है। मानव जन्म सुदुर्लभ है। इस दुर्लभ मानव जन्म को उसने यूं ही गवां दिया। मानव भूल जाता है और माया में फंस जाता है। अहंकार में चूर रहता है, दुख पर दुख भोगता रहता है, फिर भी आंख बंद रहती है। बार बार डंकाल आते हैं, फिर भी समझता ही नहीं। बाल सफेद हो जाते हैं फिर भी कोई परवाह नहीं, दांत गिर जाते हैं, घुटनों में दर्द होने लगता है, बुढ़ापा आ कर खसखस करने लगता है, फिर भी कहता है कोई बात नहीं। पहले पहली क्लास (कक्षा) तो पास करो, पी—एच.डी. तो बहुत दूर की बात है। अभी भक्ति पथ पर पैर ही नहीं रखा और चाहते हो कि सुखधाम वैकुण्ठ मिल जाये। कैसी मूर्खता है? सुनने पर हंसी आती है। ऐसी कहावत है :

कर्म कैमेडी और मन राजा।

कैसे नैया पार होगी? यदि अपने तन की चमड़ी की जूती भी माँ—बाप को पहना दे तो भी उऋण नहीं हो सकते। अधिकतर हम कलियुग में ऐसा ही देखते आ रहे हैं कि बच्चे की शादी हुई नहीं और अलग जगह चले जाते हैं। माँ—बाप को छोड़ कर चले जाते हैं। माँ—बाप की तरफ देखते

भी नहीं और फिर चाहते हैं भगवान् को। भगवान् कैसे मिलेंगे? मर्यादा तो है ही नहीं। कोई मर्यादा में नहीं रहा। जब मर्यादा रहेगी, तभी भगवान् मिल सकते हैं। श्रीकृष्ण, श्रीराम ने मर्यादा रखी है, उस मर्यादा पर चलना चाहिए।

देखिए! समस्त धर्मग्रंथों का सार है, केवल हरिनाम। कृष्ण और राम से बड़ा है, हरिनाम।

हरि से बड़ा हरि का नाम, अंत में निकला यह परिणाम।
हरि ने तारे भक्त महान और नाम ने तारे अनंत जहान।

नाम इतना बड़ा है और प्रभावशाली है कि चैतन्य महाप्रभुजी, जो कृष्ण के अवतार थे, स्वयं अपना नाम जपते थे। सभी धर्म ग्रंथ भगवान् की साँसों से निकले हैं। उनके धर्म ग्रंथों में जो भी लिखा है, सार रूप में हरिनाम का महत्व ही दृष्टिगोचर हो रहा है। उदाहरण के तौर पर जैसे दूध को जामन देकर जमाया जाता है, फिर उसे मथानी द्वारा मथा जाता है, उस मंथन से मक्खन निकलता है। यह मक्खन ही सारतत्व है। इस मक्खन को खाने से शरीर पुष्ट होता है। ऐसे ही शास्त्रों का निचोड़ है – हरिनाम। इससे मन भी खुश और शरीर भी खुश। सभी धर्म ग्रंथों का पठन–पाठन करने से, केवल हरिनाम रूपी सारतत्व ही उपलब्ध किया जाता है। यह हरिनाम ही आत्मा का खास भोजन है।

जिसके हृदय में हरिनाम बसा हुआ है, रोग उससे डरते हैं। रोग उसके अंदर नहीं आ सकते। रोग राक्षस हैं और हरिनाम भगवान् से भी बड़ा शक्तिशाली है तो उसके तन में आते नहीं है, डरते हैं। रोग ऐसा सोचते हैं कि वे वहाँ जाएंगे तो नष्ट हो जाएंगे। इसलिए हरिनाम को अपना लो, सुख ही सुख है। जो भी मानव इसका अनुभव करता है, वह परमात्मा स्वरूप में बदल जाता है। वह सांसारिक दुखों को छोड़ कर हमेशा के लिए स्वतंत्रता उपलब्ध कर लेता है। अखिल ब्रह्मांडो में, भगवद् प्राप्ति का इससे बड़ा और सरल साधन और कोई नहीं है, जिससे मानव को सर्वोत्तम उपलब्धि हो सके। सभी धर्मशास्त्र इस बात के साक्षी हैं। सार रूप में मेरे गुरुदेव ने तीन प्रार्थनाएं बताई हैं। मन में पूर्ण श्रद्धा और विश्वास जमाने हेतु, मेरे गुरुदेव बता रहे हैं कि सभी भक्तगण ध्यानपूर्वक सुन कर अपने हृदय में बैठा लो ताकि आवागमन रूपी दारुण कष्ट से दूर हो सको। आवागमन का यह कष्ट, चींटी से लेकर हाथी तक सभी को सहन करना पड़ता है। हरिनाम हेतु श्रीमद्भागवत पुराण बोल रहा है, "हे,

परीक्षित्! ये कलि दोषों का भंडार है। पर इसमें एक महान गुण है। इसमें कृष्ण के नामों का कीर्तन करने मात्र से, मानव परम पद को प्राप्त कर लेता है। सतयुग में भगवान् का ध्यान, त्रेता में यज्ञ, द्वापर में पूजन से साधक जिस फल को प्राप्त कर लेता है, वही फल कलियुग में केवल सतत नाम जप करने से प्राप्त कर सकता है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

(चै. च. आदि 17.21)

हरिनाम, हरिनाम, हरिनाम ही केवल जीवन है, कलियुग में इसके सिवाय अन्य कोई गति नहीं है, गति नहीं है, गति नहीं है। भगवद् प्राप्ति का दूसरा कोई साधन नहीं है। हर समय हरिनाम करते रहना ही सुख का साधन है।

मनुष्य में वह सौभाग्यशाली तथा निश्चिंत है जो कलियुग में स्वयं हरिनाम स्मरण करते हैं और दूसरों को हरिनाम में लगाते रहते हैं। भगवान् कहते हैं कि उनसे प्यारा मेरा कोई नहीं है, वह मेरा सबसे प्यारा है, मेरे हृदय का टुकड़ा है और कलियुग में जो मानव हरिनाम का जप करता है, वही कृतकृत्य है। कलियुग उन्हें बाधा नहीं देता। जो हरिनाम का जप करता है, वही सुखी है, अन्य सभी कलि की चक्की में पिसे जा रहे हैं।

भगवान् कह रहे हैं कि जो कलियुग में उनके नाम का जप करता है, वही धन्य है, वही कृतार्थ है। उन्होंने ही पुण्य कर्म किए हैं तथा उन्होंने ही मानव जन्म की योग्यता प्राप्त की है। इस कलियुग में इस दुर्लभ हरिनाम का, जो एक बार भी उच्चारण कर लेते हैं, वह तर जाते हैं, इसमें तिल मात्र भी संशय नहीं है।

बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं।।

(मानस, बाल. दो. 118 चौ. 2)

यदि जबरदस्ती भी कोई हरिनाम ले लेता है, जबरदस्ती नाम निकल जाता है, तो उसके अनेक जन्मों के जो रचे–पचे पाप हैं, वह जलकर भस्म हो जाते हैं। कलियुग एक प्रज्वलित पापाग्नि है, उससे भय न करें क्योंकि गोविंद नाम रूपी मेघ के समूह के जलबिंदु से यह नष्ट हो जाते हैं। यदि

कोई विवश होकर भी भगवद् नाम का उच्चारण करता है, तो उसके समस्त पाप, ठीक उसी प्रकार जलकर भस्म हो जाते हैं जैसे सिंह की दहाड़ से सभी गीदड़ भाग जाते हैं।

इसी पृथ्वी पर 'हरिनाम' नामक एक प्रसिद्ध चोर बताया गया है, जो कानों के रास्ते से अंदर जाने पर अनेक जन्मों की कमाई पाप–पुण्य राशि को चुरा लेता है। ऐसा नाम है। भक्तिभाव या बिना भक्ति भाव के भी यदि भगवद् नाम उच्चारण कर लें, तो यह नाम, समस्त पापों को उसी तरह दग्ध कर देता है जैसे युगांत काल में प्रज्ज्वलित हुई प्रलय अग्नि, सारे जगत् को जला डालती है। इस पृथ्वी पर कोई भी भगवद् नाम लेने से प्रसिद्ध हो जाता है और उसके द्वारा नाम का उच्चारण करने पर, पापों के सहस्रों टुकड़े हो जाते हैं।

जैसे अनिच्छा से छूने पर भी अग्नि जला डालती है, उसी प्रकार किसी भी बहाने से यदि भगवद् नाम मुख से निकल जाए, तो समस्त पाप भस्मीभूत हो जाते हैं। भगवद् नाम के उच्चारण करने पर समस्त पाप इस प्रकार विलीन हो जाते हैं, जैसे दिन निकल आने पर अंधेरा खत्म हो जाता है। हरिनाम कैसे भी लो, संकेत में लो, चाहे कैसे भी लो, हरिनाम पापों को जलाकर भस्म कर देता है। जाने अनजाने में भी किसी के मुख से भागवद् नाम निकल जाए, तो उसका दसों दिशाओं में कल्याण हो जाता है।

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

तो दसों दिशाओं में उसका मंगल हो गया। दसों दिशाओं में तो वैकुण्ठ भी है, गोलोक धाम भी है, तो इसका मतलब है कि वह वहाँ चला जाएगा। दसों दिशाओं में मंगल हो गया, इसका मतलब वैकुण्ठ मिल गया। तो भगवद् नाम में पाप नाश करने की इतनी अपार शक्ति है, कि इतना पाप मानव जिंदगी भर भी नहीं कर सकता।

अच्युतानन्त गोविन्द नामोच्चारणभेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।।

(पाण्डवगीता श्लोक 25)

धन्वन्तरि कह रहे हैं, "भगवान् के जो अच्युत, अनन्त और गोविन्द नाम हैं, सब रोगों को नाश करने वाले हैं, मैं सच सच बोल रहा हूँ।" नाम

वह अमर औषधि है, जिसको जपने से मानव के अंदर, बाहर के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। अंदर के रोग हैं– काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, राग, द्वेष इत्यादि और बाहर के यानि शरीर के समस्त रोग, दुख दर्द, बुखार आदि सब नष्ट हो जाते हैं। यह मैं सच कह रहा हूँ, इसीलिए कहते हैं, "हे मानव! मेरा नाम जप कर।" हरिनाम करते, करते, सब माया का जहर निकल जायेगा और हरिनाम रूपी अमृत भर जायेगा। अंदर से एक परमानेंट (स्थायी) खुशी होती है, ऐसा आनंद आता है। अंदर आनंद की लहरें उठती रहती हैं। जिसको अनुभव होता है, वह स्वयं ही जान सकता है कि अंदर क्या आनंद आता है उसको। बता नहीं सकता। ऐसा अंदर से आनंद फैलता रहता है।

नहाने की भी कोई जरूरत नहीं है। कहीं बैठकर के किसी भी समय, कैसे भी करते रहो और कान से सुनते रहो। धीरे–धीरे कान से सुनते रहो, इसका ज्यादा प्रभाव होता है क्योंकि कान से न सुनने पर मन इधर–उधर भाग जाता है। सबको सहारा चाहिए। सहारे बिना कोई टिक कर नहीं रह सकता। मन को भी सहारा चाहिए, कान से सुनने का सहारा चाहिए। पेड़ को जमीन का सहारा चाहिए। बच्चे को माँ–बाप का सहारा चाहिए। शिष्य को गुरु का सहारा चाहिए। संसार सहारे के बिना टिक नहीं सकता। सबको सहारा चाहिए। मन को भी सहारा चाहिए। कान से सुनो और हो सके तो लीलाओं का भी चिंतन करो। फिर मन कहीं नहीं जाएगा। इस तरीके से हरिनाम जपना चाहिए। यह एक अमर औषधि है। इसे जपने से मानव के अंदर–बाहर के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं।

नाम का प्रभाव बता रहा हूँ। सभी जानते हैं, सभी ने सुना भी है, कि हमारे बैंक के एक रिटायर्ड मैनेजर थे, कक्कड़ साहब। चंडीगढ़ के हैं, उनके दोनों वाल्व बहुत खराब थे। डॉक्टरों ने कहा, "अब तो आप का ऑपरेशन होगा और खूब पैसा लगेगा और कोई गारंटी नहीं है कि आप मरोगे या जिओगे।" उन्होंने मुझसे पूछा कि वह क्या करे? तो मैंने कहा, "तुम हरिनाम करो।" मैंने पूछा, "कितना करते हो?" उन्होंने बोला, "आधा लाख करते हैं।" तो मैंने कहा, "आधा लाख और करो।" आधा लाख और किया और उसके दो महीने बाद में चेक करवाया, तो वाल्व एकदम ठीक थे और अब तो 15 साल हो गए हैं उनको, अच्छी तरह जी रहे हैं। यह तो प्रत्यक्ष उदाहरण है।

मैं इसलिए उदाहरण दे रहा हूँ कि आप को हरिनाम में श्रद्धा हो जाए। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं, मैं आपको कितने उदाहरण बताऊँ? बहुत सारे उदाहरण हैं। इसलिए हरिनाम करो। चाहे मन लगे चाहे न लगे। फिर भी करो। जो भी एक लाख नाम करेगा, उसकी गारंटी है कि उसे वैकुण्ठ तो मिल ही जाएगा। गोलोक धाम तो नहीं मिलेगा, लेकिन उसे वैकुण्ठ मिल जाएगा। जो एक लाख नाम नहीं करेगा, तो उसको भी मानव जन्म दुबारा मिल जाएगा। जैसे दसवीं पास कर लेते हैं फिर हमको कॉलेज में जाना पड़ता है और यदि कॉलेज नहीं गए तो पढ़ाई अधूरी रह गई। इसी तरह भक्ति में वे अधूरे रह गए। इसलिए दूसरा जन्म उनको किसी भक्त के यहाँ देंगे और वह फिर धीरे–धीरे हरिनाम करेगा और इस तरह वो पी–एच.डी. कर लेगा। तो उसको भगवान् मौका देते हैं। वह चाहे कितना भी अपराधी हो, फिर भी उसको भगवान् अपनाते हैं। अपराधी को भी अपनाते हैं भगवान्। जैसे किसी के चार बच्चे हैं। एक नालायक है, माँ–बाप उसे निकाल थोड़े ही देते हैं। उसको भी शिक्षा देते हैं कि किसी तरह से यह सुधर जाए। ऐसे ही भगवान् भी, अपना नाम लेने वाले को कभी भी त्यागते नहीं हैं। उसको दुबारा मौका देते हैं।

इसीलिए मैं कह रहा हूँ कि एक लाख हरिनाम तो करना ही चाहिए। एक लाख नाम में तीन घंटे, पौने तीन घंटे लगते हैं। पर एक दम से तो नहीं। शुरु–शुरु में तो ज्यादा टाइम लगेगा। तीन–चार–पांच घंटे भी लग सकते हैं। पर धीरे–धीरे करने से, और प्रैक्टिस होने से 3 घंटे में भी एक लाख हो सकता है। अब यह देखो कि क्या हम 24 घंटे में अपने उद्धार के लिए 3 घंटे भी नहीं दे सकते? 24 घंटों में से क्या तीन घंटे भी भगवान् के लिए नहीं दे सकते हैं। अपने फायदे के लिए तो दे ही सकते हो। यह तो आत्मा का भोजन है। आत्मा के लिए 3 घंटे तो दे ही सकते हो। एक लाख हरिनाम तो सबको करना ही चाहिए। चैतन्य महाप्रभुजी ने बोला है। चैतन्य महाप्रभु स्वयं भी हरिनाम करते थे, अपनी माला में करते थे। चैतन्य महाप्रभु स्वयं कृष्ण के अवतार थे। उन्होंने भी अपना नाम जपा। इसीलिए नाम को जपना चाहिए। मनुष्य जन्म फिर बहुत मुश्किल से मिलेगा। कितने अरबों–खरबों सालों के बाद मिलेगा। इसीलिए हरिनाम करो।

भक्ति की नींव

6 जनवरी 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में इस दासानुदास अधमाधम अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा प्रार्थना है हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

प्रथम में भक्ति की मजबूत नींव डालो, तभी भविष्य में भक्ति महल खड़ा हो सकता है। भक्ति की नींव मजबूत होनी चाहिए। नींव कैसे मजबूत होगी वह मेरे गुरुदेव बता रहे हैं।

देखिए! शरीर तीन प्रकार के होते हैं – स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर। कारण शरीर, आदतों का शरीर, स्वभाव का शरीर कहलाता है। देखिए! शरीर पंचभौतिक होता है इस में मन द्वारा शुभ–अशुभ कर्म होते रहते हैं। फिर इन कर्मों के द्वारा अगला शरीर उपलब्ध होता है। दूसरा शरीर है जो साथ में जाता है, वही भोग भोगता है। जिस शरीर से भोग भोगे जाते हैं उसे लिंग शरीर कहते हैं, सूक्ष्म शरीर भी कहते हैं और स्वभावमय शरीर भी कहते हैं, भोगमय शरीर भी कहते हैं। इस शरीर से ही अच्छे बुरे कर्म होते हैं।

उदाहरण के लिए जैसे जो मांस, मदिरा खाते हैं उनको नर्क में भोग भोगना पड़ता है और जो मांस मदिरा नहीं खाते और भगवान् का भजन भी नहीं करते हैं उनको 84 लाख योनियों में जाना पड़ता है। लेकिन हरिभजन एवं हरिनाम करते हुए जब यह सूक्ष्म शरीर खत्म हो जाता है, तब दिव्य शरीर मिलता है। दिव्य शरीर अलौकिक शरीर कहलाता है। इसके बाद जन्म–मरण से छुट्टी मिल जाती है। यह शरीर केवल मात्र कलियुग में हरिनाम से उपलब्ध होता है अन्य कोई भी दूसरा साधन नहीं है।

तीन प्रार्थनाएं, सोते समय, प्रातः जगते समय और स्नान के बाद की प्रार्थना ही भक्ति प्राप्ति की मजबूत नींव हैं। इसको रोज बोलना चाहिए। केवल 2 मिनट लगते हैं। भक्ति की मजबूत नींव है। इन तीन प्रार्थनाओं में समस्त धर्मशास्त्रों का निचोड़ है, यह बीज है, शास्त्रों का बीज है। दिव्य शरीर पंचभौतिक नहीं होता। इन प्रार्थनाओं से भगवद्प्राप्ति के भाव प्रकट हो जाते हैं जैसे जीव मात्र को कण–कण में भगवान् दिखाई देने लगता है। न ही भगवान्, भक्त से दूर होता है और न ही भक्त, भगवान् से दूर होता है। इन प्रार्थनाओं से, लिंग शरीर जो कर्म भोगने हेतु होता है, वह समाप्त हो जाता है एवं दिव्य शरीर मिल जाता है अर्थात् इस दिव्य शरीर के मिलने से मृत्युलोक से छुट्टी हो जाती है एवं वैकुण्ठ धाम या गोलोक धाम में पदार्पण हो जाता है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

भक्ति पथ केवल हरिनाम से ही मिलता है। मृत्युलोक के असुर स्वभाव, मूल सहित समाप्त हो जाते हैं। शास्त्रीय वचन है :

जिन्ह कर नामु लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं।।

(मानस, बाल. दो. 314, चौ. 1)

"कि जो हरिनाम करता है उसके जितने भी दुख हैं वह जड़ सहित खत्म हो जाते हैं।" जिसका जड़ ही खत्म हो गया वह फिर कैसे अंकुरित होगा? इसलिए हरिनाम करो और कान से सुनो।

देखो! चींटी से लेकर हाथी तक सभी सुख चाहते हैं, लेकिन सुख की जगह दुख ही उपलब्ध होता है। जो चाहते हैं, वह मिलता ही नहीं। इसका खास कारण है कि जो बोओगे वही तो मिलेगा। सुख बोते नहीं तो सुख कहाँ से और कैसे मिल सकता है?

तो सुख कहाँ है? कहते हैं, केवल भगवद् चरणों में। भगवद् चरण कहाँ है? जहाँ पर दया का भाव, सेवा भाव है। दया का, सेवा भाव कहाँ पर है? जहाँ भगवान् की संतान रूपी सृष्टि है। जब भगवान् की संतान को जीव दुखी करेगा तो दुख ही हाथ में आएगा क्योंकि इसने दुख ही बोया है। जो बोओगे वही तो पाओगे। कोई किसी को दुख नहीं देता है। अपना किया हुआ कर्म ही दुख देता है। सुख का काम करोगे तो सुख

मिलेगा, दुख का काम करोगे तो दुख मिलेगा। यह ध्यान रखो, कभी किसी को दुख मत दो।

जीव भगवद् सृष्टि को दुखी करता रहता है। उदाहरण तौर पर जैसे घर में एक कुत्ता आया, कुछ लेने हेतु ही आया है। एक तरह का भिखारी है। इस बेचारे को भूख लगी होगी इसीलिए हमारे पास आया है। भिखारी को खाली हाथ लौटाना घोर अपराध होता है, वह भी भगवान् की संतान ही तो है। बस यही कारण है कि जीव दुख सागर में पड़ा–पड़ा दुख भोगता रहता है। कुत्ते पर ध्यान नहीं देता कि कुत्ता क्यों आया है? उस को डंडा मार कर बाहर भगा देता है। ऐसे ही सूक्ष्म कर्म हैं जिनको साधारण जीव समझ नहीं सकता। कुत्ता भूखा है, कुछ खाने हेतु डालना चाहिए। फिर वह बेचारा वापिस चला जाएगा। यह मैंने एक छोटा सा उदाहरण ही दिया है। हर किसी जीव की सहायता करो, किसी को सताओ नहीं तो फिर भगवान् आपको छोड़कर नहीं जा सकते हैं। भगवान् जीव से ओझल रहते हैं। यदि भगवान् को अपने सामने रखो तो ऐसी सूक्ष्म बातों से अवगत रहोगे। संसार में सुख ही सुख है, दुख का तो नाम निशान ही नहीं है लेकिन जीव सदा दुख की ओर भागता रहता है इसमें भगवान् क्या करे? उसके कर्म ही ऐसे हैं।

देखिए! भगवान् ही सब सृष्टि बनाने वाले भी हैं और बनने वाले भी हैं। भगवान् के अतिरिक्त इस जगत् में कुछ भी नहीं है। सर्वत्र भगवान् ही भगवान् की लीलाएँ चलती रहती हैं लेकिन हमें दिखाई नहीं देती क्योंकि हमारे आंखों पर सत, रज, तम के माया का पर्दा पड़ा रहता है। यह पर्दा हट सकता है, केवल हरिनाम से। केवल हरिनाम से और हमारे सामने से इस पर्दे को भगवान् का प्यारा भक्त ही हटा सकता है। भगवान् भी हटाने में असमर्थ हैं। भगवान् का प्यारा ही हमारे अज्ञान को ज्ञान में बदल सकता है।

समदर्शी प्रभु नाम तिहारो

(मीरा बाई)

यदि जीव दुख में सुख महसूस करे। जीव समदर्शी बन जाए तो दुख का नाम निशान ही नहीं रहेगा। समदर्शी हो जाएगा। यह अवस्था कैसे आएगी? इस अवस्था का एक ही रास्ता है भगवान् का नाम। इस नाम से समस्त शास्त्रों के सुख का सार हृदय मंदिर में प्रकट हो जाएगा क्योंकि

शास्त्रों का सार भगवद् साँस से प्रकट हुआ है जो जीव मात्र का सुख विधान करता है।

गीता में, अर्जुन को भगवान् कृष्ण ने संपूर्ण सार से अवगत कराया है। गीता को वही समझ सकता है जिसको श्रीमद्भागवतम् का कई बार अध्यन हुआ हो। ऐसा नहीं है तो कोई भी मानव गीता को नहीं समझ सकता। जो गीता प्रचार करते हैं उनमें भी ईर्ष्या–द्वेष आ जाता है। जब ऐसा है तो गीता से क्या लाभ हुआ? केवल परिश्रम ही हाथ लगा। भगवान् कलियुग में बहुत जल्दी प्रसन्न हो जाते हैं। कहा भी है –

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास।।

(मानस, उत्तर, 103 (क))

बिना प्रयास के भगवत्कृपा मिल जाती है। भगवान् को पाना कोई मुश्किल नहीं है। जीव को ऐसा मौका फिर नहीं मिलेगा। यदि जीव समझ बूझ कर रास्ता चले। मेरे गुरुदेव बारंबार, चिल्ला–चिल्ला कर रास्ता बता रहे हैं, फिर भी मानव सुनता नहीं है, बहरा बना हुआ है।

हरिनाम 64 माला नित्य जपो और कान से सुनो तथा जिसको बोल रहे हो उसको साथ में रखो। तुम किस से बात कर रहे हो? कोई तुम्हारे पास है ही नहीं और बकबक करते जा रहे हो। तो यह क्या हुआ? पागलपन, पागलपन ही तो हुआ, जो सुनने वाला है, वह है ही नहीं और तुम चिल्ला–चिल्ला कर बोल रहे हो। यह पागलपन ही है। जैसे हम किसी को फोन करते हैं तो उसका जो चेहरा है वह हमारे सामने आ जाता है और हमारा चेहरा उसके पास चला जाता है तो हम हरिनाम करते हैं तो ठाकुरजी हमारे सामने रहने चाहिएँ न। उसमें भी होगा, फायदा तो होगा। ऐसा नहीं है कि उसमें फायदा नहीं होगा। नामाभास हो जाएगा। परंतु यदि भगवान् निरंतर पास में रहेंगे तो प्यार हो जाएगा। फिर कहते हो हमें वैकुण्ठ नहीं जाना, हमें तो गोलोक धाम चाहिए, यह बोलना भी पागलपन ही तो हुआ। यह कहावत चरित्रार्थ होती है कि:

कर्म कैमेडी और मन राजा

पहले योग्य बनो, फिर मुख से कोई बात निकालो। यह पागलपन के सिवाय और क्या हो सकता है? भक्ति पथ की पहली सीढ़ी अर्थात् पौढ़ी पर पैर रखा ही नहीं और भक्ति महल की छत पर जाना चाहते हो, कैसी

मूर्खता है? पहले अपने स्वभाव, आदत को ठीक करो, तब आगे कुछ बोलो। यह जीवन, सब व्यर्थ की बातों में, व्यर्थ के कामों में, यूँ ही चला जा रहा है। अंत में रोते हुए यहाँ से जाओगे, जहाँ जाओगे वहाँ भी अंतकाल तक रोते ही रहोगे। अब यह समझ जाओ तो भला है, वरना नष्ट तो होना ही है। अब तक माँ–बाप की सेवा ही नहीं की, समाज की सेवा ही नहीं की, फिर भगवान् की सेवा के लिए चल पड़े, कैसे हो सकता है? क्या फिर भगवद् सेवा होगी? केवल कपट, केवल अंधापन। जब तुम एल. के.जी., यू.के.जी. में नहीं बैठे तो तुम बी.ए. में कैसे बैठ सकते हो? अभी दूसरे के कहने पर भी कुछ आदत ठीक करो तो सन्मार्ग पर चल सकते हो वरना दुख सागर तो सामने लहरा ही रहा है। सुकृति बिना कुछ होने वाला नहीं है और सुकृति इकट्ठी होगी केवल हरिनाम जप से, अन्य कोई साधन कलियुग में नहीं है। जिसने भी हरिनाम को अपनाया है, वही दुख सागर से पार हुआ।

हमारे यहाँ सूरदासजी हुए हैं परम भक्त हुए हैं उन्होंने भविष्य का लिख दिया है। ध्यान पूर्वक सुनें!

अरे! मन धीरज क्यों न धरे,
संवत दो हजार से ऊपर
पूरब पश्चिम उत्तर दक्षिण, चहुँ दिशि काल पड़े
अकाल मृत्यु सब जगमें व्यापे, परजा बहुत मरे
सहस्र वर्ष तक सतयुग व्यापे, दुख की दशा फिरे
स्वर्ण फूल बन पृथ्वी फूले, धर्म की बेल बड़े
अरे! मन धीरज क्यों न धरे।।
अरे! काल व्याल से वही बचेगा।
जो हरि का नाम करे, जो गुरु का ध्यान धरे।
सूरदास! यह हरि की लीला, टारे नाहिं टरे।

तो अब क्या है? 2000 के ऊपर 74 आ रहा है, ...तो हम सामने देख रहे हैं कि कैसे–कैसे अकाल मृत्यु हो रही है। ऐसे कलियुग से कौन बचाएगा?

सूरदासजी ने मोहर लगा दी कि टाली नहीं जा सकती। यह तो आएगी। ध्यान से सुनो! भगवान् ने कलियुग का समय रचा है यह तो

अपना प्रभाव दिखायेगा ही, लेकिन बचने का रास्ता भी बता दिया है कि हरिनाम की शरण में चले जाओ तथा नरसिंह भगवान् की शरण में चले जाओ। हरिनाम और नरसिंह भगवान्, तो कलियुग रूपी हिरण्यकश्यप तुम्हारा क्या बिगाड़ेगा? स्वयं ही खत्म हो जाएगा। प्रत्यक्ष में प्रमाण की क्या आवश्यकता है। कलियुग कौन है? हिरण्यकश्यप और हरिनाम कौन है? नरसिंह भगवान्। देखिए! यह संवत् 74 चल रहा है। इसके ऊपर सतयुग आ रहा है और सब समय बता रहा है कि संसार में हरिनाम खूब हो रहा है। यह देखा जा रहा है और अकाल रोग भी काफी हो रहे हैं। कहीं सुनामी आती है, कहीं भूकंप आ रहे हैं, कहीं तूफान आ रहे हैं, कहीं सूखा पड़ रहा है तो कहीं चारों तरफ बहुत वर्षा हो रही है। अतः मेरी सब से हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि कम से कम हरिनाम की 64 माला तो सभी करो और अन्य से भी करवाओ, तो स्वयं का भला और अन्य का भला होगा। न पैसे का खर्च है न ही कहीं आने जाने का खर्च है। घर बैठे सब कुछ कर सकते हो। साधारण से साधारण मानव भी कर सकते हैं।

पहले युगों में आश्रमों में धार्मिक शिक्षा दी जाती थी और इस कलियुग में केवल कमाने की शिक्षा दी जाती है। यहाँ लड़के और लड़की जब युवावस्था के होते हैं, साथ–साथ पढ़ते हैं, तो कितनी गलत संस्था बनी है? यह किसने बनाई? यह कलियुग ने बनाई है। जहाँ घी, आग पास में होगा तो वहाँ पिघले बिना कैसे रह सकता है? धर्म की शिक्षाओं से खून की धारा सात्विक हो जाती है तो संतों का आविर्भाव होने लगता है। संत जन्म लेते हैं। यहाँ कोएजुकेशन (सहशिक्षा) होती है, खून की धाराएं राजसी बहेंगी तो राक्षस प्रवृत्ति की संतानें होंगी जो अपने माँ–बाप को तथा पड़ोसियों को तंग करेंगी, नर्क में ले जाएंगी, वर्णसंकर पैदा हो जाएंगे। कईयों की शिकायत होती है कि उनका पुत्र उनका कहना नहीं मानता तो इसमें पुत्र का क्या दोष है? माँ–बाप ने बुरे समय पर कर्म किया है। यह शिक्षा प्रवचनकारियों को जरूर देनी चाहिए परंतु ऐसी शिक्षा देते नहीं हैं। यही तो फाउंडेशन (नींव) है भक्ति की, यही तो मुख्य शिक्षा है। शुरुआत में इस को देते नहीं हैं और पहले ही कॉलेज की पढ़ाई पढ़ा देते हैं, तो कैसे हो सकता है? भक्ति की नींव के प्रथम में ही यह शिक्षा परम जरूरी है। भक्ति शिक्षा तो बहुत दूर की बात है, प्रथम ही पी–एच.डी. क्लास में बिठा देते हैं। वह सबको नर्क में ले जाएगा। पी–एच.डी में बैठाने से उसको कुछ नहीं मिलेगा। सर्वप्रथम तो घर ही पाठशाला है। जब भक्त को घर में ही रहना नहीं आया तो भविष्य में क्या उन्नति कर सकेगा? अंधे होकर रास्ते

में भटक रहे हैं। भटकन में भी सुख मिल सकता है क्या? समय बर्बाद हो रहा है, कुछ मिलने वाला नहीं है। केवल परिश्रम ही हाथ में आएगा।

गृहस्थी भी ब्रह्मचारी है, यदि सही समय का ध्यान रहे तो केवल संतान का ही उद्देश्य ले कर संग करे और दोनों भजन में लगे रहे तो फिर घर में ही वैकुण्ठ है। इससे शरीर स्वस्थ रहेगा। भजन में मन लगेगा। इसलिए सोच–विचार कर अपना जीवन बिताओ। यह समय का ही दोष है कि जैसा अन्न वैसा मन। हर वस्तु में जहर भरा पड़ा है। पैसे के पीछे सब बिक रहे हैं। पैसा ही पाप का मूल है लेकिन फिर भी मानव चाहे तो बच सकता है। हरिनाम करने से अमृत बरसता है तो जो जहर खा रहे हो, धीरे–धीरे निकलता रहेगा। यदि हरिनाम नहीं हुआ तो क्या होगा? 10 साल के बच्चे को चश्मा लग जाता है, सिर के बाल सफेद हो जाते हैं, पढ़ते समय आंखों में दर्द होता है, जल्दी थकान हो जाती है, बार–बार रोग आक्रमण करके दुखी करते हैं। सुंदरता में कुरूपता आ जाती है, सफलता में सुस्ती आ जाती है। इस सबका कारण है कि अमृतरस शरीर में नहीं आ रहा है।

धीरे धीरे याद्दाश्त ही खत्म हो जाएगी, शरीर में सुस्ती आ जाएगी, किसी काम में मन नहीं लगेगा, अच्छाई का नाम निशान ही नहीं रहेगा भगवत्प्रेम तो बहुत दूर की बात है। मानव जीवन तो केवल भगवद् कृपा से ही मिला था, मिट्टी में मिल जाएगा, भविष्य दुखदायक होगा। टी.वी. (टेलीविजन) मत देखो, टी. बी. (घातक बीमारी) हो जाएगी।

देखो! सब हमारी सेवा कर रहे हैं, फिर भी हम ऐसा नहीं मानते हैं। देखें! 84 लाख योनियों में जो पेड़–पौधे हैं, वे हमको क्या–क्या दे रहे हैं? सब कोई देख रहे हैं कि चील, कौए, जो गंदगी खा जाते हैं, वे हमारी सहायता कर रहे हैं। जब कोई पशु मर जाता है तो चील, कौए उसको बिल्कुल साफ कर देते हैं, नहीं तो सड़ने से बीमारियां फैल जाएंगी। सभी मानव की सेवा ही करते रहते हैं और इनका भी खून लाल और हमारा भी खून लाल है तो यह हमारे भाई ही तो हैं, ऐसा मन होना चाहिए, ऐसा स्वभाव बनना चाहिए, फिर भगवान् दूर नहीं हैं। आप भगवान् को दूर भी करना चाहो तो भगवान् की शक्ति नहीं है कि दूर हो जाएँ। फिर भी मानव, इनका कोई अहसान नहीं मानता। इसका मतलब है कि मानव में मानवता नहीं है। मानव की भी मानव ही सेवा करता रहता है। देखिए! ब्राह्मण हमको धर्म शिक्षा देता है। क्षत्रिय मानव की रक्षा पालन करता है। वैश्य

हमें खाने हेतु खाद्य पदार्थ देता है। शूद्र सब की सेवा करता है। दर्जी हमें कपड़े सिल कर देता है। खाती हमको खटिया देता है। चमार हमको जूतियां देता है। ऐसे सभी हमारी सेवा कर रहे हैं लेकिन हम इतने लोभी हो रहे हैं कि उनका किसी का अहसान नहीं मानते। आप सभी जानते हो कि हर इंसान और हर योनियां हमारी हर प्रकार की सेवा करती रहती हैं। फिर भी इंसान ऐसा नहीं मानता, अतः दुखी रहता है। अहसान नहीं मानेगा और शास्त्र के विरुद्ध चलेगा तो उसे कहाँ से सुख मिलेगा? क्योंकि उसने मर्यादाएं खत्म कर दी हैं, खंडित की हैं, इसलिए दुख मिलेगा। कभी सुखी नहीं रह सकता तो ऐसा दुख आना स्वाभाविक है। मर्यादाएं सुख के लिए ही बनाई हैं और मर्यादाओं को भंग करना, दुखों को मोल लेना है। फिर मानव बोलता है कि हमें भगवान् मिल जाए।

बोये बीज बबूल का, आम कहाँ से होए।।

(संत कबीर जी)

यह कहावत यथार्थ है। हम कितने भाग्यशाली हैं कि हमारा कलियुग में जन्म हुआ है। भगवद् कृपा के बिना जन्म नहीं हो सकता है, वह भी भारतवर्ष में हुआ है एवं श्रीचैतन्य महाप्रभु की शरण में भी हो गए। श्रीचैतन्य महाप्रभुजी का अवतार 27 बार चारों युग चले जाने पर होता है। 28वां द्वापर जब आता है तब द्वापर के अंत में श्रीचैतन्य महाप्रभुजी, राधाजी की अंगकांति लेकर, राधाभाव में भावित होकर विरह अवस्था की चरम सीमा को भी उलांघ कर हमको भक्ति का रास्ता बता रहे हैं, जो रास्ता अन्य संप्रदायों में नहीं है। स्वयं कृष्ण भगवान्, कृष्ण चैतन्य रूप में अवतरित हुए हैं। एकदम प्रसन्नता की बात तो यह है कि हम श्रीचैतन्य महाप्रभुजी की शरण में आ गए। अनंतकोटि अरबों खरबों वर्षों के बाद अब वैकुण्ठ या गोलोक धाम की प्राप्ति हो जायेगी क्योंकि प्राप्ति करवाने के लिए ही श्रीचैतन्य महाप्रभुजी का अवतार हुआ था। उन्होंने स्वयं अपना नाम जपा और हम को शिक्षा दी कि, "तुम भी जपो।" स्वयं चैतन्य ने अपना एक लाख नाम नित्य, इसी कारण किया और सब से भी 64 माला करवाईं कि अब इनका उद्धार करना मेरा धर्म है। अतः 64 माला करने वाले का अभी से वैकुण्ठ का रिजर्वेशन करवा दिया। कितनी खुशी की बात है। कोई भक्त 25–30–40 वर्ष जियेगा, परंतु रिजर्वेशन तो आज ही हो गया। कितनी खुशी की बात है। खुशी का तो अंत ही नहीं है अन्यथा इसमें न जाने कितनी बार जन्म लेना पड़ता और दुख सागर में गोते खाने

पड़ते। श्रीचैतन्य महाप्रभुजी ने स्वयं अपना नाम जपा इसलिए कि अगर वह नहीं जप करेंगे तो दूसरे भी नहीं जपेंगे। खुद का आचरण ही अन्य को करा सकता है। यह ध्रुव सत्य सिद्धान्त है।

देखो! भगवान् को प्राप्त करने का एक ही रास्ता है कि किसी को सताओ मत और जहाँ तक हो सके सबकी तन, मन, वचन से सेवा करो। धन हो, तो धन से करो, धन नहीं हो तो तन से करो, मन से करो तो फिर भगवान् आपसे दूर नहीं हैं। भगवान् इसलिए ही तो नहीं मिल रहे हैं हमको, क्योंकि हमारे स्वभाव बहुत खराब हो चुके हैं। हम किसी की परवाह नहीं करते हैं। परवाह करो। मनुष्य जन्म बार–बार नहीं मिलेगा, बड़ी मुश्किल से भगवान् की कृपा से मिला है और वह भी भारतवर्ष में और हमारे श्रीचैतन्य महाप्रभुजी की शरणागति में। तो हम इतने भाग्यशाली इसलिए हैं कि श्रीचैतन्य महाप्रभुजी का करुणा अवतार है, इसलिए सब हरिनाम कर रहे हैं और अभी पूरा संसार ही नाम कर रहा है। भगवान् की कितनी बड़ी कृपा हुई है। इतना हरिनाम पहले नहीं हुआ था, अब तो पूरा संसार हरिनाम में लगा हुआ है, क्योंकि मेरे पास फोन आते रहते हैं कि हम पर कृपा करो। मैंने कहा, "भाई! कृपा क्या करें? आप तो हरिनाम करते रहो। मेरे को भी फायदा, आपको भी फायदा।" इसलिए मैं तो सबको हरिनाम करने के लिए प्रेरित करता हूँ। बस हरिनाम करो, हरिनाम से सब आनंद हो जाएगा।

मन को एकाग्र करके हरिनाम किया करो। देखो! इधर उधर नहीं जाए, इससे नामाभास हो जाएगा।

Chanting harinama sweetly and listen by ears

प्रेम से हरिनाम करो और कानों से सुनो

अगर आप ऐसे प्यार से करोगे तो आपके अंदर विरह उत्पन्न हो जाएगा, जब विरह हो जाएगा तो भगवान् को भी सहन नहीं होता। भगवान् कहते हैं कि, "जैसे भक्त मेरा भजन करते हैं, मैं भी वैसे ही करता हूँ।" अगर भक्त रोता है तो भगवान् भी रोते हैं। फिर भगवान् उसको कोई सम्बन्ध दे देते हैं। जैसे हमारी लड़की हमारे पास 25 साल तक रही। अब उसकी शादी किसी नवयुवक से कर दी। जो 25 साल तक माँ–बाप के पास रही, वह उस माँ–बाप को छोड़ देगी। अब नवयुवक उसको नहीं छोड़ेगा और लड़की भी उसको नहीं छोड़ेगी। इसी तरह भगवान् भी ऐसे

भक्तों को नहीं छोड़ेंगे, न ही भक्त उनको छोड़ेगा और भगवान् उसे कोई न कोई सम्बन्ध ज्ञान दे देंगे और फिर गोलोक धाम ले जाएंगे। वैसे तो वैकुण्ठधाम हरिनाम से ही मिल जाएगा।

संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : जब हरिनाम जप करते हैं तो भाव अवस्था या विरह अवस्था प्राप्त होने पर उसे अन्यों के सामने प्रकट नहीं करते हैं, तो इसमें कोई दोष तो नहीं। इसको दबा कर रखना उचित है या नहीं है।

उत्तर : दबा के इसलिए रखा जाता है ताकि अभिमान न आए। जब सबके सामने रोएगा तो इज्जत होगी, यही अवगुण है। इसमें अगर हमारे रोने से दूसरों को प्रेरणा मिले कि उन्हें रोना क्यों नहीं आ रहा, हम भगवान् के लिए रोए, ऐसी भावना आये तब तो ठीक है। और यदि यह भावना हो कि मेरी इज्जत होगी, मुझे पूजेंगे, तो वह खराब है। इसीलिए छुपकर रोना चाहिए। यह तो आपके मन के ऊपर है कि आपका मन कैसा है ? दोनों तरह से फायदे हैं। अगर सब के सामने रोते हैं तो उन्हें भी प्रेरणा मिलेगी कि हम भी रोएँ।

मुझे तो मेरे गुरुदेव ने आज्ञा दी है कि मैं किसी से कुछ न छिपाऊँ इसलिए मैं सब कुछ खुलासे में बता देता हूँ। मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता। "इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति" (भाग 1-7) किताब में सब बताया है, जैसे कि मुझे दो बार भगवान् के दर्शन हुए। यह गुरुजी की आज्ञा से ही मैंने सब बताया है। वैसे बताना नहीं चाहिए। दो बार हनुमानजी के दर्शन हुए। मैं इतना, इतना हरिनाम करता हूँ। गुरुजी की आज्ञा से, मैं सब बता देता हूँ, जिससे सब दूसरों को फायदा हो। उन को प्रेरणा मिलेगी कि जब इतना बुड्ढा आदमी कर सकता है, तो हम जवान क्यों नहीं कर सकते ?

हरिनाम रूप में भगवान् का आविर्भाव

15

13 जनवरी 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण युगल में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा अहैतुकी प्रेमा भक्ति की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

आप सब भक्तगण मेरी बात कृपया करके ध्यान से सुनें। मैं तो एक तरह से एक माइक हूँ। कोई दिव्य शक्ति गुरुदेव या बाबा पीछे से बोलते हैं। न मैं एक हेड मास्टर था, न मैं लेक्चरार था, उनको तो लिखने पढ़ने का, भाषण देने का अभ्यास होता है। मैं तो एक छोटी सी टेक्निकल पोस्ट पर कार्यरत था। अतः मुझे बोलने का अभ्यास नहीं। न मैं इतना ज्ञानी हूँ। मैं तो केवल माइक हूँ, पीछे से मेरे गुरुदेव या भगवान् ही बोलते हैं, जो माइक से आवाज बाहर आ जाती है उसे आप भक्त सुनते हो। आप विचार करें कि "इस जन्म में भगवद् प्राप्ति" पुस्तक जो एक ही विषय पर केवल 'हरिनाम' पर लिखी गई हैं, सात पुस्तकें कैसे लिखी जा सकती थीं? यह भगवान् ने ही लिखाई हैं। मैं तो अल्पज्ञ हूँ। ऐसा समझकर श्रद्धा पूर्वक सुनने से आप को हरिनाम में रुचि और भगवान् से प्यार उदय हो जाएगा। कोई ऐसा न समझे कि यह सब जो कुछ हो रहा है, अनिरुद्ध दास के द्वारा हो रहा है। यह तो हरिनाम के द्वारा ही हो रहा है, क्योंकि द्वारकाधीश के रूप में, श्री चैतन्य महाप्रभुजी ने यह सत्संग शुरू किया है। जो इस सत्संग को सुनेगा, उसे वैकुण्ठ धाम अथवा गोलोक धाम उपलब्ध होगा।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

अब मैं आप भक्तों को जो एक मार्मिक बात बता रहा हूँ, कृपया कर ध्यानपूर्वक सुनें! भगवान् की माया की, तीन गुणमयी धाराएं, सभी भक्तों में तथा नास्तिकों में हुआ करती हैं। यह धारा ही नरक में ले जाती हैं अथवा भगवान् से मिलाती हैं। वह धाराएं हैं – तामसिक धारा, राजसिक धारा और सात्त्विक धारा। यह माया का परिवार है जो मानव मात्र के स्वभाव में रहता है।

मायिक तामसिक धारा के स्वभाव वाला मानव कैसा होता है? सुस्त पड़ा रहता है, मेरा क्या कर्तव्य है, नहीं जानता है। भक्ष्य, अभक्ष्य, मांस, मदिरा का सेवन करना, विषय वासनाओं में फंसे रहना, मानवमात्र से झगड़ा करके तंग करना, मूर्खता में लिप्त रहना, काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष और अहंकार में जकड़े रहना आदि आदि दुर्गुणों में फंसे रहना। कैसे फंसे रहना? दयाहीन, क्रोध और अपनत्व में डूबे रहना। यह है तामसिक माया वाले का आचरण, स्वभाव। आगे इसका क्या फल होगा? यह सीधा नर्क में जाएगा और अनंत कोटियुगों तक दुख भोगता रहेगा। अब राजसिक स्वभाव वाला कैसा होता है? यह भी शुभ कर्म से अंधा होता है। शुभकर्म इससे नहीं हो सकते। कमाने हेतु इसकी हाय–धाय कभी मिटती नहीं, यह कर लूँ, वह कर लूँ। इसी में सारी जिंदगी खत्म कर देता है। तामसिक वृत्ति के अवगुण भी इसमें रहा करते हैं। सूक्ष्म रूप में ही मेरे गुरुदेव बता रहे हैं। अब सात्विक धारा वाले का आचरण (स्वभाव) कैसा होता है? यह देवी–देवताओं को पूजता है। भगवान् की तरफ इसका मन 5% ही जाता है, ज्यादा नहीं जाता। राजसिक, तामसिक अवगुण इसमें कम होता है।

तीनों गुणों से ऊपर, निर्गुण स्वभाव वाला मानव, देवी–देवताओं को मानता जरूर है, लेकिन यह कृष्ण और राम का उपासक होता है। इसमें अहंकार नहीं होता है। इसमें बहुत गुण होते हैं। परमहंस अवस्था का होता है। दिव्यता को लिए हुए होता है। इसका स्वभाव है कि यह भगवान् को प्राप्त कर लेता है। यह वैकुण्ठ में जाता है। गोलोक में जाता है ।

श्रीमद्भागवत पुराण में लेख है कि भक्ति की शुरुआत है, प्रथम में, माँ–बाप की तन, मन, प्राण, वचन और धन से सेवा करनी चाहिए। यही है भक्ति क्लास की एल.के.जी., यू.के.जी. में भर्ती होना। यदि पुत्र 100 साल तक भी माँ–बाप की सेवा करता रहे तो भी वह माँ–बाप की सेवा करके उऋण नहीं हो सकता। ऐसा श्रीमद्भागवत में लिखा है। माँ–बाप

का अपने बेटे को आशीर्वाद देना, भगवान् के आशीर्वाद से भी बढ़कर है। जो भक्ति का साधक, माँ–बाप की सेवा नहीं करता, उसे भक्ति में लगना ऐसे ही है, जैसे अंधा होकर रास्ते में चलना। उसको हरिनाम करने पर भी और अधिक से अधिक माला करने पर भी, हरिनाम में रुचि नहीं आएगी। यह प्रत्यक्ष उदाहरण है क्योंकि माँ–बाप की सेवा ही भक्ति उपलब्ध करने की पहली सीढ़ी पर पैर रखने जैसी अवस्था है। धीरे–धीरे ऊपर चढ़ता–चढ़ता वह उच्चतम सीढ़ी पर पहुँच सकेगा अर्थात् उसे परमावस्था उपलब्ध हो सकेगी अर्थात् उसे तुरीय अवस्था उपलब्ध हो सकेगी। तब वह संसार से पूर्ण वैरागी बन सकेगा और पूर्ण रूप से भगवान् की ओर झुक सकेगा। उसको जन्म–मरण अवस्था से छुट्टी मिल सकेगी। यही भक्ति उपलब्ध करने का सही और सर्वोत्तम साधन तथा रास्ता है।

जब माया के घर में ही रहना नहीं आया तो चिन्मय (सुपर नेचुरल) भक्ति के घर में कैसे रहना आएगा? माया के घर में रहने का अर्थ है कि प्रथम में साधक ने, तन, मन, वचन से अपने माँ–बाप को खुश नहीं किया। अरे ! जब माँ–बाप को ही खुश नहीं किया, तो भगवान् को कैसे खुश कर सकते हो? दूसरा, जो परिवार में चाचा–चाची हैं, बहन–भाई हैं, भतीजे हैं, आदि से प्यार से रहना ही नहीं आया। फिर भगवान् से प्यार कैसे होगा? इसका मतलब है कि यदि एल.के.जी., यू.के.जी. पाठशाला में ही भर्ती नहीं हुए तो शुरुआत में ही भक्ति महारानी की उत्तम पाठशाला में भर्ती होने का कुछ सवाल ही नहीं अर्थात् उस स्थिति तक नहीं पहुँच सकते। स्थिति का अर्थ है जो आखिरी है, विरहावस्था, अष्ट विकार, वही पी–एच.डी. है। कहने का तात्पर्य है कि आरंभ में मर्यादा में रहना सीखो। जो मर्यादा भगवान् राम ने बनाई है, उसको अपनाये बिना भक्ति पाठशाला में भर्ती होने का कोई प्रश्न नहीं उठता। जब मायिक घर वालों से ही नहीं बनती, तो समाज में बनने का प्रश्न ही नहीं उठता। भक्ति पथ पर जाना तो बहुत दूर की बात है। इस कारण हरिनाम जपने से लाभ नहीं होगा।

अब प्रश्न उठता है कि बहुत से बच्चों के माँ–बाप का स्वर्गवास हो चुका है, तो वे भक्त उनकी कैसे सेवा कर सकेंगे? उनकी सेवा यही होगी कि नित्य दो माला, उनके प्रति जप कर, उनका उद्धार करें। यदि वे 84 लाख योनियों में भटक रहे हैं या नरकों का भोग भोगे जा रहे हैं और यदि उनका बेटा, नित्य दो हरिनाम की माला उनके प्रति कर ले, तो उनका उद्धार निश्चित रूप से हो जाएगा एवं वह उच्चतम सुखकारी लोकों में

चले जाएंगे। इससे भक्ति पथ के मार्ग की शुरुआत बन जाएगी एवं उसे हरिनाम में रुचि होने लगेगी। हरिनाम ही उस साधक को, हर प्रकार से अपने परिवार को प्यार से देखने की दृष्टि दे देगा। इसके बाद समाज की ओर भी, उसकी दृष्टि सुख देने की बन जाएगी तथा हर प्राणी की ओर सेवा की दृष्टि जागृत हो जाएगी। यह गुण अपने आप उसमें आने लगेंगे। जैसे धीरे–धीरे अवगुण उसमें भर गए थे, वैसे ही धीरे–धीरे गुण उसमें भरते जाएंगे। वह किसी भी जीव को बुरी नजर से नहीं देखेगा। उसमें माया का सतोगुणी भाव जागृत हो जाएगा, धीरे–धीरे उसके अशुभ संस्कार, विलीन होने लगेंगे और शुभ संस्कार उदय होने लग जाएंगे। अतः उसका मानव जीवन सुखमय बनने लगेगा। दुख का तो सदा के लिए जड़ सहित नाश हो जाएगा।

भगवान् की माया भी दो तरह की होती है। एक माया होती है। जो संसार में फंसाती रहती है और दूसरी माया को, भगवान् की योगमाया कहते हैं। भगवान्, इस योगमाया को अपनाकर ही लीलाएँ करते रहते हैं। योगमाया के बिना भगवान् भी लीला नहीं कर सकते। अपना आचरण ठीक करो। मर्यादा से रहना सीखो। फिर तो भक्ति संयोग बनने में देर नहीं होगी। जीवमात्र पर दया करना सीखो। अपराध से बचना आदि उच्चस्थिति का आचरण है। पहले नीचे से चलो, तब ही पहाड़ की चोटी पर आनंद कर सकोगे।

तीन–तीन लाख हरिनाम करने वाले भक्त, पर फिर भी भगवद् प्रेम जागृत नहीं हुआ। क्या कारण है? कारण है कि उनको एल.के.जी., यू.के. जी. में ही रहना नहीं आया, घर में ही रहना नहीं आया, जगत् में ही रहना नहीं आया। अरे ! वह भगवान् के पास कैसे रहेगा? इतना तीन–तीन लाख करने पर भी विरहावस्था नहीं आई। अश्रुपात ही नहीं हुआ। क्या कारण है? अष्टसात्विक विकार होना चाहिए। यह अवस्था तो स्वतः ही उदय हो जाएगी, यदि आचरण के उक्त लेख को अपनाओगे तो। यदि ऐसा न हो तो मेरा बोलना सब व्यर्थ हो गया। लेकिन ऐसा नहीं हो सकता, 100% सत्य होगा। कोई भी साधक आजमा कर देख सकता है। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। जो भी मेरे गुरुदेव या मेरे बाबा प्रेरणा करते हैं, उसी प्रेरणा को भक्त समुदाय, प्रत्यक्ष देखकर अनुभव भी कर रहे हैं। जैसे, यह तीन प्रार्थनाएं, जो सभी धर्म शास्त्रों का सार हैं। यह तीन प्रार्थनाएं कहीं भी, शास्त्रों में नहीं लिखी हैं। यह ऐसे इंजेक्शन हैं, तीन प्रार्थनाएं, कि इनसे भगवान् की प्राप्ति बहुत शीघ्र हो जाती है।

दूसरी है–तुलसी माला जपने पर सुमेरु हाथ में क्यों आता है? यह भी कहीं लिखा हुआ नहीं है, लेकिन मेरे बाबा ने बताया है। अन्य उदाहरण प्रत्यक्ष सामने आ रहे हैं। कइयों की मौत तक टल चुकी है, आदि आदि। कहते हैं :

कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिर सुमिर नर उतरहिं पारा।।

"केवल" क्यों लिखा है? इसका मतलब यह हुआ कि दूसरा रास्ता नहीं है। फिर कहते हैं :

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

(चै. च. आदि 17.21)

कलियुग में केवल हरिनाम है, हरिनाम है, हरिनाम है, तीन बार बोला है कि दूसरा रास्ता नहीं है, नहीं है, नहीं है और हमारे हरिनाम करने वाले जो गुरुवर्ग, पीछे हो गए हैं, उन्होंने हरिनाम करके भगवद् प्राप्ति की और भगवान् उनके पास आते थे, बोलते थे। इसलिए हरिनाम करो, चाहे मन लगे, चाहे न लगे।

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

भाव से लो, प्यार से लो, आप बिना प्यार के लो, सोते हुए लो, चलते–फिरते लो, गुस्से में लो, कैसे भी लो, आपका उद्धार निश्चित ही है। मर्यादाओं का पालन करते हुए ही, भक्ति पथ से भगवत्प्रेम उपलब्ध कर सकोगे। जैसे, किसी बाप के पांच बेटों में से कोई एक बेटा नालायक हो गया तो क्या माँ–बाप उसे घर से निकाल देते हैं? नहीं, उसको सुधारने की कोशिश करते हैं। इसी प्रकार उस नालायक भक्त, क्योंकि उसने पूरा हरिनाम नहीं किया, 64 माला, एक लाख नाम नहीं किया और वह मर गया तो उसको मनुष्य जन्म ही मिलेगा। भगवान् दोबारा जन्म देकर सीधे मार्ग पर लाकर छोड़ देंगे। उसको 80 लाख योनियों में, पशु, पक्षी, पेड़ आदि में नहीं जाना पड़ेगा। उसको भगवान्, अपनी गोद में आने का मौका देते हैं क्योंकि यह अनंत अरबों चतुर्युगों से भगवान् से बिछुड़ा हुआ है। भगवान् चाहते हैं कि अब तो इस दुख सागर से पार हो कर वह मेरी गोद में आ जाए। तभी तो भगवान् का नाम दयालु है। लेकिन मानव दुर्भाग्य से, उनकी दया की

तरफ देखता ही नहीं है और उम्र भर दुख पाता रहता है। पहले अपने स्वभाव को सुधारो जिसे शास्त्र कारण शरीर कहता है तो भगवान् के लोक पहुँच जाओगे अर्थात् भगवान् के वैकुण्ठ व गोलोक धाम में चले जाओगे। शुरू में एल.के.जी., यू.के.जी. में बैठो तब ही तो पी–एच.डी. की क्लास में बैठ सकोगे। कोई चाहे हम को तो अभी वैकुण्ठ मिल जाए, तो कितनी बड़ी मूर्खता है। कितना बड़ा अज्ञान है। जब वैसा स्वभाव बन जाएगा तो बड़ी सरलता से, सुगमता से भगवत्प्रेम मिल जाएगा और संसार से वैराग्य होकर सुख सागर में तैरने लगोगे। जब भक्ति की नींव ही जहरीली है, तो अमृतपान तो बहुत दूर की बात है। धीरे–धीरे अपने स्वभाव को सुधारो। यह स्वभाव ही नर्क में ले जाता है, यही वैकुण्ठ में ले जाता है। इसमें मन ही राजा है, अन्य इंद्रियां तो मन की नौकरानियां हैं। बेचारी नौकरानियां क्या कर सकती हैं? मन ही सब कुछ है। मन को सुधारो।

देखिए ! शास्त्रों में दस अपराध लिखे हैं। लेकिन 94 अपराध होते हैं। कौन से? 10 शास्त्र के तथा 84 लाख योनियों के प्रति हैं, भगवान् उनके भी तो हृदय मंदिर में बैठे हैं, लेकिन शास्त्र में यह दस अपराध ही लिखे हैं। लेकिन हमारे गुरुजी कहते हैं कि अपराध 94 होते हैं, उनसे बचो। फिर भगवान् बहुत जल्दी मिल जाएंगे। चींटी को भी मत सताओ, उसमें भी भगवान् बैठे हुए हैं। भगवान् हर एक के हृदय में बैठे हुए हैं।

यह दस अपराध कौन से हैं?

गुरु अवज्ञा – गुरु का कहना न मानना। शास्त्र की निंदा करना। नाम में अर्थवाद करना और हरिनाम के बल पर पाप करना। श्रद्धाहीन को शिक्षा देना। श्रद्धाहीन को शिक्षा अच्छी नहीं लगेगी। नाम को, अन्य शुभ कर्मों के समान समझना और अहंभाव (घमंड) करना और भगवान् का नाम लेते हुए मन का अन्य तरफ, इधर उधर चले जाना, यह भी अपराध है और साधु की निंदा करना, यह भी अपराध है। पाप करते रहना। और कुछ सेवा अपराध होते हैं।

उदाहरण तौर पर जैसे पाठशाला हैं, स्कूल हैं, मुसलमान मदरसा कहते हैं। वहाँ, एल.के.जी., यू.के.जी. से शुरू होकर पी–एच.डी. तक कक्षाएँ होती हैं। तो प्रथम में, बच्चे को एल.के.जी. में बिठाना पड़ता है, तभी समय से पी–एच.डी. क्लास में बैठ सकेगा। ऐसा तो नहीं हो सकता कि शुरू में ही पी–एच.डी. की क्लास में बिठा देंगे। सीढ़ी दर सीढ़ी, पैरों से

चढ़कर ही, छत पर जा सकोगे। क्या बिना चढ़े ही छत पर चले जाओगे? शुरू में दास्य–भाव से भक्ति करेगा, तब समय से मधुर–भाव बन जाएगा। शुरू में ही मधुर–भाव दे दिया गया तो कामना स्वप्न में भी पूरी नहीं हो सकती, उल्टा नीचे मुँह करके गिरना पड़ेगा। न संसार का आनंद मिलेगा, न भगवान् का ही आनंद मिलेगा। दोनों तरफ से ही खड्डे में गिर जाएगा। ऐसी मूर्खता भूल कर भी नहीं करनी चाहिए। क्रम–क्रम से आगे पैर रखना चाहिए। अगर ऐसा नहीं किया तो धड़ाम से नीचे गिरना पड़ेगा।

भक्तगण! देखिए! सुनिए! हम शुरू से भगवान् से ही आए हैं। सृष्टि के पहले कुछ भी नहीं था। केवल भगवान् ही थे। भगवान् में इच्छाशक्ति की हरकत हुई, स्फुरणा हुई। जैसे जन्म लेते ही मानव का शिशु बच्चा कुछ भी नहीं जानता, लेकिन धीरे–धीरे जब बड़ा होने लगता है तो इसे खेलने की स्फुरणा होती है। तब इसमें तोड़फोड़ करने की स्वाभाविक इच्छा होती है, तोड़फोड़ करता है। इस इच्छा को पूरी करने हेतु शिशु के माँ–बाप, इसके लिए तरह–तरह के खिलौने लाकर, उसे उसमें लगा देते हैं। अब यह इन खिलौनों में व्यस्त हो जाता है। अब, जब यह बड़ा हो जाता है, इसको थोड़ा–थोड़ा संसार का ज्ञान होने लगता है, अब माँ–बाप इसे धर्म पर चलने हेतु किसी आश्रम में, पाठशाला में, गुरु के पास भेज देते हैं। वहाँ जीवन को कैसे चलाया जाता है? यह शिक्षा पढ़ता है। मानव की लगभग सौ साल की उम्र होती है, लेकिन इसके कर्मानुसार इसको यह उम्र मिलती है। कोई जन्म लेते ही मर जाता है, कोई दस साल का मरता है, कोई बीस साल का, कोई चालीस साल का, कोई साठ और कोई सत्तर का, कोई नब्बे का और कोई सौ का। यदि धर्मानुसार जीवन चलाता है तो सौ से भी ऊपर उम्र में मरता है। जो भगवान् की व्यवस्था के अनुसार अपना जीवन बिताए, उसकी उम्र बढ़ जाती है। आचार–विचार जिसका शुद्ध है, उसको न तो कोई रोग आता है और न वह जल्दी मरता है। जो इस प्रकार जीवन नहीं चलाता, वह जल्द ही मर जाता है। भगवान् को यह मानव की देह ही ज्यादा पसंद आई, अन्य देह उन्हें ठीक नहीं लगी। ऐसी देह में भगवान् प्रकट हुए हैं, अतः इसी को भगवान् अच्छी समझते हैं और मानव सुख अर्जित कर सके, इसके हेतु भगवान् ने पुस्तकें दी, जिन्हें धर्म शास्त्र कहते हैं। इनके अनुसार मानव को अपना जीवन बिताना चाहिए। लेकिन मानव, इनको न मानकर स्वेच्छाचारी बन गया और धर्म शास्त्र के विरुद्ध अपना जीवन बिताने लग गया।

भगवान् ने अपनी शक्ति से योगमाया को प्रकट किया। भगवान् ने सोचा, "इस प्रकार से मेरी सृष्टि सुचारु रूप से नहीं चलेगी।" माया शक्ति से मानव अपना जीवन यापन करेगा। जैसा कर्म करेगा वैसा ही इसे जीवन उपलब्ध होगा। माया क्या है? माया है – अँधेरा, अज्ञान, अस्थिरता, अनित्यता। इस माया की तीन शक्तियां हैं। सत, राजस और तामस। इनके द्वारा ही मानव का स्वभाव बनता है। इनके ऊपर है – निर्गुण शक्ति। जो भगवान् से युक्त रहती है। उसमें गुण नहीं होता, भगवान् इस शक्ति से युक्त रहते हैं, यह स्वतंत्र शक्ति है। बाकी तीनों में गुण होते हैं। इन गुणों से ही मानव 84 लाख योनियाँ भोगने को जन्म लेता है। भगवान् भी योगमाया को अपनाकर संसार में अपना खेल आरंभ करते हैं तथा उनको ही भगवान् की लीलाएँ बोला जाता है। लेकिन भगवान्, यह लीलाएँ अकेले नहीं कर सकते, अन्य शक्तियों को संग अपनाकर लीला करते हैं। जैसे बच्चा, खिलौनों से खेल खेलकर आनंद अनुभव करता है, इसी प्रकार भगवान् भी ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव बनकर लीलाएँ रचते हैं। तीनों से ही संसार में अपना कर्म रचाते रहते हैं। ब्रह्मा बनकर संसार रचता है, विष्णु बनकर संसार की रक्षा और पालन करता है और शिव बनकर संसार का नाश करता है। यदि ऐसी लीला न करें तो संसार का अस्तित्व ही नहीं रह सकता।

भगवान् ने विचार किया कि स्थूल रूप में कुछ लीला करें, अर्थात् लीला की सामग्री भी हो तो भगवान् ने तीन सामग्री इकट्ठी की। यह सामग्री क्या है? पहला है स्थूल शरीर, दूसरा सूक्ष्म शरीर, इसको लिंग शरीर भी कहते हैं। तीसरा है कारण शरीर अर्थात् स्वभाव का शरीर। इन तीनों शरीरों से ही भगवान् की सृष्टि बनती है, स्थिर रहती है एवं नाश को प्राप्त होती है। यह तीनों शक्तियां ही इसका संचालन करती हैं। यह तो भगवान् की अलौकिक माया है। लेकिन प्रेम शक्ति ऐसी उच्चतम भाव शक्ति है कि भगवान् भी इस शक्ति से, वश में हो जाते हैं। वह है, मानव (जीव) का भगवान् के प्रति धारा प्रवाहित भगवत् स्मरण। स्मरण में ऐसी शक्ति है कि राक्षस भी मुक्त हो जाते हैं। पूतना राक्षसी, भगवान् को जहर पिला कर मारने आई थी, लेकिन उसको धात्री के समान गति दी क्योंकि उसने मरते समय स्मरण किया था कि, "मुझको छोड़ दे! मेरे को छोड़ दे! छोड़ दे!" ऐसा स्मरण करते हुए मरी थी, इसलिए उसको धात्री के समान गति दी।

इसके लिए भगवान् ने जगत् में अपना आविर्भाव किया, जो है हरिनाम। इसके अभाव में भगवत् स्मरण हो ही नहीं सकता। स्मरण के लिए हरिनाम करना जरूरी है। स्मरण कमजोर क्यों होता है? क्योंकि इसके पीछे गुणमाया लगी रहती है। गुणमाया है – सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण। इन गुणों से मानव के स्वभाव में निकृष्टता आ जाती है, अतः लगातार भगवत् स्मरण हो नहीं सकता। इसके लिए चाहिए, सच्चा सत्संग एवं धर्म शास्त्र के कहे अनुसार अपना जीवन यापन करना। इसके विपरीत जीवन यापन से कर्मानुसार 84 लाख योनियों में जन्म लेना पड़ेगा जो एक तरह से यम यातनाएं ही होती हैं। लेकिन भगवान् की माया ही ऐसी है कि जीव इन में ही सुख मानता है, जो वास्तव में दुख के हेतु हैं। फिर भी भगवान् दया करके जीव को अपने पास बुलाने हेतु, मानव का जन्म देते हैं क्योंकि मानव में अपने दुख के निवारण की बुद्धि होती है, परंतु अन्य 80 लाख योनियों में केवल खाना–पीना और भोग करना ही होता है। वे अपना उद्धार नहीं कर सकते क्योंकि वे अज्ञान अंधकार में पड़े रहते हैं, उनको सुख पाने का रास्ता मालूम नहीं है। यह भगवान् की ही माया है।

गर्भाशय के बिना कोई भी जीव जन्म नहीं ले सकता। गर्भाशय भी एक प्रकार की घोरमय यातना है, यह भी नर्क है, जिसमें जीव कितना दुख पाता है। जो दुख पाता है, वही उसको अनुभव कर सकता है। जन्म लेने पर भी, उसके पीछे दुख पर दुख लगा ही रहता है, फिर भी जीव इतना अज्ञानी है, अंधा बना रहता है कि उसे ही सुख मानता रहता है।

उदाहरण के लिए पेड़ को ही देख लीजिए। सर्दी में, गर्मी में, बरसात में, आंधी में, पानी में झकझोड़ा जाता है। तूफान से आक्रांत रहता है और उम्र भी इसकी बहुत ज्यादा रहती है एवं मानव उसे काट काट कर कैसा दुखी करता रहता है। बेचारा बोल नहीं सकता, दुखी होता रहता है। मानव अपने सुख के लिए तरह–तरह से उसे दुखी करके पाप करता रहता है। अतः उसको (मानव को) 84 लाख योनियों में भ्रमण करना पड़ेगा। सत्संग के अभाव में मानव, अनंत कोटि योनियों में जन्म लेकर दुखी होता रहता है। यही तो भगवान् की माया है। नालियों में कीड़ा बनकर, सड़ा हुआ दुर्गंध युक्त पानी पीकर अपना जीवन यापन करता है और फिर बड़े कीड़े उसको खा जाते हैं। फिर से उनके गर्भ से जन्म पाकर, फिर उसी गंदी नाली में पड़ कर भोग भोगता रहता है। इसीलिए धर्मशास्त्र मानव को ज्ञान नेत्र देकर, समझा रहे हैं कि अब भी हमारे कहे

अनुसार अपना जीवन बिताओ वरना दोबारा यह मानवदेह नहीं मिलेगी। मानव देह, अनेक चतुर्युगी अरबों, खरबों वर्षों के बाद मिलता है। अतः धर्मशास्त्र बोलते हैं कि मानव जन्म अति दुर्लभ से भी अति दुर्लभ है। अतः इसे बेकार मत करो। नहीं तो फिर पछताना पड़ेगा। कुछ नहीं मिलेगा।

अब पछताय होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत।
मानव जन्म बेकार हुआ और अंत में मिल गई रेत।।

कुछ नहीं मिलेगा। सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण के स्वभाव से बचने हेतु भगवान् ने, मानव को सलाह दी और बोले, "मेरा नाम ही कलियुग में उद्धार करने वाला है।" वह है :

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

जैसे अमृत, बिना जाने पीने वाले को, अमर बना देता है और जहर, बिना जाने पीने वाले को मार देता है। इसी प्रकार से भगवान् के नाम का स्वभाव है कि वह मंगल कर देगा। भगवान् का नाम जो मंगलकारी है, उसमें आपको सदा चारों तरफ से सुख ही सुख मिलेगा। इसका स्वभाव मंगल करने का है। उद्धार करने का है। जैसे अजामिल ने तो अपने लड़के को पुकारा था केवल, 'नारायण'। अजामिल तो इतना दुष्ट, पापी था लेकिन उसके मुख से 'नारायण' निकल गया। नारायण उसका छोटा बच्चा था, जिसमें, उसका प्यार था। इसलिए जब यमराज के दूत आए तो वह घबरा गया और नारायण उच्चारण हो गया। उसके नारायण उच्चारण होते ही वैकुण्ठ से भगवान् के पार्षद आकर उसको वैकुण्ठ ले गए। बताइए! एक नाम में कितना प्रभाव है।

कृष्ण ने दया करके श्री चैतन्य महाप्रभु का अवतार लिया है। उन्होंने सबका उद्धार करने का बीड़ा उठाया है। एक दिन तो जन्म–मरण से पिंडा छूट ही जाएगा। यह 100% सत्य वचन है। वह बहुत भाग्यशाली है, जो श्री चैतन्य महाप्रभुजी के शरणागत हो गया, उसका उद्धार निश्चित रूप से होगा। जब 28वें चतुर्युगी के अंत में कलियुग का पदार्पण होता है, तब कृष्ण ही चैतन्य महाप्रभु के रूप में, राधाजी का अंग लेकर और राधाजी का भाव लेकर अवतरित होते हैं। राधा, कृष्ण के अभाव में कैसे बिलखती है? इसी स्वाद को चखने के लिए कृष्ण ने चैतन्य महाप्रभु का अवतार लिया था। यह भी श्रीमद्भागवत पुराण में गर्गजी ने नंदबाबा को

बताया था कि कभी पीत वर्ण से भी भगवान् प्रकट होते हैं। पीतवर्ण, चैतन्य महाप्रभुजी का वर्ण है। जीवनभर अपार दया मूर्ति, इस अवतार का उद्देश्य है कि जो हरिनाम बेमन से भी करेगा, एक दिन वैकुण्ठवासी बन जाएगा, गोलोक वासी बन जाएगा। हम बड़े भाग्यशाली हैं कि हमारा जन्म भारत में हुआ है और गौरहरि का आविर्भाव हुआ है। इससे बड़ा भाग्य क्या होगा? 'प्रेम' ही भगवान् का पर्यायवाची शब्द है। प्रेम ही भगवान् का हृदय है। भगवान् यशोदा की मार भी खाते थे। गोपबालक उनके कंधे पर चढ़ जाते थे। भीष्म पितामह ने भगवान् को हथियार उठाने पर मजबूर कर दिया था जबकि भगवान् ने कहा था कि, "मैं कभी भी हथियार नहीं उठाऊंगा।" भगवान्, भक्त से हार जाते हैं। भक्त ही भगवान् को नचाता है। काल और महाकाल भगवान् से थर–थर कांपते हैं, लेकिन भगवान्, भक्त से थर–थर कांपते हैं। यही तो भगवान् की अलौकिक कृति है। यशोदा के भय से कृष्ण, नंदलाला माखन से सना अपना मुंह साफ कर देते हैं।

देखिये! भगवान् भक्त से कितना डरते हैं। भगवान् की कृति को केवल भक्त ही समझ सकता है। ब्रह्मा और शिवजी भी नहीं समझ सकते। ऐसा श्रीमद्भागवत पुराण में पढ़ने को मिलता है। इसलिए यदि किसी को सुख पाना हो, इस दुष्ट कलियुग में, तो हरिनाम करो। हरिनाम करने से आपको यहाँ भी सुख और आगे भी सुख मिलेगा, क्योंकि मनुष्य जन्म फिर मिलने वाला नहीं है।
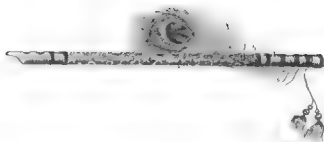
संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : अपने मन को 100% नाम सुनने में नहीं लगा पाते तो क्या हम अपने मन को वृंदावन धाम या राधा कुंड धाम में लगा सकते हैं ? क्या यह शुद्ध नाम में माना जाएगा ?

उत्तर : हाँ! हाँ बिल्कुल लगा सकते हैं। लीलाचिंतन में, धामचिंतन में मन को लगा सकते हैं। वह शुद्ध नाम ही होगा।

नामनिष्ठ का संग तीव्र गति का साधन है

20 जनवरी 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद करें।

किसी भगवद् प्रेमी का प्रवचन किस महत्त्व से लाभप्रद होता है, जिस प्रवचन से माया दूर हो और भगवान् से प्यार हो जाए, संतों से प्यार हो जाए, संसार से वैराग्य हो जाए। जिस प्रवचन से दुख सागर से पिंडा छूट जाए तथा सुख सागर में तैरने लग जाए। इसका भगवान् ने सरल, सुगम रास्ता बताया है– केवल हरिनाम, केवल हरिनाम, केवल हरिनाम। चाहे मन लगाकर करो, चाहे बेमन से करो। मानव का जीवन सफल कर लो और ऐसा सरल, सुगम साधन भगवान् ने क्यों बताया? इसका कारण है कि उन युगों में, सतयुग में, त्रेता में और द्वापर युगों में मानव बलशाली था। तब वातावरण भी शुद्ध था। अब कलिकाल में वातावरण अत्यंत गंदा होता है, खानपान जहरीला होता है तथा सतीत्व का अभाव होता है। पूरे संसार में नास्तिकता का साम्राज्य फैला रहता है। माया का परिवार जीवमात्र पर हावी रहता है। माया का परिवार क्या है? यह है – काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार। सतोगुण का नामोनिशान नहीं रहता। तमोगुण, रजोगुण दसों दिशाओं में फैला रहता है। दुष्ट मानव सुखी दिखता है और सीधा मानव दुखी दिखता है। क्यों है ऐसा? सरल मानव इस युग में बहुत कम होते हैं और दुष्ट मानवों की भरमार रहती है। कोई किसी को नहीं मानता। केवल पैसे के पीछे सभी दौड़ते रहते हैं। इस

समय स्वार्थ का संसार है। बिना स्वार्थ के तो अपने माँ–बाप को भी बेटे, पोते नहीं मानते, अन्य की तो बात ही क्या है। चारों ओर अराजकता फैली रहती है।

कोई न किसी का रक्षक है, न किसी का पालन कर्ता है। सभी मानव दुराचारी बन जाते हैं। न किसी का डर है, न किसी का भय है। वास्तविकता तो यह है कि बिना दंड नीति के न घर चल सकता है, न देश चल सकता है। तभी तो संसार में जेलखाने का आविष्कार हुआ तथा परलोक में नरकों का आविष्कार हुआ। अतः डर की वजह से ही मानव अपनी सीमा में रहता है। डर से तो सर्कस में, बब्बर शेर भी काबू में रहता है। मानव से थर–थर कांपता है। जैसे मानव उसे नचाता है, शेर नाचता रहता है। जबकि शेर जंगल का राजा है, फिर भी उसकी कैद हो जाती है। बिना दंड के शांति नहीं बन सकती।

जब तक मानव मात्र को एल.के.जी., यू.के.जी. में भर्ती नहीं किया जाता, तब तक उसको पूरा ज्ञान उपलब्ध नहीं होता। ज्ञान क्या है? ज्ञान, वह अमृत है जिससे मानव अमर बन जाए। इसकी मंदबुद्धि में यह बात बैठ जाए कि मेरा इस रास्ते पर चलने से ही भला हो सकता है और मेरा सब बुरा टल सकता है। यह साधन है, धर्मशास्त्र का अवलोकन। धर्मशास्त्र है, मानव को सुखी करने का प्राण। जब तक मानव के पास प्राण है, तब तक मानव की संज्ञा है। प्राण न हो तो मानव मृत ही है। धर्मशास्त्र बड़ा विचित्र है। इसका पार पाना मानव के बस की बात नहीं। अतः भगवान् ने कृपा कर, मानव को उन धर्मों का प्राण दे दिया। वह है– केवल हरिनाम, केवल हरिनाम, केवल हरिनाम! भगवान् ने कलियुग में श्री चैतन्य महाप्रभुजी के रूप में आकर हरिनाम का प्रचार किया है। हरिनाम, उसका स्वभाव है कि दुख से पिंडा छूट जाए। जन्म–मरण छूट जाए। हरिनाम मानव को उपलब्ध हो जाये तो अमरता भी मानव के हाथ में आ जाये एवं उसका सारा दुख मूल सहित नष्ट हो जाये। ब्रह्मा की सृष्टि का वास्तविक ध्येय यही है और अन्य सब बेकार है।

मानव की सबसे बड़ी दुश्मन है माया। इसके पास तीन हथियार हैं– सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण। इसमें मन फंसा रहता है। माया भी दो प्रकार की है। एक है, संसार में फंसाने वाली माया। दूसरी है, योगमाया, इसको भगवान् अपनाते हैं। इस योगमाया के बिना भगवान् कोई भी लीला नहीं कर सकते। माया का परिवार है– काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष,

अहंकार। इनका प्राकट्य कैसे होता है? माया के तीन हथियार हैं– सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण। इन तीनों हथियारों से मानव मात्र को कुचलती रहती है। इस माया से पिंडा कैसे छूटे? इससे छूटने का सरल सुगम साधन है– केवल हरिनाम, केवल हरिनाम। यह हरिनाम का हथियार, ऐसा बलवान और तेज धार का है कि माया को काट कर दूर फेंक देता है। माया इसके पास नहीं आती है। दूर से ही थर थर कांपती रहती है। अगर भूल से आ भी जाती है तो अपना अस्तित्व खो देती है एवं हरिनाम जापक, साधक के साथ संधि कर लेती है और जितना साधक का भला हो सकता है, माया उसकी मदद करने लग जाती है। यह है सात्विक माया। यह भगवान् के पीतवस्त्र की पोशाक पहनकर और खतरनाक लाल वस्त्र को उतार कर नाम जापक के पास आती है। जो हरिनाम के आश्रित नहीं है, लाल वस्त्र पहनकर उनको सताती रहती है। सताने का अर्थ है कि जो भी मानव अच्छे रास्ते से जाता है, उसके रास्ते में काँटे बिखेरती रहती है, जिससे मानव को काँटे चुभते रहने से वह बड़ा दुखी जीवन बिताता रहता है।

अब ऐसा मानव दुखी होकर हरिनाम जापक के पास आकर रो–रो कर पूछता है, "मेरा रोना कैसे बंद हो? कृपा कर बतायें।" तो हरिनाम जापक उसे बोलता है, "तू हरिनाम जप शुरू कर। हरिनाम ही तेरा दुख दूर करेगा।" अतः अब वह हरिनाम करने लगता है तो आलस्य दुश्मन, उस में बाधा (अड़चन) डालता है। हरिनाम करने बैठता है तो निद्रा उसे परेशान करती है। दुख का निवारण करने हेतु जबरन हरिनाम करने लगता है, तब देखता है कि यह दुश्मन उसे हरिनाम करने नहीं देते तो फिर अपने दुख के साथ हरिनाम जापक के पास आकर, अपनी परेशानियां बताता है।

तो हरिनाम जापक उसे कहता है, "शुद्ध कमाई कर, भूख से कम खा, सत्य बोल एवं किसी का भी दोष मत देख, अपराध से बच, जीवमात्र को भी मत दुख दे और हो सके तो जीवमात्र की मदद कर, क्योंकि जीवमात्र भगवान् का ही अंश है। जब ऐसा करेगा तो हरिनाम, जो स्वयं भगवान् है, तुम्हारी मदद करेगा।" ऐसी शिक्षा मानकर वह उपरोक्त के अनुसार जीवन बिताएगा तो उसको दुखों का शमन होते हुए दिखेगा। फिर उसे कुछ–कुछ हरिनाम में श्रद्धा विश्वास होने लगता है, तब फोन द्वारा बोलता है, "अब मेरा हरिनाम अधिक होने लगा है।" तब फोन द्वारा ही हरिनाम प्रेमी उसे

बोलता है, "अब एक लाख नाम रोज करने का यत्न कर, चाहे मन लगे चाहे न लगे। नामजप ही उसके दुख के नाश का कारण बनेगा।" अब सत्संग में आने का भी उसका मन करने लगता है। धीरे–धीरे उसका जीवन शुभ कार्यों में झुकता जा रहा है और दुष्कर्म, उसससे धीरे–धीरे छूटते जा रहे हैं। यह है हरिनाम की कृपा। अब वह भक्त की श्रेणी में आ जाता है, पहले वह साधारण मानव था। कहते हैं :

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।।

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 1)

"जो सन्मुख होगा, मेरे सम्बन्ध से, मेरी तरफ सम्बन्ध करने लगेगा, मेरी तरफ आने लगेगा तो उसके अनंत कोटि जन्मों के पापों का, एक क्षण में नाश कर दूँगा।" फिर कह रहे हैं :

जिन्ह कर नामु लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं।।

(मानस, बाल. दो. 314 चौ. 1)

"अरे! जो भी भगवान् का नाम ले रहा है, उसके जो रचे–पचे पाप हैं, जैसे पक्का रंग होता है जो उतरता नहीं है। ऐसे जो रचे–पचे पाप हैं वो सब जलकर भस्म हो जाएंगे।" एक नाम ही भगवान् का इतना प्रभावशाली है कि उतना पाप मानव कर ही नहीं सकता। भगवान् कह रहे हैं :

जौं सभीत आवा सरनाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं।।

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 4)

भगवान् कितने दयानिधि हैं। "जो डर कर के भी मेरी शरण में आ गया, दुख पा कर मेरी तरफ आ गया, वह मुझे प्राणों से भी ज्यादा प्यारा है।" भगवान् कितने दयालु हैं, लेकिन मानव एकदम सो रहा है। फिर कह रहे हैं, "अरे! तुम कुछ न सोचो। तुम कैसे भी नाम ले लो।"

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

(मानस. बाल. दो. 27, चौ. 1)

अरे! नाम में मन लगे, चाहे नहीं लगे। कैसे भी, सोते लो, चलते–फिरते, खाते–पीते। नाम ले लो तो तुम्हारा दसों दिशाओं में मंगल हो जाएगा। वैकुण्ठ और गोलोक धाम भी कोई ग्यारहवीं दिशा में तो होते नहीं है। दसों

दिशाओं में मंगल का मतलब है कि वैकुण्ठ पहुँच जाओगे, गोलोक धाम पहुँच जाओगे।

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

दसों दिशाओं में मंगल हो जाएगा क्योंकि संसार तो दुखालय है। तो सुखालय कहाँ है? गोलोक धाम में है। इसमें विचार करने की कोई बात नहीं है। दसों दिशाओं में आनंद ही आनंद बन जाएगा।

देखो! एकदम से तो आज तक कोई भी उच्चतम स्थिति प्राप्त नहीं कर सका है। जिसने भी जो कुछ उपलब्ध किया है, नीचे से ऊपर चढ़ा है। एकदम से ऊपर, जिसने भी चढ़ने की कोशिश की है नीचे आकर गिरा है अर्थात् सीधे, ऊपर चढ़ना असंभव ही है। किसी भी पल साधक, खड्डे में बीज बोकर बोले, "इस बीज से मुझे तो अभी ही फल चाहिए।" तो क्या उसे फल मिल जाएगा? केवल मूर्खता की बात है। गर्भाधान होने पर कोई भी जीव बोलेगा, "मुझे तो अभी बच्चा चाहिए?" तो क्या उसे बच्चा उपलब्ध होगा? समय पर ही, जो कुछ चाहेगा, मिल सकेगा। कोई भी साधन धीरे–धीरे सफल होता है। जल्दी करने से नुकसान हो जाता है। कलियुग में सुख सुविधा उपलब्ध करने का केवल एक ही साधन है कि मन से या बेमन से, किसी भी तरह भगवान् का स्मरण होता रहे। उसके जीवन का सफल होना, केवल हरिनाम जप ही है, अन्य कोई साधन है ही नहीं। यह साधन भी सत्संग से ही उपलब्ध हो सकता है। बिना सत्संग तो कुछ भी नहीं उपलब्ध कर सकते अर्थात् नामनिष्ठ का संग तीव्र गति का साधन है। इसका प्रभाव शीघ्र हो जाता है। कथा श्रवण से देर हो सकती है। लेकिन इस काल में नामनिष्ठ उपलब्ध होना असंभव ही है। हरिकृपा से मिल भी सकता है, जैसी जीव की सुकृति हो। नामनिष्ठ उसी को बोलते हैं जो चौबीस घंटे नाम की ही सेवा में रत हो। जिस जीव को मक्खन मिल जाए तो उसे छाछ, दूध, दही की क्या जरूरत है तथा जिस को शुद्ध चुंबक (पारस) मिल जाए उसे कमाने की क्या जरूरत है? वह तो लोहे को छू–छू कर सोना बना लेगा। अपना जीवन आसानी से बसर कर लेगा। जब उसे हरिनाम रूपी चुंबक या मक्खन मिले तो न तो उसे कहीं जाने की जरूरत है, न मंदिर जाने की जरूरत है, न उसे संत ढूंढने की जरूरत है। उसे तो किसी भी वस्तु की जरूरत नहीं है। वह तो अपना हरिनाम, अष्ट प्रहर जप कर मग्न रहेगा, उसे तो घर बैठे अमृत पीने को उपलब्ध हो गया।

यह जो अमृत बाँटा जा रहा है, किसी दिव्य शक्ति द्वारा ही बाँटा जा रहा है। अनिरुद्ध दास तो इस को छू भी नहीं सकता, पीना तो बहुत दूर की बात है। यह मैं भक्तों को सच–सच बोल रहा हूँ। भक्तों को गलत बोलना जघन्य अपराध है, इसलिए अपराध से ऐसे ही डरना होता है जैसे कि विषधर सर्प से अथवा बब्बर शेर से होता है। उस जीव का उद्धार तो निश्चित है, क्योंकि यह जन्म मरण और दुख को हटाने वाले श्री चैतन्य महाप्रभुजी के दिये हरिनाम का आश्रय है। इसमें यदि कोई भी जीव अश्रद्धा करेगा तो वह घोर अपराधी बन जाएगा और दुख सागर में डूब जाएगा।

यह जो बोला जा रहा है, कोई दिव्य शक्ति द्वारा बोला जा रहा है। जो कि, अनंत धर्म शास्त्रों का सार ही है। इससे साधक बड़ी आसानी से अपना जीवन बसर कर सकता है। इस सत्संग की चर्चा सुनने से भगवद् कृपा बरसेगी। बीमारी भी डर की वजह से भाग जाएगी। मैं तो आपके सामने ही बैठा हूँ। क्या मुझे कोई बीमारी है? इसे मेरी बड़ाई न समझें, यह केवल मात्र हरिनाम की ही कृपा का फल है, क्योंकि शक्तिशाली के पास कोई भी रोग आने से डरता है।

रोग है राक्षस और हरिनाम है भगवान्। तो क्या भगवान् से बढ़कर कोई भी अनंत कोटि ब्रह्मांडों में शक्तिशाली है? अतः जो भी हरिनाम की शरण में होगा। वह रोगों से निवृत्त रहेगा। अभी, मैंने, पहले भी बोला था, कि शिमला में एक भक्त थे। जिसको दिल में कैंसर था। उनका कैंसर, हरिनाम करने से खत्म हो गया। अतः जो भी हरिनाम की शरण में होगा, वह रोगों से निवृत्त होगा। मुझे तो बुखार हुए भी 30–40 साल हो गए। कोई भी रोग आने से डरता है क्योंकि हरिनाम शक्तिशाली है। मेरे रोम रोम में रमा हुआ है। मुझ में 20 साल युवक जैसी ताकत है। रात में 12 बजे जागकर प्रातः 6–7 बजे तक हरिनाम, फिर श्रीमद्भागवत एवं चैतन्य चरितामृत पठन करता रहता हूँ। दिन में भी भक्तों के साथ, धर्मशास्त्र की चर्चा होती रहती है तथा समय मिलने पर धर्मशास्त्र पढ़ता हूँ और केवल हरिनाम करता रहता हूँ। आप भक्तगण ऐसा न समझें कि अनिरुद्ध दास अपनी बड़ाई कर रहा है।

अपनी बड़ाई कौन चाहेगा? जिसको कुछ लेना या पाना होगा। मुझे तो कुछ चाहिए ही नहीं। रागी को कामना होती है, वैरागी को क्या कोई

कामना होती है? वह तो निष्काम होता है। मैं सब भक्तों को सतर्क कर रहा हूँ। मैं तो गोलोक धाम का निवासी हूँ। मेरे पास गोलोक धाम का सर्टिफिकेट है। सर्टिफिकेट क्या है? मेरे दोनों हाथों में भगवान् के आयुधों के 6–7 चिह्न हैं। क्या यह चिह्न मैंने बना लिए? दूसरी ओर आपका ध्यान आकर्षित कर रहा हूँ कि मेरी वजह से किसी को मुझ पर अश्रद्धा होने से अपराध न बन जाए। मुझे तो सबका उद्धार करने हेतु, भगवान् ने गोलोक धाम से यहाँ भेजा है और मेरे प्रति अपराध होने से मेरा जो ध्येय है, पूरा न हो सकेगा। इसकी मुझे तीव्र चिंता है। अपने बारे में, मैं आपको अवगत करा देता हूँ।

मुझे चंद्र सरोवर पर साक्षात् द्वारकाधीश का दर्शन हुआ, अन्य 8–10 भक्तों को भी दर्शन करवा दिया। ऐसा तो हो सकता है कि कोई खुद दर्शन कर सकता है पर दूसरों को दर्शन नहीं करवा सकता, लेकिन मैं अन्यों को दर्शन क्यों करवा सका? क्योंकि मैं भगवान् का डेढ़ साल का पोता हूँ। मैं रूठ जाता हूँ, अतः मेरे रूठने से मेरे बाबा डरते रहते हैं। जो मैं बोलता हूँ, तो बाबा को वैसा करना ही पड़ जाता है। अतः सबको दर्शन हो गया। दूसरी बार, मैं ट्रेन में वृंदावन जा रहा था तो एकादशी की वजह से भगवान् ने स्वयं मुझे रबड़ी खिलाई। हनुमानजी ने दो बार मिलकर मुझे दर्शन दिए। आप सबको भी दर्शन हो सकता है। मैं तो एक साधारण गृहस्थी हूँ। अतः मुझे पहचानना बड़ा मुश्किल है। भगवत्कृपा के बिना मुझे कोई भी पहचान नहीं सकता। यही तो भगवान् की माया है। जैसे कौरवों के घर में 24 घंटे भगवान् कृष्ण रहा करते थे, कौरवों में कोई भी उन्हें पहचान नहीं सका क्योंकि वे, भक्त पांडवों के विरोधी थे। मुझे भी भगवद् कृपा के बिना कोई भी नहीं पहचान सकेगा। मैं सबको सतर्क कर देता हूँ, मेरे चरणों में किसी का अपराध न बन जाए। अतः आज मैंने, भगवद् दिव्य शक्ति द्वारा जैसा मैं हूँ, वैसा सब को अवगत करा दिया है। कोई भी इस चर्चा को स्वप्न सम न समझे, इसमें सबकी भलाई है।

यह मैं नहीं बोल रहा हूँ, कोई पीछे से दिव्यशक्ति बोल रही है। मैं तो माइक हूँ माइक। मेरी जीवन चर्या, मैंने इस कारण से वर्णन की है, कि भक्त मेरे ऊपर पूर्ण रूप से श्रद्धा विश्वास करके रहे तो मेरे बाबा (द्वारकाधीश) उन पर कृपा वर्षण करते रहें। उनका मानव जीवन सफल हो जाये। मेरे बाबा बोलते हैं, "अनिरुद्ध मेरा प्यारा बेटा है, जो इसका प्यारा होगा वह इससे अधिक मेरा प्यारा होगा। यह मैं प्रत्यक्ष घोषणा कर

रहा हूँ। मेरे पोते अनिरुद्ध दास की चिंता की तरफ देखकर मुझे अभी से 64 माला करने वाले भक्त का रिजर्वेशन कराना पड़ा। जो मैंने भूतकाल में किसी का, कभी नहीं किया लेकिन मैं पोते की रुसाई से हरदम डरता रहता हूँ। इसलिए मुझे इसकी आज्ञा, आदेश मानना पड़ रहा है। मैं भी मजबूर हूँ क्योंकि इसने मुझे खरीद लिया है। मेरे प्रति इसके प्यार की कोई सीमा नहीं है। अतः मैं इसकी राय बिना कुछ भी नहीं कर सकता। इसकी राय बिना तो मैं किसी को गोलोक में भी वापिस नहीं ले जा सकता। इसकी मर्जी से ही सब कुछ होगा। मेरी मर्जी से कुछ नहीं हो सकेगा। मुझे शास्त्र के विरुद्ध भी, इसकी मर्जी की वजह से यह करना पड़ जाता है। इसकी रुसाई बड़ी खतरनाक है। इसी कारण मैं बेबस हूँ। यह कर दो। वह कर दो। इस कारण से मैं भी परेशान हूँ। यह मुझे चैन से बैठने नहीं देता। क्या करूँ? मुझसे काल और महाकाल थर–थर कांपते हैं लेकिन मैं भक्त से थर थर कांपता रहता हूँ। मेरी योगमाया भी इससे हार जाती है।" मैंने सबको सत्य से अवगत करा दिया है। अतः सोच विचार कर आगे कदम रखो।

देखो! अपराध बहुत खतरनाक होता है। कैसा खतरा होता है? अब ध्यान पूर्वक सुने!

इंद्र कुलिस मम सूल बिसाला। कालदंड हरि चक्र कराला।।
जो इन्ह कर मारा नहिं मरई। साधु द्रोह पावक सो जरई।।

(मानस, उत्तर. दो. 108 घ चौ. 7)

शिवजी कह रहे हैं कि इंद्र का तो वज्र और मेरा त्रिशूल, यमराज का दंड और भगवान् का सुदर्शन चक्र, इनसे भी जो नहीं मरता, वह साधु को दुख देने से पावक के समान जल जाता है। पावक कैसा होता है? जो लोहे को पानी बना दे। ऐसा पावक और वह उसी समय नहीं मरता। वो तड़प–तड़प कर मरता है। जल जल कर मरता है। इसलिए इतना खतरनाक है यह अपराध।

जो साधु संग ईर्ष्या करहिं। ...... पावक सो जरई।

जो साधु से ईर्ष्या करता है, उसका ही ऐसा हाल होता है। अतः साधु की निंदा करना बहुत ही खतरनाक है। इसलिए बचो। देखो! व्यक्तिगत किसी साधु की निंदा न हो। आजकल साधु पैसे के भक्त हैं, इसमें निंदा

नहीं है। आजकल कैसा–कैसा वातावरण चल रहा है। कैसे–कैसे साधु हो रहे हैं और पकड़े भी जा रहे हैं। आपको सबको मालूम है।

देखिए। अपराध कैसा होता है? किसी साधु की व्यक्तिगत निंदा न करें कि अमुक साधु ऐसा है, वैसा है तो अपराध होगा ही, और इस तरह से बोलो कि आजकल सच्चे साधु मिलते ही नहीं। जो मिलते हैं उनकी बुद्धि पैसे की तरफ या अपनी मदद की तरफ होती है। आजकल साधु स्वयं ही शिष्य बटोरने को चलते रहते हैं। कहते हैं, "मेरे शिष्य बन जाओ।" यह शास्त्र के विरुद्ध विचार है। होना चाहिए कि शिष्य बोले, "मुझे आप अपने चरणों का सेवक तथा अपना शिष्य बना लो।" इस विषय पर बोलने से अपराध नहीं होता। अपराध होता है, किसी साधु का नाम लेकर उसको बुरा भला बताना। समय, काल, स्थिति के अनुसार बोलने से अपराध कैसे हो सकता है?

श्रीमद्भागवत के 6वें स्कंध में अंकित है, इंद्र को भगवान् कहते हैं, "यदि मेरा नाम उच्चारण हो जाए तो ब्राह्मण, पिता, गौ माता और आचार्य की हत्या करने वाला, कुत्ते का मांस खाने वाला, चांडाल, कसाई भी शुद्ध हो जाता है। करोड़ों सिद्ध पुरुषों में एकमात्र भगवान् का भक्त मिलना बहुत कठिन है। जो भगवान् के ही आश्रित है।" श्रीमद्भागवत में लिखा है कि वृत्रासुर कह रहा है, "भगवान्! मैं, जहाँ भी जन्म लूँ, वहाँ मुझे आपके भक्तों का संग मिले।"

सच्ची शरणागति का रूप क्या है? अब सुनिए, जैसे बच्चा बहुत ऊधम करता है। कीमती चीजों को तोड़ता फोड़ता रहता है, क्योंकि बच्चे को मालूम नहीं है कि यह कीमती वस्तु है तो बच्चे की माँ उसे मारती है। जब बच्चा रोता है तब बच्चे का पिता तो उसे बाहर ले जाना चाहता है लेकिन बच्चा मार खाकर भी, माँ की गोदी में ही चिपक जाता है। पिता, बच्चे को प्यार भरा चुंबन देता है, फिर भी बच्चा पूर्ण शरणागत होने की वजह से मार खाकर भी, माँ की ही शरण, उसको अच्छी लगती है। यह है सच्ची शरणागति का असली रूप। इसी प्रकार हर भक्त को भगवान् की शरणागति होनी चाहिए। जब इस प्रकार की शरणागति होगी तो भगवान् उस शरणागत से एक पल भी दूर नहीं रह सकते। ऐसी शरणागति, उसे सुख सागर में डुबो देगी। दुख की तो उसको हवा भी नहीं लगेगी।

भगवद् स्मरण बहुत जरूरी है। स्मरण कैसे होगा? केवल हरिनाम से होगा। केवल हरिनाम से। कहते हैं :

सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं।।

(मानस, बाल. दो. 118 चौ. 2)

प्रेम से हरिनाम जपो और कानों से सुनो।

Chanting harinama sweetly and listen by ear

जो सादर, प्यार से स्मरण करता है, उसका संसार ऐसे चला जाता है जैसे गऊ के खुर को उलांघना। इसमें कितनी सरलता है। छोटा सा खुर होता है, कोई भी उसको उलांघ जाए। फिर कहते हैं :

सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें।।

(मानस. बाल. दो. 20 चौ. 6)

हमने भगवान् को देखा तो है नहीं, लेकिन सुमिरिअ नाम... भगवान् का नाम सुमिरन करो। सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखे... रूप भी हमने देखा नहीं है, तो आवत हृदय सनेह विशेषे...कैसे आएगा? वह प्यार से हृदय में प्रगट हो जाएगा। भगवान् कृष्ण हृदय में प्रकट हो जाएंगे।

भक्ति सिद्धांत सरस्वतीजी, गौरकिशोर दास बाबाजी के पास कोई 20 बार गए और कहा, "मुझे शिष्य बना लो। मुझे शिष्य बना लो।" लेकिन गौरकिशोर दासजी बोलते हैं, "नहीं बनाऊँगा। नहीं बनाऊँगा।" लेकिन अंत में जब विचार कर लिया तब उनको दया आ गई तो गौरकिशोर दास बाबाजी ने, केवल एक शिष्य बनाया। ऐसे ही मेरे गुरुदेव ने पूरे राजस्थान में सिर्फ मेरे कुटुंब को ही शिष्य बनाया और किसी को नहीं बनाया। मुझे बना दिया और मेरे बेटों को, जो तब दस–दस साल के थे, एक साथ ही पूर्ण दीक्षा दी। केवल हरिनाम ही नहीं दिया अपितु पूर्ण दीक्षा ही उनको मिली और पूर्ण दीक्षा ही मुझे मिली। गुरु देखता है कि ऐसा शिष्य होना चाहिए कि जो भजन करने वाला है, तो शिष्य ही गुरु को तार देता है।

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।

(मानस, उत्तर. दो. 40 चौ. 1)

दूसरे का हित करना ही सबसे बड़ा धर्म है। अरे! सबका हित करो। हित करो। मैं बड़ाई नहीं कर रहा हूँ। मैं जो बोल रहा हूँ सच्चाई की वजह से बोल रहा हूँ। हरिनाम में श्रद्धा की वजह से बोल रहा हूँ। मुझे तीस हजार रुपये पेंशन मिलती है। वह सब मैं सभी प्राणियों की सेवा में लगा देता हूँ, लेकिन मैं ठाकुरजी को राजी (खुश) करने के लिए करता हूँ सब कुछ। ऐसा काम इसलिए करता हूँ कि मेरे से भगवान् खुश रहें। भगवान् मेरे कर्म से खुश ही रहें। जैसे गोपियां। गोपियों ने भगवान् को खुश रखने के लिए ही पूरा जीवन दिया था। ऐसे ही मेरा भी यही प्रयास है कि भगवान् मेरे से खुश ही रहें। मुझे कोई और परवाह नहीं है लेकिन भगवान् मेरे से खुश रहें।

हम सब भगवान् के प्यारे हैं, चींटी भी, पेड़ भी इसके बेटे हैं, हाथी भी इसके बेटे हैं इनकी सेवा करने से भगवान् खुश होता है। मैं कहता हूँ जितना मेरे से हो सके। आप जितना भी हो सके, मेरे पास जो कुछ है आप लेते रहो। मैं तो बहुत आनंद में हूँ। आपको देकर मेरे को बड़ी खुशी होती है। इसलिए मैं सबको कह रहा हूँ कि देखो हरिनाम से सब कुछ मिलेगा और कहीं जाने की जरूरत नहीं है। केवल हरिनाम करो। हां! हरिनाम करो और किसी की चर्चा मत करो। निंदा स्तुति मत करो क्योंकि यह तो गुणों का प्रभाव है सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण ही पीछे से व्यक्ति को प्रेरित करते रहते हैं स्वभाव में। उसका क्या दोष है? यह तो माया का प्रकोप है। इसलिए क्यों चर्चा करते हो कि वह अच्छा है, वह बुरा है। यह करने से क्या होगा कि तुम नीचे गिर जाओगे। कुछ भी, किसी का दोष मत देखो। दोष देखोगे, तो खुद में वह दोष आ जाएगा। सब में गुण देखो। गुण देखो, तो तुम्हारे अंदर गुण अपने आप ही आ जाएंगे।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

चर-अचर में भगवद्दर्शन

27 जनवरी 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास
अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा
अहैतुकी प्रेमा भक्ति की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

प्रथम में हमारे माँ–बाप हैं जिन्होंने हम को जन्म दिया है। उनकी सेवा करना ही भक्ति उपलब्ध करने की प्रथम सीढ़ी है। इसके बाद दूसरे हमारे अमर माँ–बाप हैं राधागोविंद भगवान्। जन्म देने वाले माँ–बाप की सेवा के बाद भगवान् की सेवा करना हमारा विशेष धर्म है, खास कर्म है। तभी हम चिन्मय स्थिति में अर्थात् परमहंस अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं। यदि जिनके माँ–बाप ने शरीर छोड़ दिया है तो वह उनके लिए दो–दो माला करें। यदि वह नरक भोग रहे हैं या 84 लाख योनियों में कष्ट भुगत रहे हैं तो बेटे के दो–दो माला करने से उनका उद्धार निश्चित रूप से हो जाएगा। इसलिए शास्त्र कहता है कि पुत्र ही माँ–बाप का उद्धार करता है। नाम में वह शक्ति है कि जिसका चिंतन होता है, वहीं पर नाम चला जाता है। नाम नरक में या 84 लाख योनियों में भी चला जाएगा। यमराज भगवान् का ही रूप है। अंतर्यामी है। उस जीव का भी उद्धार कर देगा। यह शत प्रतिशत सच है। निश्चित रूप से माँ–बाप का दुख से पिंडा छूट जाएगा।

मैं तो निमित्त बोल रहा हूँ पीछे से कोई दिव्य शक्ति सब की आँखें खोल रही हैं। हरिनाम स्वयं भगवान् हैं। भगवान् का अर्थात् नाम का जहाँ भी कहीं भी चिंतन करेंगे, वहाँ नाम प्रगट हो जाएगा। जिसके लिए चिंतन होगा, उसका उद्धार निश्चित रूप से हो जाता है। भगवान् समय नहीं देखते हैं, भगवान् मन का भाव देखते हैं। भाव ही भगवान् को खुश कर देता है। हृदय की व्याकुलता ही भगवान् को द्रवित कर देती है। कैसे

होता है यह? यह हरिनाम से होता है। यह हरिनाम जप से होता है। यह सभी स्थिति हरिनाम से ही आएगी। माँ अपने बेटे को शक्ति अर्पण करने हेतु स्तन से दूध पिलाती है, नौ माह तक अपने पेट में रखती है, जब तक शिशु रूप में रहता है, हर प्रकार से उसका ध्यान रखती है। पिता हर प्रकार का खर्च करता है। उसकी मनोकामना पूरी करता है। फिर युवक उसको भूल जाता है। ऐसा साधक तो भगवान् को सपने में भी खुश नहीं कर सकता। भगवान् की भक्ति शुरू होती है, केवल माँ–बाप से।

देखिये, राक्षस और देवता दोनों ही भाई हैं पर आपस में लड़ते रहते हैं। कश्यप जी इन दोनों के पिता हैं। दिति राक्षसों की माँ है, अदिति देवताओं की माँ है। यह दोनों कश्यपजी की पत्नियां हैं। दोनों भाइयों में कभी नहीं बनती। सदा ही लड़ते रहते हैं। देवताओं के गुरु बृहस्पतिजी हैं और राक्षसों के गुरु शुक्राचार्यजी हैं। गुरु नाराज हो गया है यह पता लगते ही देवता, राक्षसों के ऊपर चढ़ाई कर देते हैं क्योंकि गुरु शुक्राचार्य राक्षसों से नाराज हो चुके हैं। अब क्योंकि गुरु का हाथ उनके सिर से हट चुका है तो वे देवताओं से जीत नहीं सकते। अब देवताओं के गुरु बृहस्पतिजी हैं, अगर वह नाराज हो जाते हैं और राक्षसों को यदि इसका पता पड़ जाता है तो राक्षस, देवताओं पर चढ़ाई कर देते हैं। शुक्राचार्यजी भी मदद करते हैं। भगवान् तो दोनों ओर समान दृष्टि से देखते रहते हैं। उनके लिए दोनों बराबर हैं। जिनका समय अनुकूल रहता है, उधर ही भगवान् उनकी मदद करने चले जाते हैं। जब देवता, इंद्र के साथ ब्रह्माजी के पास जाते हैं, "हमें राक्षस परेशान करते हैं और हमारे शुभ दिन कब आएंगे?" ब्रह्माजी एकांत में जाकर मन की एकाग्रता द्वारा जब भगवान् की याद तथा स्मरण करते हैं, तो स्मरण करने पर भगवान् हृदय से आकाशवाणी करते हैं, ब्रह्माजी को बताते हैं कि, "अभी देवताओं को लड़ाई नहीं करनी चाहिए क्योंकि उनके दिन खराब हैं। जब समय अनुकूल होगा तभी यह राक्षसों को हरा सकेंगे। इसलिए चुपचाप बैठे रहो। यदि ऐसा न करोगे तो देवता, राक्षसों से हार जाएंगे। इतने दिन बाद समय इनके अनुकूल है। इतने दिन के बाद देवता असुरों से जीत सकते हैं।"

ब्रह्माजी एकांत से बाहर आकर इंद्र आदि देवताओं को पूरी बात बता देते हैं और देवता चुपचाप बैठ जाते हैं। शुभ समय का इंतजार करते हैं एवं देवता अपने अपने स्थान पर चले जाते हैं। अग्नि, वरुण, सूर्य, चंद्रमा धैर्य धारण करके अनुकूल समय का इंतजार करते रहते हैं। इस चर्चा का

सारांश क्या है? गुरु ही सब कुछ है। गुरुदेव की सेवा से ही देवता, राक्षस आनंदपूर्वक रह सकते हैं। यदि गुरुजी नाराज हो गए तो दोनों को आफत ही आफत आ जाती है। अब प्रश्न उठता है कि भगवान् से भी गुरु बड़ा कैसे हो गया? भगवान् तो सबसे बड़ा है फिर गुरु भगवान् से भी बड़े कैसे हो जाते हैं? गुरु को भगवान् सिरमौर कैसे महसूस करते हैं? इसका कारण है भगवान् का स्मरण। स्मरण किस विधि से लगातार हो सकता है। स्मरण लगातार होने का एक ही साधन है– केवल हरिनाम। दोनों तरफ (लोक–परलोक) से गुरुदेव भगवद् स्मरण से भगवान् को जीत लेते हैं तभी तो कहते हैं :

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

(श्रीगुरुगीता प्रथमोऽध्यायः श्लोक 58)

इस प्रकार कोई भी जीव अर्थात् मानव भगवान् को हरिनाम द्वारा स्मरण करते रहें तो भगवान् उस से बंध जाते हैं। जिस पर भगवान् की कृपा हो जाती है तो सभी जीवमात्र उस पर कृपा कर देते हैं। कह रहे हैं कि सभी जीवमात्र में आत्मा के रूप में भगवान् सबके हृदय मंदिर में विराजते हैं।

जा पर कृपा राम की होई। ता पर कृपा करहिं सब कोई।।

ऐसों को बिच्छू और सर्प भी नहीं खाता। शेर भी उसे प्यार करेगा। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण जयपुर के राजा माधौ सिंह की पटरानी चंद्रलेखा का है जो भक्तमाल में भक्त नाभाजी द्वारा लिखी गई है। उसका वर्णन है कि लगभग 200–250 वर्ष पहले की बात है, उस जमाने में पर्दा प्रथा (सिस्टम) बहुत सख्त थी। रानियां महल के बाहर भी नहीं जा सकती थीं। राधागोविंद भगवान् के मंदिर के सामने चंद्र महल है, वहाँ से ही रानियां, राधागोविंद का दर्शन किया करती थीं। स्वयं राजा माधौ सिंह ने मंदिर के पीछे, भगवान् हेतु फूलों का बगीचा बनवा रखा था। माली बगीचे की देखभाल करते थे कि भगवान् की सेवा के सिवाय, कोई भी फूल तोड़कर नहीं ले जाये। फूल भी उच्च कोटि के सुगंधित थे। एक बार क्या हुआ कि भगवान् स्वयं जाकर फूल तोड़ कर राधाजी की झोली में डाल रहे थे। माली को चेत हो गया और सोचने लगा, "इस बगीचे में पैरों की छम–छम की आवाज कहाँ से आ रही है?" तो माली उठा और बगीचे में प्रवेश

किया। क्या देखता है कि एक सांवला सा लड़का, फूल तोड़कर एक गोरी सी लड़की की झोली में डाल रहा है। माली ने सोचा कि, "अरे! कुछ दिन से मैं भी देख रहा हूँ कि कोई फूल तोड़ कर ले जाता है। लेकिन मालूम नहीं पड़ा। आज पकड़ा गया।" उसको मालूम नहीं था कि यह राधागोविंद हैं। तो उसने शोर मचाया, "चोर! चोर!" राधागोविंद, यह सुनते ही, वहाँ से भागे। माली भी उनके पीछे भागा तो मंदिर का जो पश्चिमी द्वार है, वे उसमें घुसने लगे।

भगवान् तेजी से दौड़ लगाकर अंदर घुसने लगे तो पीताम्बर फट कर माली के हाथ में आ गया। माली की खुशी का कोई छोर नहीं था कि आज उसका जन्म सफल हो गया। राधाजी, तो गोविंद से भी अधिक पहले, फुर्ती से दौड़कर अंदर मंदिर में घुस गईं। प्रातः काल राजा माधौ सिंह मंगला दर्शन करने के लिए आया तो माली ने राजा से बोला, "महाराज! आज बगीचे में एक फूल तोड़ता चोर पकड़ा गया है। यह चोर का दुपट्टा है, देख लो।" पीताम्बर देखकर राजा देखता ही रह गया, दंग रह गया। राजा पत्थर की तरह बुत हो गया, समाधि सी लग गई। प्रजागण देख रहे हैं कि राजा को क्या हो गया, न तो हिलता है, न तो बोलता है। थोड़ी देर बाद पुजारी बाहर आया और बोला, "मैं ही तो माला बनाता हूँ पर मुझे मालूम नहीं, भगवान् को क्या सूझी जो स्वयं फूल तोड़ने चले गए।" राजा माधौसिंह, माली के चरणों में गिर गया और बोला, "तुझको राधागोविंद ने दर्शन दिया है। मुझ पर भी कृपा करो। मुझे भी भगवान् की कुछ सेवा प्रदान करो।" माली बेचारा चुप, क्योंकि राजा माधौसिंह का प्रभाव इतना अधिक था कि सभी भारत के राजा उससे डरते थे। राजा की बड़ी जोर की धाक थी।

अब दूसरी चर्चा करता हूँ। सख्त पर्दा सिस्टम (प्रथा) होने पर भी राजा की रानी पटरानी, अर्थात् सभी दूसरी रानियों से जो बड़ी होती है, उसे पटरानी कहते हैं, भगवान् की कथा कीर्तन सुनने हेतु साधुओं का संग करती थी। सभी राजाओं को, जो सारे भारतवर्ष के थे, इस रानी की यह बात पसंद नहीं थी। राजा सबका माननीय था। राजा ने अपनी पटरानी को खूब समझाया था कि, "मेरी बदनामी मत करो। यह तुम्हारी आदत ठीक नहीं है। साधुओं को मत बुलाओ। भगवान् का भजन तो एकांत में बैठ कर भी हुआ करता है। तुम्हारे भजन में मैंने कभी रोड़ा नहीं अटकाया है। पूरे हिंदुस्तान में मेरी बदनामी हो रही है।" लेकिन रानी ने एक नहीं

सुनी। अब तो राजा की नींद और भूख उड़ गई। न भूख लगती थी, न ही सोता था। क्या करे? क्या न करे? पूरे हिंदुस्तान के राजा, उससे थर्राते थे पर रानी को उसकी कोई परवाह नहीं थी और वह साधुओं को बुला बुलाकर सत्संग करती रहती थी और हमेशा तुलसी माला अपने हाथों में लेकर जपती रहती थी। शरीर पर भी धारण करती थी। हरदम भगवान् का नाम माला पर जपती रहती थी। गले में झोली लटकाए रहती तो राजा को बहुत शर्म आती।

ऐसा देखकर राजा बहुत दुखी रहता था। राजा ने अपने मंत्रियों से परामर्श किया कि क्या करना चाहिए? "क्या है कि रानी तो मानती नहीं है। रात दिन हाथ में माला लेकर घूमा करती है रिश्तेदार आते हैं, मुझे बड़ी शर्म आती है। क्या उपाय करूँ? माला को एक पल भी दूर नहीं रखती है। मैं क्या करूँ?" मंत्री बोले, "आप सब राजाओं को बुलाओ और मीटिंग (सभा) करो। उनसे राय लेकर इसका कुछ करो।" राजा ने सभी राजाओं को बुलाया और अपना सब संकट उनसे निवेदन किया। सभी राजा बोले, "महाराज! आपको निवेदन करना हमारे अनुकूल नहीं है। हम तो आपके सेवक हैं। आपकी कृपा से ही हमारा राज्य बना हुआ है। आगे जैसा आप कहिए, हम करने को तैयार हैं।" राजा ने सब समस्या राजाओं को बता दी। वैसे राजा लोग जानते तो थे ही। तो किसी राजा ने कहा, "रानी को जहर दे दो, मर जाएगी।" राजा ने कहा, "इससे तो बड़ी बदनामी होगी।" फिर किसी दूसरे ने कहा, "इससे अच्छा तो उसे बाहर निकाल दो।" किसी ने कहा, "यह भी बदनामी का कारण बन जाएगा।" किसी एक ने कहा, "इसे महल में बंद कर दो।" तो अन्य राजाओं ने कहा, "यह जोर जोर से विलाप करने लगेगी, तो आपका मन अशांत हो जाएगा।" तब एक राजा ने कहा, "जब यह चंद्रमहल के पास भगवान् की पूजा करने जाती है तो वहाँ बादल महल है वहाँ पर एक बब्बर शेर का पिंजरा रख दो। जब वह पूजा करने जाये तो पिंजरे वाले को बोल दो कि वह शेर का पिंजरा खोल दे, शेर इसको खा जाएगा।" यह बात सबको जँच गई कि इसमें हमारी बदनामी नहीं होगी। अतः माधौ सिंह ने बब्बर शेर, जो बड़ा खूंखार था, उसका पिंजरा रखवा दिया। सब राजा बोले, "हम दोनों तरफ दीवारों पर बैठकर देखेंगे कि शेर रानी को कैसे खाता है।" माधौ सिंह राजा ने कहा, "ठीक है। आप सब लोग दोनों दीवारों पर बैठकर देख सकते हो और मैं भी पास में बैठ जाऊँगा।"

रानी को इस षड्यंत्र का मालूम नहीं हुआ। रोज की तरह ही चंद्रमहल से अपनी सखियों के साथ पूजा करने के लिए चल दी। रानी के हाथ में सोने की थाली थी, जिसमें पूजा की सामग्री थी। राजा लोग दीवारों पर बैठ कर देखने लगे कि क्या होता है। जब रानी रास्ते से जा रही थी, तो पिंजरे वाले ने पिंजरे का दरवाजा खोल दिया। दरवाजा खोलते ही बब्बर शेर ने ऐसी दहाड़ मचाई कि धरती हिल गई और उसकी गूंज दसों दिशाओं में फैल गई। जिससे जयपुर की जनता डर गई कि यह डरावनी आवाज कहाँ से आई है? सब मकान के बाहर आ गए कि भूकंप आ गया होगा, कहीं मकान के नीचे दब न जाएं। राजा जो दीवार पर बैठे थे, वह डर की वजह से कांपने लगे और धड़ाम से छत की ओर लुढ़क गए। धीरे–धीरे उठकर दीवार पर बैठे। अब इधर से रानी जा रही थी, उधर से शेर आ रहा था।

शेर आता देख कर रानी की सहेलियां तो डर के मारे भाग गईं और रानी ने देखा तो सोचा कि, "आज तो मैं निहाल हो गई। आज तो मेरे प्राणनाथ नरसिंह भगवान् स्वयं, मेरी पूजा लेने के लिए आ रहे हैं।" रानी डरी नहीं। शेर, रानी के पास आकर बैठ गया। रानी ने शेर को पहले छींटे मार के स्नान कराया। पानी तो था ही, सिर पर थोड़ा डाल दिया। फिर रोली से माथे पर तिलक लगाया, गले में माला डाली और आरती उतारी। शेर बैठा रहा। फिर प्रसाद, शेर के मुख में डाला तो शेर ने अपना मुख खोल दिया। रानी दण्डवत् करने लगी तो शेर ने अपना पंजा रानी के सिर पर रख दिया और आशीर्वाद दिया। रानी खड़ी हुई तो शेर ने इतनी जोर से दहाड़ लगाई कि पृथ्वी हिल गई और राजा लोग दोबारा छत पर गिर गए। शेर जाकर वापिस पिंजरे में घुस गया। यह है हरिनाम का प्रत्यक्ष प्रभाव।

मैं यह हरिनाम का ही प्रभाव बता रहा हूँ। हरिनाम से क्या नहीं हो सकता। हिंसक पशु भी नहीं खा सकते क्योंकि उनमें भी मेरा प्यारा परमात्मा के रूप में बैठा हुआ है। तो हरिनाम करने वाले का पूरे अखिल ब्रह्मांडो में कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता। सभी हिंसक जीव उसके मित्र बन जाते हैं। यह प्रत्यक्ष उदाहरण सबके सामने है। पूर्ण निष्ठा, विश्वास होना चाहिए।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

अब तो सब राजाओं ने राय की कि यह रानी तो दुर्गा का अवतार है। इसको मत छेड़ो वरना सबके राज्यों का विध्वंस कर देगी। तब से राजा माधौ सिंह ने रानी को आदेश दे दिया कि, "जैसा चाहो, वैसा करो। मैं भी तुम्हारी मदद करता रहूँगा।" अतः जयपुर में राजा लोग भक्त हुए हैं। तभी तो 5–6 ठाकुर जयपुर में आकर विराजते हैं। वृंदावन तक छोड़ कर आ गए राधागोविंद, राधामाधव, राधाविनोद और गोपीनाथ। भगवान् कहाँ जाते हैं? जहाँ उनका भक्त होता है, वहीं जाते हैं भगवान्। वहीं वृंदावन बस जाता है। जयपुर को सभी गुप्त वृंदावन कहते हैं।

राधागोविंद की अपने भक्तों के संग लीलाएँ होती रहती हैं। मुझे भी राधागोविंद के चरणों में ही गुरुदेव के दर्शन हुए थे। श्री गुरुदेव ने मुझे और मेरे परिवार को ही दीक्षा देकर शरण में लिया है जबकि गुरुदेव, जयपुर में ही विग्रह हेतु 60–70 बार आए हैं लेकिन किसी को शिष्य नहीं बनाया। बड़े बड़े सेठ उनके पीछे पड़े परंतु गुरुदेव टालते ही रहे। किसी को शिष्य नहीं बनाया क्योंकि सन् 1950 के बाद ही मठों का निर्माण हुआ था। अतः श्रीगुरुदेव जी को गोविंद विग्रह लेने तो आना ही पड़ता था।

जो भक्त निष्कामता से अर्थात् केवल भगवान् की प्रसन्नता के लिए हरिनाम करता है और भगवान् के समस्त जीवों को तन, मन, वचन से प्यार करता है उस पर हरिनाम भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं। उसके शरीर में रोग आते हुए ही डरते हैं। रोग कौन हैं? यह राक्षस हैं, माया के साथी हैं, लेकिन हरिनाम के कारण यह डरते रहते हैं कि बलशाली के नजदीक जाएंगे तो हम जल जाएंगे, नष्ट हो जाएंगे। हर प्रकार से ऐसा भक्त तन, मन, आनंद में ओत–प्रोत रहता है। माया उससे दूर रहती है तथा उसकी मदद करती रहती है क्योंकि माया भगवान् के आश्रित होती है और हरिनाम स्वयं भगवान् है। जैसे छोटा सा बच्चा माँ–बाप के आश्रित रहता है तो आप विचार करिए कि बच्चा तो बेफिक्र होकर मस्ती में घूमता रहता है।

ऐसे भक्त का उद्धार निश्चित ही होगा। समय लग सकता है। लेकिन उसका अच्छा होगा। यह मैं अपनी ओर से नहीं लिख रहा हूँ भगवद् शास्त्र ही बोल रहा है अर्थात् स्वयं भगवान् की वाणी है। श्रीमद्भागवत में लिखा है कि पुत्र ही माँ–बाप को नरकों से बचाता है। इसका उदाहरण है, चित्रकेतु महाराज, जिनका कोई पुत्र नहीं था। चिंता में रहते थे कि पुत्र के बिना उनका उद्धार कैसे होगा। कहते हैं कि यदि माँ–बाप की सौ साल भी सेवा की जाए तो भी माँ–बाप से उऋण नहीं हो सकते। यही हाल गुरु

के शिष्य का है जो गुरुदेव के आदेश का पालन नहीं करता, उसका उद्धार कभी स्वप्न में भी नहीं होगा क्योंकि भगवान् ही गुरु रूप से आकर शिष्य का उद्धार करते हैं। लेकिन गुरु आचरणशील होना चाहिए वरना तो गुरु डूबेगा और शिष्य को भी ले कर डूब जाएगा। शिष्य और गुरु दोनों ही आचरणशील होने चाहिए, तब तो निश्चित ही उद्धार होगा।

भगवान् कहते हैं कि, "मैं सत्संग से मिलता हूँ। सत्संग ही मुझे खींच लाता है। सत्संग बहुत बड़ी चीज है।

इसीलिए हमारे चैतन्य महाप्रभुजी ने मुझे आदेश किया है कि तुम प्रवचन किया करो। नाम की महिमा गाया करो। मैं करीबन छह माह से हर शुक्रवार हरिनाम की महिमा कहता हूँ। मैं नहीं बोलता। मैं कैसे बोल सकता हूँ? न तो मैं हैड मास्टर था, न मैं लेक्चरार था क्योंकि उनको तो लिखने–पढ़ने की, बोलने की आदत होती है । मैं तो छोटा सा टेक्निकल इंजीनियर था। टेक्निकल (तकनीकी) को तो लिखना–पढ़ना आता नहीं है न ही बोलना आता है। लेकिन जो कुछ मैं बोलता हूँ, पीछे से कोई दिव्य शक्ति बोलती है। तभी तो "इस जन्म में भगवद् प्राप्ति" की पुस्तकें बनी हैं। मैं नहीं बना सकता था। किसी दिव्य शक्ति ने प्रेरणा करके मुझसे लिखवाई हैं। इसीलिए यह न समझें कि अनिरुद्ध दास ने लिखी हैं। अनिरुद्ध दास तो कुछ नहीं लिख सकता। मैं तो केवल गुरुदेव की आज्ञा का पालन कर रहा हूँ।
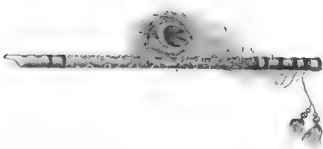
संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : 'कलियुग केवल नाम अधारा सुमिर सुमिर नर उतरहिं पारा' तो नाम और मंत्र में क्या अंतर है।

उत्तर : "हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।" महामंत्र यह कलियुग का महामंत्र है। नाम और मंत्र में कोई अंतर नहीं है।

सत्संग का प्रभाव

(18)

3 फरवरी 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तजनों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार करें और हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद करें।

"हे मेरे प्राणनाथ! कहाँ जाऊँ? कहाँ पाऊँ आपके चरणारविन्द?"
"हे मुरलीवदन! हे यशोदानंदन! हे कंसनिसूदन!"
"कोई ठिकाना है नहीं, हे जीवनधन!
सब कुछ किया चरणों में अर्पण, हे मेरे प्राणजीवन!"

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

भगवान्, श्रीमद्भागवत पुराण में कहते हैं कि, "मैं सत्संग से ही मिलता हूँ।" अतः मुझे आदेश दिया है कि सबको सत्संग सुनाओ। भगवान् ने सृष्टि रचना करने हेतु माया को स्वीकार किया। माया दो प्रकार की होती है। एक माया इस संसार में फंसाती है। दूसरी योगमाया को भगवान् अंगीकार करके लीलाओं का प्रादुर्भाव करते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, राग, द्वेष, अहंकार आदि माया के हथियार हैं। जो जीव को संसार सागर में डुबोते रहते हैं जो कि दुखों का घर है। काम, क्रोध – यह दो हथियार तो ऐसे तेज हैं कि बड़े–बड़े महानुभावों को अपने वश में कर लेते हैं। ब्रह्मा, शिवजी भी इनसे बच नहीं सके अन्यों की तो बात ही क्या है। माया के घर हैं, सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण। सभी जीवों को इसमें फंसा रखा है। अगर जीव इन तीनों गुणों से दूर हो जाएं तो भगवान् के दर्शन हो जाएं। लेकिन यही तीन परदे जीव की आंखों के सामने रहते हैं।

भगवान् से नजदीक तो कुछ भी नहीं है, जो आत्मा रूप से इस तन में छिपे हुए हैं लेकिन इन पर्दों से दिखाई नहीं देते। भगवान् गीता में अर्जुन को बोल रहे हैं, "अर्जुन! यह तीन गुण ही भगवान् को मिलने नहीं देते हैं।" भगवान् के मिलने का कलियुग में एक ही साधन है केवल हरिनाम, केवल हरिनाम, केवल हरिनाम। धर्मशास्त्र बोल रहा है :

कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिर सुमिर नर उतरहिं पारा।।

नाम को कैसे भी जपा जाए। दसों दिशाओं में मंगल हो जाता है। ऐसा है :

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

(मानस. बाल. दो. 27, चौ. 1)

दसों दिशाओं में मंगल हो गया तो फिर वैकुण्ठ की प्राप्ति तो हो ही गई। दसों दिशाओं के अलावा ग्यारहवीं दिशा तो होती ही नहीं हैं। उन दसों दिशाओं में गोलोक धाम और वैकुण्ठ धाम आ ही गया। इसलिए, कैसे भी भगवान् का नाम लो। भगवान् अंतर्यामी हैं, समझ लेते हैं, सुनते रहते हैं।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

(चै. च. आदि 17.21)

कलियुग में केवल और केवल हरिनाम ही, तीन बार बोला है, कोई साधन नहीं है, कोई साधन नहीं है, कोई साधन नहीं है। केवल हरिनाम। इस कलियुग में कोई अन्य रास्ता है ही नहीं। केवल हरिनाम जप ही भगवान् का स्मरण करवाता है। राक्षस भी दुश्मनी से स्मरण करते हैं तो उनका भी उद्धार हो जाता है। स्मरण यानि भगवान् की याद। यह भगवद् प्राप्ति का खास साधन है। इस विषय में बार–बार बोलता हूँ कि बात हृदय में जम जाए। कहते हैं :

कृत युग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग।।

(मानस, उत्तर. दो. 102 ख)

देखो! सतयुग, त्रेता, द्वापर, इन युगों में पूजा थी, यज्ञ था, योग था। पर कलियुग में कुछ करने की जरूरत नहीं है। केवल हरिनाम ही, केवल हरिनाम जपो। बस कुछ नहीं करना है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें।।

(मानस, बाल. दो. 20 चौ. 3)

हम ने भगवान् को देखा नहीं है, लेकिन आप नाम को स्मरण करो तो वह प्यार से हृदय में प्रगट हो जाएगा। हमने भगवान् को थोड़ी (नहीं) देखा है लेकिन भजन करते–करते भगवान् के दर्शन हो जाते हैं। भगवान्, हृदय में धीरे–धीरे प्रगट हो जाते हैं ।

प्रेम से हरिनाम जपो और कानों से सुनो।

Chanting harinama sweetly and listen by ears

कलियुग में भगवान् सहज ही मिल जाते हैं। सतयुग, त्रेता, द्वापर में तो बहुत नियम होते हैं। कलियुग में कोई नियम ही नहीं है। कैसे भी हरिनाम करते रहो। अवहेलना पूर्वक भी हरिनाम करो क्योंकि भगवान् झटपट खुश हो जाते हैं। ऐसा मौका हम सबको भगवान् की कृपा से उपलब्ध हो गया है। कितने भाग्यशाली हैं हम कि हमको, भारत में जन्म दिया है। सत्संग का सहारा दिया है। अनुकूल वातावरण दिया है। खाने पीने को सब कुछ दिया है। भक्ति का सच्चा रास्ता दिया है। सच्चा सत्संग दिया है। फिर भी मानव जन्म को बेकार कर दिया तो कितना बड़ा नुकसान मोल ले लिया। बाद में, अरबों खरबों चतुर्युगी के बाद भी मानव जन्म उपलब्ध हो जाए तो भगवत्कृपा मानो। चतुर्युगी अर्थात् चार युग जिसमें कलियुग चार लाख बत्तीस हजार वर्ष का है। द्वापर इससे दुगना रहता है। त्रेता, कलियुग से तिगुना होता है और सतयुग, कलियुग से भी चौगुना। अब बताइए कितना समय लगेगा? इस अवसर को खो दिया तो अपनी आत्मा का हनन कर दिया।

भगवान् को प्राप्त करने का सहज साधन यही है कि हम 94 अपराधों से बचकर हरिनाम करते रहें। कलियुग में भगवान् बहुत जल्दी मिल जाते

हैं और हमारे गुरुवर्ग को मिले हैं। मेरे को भी मिले हैं और मैंने दस अन्यों को भी दर्शन करवा दिए। भगवान् का दर्शन मुझे हुआ और मेरे साथ जो खड़े थे, उनको भी हुआ। कलियुग में भगवान् बहुत जल्दी मिल जाते हैं। बाद में इस अवसर को खो दिया तो अपनी आत्मा का हनन हो गया। भगवान् को प्राप्त करने का सहज साधन यही है कि हम 94 अपराधों से बचकर हरिनाम करते रहें। शास्त्रों में तो केवल दस अपराध ही लिखे हैं जैसे गुरु की अवज्ञा करना, नाम के बल पर पाप करना, धर्म शास्त्रों को न मानना, हरिनाम को सब साधनों से छोटा मानना आदि आदि दस अपराध हैं। परंतु केवल दस अपराध ही नहीं होते। 84 लाख योनियों में भी भगवान्, परमात्मा रूप से विराजते हैं। चींटी में, चिड़िया में, हाथी में, पेड़ में भी भगवान् आत्मा रूप से रहते हैं। इनके प्रति किए अपराधों की तरफ तो कोई नजर ही नहीं करता। इनको जीव सताता रहता है। इनकी तन, मन से सेवा करो।

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।

(मानस, उत्तर. दो. 40 चौ. 1)

दूसरे को दुख देने के बराबर कोई पाप नहीं है और दूसरे का हित करने के बराबर कोई धर्म नहीं है।

शिवजी को भगवान् ने आदेश दिया कि, "ऐसा आगम शास्त्र बना लो ताकि जीव इनमें ही फंसता चला जाए। मेरे पास न आ सके। नहीं तो मेरी सृष्टि कैसे चलेगी?"

सभी भक्तों की एक बड़ी समस्या है कि हरिनाम में मन नहीं लगता। क्षण–क्षण में मन भटकता रहता है। मन एकाग्र हुए बिना भगवान् में प्रेम प्रकट नहीं हो सकता। अतः कोई उपाय है? हाँ, बहुत सरल उपाय बता रहा हूँ ध्यान देकर सुने! बहुत सरल उपाय है, आपका मन रुक जाएगा। कहते हैं जैसा अन्न वैसा मन। एक तो शुद्ध कमाई का पैसा होना चाहिए। जब हम भगवान् को भोग लगाकर प्रसाद पाते हैं और जब हमारे सामने प्रसाद की थाली आती है। हम प्रसाद पाना आरंभ करते हैं। इस समय हमारा मन इधर–उधर जाता ही रहता है जैसे बाजार में, खेत में तथा और कहीं चला गया। तो खाद्य पदार्थ का जो रस बनेगा, वह तामसिक और राजसिक होगा। उस रस में मन चंचल रहेगा। तो हम को भोजन कैसे करना चाहिए? अब यह मन चंचलता कैसे छोड़ेगा? वह बता रहा हूँ ध्यान

देकर सुनें! जब हमारे सामने भगवान् की भोग की थाली आये तो हम उसे नमस्कार करेंगे। फिर मन में विचार करेंगे कि भोग को हम खाएंगे तो हमारा मन सात्विक वृत्ति या निर्गुण वृत्ति का हो जाएगा क्योंकि इस भगवद् भोग को मेरे गुरुजी ने तथा भगवान् ने पाया है। मैं पाऊँगा तो मेरे प्रसाद पाने से खाद्य पदार्थ का जो रस बनेगा, वह सात्विक और निर्गुण वृत्ति का बनेगा। फिर हम हर ग्रास में मन ही मन में हरे कृष्ण महामन्त्र बोलते रहेंगे। जितनी देर हम हरिनाम करते हुए ग्रास खाते रहेंगे तो हमारा मन कहीं नहीं जाएगा। नाम में ही लगा रहेगा और जो रस बनेगा, उससे मन की चंचलता समाप्त हो जाएगी क्योंकि जो रस बनेगा, उससे मन में स्थिरता प्रकट होगी। वह स्थिरता ही भगवान् में प्रेम प्रकट कर देगी। देखिए! जब थाली सामने आए तो दाहिने हाथ में जल लेकर चार बार थाली पर घुमाओ, तो यह प्रसाद की चार परिक्रमा हो गई। महाप्रसाद का आशीर्वाद मिलेगा। यह एक माह तक करना होगा तब मन पर प्रभाव हो सकेगा। मन एकाग्र हो जाएगा। ऐसा हो भी रहा है। मैंने पहले कई बार बताया है, ऐसा भक्त लोग कर भी रहे हैं और उनको बहुत फायदा हुआ है। आजमा कर देख सकते हो। बहुत भक्तों ने अपनाया है और सफलता मिली है।

श्रीमद्भागवत महापुराण के 6वें स्कंध के 13वें अध्याय में भगवान् कह रहे हैं कि, "हे इंद्र! मेरे नाम से ब्राह्मण, पिता, गौ माता, आचार्य आदि की हत्या करने वाला महापापी, कुत्ते का मांस खाने वाला, चांडाल और कसाई भी शुद्ध हो जाता है। करोड़ों सिद्ध और मुक्त पुरुषों में मेरा नामनिष्ठ मिलना बहुत कठिन है। शांत चित्त वाला संत बहुत कठिन है।"

अपना धन धर्म में लगाओ। इससे धन शुद्ध हो जाता है। यदि धर्म में नहीं लगता तो धन, कुरीतियों में फँसा देता है, गलत आदतों में फंसाता है। धर्म, पुण्य में लगाने से धन बढ़ता है कम नहीं होता। सुपात्र को धन से मदद करने से उससे पुण्य हो जाता है। धन को छह भागों में बांट सकते हैं। धर्म करने के लिए, कर्म करने के लिए, कुछ यश के लिए, धन की वृद्धि के लिए, कुछ भोगों के लिए, कुछ अपने स्वजनों हेतु। जो ऐसा करता है उसे सदा सुख रहता है। श्रीमद्भागवत के अनुसार जो कुछ मिल जाए, उसमें संतोष करने वाला सदा सुखी रहता है।

जब आवे संतोष धन, सब धन धूरि समान।

(संत कबीर जी)

शास्त्रों में, श्रीमद्भागवत महापुराण में लिखा है कि मानव ऐसी जगह झूठ बोल सकता है, तो उसे पाप नहीं लगेगा। किसके लिए? स्त्रियों को प्रसन्न करने के लिए झूठ बोल सकते हैं। हास–परिहास – मजाक में झूठ बोल सकते हो। विवाह आदि में कन्या आदि की प्रशंसा करते वक्त झूठ बोल सकते हैं। अपनी जीविका की रक्षा हेतु झूठ बोल सकते हैं और प्राण संकट में हों, ब्राह्मण के लिए, गौ आदि के लिए, किसी को मृत्यु से बचाने के लिए आप झूठ बोल सकते हैं। यह असत्य भाषण भी श्रेयकर हो सकता है।

भगवान् बोलते हैं कि, "दुर्वासाजी! नाम का उच्चारण करने से तो नारकीय जीव भी मुक्त हो जाते हैं। अतः माँ–बाप जो नरक में चले गए हैं यदि उनके लिए दो माला जप करें तो, माँ–बाप का उद्धार हो जाएगा। यह श्रीमद्भागवतपुराण बोल रहा है।

कलियुग में नाम का प्रभाव बहुत बड़ा है। इसलिए कलियुग में भगवान् का नाम लो और कैसे भी लो। बिना स्नान किए लो, कहीं बैठ कर लो, कोई पैसा वैसा नहीं लगता।

देखो! पिछले जन्मों के अनंत कोटि सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण के स्वभावानुसार ही अगला जन्म, किसी भी चर–अचर प्राणी की योनि में हुआ करता है। जिसे धर्मग्रंथ 'कारण' शरीर कहते हैं। स्वभाव का शरीर भी कहते हैं। सूक्ष्म शरीर ही अगले जन्म का हेतु है। जब साधक का निर्गुण वृत्ति का स्वभाव बन जाता है तो उसका सूक्ष्म शरीर समाप्त हो जाता है। सूक्ष्म शरीर तो सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण से संग में ही रहता है। निर्गुण वृत्ति का स्वभाव तो परमहंस तथा दिव्य महात्माओं का हुआ करता है। इनको दिव्य शरीर प्राप्त हो जाता है।

संसारी आसक्ति वाले साधकों का स्वभाव गुणों से ही लिप्त रहता है। सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण इन गुणों से युक्त रहता है। गुणों से ही जन्म होता रहता है। भगवान् के भक्त के संग से ही इन गुणों का अंत हो सकता है क्योंकि भक्त से ही सच्चा ज्ञान उपलब्ध होता है। भक्तों के संग में सदा भगवद् चर्चा होती रहती है। अतः साधक पर भक्त का प्रभाव शीघ्र पड़ जाता है क्योंकि भक्त स्वयं आचरण शील होता है। जो स्वयं आचरण में रहता है उसका प्रभाव चुंबक की तरह से पड़ जाता है। जैसे चुंबक है। अच्छा चुंबक होगा तो जंग लगे लोहे को भी खींच लेगा। संसार में फंसा

हुआ साधक शुद्ध आचरण में रंग जाता है। वह भगवान् को उपलब्ध करके आवागमन से, जो कि जघन्य दुख का कारण है, सदा के लिए मुक्ति पा लेता है। सूक्ष्म शरीर के बाद ही दिव्य शरीर की प्राप्ति होती है। सूक्ष्म शरीर पिछले जन्मों के शुभ अशुभ संस्कारों का पुंज होता है। वह केवल मात्र साधु संग से ही हटता है और साधु संग भी भगवत्कृपा से ही मिल सकता है। भगवत्कृपा मानव पर कब होती है? जब मानव हरिनाम नामाभासपूर्वक करने लग जाता है। नामाभास किसे कहते हैं? कि मन बिल्कुल लगता नहीं है। इधर उधर भाग जाता है। उसको नामाभास कहते हैं। इससे ही वैकुण्ठ की प्राप्ति हो जाती है। जैसे अग्नि को हम जान कर छुएं या अनजान से छुएं तो उसका स्वभाव है जलाने का, तो वह जलायेगी। इसी तरह हरिनाम का स्वभाव है चाहे जैसे भी करो, बेमन से करो तो भी कल्याण करेगा। उससे संत सेवा बन जाती है। तभी तो शास्त्र घोषणा कर रहे हैं :

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

दसों दिशाओं में मंगल हो जाएगा। कैसे भी भगवान् का नाम लो। कलिकाल में भगवद् प्राप्ति का कोई दूसरा साधन है ही नहीं। जिसका अनुष्ठान करने में कोई कठिनाई भी नहीं है। किसी भी समय, कहीं भी बैठ कर और बिना कुछ खर्च किए सुगमता और सरलता से हरिनाम कर सकते हैं। लेकिन मानव माया जाल में इतना फंसा पड़ा है कि हरिनाम जपने में उसका जी घबराता है। कितना अज्ञान, कितनी मूर्खता इस में समाई हुई है। यह दुख को ही सुख मानकर अपना जीवन काट रहा है। इसे यह पता नहीं है कि अब भविष्य में इसे मानव जन्म नहीं मिलेगा। यह दुख सागर में गिर जाएगा। शास्त्र बोल रहा है कि करोड़ों मानव में कोई एक ही अपना उद्धार करता है। मेरे गुरुदेवजी कितनी कृपा कर रहे हैं और बता रहे हैं कि कितनी सुगमता से मानव, भगवान् के धाम में सदा सुख पाने हेतु जा सकता है। फिर भी मानव गुरुदेव की कृपा की अवहेलना करता जा रहा है।

मानव का अंतःकरण मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार से गठित है। यह अहंकार ही बंधन का कारण है। इसमें मैं–मेरा भरा पड़ा है। अगर इसका तू–तेरा भाव बन जाए तो इसका सारा दुख ही विलीन हो जाए। इसी कारण मेरे गुरुदेवजी ने सभी साधकों को बोला है कि रात–दिन जो कोई

भी कर्म करो तो उसे भगवान् का ही समझ कर करो। भगवान् के निमित्त करो। निष्काम करने से कर्म भोग भोगना नहीं पड़ेगा। सकाम कर्म ही केवल मात्र दुख का कारण है। यह भाव, केवल हरिनाम जपने से ही आता है, जपते रहने से ही उदय होगा। हरिनाम को छोड़ा नहीं और माया के बंधन में पड़ा नहीं। हरिनाम करने से यह माया दूर रहेगी, अन्य कोई साधन, माया को दूर रखने का नहीं है। त्रिगुण ही जन्म का कारण है – सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण। मन भगवान् का है जो अंतःकरण का ही हिस्सा है अतः अहंकार भी भगवान् को देना है। इन दोनों को भगवान् को सौंपने से बुद्धि तथा चित्त सुगमता से भगवान् की ओर मुड़ जाएंगे। जब पूरा अंतःकरण ही भगवान् की ओर मुड़ जाएगा, तब शरीर का महत्त्वशील हिस्सा ही भगवान् का बन गया। फिर बचा ही क्या? मानव जन्म का सार ही सफल हो गया।

इसमें महत्वपूर्ण चर्चा यह है कि साधक अपने अंतःकरण से, हृदय से, केवल भगवान् को ही उपलब्ध करना चाहे, तभी पूरी सफलता हाथ में आ सकती है, वरना तो श्रम ही हाथ में लगेगा। कुछ भी हाथ में नहीं आएगा।

आजकल कलियुग में दुष्ट स्वभाव के बच्चे क्यों जन्म ले रहे हैं? इसका खास कारण है कि मानव का स्वभाव तामसिक गुणों से भरा पड़ा है। उनको संतान की आवश्यकता तो है नहीं। उसे तो मन की तृप्ति होनी चाहिए। मन ही कामुक स्वभाव का बना हुआ है, फिर जो बच्चा होगा, वह तामसिक स्वभाव का ही होगा। वह माँ–बाप का कहना नहीं मानेगा, खानपान दूषित करेगा, कर्म भी अशांति करने वाला करेगा, पड़ोसी को सताएगा, निर्दयी स्वभाव का होगा, लोभी होगा, माँ–बाप को पैसे हेतु मार भी देगा। ऐसा हो भी रहा है। माँ–बाप शिकायत करते हैं कि हमारा बच्चा हमारा कहना नहीं मानता। बच्चे का क्या दोष है? बच्चे का कोई दोष नहीं है। तुम्हारा ही दोष है। मैं तो यही बताता हूँ कि हरिनाम के आश्रित हो जाओ। हरिनाम ही इसे सुधार सकता है। दूसरा उपाय नहीं है। सत्संग से कौन नहीं सुधरा? पशु–पक्षी तक सत्संग से सुधर जाते हैं।

तो गलती बच्चे की नहीं है, गलती मानव की है। मानव उचित समय नहीं देखते, जब चाहे इंद्रिय तर्पण करते रहते हैं। शास्त्रों की मर्यादा का उल्लंघन करना और दुख कष्ट मोल लेना अवश्यंभावी है। शास्त्र बोल रहा है कि दिति–कश्यपजी का उदाहरण मौजूद है, जिनकी संतान हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष ने जन्म लिया। जो उचित समय नहीं देखता, उसे दुख का

भोग भोगना ही पड़ेगा। मेरे गुरुदेव कितनी बार साधकों की आंखे खोलते रहते हैं परंतु फिर भी साधकों की आंखें बंद रहती हैं जो इनका दुर्भाग्य है। धर्मशास्त्र भगवान् के मुखारविंद से, साँस से प्रकट हुआ है जो मानव के सुख के लिए ही बनाए गए हैं। शास्त्र मर्यादा जो तोड़ेगा, वह स्वप्न में भी सुख नहीं पा सकता। अतः –

बोये बीज बबूल का, आम कहाँ से होए।।

(संत कबीर जी)

यह सच्ची कहावत है। बो दिया जौ और चाहेगा चावल। कैसे मिलेगा? सही रास्ते चलो फिर गिरने का डर नहीं है। हनुमानजी क्या कह रहे हैं? जीव को समझा रहे हैं :

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई।।

(मानस, सुन्दर. दो. 31 चौ. 2)

जब साधन–भजन छूट जाता है तो विपत्ति आ जाती है और अगर साधन–भजन नहीं छूटता तो विपत्ति दूर खड़ी रह कर डरती रहती है। आती नहीं है। जब हरिनाम स्मरण कम होने लगेगा तो समझना होगा कि मनुष्य को कुछ न कुछ दुख आने वाला है। जब हरिनाम स्मरण अधिक संख्या में होने लगेगा तो समझना होगा कि अब सुख के दिन आने वाले हैं क्योंकि मानव का सम्बन्ध केवल भगवान् से है न कि माया से। जिसका जिससे सम्बन्ध होगा, उसीके संग से आनंदवर्धन हो सकता है और जिसका जिससे सम्बन्ध ही नहीं होगा तो उसके संग से आनंदवर्धन होने का प्रश्न ही नहीं उठता। कबूतर, कभी कौवे के पास जाकर नहीं बैठता। यदि कौवे के पास बैठेगा तो वहाँ उसका मन सुखी नहीं रहेगा क्योंकि स्वभाव में रात–दिन का अंतर है। कहने का मतलब यही है कि आत्मा का सम्बन्ध परमात्मा से है। जब आत्मा परमात्मा के पास बैठेगा तो सुखी बन ही जाएगा और जब माया के पास आत्मा बैठेगा तो दुखी रहेगा। प्रत्यक्ष को प्रमाण की क्या आवश्यकता है। संसार में हम सब देखते हैं कि शराबी, शराबी के पास बैठता है। सत्संगी, साधु के पास बैठता है। सुखी कौन है? यह सभी जानते हैं। इसलिए मानव को असली आनंद की उपलब्धि करनी हो तो साधु का संग करो। ग्राम चर्चा से दूर रहो। हरिनाम की शरण में अपना जीवन यापन करते रहो तो दुख कोसों दूर भागेगा। जहाँ सूर्य उग रहा है वहाँ रात कैसे आ सकती है? उनकी आपस में कभी बनती नहीं।

दुख–सुख आपस में दुश्मन हैं। जहाँ सुख है, वहाँ दुख कैसे आ सकता है और जहाँ दुख है वहाँ सुख नहीं आ सकता। यह पक्का नियम है। भगवद् नाम की शरणागति उपलब्ध हो जाए तो यह माया का प्रभाव, सत्, रज, तम गुण समाप्त हो जाएं और निर्गुण वृत्ति अंतःकरण में उदय हो जाए। मन से सच्ची शरणागति होती नहीं है अतः दुख का साम्राज्य छाया रहता है। भगवद् नाम के पास दुख आ ही नहीं सकता।

भगवद् नाम कैसे सिमरन करना चाहिए? इसके लिए गुरुदेव जपने का तरीका बता रहे हैं। जब माला हाथ में आए तथा नाम करना आरंभ हो, तो शरीर में एक तरंग व्याप्त होने लगेगी। इस तरंग में संसार विलीन होता हुआ चला जाएगा। यह है सुचारु रुप से, सत्यरूप से हरिनाम जप। फिर प्रेम उदय होकर विरहावस्था प्रगट हो जाएगी। पतिव्रता का उदाहरण दिया जाता है। उसका सारा कर्म ही पति की सेवा के लिए होता है। इसी प्रकार भक्त का कर्म केवलमात्र अपने इष्टदेव भगवान् के लिए हो, तो अन्य के लिए भक्त को अवकाश ही नहीं होगा। उसका तो सारा समय भगवान् के लिए होगा।

सत्संग प्राप्त होने का लाभ अकथनीय है। शास्त्र बोल रहा है :

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग।।

(मानस, सुन्दर. दो. 4)

सत्संग से सम्बन्धित एक अलौकिक कथा है। एक पोता अपने दादा अर्थात् बाबा से बोला, "सत्संग का क्या प्रभाव होता है?" तो दादा बोला, "अमुक जगह चला जा। वहाँ बड़ का पेड़ है, उसमें एक कीड़ा रहता है। वह तुझे सत्संग का प्रभाव बताएगा।" सत्संग का मतलब भगवान् का संग। सत् माने भगवान्। वह बतला सकता है। पोता बोला, "आप तो बताते नहीं, फिर कीड़ा कैसे बता सकेगा?" दादा बोला, "वही बताएगा।" पोता सही जगह पर पहुँच गया और बड़ में जो कीड़ा था, उससे पूछने लगा, "कीड़े महाराजजी! सत्संग का क्या प्रभाव होता है?" इतना पूछने पर कीड़ा मर गया। भगवान् की सत की आवाज कान में चले जाने से उसकी मुक्ति हो गई। पोता बाबा के पास जाकर बोला, "बाबा! मैं कीड़े से पूछने लगा, तो कीड़ा ही मर गया। आप ही क्यों नहीं बता देते?" बाबा बोला, "अमुक जगह पर एक ब्राह्मण की गाय ब्याही है, उसके बछड़ा हुआ है।

अभी दो दिन का ही हुआ है। वह सत्संग का प्रभाव बता सकेगा।" पोता पूछता पूछता वहाँ भी गया और बछड़े से पूछने लगा कि, "सत्संग का प्रभाव कैसा होता है?" इतना पूछते ही बछड़ा भी मर गया। अब तो वह डर गया कि ब्राह्मण उसे मारेगा। बिना बताए वहाँ से खिसक गया। ब्राह्मण उसे जानता नहीं था कि वह कहाँ चला गया। फिर बाबा के पास आकर पूरी घटना बता दी कि वह बछड़ा भी पूछते ही मर गया तो बाबा बोला, "अब की बार अमुक राजा के बीस साल बाद पुत्र हुआ है, वह तुझे सत्संग का प्रभाव बता देगा।" पोता बोला, "आप भी कैसी बातें करते हो। राजा का बेटा भी मर गया तो मुझे फांसी लग जाएगी। मैं तो वहाँ नहीं जाता।" बाबा बोला, "यदि तुझे सत्संग का प्रभाव पूछना हो तो वहाँ जाना पड़ेगा।" पोते को सत्संग का प्रभाव पूछना था। इसे पूछे बिना उसका खाना–पीना, सोना सब हराम हो गया था।

अतः उसने सोचा कि जैसा भगवान् चाहेंगे वैसा करेंगे। मारेगा तो मार देगा और क्या। अब तो वह वहाँ भी पहुँच गया। वहाँ पर पहरेदार थे। अतः उसने साधु का वेश बना लिया। साधु को तो कोई रोकेगा नहीं। वह पहरेदार से बोला, "मैं राजा के पुत्र से मिलना चाहता हूँ। उसे आशीर्वाद देने आया हूँ कि वह चिरंजीव रहे।" पहरेदारों ने सोचा कि हमारे राजा के बीस साल बाद संतान हुई है और यह साधु है तो इससे बुरा तो हो नहीं सकता। तो इसे जाने देने में भलाई है। पहरेदारों ने कहा, "तुम जा सकते हो।" तो वह महल में गया। साधु वेश देखकर सभी ने निर्णय किया और मिलने की आज्ञा दे दी। बच्चा शैया पर सो रहा था। साधु वेश में पोता डर रहा था कि यदि पूछते ही यह मर गया तो सब उसकी तो मार–मार कर बुरी हालत कर देंगे, बेहोश कर देंगे। लेकिन हिम्मत करके उसने बच्चे से पूछा, "सत्संग का क्या प्रभाव है?" अब तो बच्चा बैठ गया और कहने लगा कि, "अरे! सत्संग की वजह से ही मैं राजा का पुत्र बन गया। देखो! तुमने सत्संग के बारे में पूछा था, तब मैं कीड़ा था। तो मैं कीड़े की योनि से विदा हो गया। दोबारा मैं बछड़ा बना। तुमने पूछा तो मैंने बछड़े की योनि से छुट्टी पा ली। अब मैंने राजा का लड़का होकर जन्म लिया है। यही है सत्संग की करामात, कि मैं इतने बड़े राज्य का मालिक बनूंगा। सत्संग ही सुख का भंडार है। सत्संग बिना सब जीवन बेकार है।" तब पोते ने अपने बाबा से सारी कहानी बता दी तो बाबा भी खुश हो गया। सत्संग से क्या उपलब्ध नहीं होता। सत्संग से ऊँचा कुछ भी नहीं है।

एकाग्रता की भी एक वार्ता है। सारगर्भित बहुत प्रभावशाली भी है और महत्व के लिए भी है। ध्यान से सुनो! एक सुंदरी अपने प्रेमी से मिलने जा रही थी। उसका मन उस तरफ इतना तल्लीन था कि उसको अपने शरीर की भी सुध नहीं थी। रास्ते में एक मौलवी अपने परवरदिगार की इबादत कर रहा था। इबादत कर रहा था अर्थात् नमाज पढ़ रहा था। वह सुंदरी भागी–भागी जा रही थी। अन्य कोई रास्ता नहीं था, तो मौलवी पर चढ़ गई और शीघ्रता से चली गई। मौलवी ने सोचा कि कैसी अंधी औरत है, उसे वह नहीं दिखा। अंधी है। कामांध की दशा ऐसी ही होती है। मौलवी ने सोचा कि वापस इसी रास्ते से तो आएगी क्योंकि दूसरा रास्ता तो है नहीं। मौलवी उसकी बाट में बैठा रहा। जब वह सुंदरी वापस आई तो मौलवी बोला, "तू मेरे ऊपर क्यों चढ़ गई? क्या तुझे दिखा नहीं? क्या तू अंधी है?" सुंदरी बोली कि, "जब तू अपने परवरदिगार की इबादत कर रहा था, तो तुझे कैसे महसूस हुआ कि मैं तेरे ऊपर चढ़ गई। तेरी इबादत ढोंग है। तेरा परवरदिगार तुझे क्या देखेगा? ध्यानपूर्वक सुन! मैं अपने प्यारे से मिलने जा रही थी। मेरा मन इतना तल्लीन था कि रास्ते में क्या–क्या है, मेरा उस ओर ध्यान ही नहीं गया और तेरी इबादत सब धूल में मिल गई।" अब तो मौलवी के ज्ञान के नेत्र खुल गए कि सुंदरी बात तो बिल्कुल ठीक कह रही है। उसका इबादत करना फिजूल ही है कि उसका मन तो तल्लीन ही नहीं हो पाया। उसने प्रण किया, "अब मैं तल्लीनता से परवरदिगार की इबादत करूँगा।" मौलवी को एक वेश्या ने ज्ञान–नेत्र दे दिए। कहने का भाव है कि शिक्षा तो निम्न श्रेणी से भी मिल सकती है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

जैसा अन्न वैसा मन

19

10 फरवरी 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में इस दासानुदास अधमाधम
अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा
हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

भक्त समझें! ध्यान से श्रवण करें! कोई भी विषय जो गुरुदेव के द्वारा श्रवण कराता हूँ उसका मुख्य उद्देश्य होता है, हरिनाम जप, जो कान से सुनो। कलियुग में केवल भगवद् नाम से भगवत्कृपा उपलब्ध होकर अंत में वैकुण्ठ जाना होता है। कोई भी भगवद् चर्चा बार–बार दोहराई जाती है इसका आशय है कि भक्तों के हृदय में यह बात जम जाए। यदि व्यवहारिक रूप से जीवन में उतर जाए तो श्रवण करने का 100% लाभ उपलब्ध हो जाएगा। भगवान् श्रीमद्भागवत महापुराण में बोल रहे हैं, "मैं केवल सत्संग सुनने से ही उपलब्ध हो सकता हूँ।" लवमात्र का सत्संग भी मन को बदल सकता है, यदि सत्संग सुनाने वाला शुद्ध हो। यह हरिनाम का सत्संग यदि घर बैठे उपलब्ध हो जाए तो समझना होगा कि यह भगवान् की असीम कृपा का फल है, जो घर बैठे सत्संग मिल रहा है। कोई दिव्य शक्ति ही मेरे माध्यम से हरिनाम का सत्संग करवा रही है। चाहे वह किसी संप्रदाय का क्यों न हो, यहाँ तक कि मुसलमानों के कुरान का ही क्यों न हो, सिक्खों के गुरु ग्रंथ साहिब का ही क्यों न हो। हरिनाम के बिना तो कोई संप्रदाय है ही नहीं। सभी संप्रदाय केवल हरिनाम का ही प्रताप बोल रहे हैं। हरिनाम के अभाव में तो कोई धर्म के संप्रदाय अनंत कोटि ब्रह्मांडों में हैं ही नहीं। यहाँ तक कि सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग में हरिनाम के अलावा कुछ भी नहीं है। अपना नाम तो भगवान् को भी प्यारा लगता है। तो अन्य किसी की तो बात ही क्या है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

देखिए! भगवान् तीन शक्तियां धारण करते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश। ब्रह्मा सृष्टि रचना करते हैं। विष्णु सृष्टि की रक्षा, पालन करते हैं। महेश सृष्टि को नाश करते हैं अर्थात् मृत्यु के देवता हैं। ग्रह, जैसे मंगल ग्रह, शनि ग्रह, बृहस्पति ग्रह, शुक्र ग्रह आदि महेश के ही परिवार हैं तथा अनंत रोग भी महेश के ही गण हैं।

हमारे पुरखे जो मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं, उनका उद्धार करने हेतु उनके परिवार वाले आसोज (आश्विन) माह में, उनके नाम से श्राद्ध करते हैं। जिस दिन वह गए हैं, उस तिथि को ही श्राद्ध करते हैं। शुद्ध ब्राह्मण को न्योता देकर स्वादिष्ट भोजन करवाते हैं ताकि परिवार के सदस्य, जो मर चुके हैं यदि नरक में दुख पा रहे हैं या 84 लाख योनियां भुगत रहे हैं तो इस श्राद्ध से उन्हें सुख प्राप्त हो जाता है। यह तो है निम्न कोटि का कर्म, जो मरे हुए परिवार के सदस्यों के लिए किया जाता है। यह इसलिए किया जाता है कि मरे हुए परिवार के सदस्यों का आशीर्वाद उपलब्ध होता रहे। जैसे किसी की अचानक उन्नति हो जाती है, कभी कभी अचानक से कोई शुभ कर्म हो जाता है, यह सब मरे हुए सदस्यों के आशीर्वाद का प्रतीक है। मरे हुए परिवार के सदस्य का अब सर्वोत्तम भला हो इसके लिए उसके प्रति, जो परिवार का सदस्य वर्तमान में जीवित है, वह यदि मरे हुए के प्रति भगवद् नाम करता है तो उस मरे हुए सदस्य का, जो चाहे नरक में दुख भोग रहा हो चाहे 84 लाख योनियों में दुख भोग रहा हो उसका निश्चित रूप से उद्धार होगा। यदि ऐसा नहीं हो तो फिर तो भगवद् नाम का कोई महत्व ही नहीं है। भगवद् नाम के अलावा अनंत कोटि ब्रह्मांडों में कोई भी ऐसा शक्तिशाली नहीं है, जो भगवद् के नाम से अधिक बलवान हो। अन्यथा नाम के बारे में, जो धर्मशास्त्र में लिखा है (शास्त्र जो भगवान् की साँस से प्रकट हुए हैं) उसका क्या मूल्य होगा? तथा धर्मशास्त्र बेकार हो जाएंगे। अर्थात् भगवान् की भक्ति के मार्ग में वही आगे उन्नत हो सकेगा, जो परिवार का भला चाहेगा, वरना भक्ति कपटमय होगी।

यहाँ शास्त्र के विरुद्ध मन माफिक कुछ नहीं बोला जाएगा। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं हुआ करती है। ऐसी–ऐसी चर्चाएं प्रकट हैं जो धर्म शास्त्र में भी नहीं हैं और प्रत्यक्ष सामने होती जा रही हैं और भक्तगण स्वयं महसूस कर रहे हैं।

जो मानव का भला नहीं कर सकता तो संसार का भला करने का प्रश्न ही नहीं उठता है। जो एल.के.जी. क्लास में नहीं बैठा वह पी–एच.डी क्लास में कैसे बैठ सकता है? जो भगवद्भक्ति की जड़ में नहीं बैठा, वह पेड़ के स्वादिष्ट फल कैसे खा सकता है? भगवान् ने मानव को जन्म इसी कारण दिया है कि बिछुड़ा हुआ प्राणी, जो दुख सागर में पड़ा दुख पा रहा है, वह इस दुख से छूट कर मेरी सुख सागर गोद में आ जाए। इसका गर्भाशय का दारुण दुख छूट कर यह जन्म मरण से छुट्टी पा जाए। भगवान् तो दयानिधि हैं। सब कुछ करते हैं, इस कारण भगवान् को दयानिधि कहा जाता है। लेकिन माया से जीव मोहित हो जाता है और माया में फंसकर सब कुछ भूल जाता है और फिर से चक्कर ही काटता रहता है। जिसका कोई अंत है ही नहीं। देखो! हमारे चैतन्य महाप्रभुजी श्राद्ध करते थे और अद्वैताचार्य तो श्राद्ध में हरिदास ठाकुर, जो मुसलमान थे, लेकिन तीन लाख नाम रोज करते थे, को स्वादिष्ट भोजन करवाते थे। अतः भक्तों को श्राद्ध करना परम आवश्यक है। बहुत से परिवारों में श्राद्ध करते ही नहीं है। तो क्या वह भक्ति पथ पर अग्रसर हो सकेंगे? केवल कपट पूर्ण भक्ति होगी।

भगवान् का धर्मशास्त्र घोषणा कर रहा है, "जो जीव हरिनाम अर्थात् मेरा नाम उच्चारण करता है उसका मूल सहित दुख जल जाता है और सुख का भंडार भर जाता है।"

जिन्ह कर नामु लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं।।

(मानस, बाल. दो. 314, चौ. 1)

अरे! जो भगवान् का नाम लेता है, उसके अमंगल की जड़ ही खत्म हो जाती है। यह शास्त्र का वचन जीव के सामने घोषित हो रहा है। अतः अब उदाहरण सहित विचार करने से यह तथ्य हृदय में गहराई से अंकित हो जाएगा। जैसे कोई भी जाने–अनजाने अग्नि में हाथ डालेगा तो अग्नि का स्वभाव है जलाने का। अतः हाथ जल जाएगा। यह तो स्वयं आप प्रत्यक्ष देख ही रहे हैं कि यह स्वभाव अग्नि का है। इसी तरह से यदि कोई भी जानकर या अनजान में जहर पी लेगा तो उसका स्वभाव है मारने का, तो वह उसे मार ही देगा। ऐसे ही यदि कोई भी जाने या अनजाने में अमृत पी लेगा तो इसका स्वभाव है अमर करने का, तो उसे अमर कर देगा। इसी प्रकार भगवद् नाम, जान कर लो, अनजाने में लो, किंतु जब मुख से उच्चारण हो जाएगा तो जीव को सुखी कर देगा। शास्त्र बोल रहा है :

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

(मानस. बाल. दो. 27, चौ. 1)

भाव से लो, मन से लो, बेमन से लो और क्रोध से लो, आलस से सोते हुए लो, चलते फिरते लो, खाते पीते लो, तो उससे दसों दिशाओं में उसका मंगल हो जाएगा। ग्यारह दिशा तो होती नहीं है। दस दिशा ही हैं तो दस दिशाओं में वैकुण्ठ भी है और गोलोक धाम भी है। चलते–फिरते, खाते–पीते जैसे भी किसी के मुख से नाम निकल जाए, तो उस जीव को 100% सुख विस्तार कर देगा। वैकुण्ठ व गोलोक धाम, जो सुख के अथाह समुद्र हैं, वह जीव को उपलब्ध हो जाएंगे। इस कलिकाल में कोई विधि विधान या नियम नहीं है। जैसे भी, जिस तरह की अवस्था के जीव, भगवद् नाम उच्चारण कर लें तो उस जीव का उद्धार 100% निश्चित है। न स्नान करने की जरूरत है, न समय देखने की जरूरत है, न अच्छे स्वभाव की जरूरत है। केवल भगवद् नाम की जरूरत है। वैसे संसार में मानव हर क्षण बक–बक करता ही रहता है, जिसका कोई मतलब नहीं होता है। लेकिन भगवद् नाम लेने में मुख पर ताला लगा रहता है। भगवद् नाम नहीं निकलता। क्यों?

बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता

(मानस, सुन्दर. दो. 6 चौ. 2)

बिना हरि कृपा के जीव को संत नहीं मिल सकते।

देखो! भगवान् स्वयं नहीं आते हैं। अपने प्यारे साधु को ही, सुख पाने का सही रास्ता बताने हेतु उस जीव के पास भेजते हैं, जिस जीव की सुकृति होती है। सुकृति के अभाव में जीव को साधु का दर्शन नहीं हो सकता। बस माया में पड़ा पड़ा तथा अंधेरे में, अज्ञान में पड़ा पड़ा जिंदगी भर रोता ही रहता है। इसको कभी शांति का अवसर मिलता ही नहीं है। अंत में 84 लाख योनियों में चक्कर काटता रहता है। मानव जन्म का अवसर मिल जाने पर भी दुख के रास्ते पर अग्रसर होता रहता है। बार–बार परिवार संरक्षित करता रहता है और परिवार को छोड़ता रहता है। नए–नए परिवार बनाता और छोड़ता जाता है। इसका यह रास्ता कभी समाप्त नहीं होता। बस यही तो भगवद् माया है। इस दुष्कर माया से पिंडा छूटना बहुत मुश्किल है। केवल भगवान् का प्यारा साधु ही, सुकृति होने से, इस जीव का दुख का रास्ता, सुख में बदल सकता है। अन्य कोई भी साधन है ही नहीं।

देखिये! जैसा अन्न होता है वैसा ही मन होता है। अगर शुद्ध कमाई का पैसा होता है तो उसका भगवान् के नाम में मन लगता है। दो नंबर का पैसा होगा तो भगवद् नाम में मन कभी नहीं लगेगा।

तीस–चालीस साल पहले की बात है। एक कृष्ण दास बाबा थे, जो मेरी जान पहचान के थे। परम भक्तों की श्रेणी में गिने जाते थे। कई लोग शास्त्रार्थ करने हेतु उनके पास आया करते थे। हर समय हरिनाम करना तथा अन्य को हरिनाम करने की प्रेरणा देना, उनका सर्वोत्तम कर्म था। वह सदा ही हा–राधा! हा–राधा! हा–कृष्ण! हा–श्यामसुंदर! पुकारा करते थे। दिन में एक बार केवल मात्र दो घरों से मधुकरी लाकर, भगवान् को भोग लगाकर पा लिया करते थे। ऐसे संत थे वो कि न जाने दिन–रात में कितनी बार हा–राधा! हा–राधा! हा–श्यामसुंदर! हा–श्यामसुंदर! पुकारा करते थे और रोया करते थे। कोई बोलता कि, "आप इतना क्यों रोते हो।" तो कहते कि, "तुमको इससे क्या मतलब है?" जब कोई पीछे ही पड़ जाता तो कहने लगते कि, "यह दोनों (राधा–कृष्ण) मुझे रुलाते रहते हैं।" कोई पूछते, "तो आप उनसे क्यों नहीं बोलते कि तुमको मुझे रुलाने में क्या मजा आता है।" तो बाबा बोलते, "मैं कहता हूँ तो जवाब देते हैं कि हमें भी आपके साथ रोने में मजा आता है। हमको रुलाने वाला कोई मिलता ही नहीं है और बाबा! इस रोने में कितना मजा है। क्या तुमको पता नहीं है?" तो बाबा बोलते, "हाँ! पता तो है।"

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

एक दिन एक वेश्या शाम को उनके पास आई और बोली, "मेरा जीवन तो बेकार हो गया। मैं क्या करूँ बाबा?" बाबा बोले, "मेरे पास बैठकर हरिनाम क्यों नहीं करती हो?" वेश्या बोली, "बाबा! मैं वेश्या हूँ।" बाबा बोले, "तू वेश्या है तो मैं क्या करूँ। यदि तुम्हें अपना जीवन सुधारना है, तो मेरे पास बैठ कर हरिनाम क्यों नहीं करती?" वेश्या बोली, "बाबा तू बदनाम हो जाएगा।" बाबा बोले, "मैं बदनाम हो जाऊँगा तो मेरा क्या बिगड़ेगा। तुझे मेरे साथ बैठकर हरिनाम करना हो तो कर, वरना मेरा माथा मत खा। भाग जा यहाँ से।" वेश्या ने सोचा कि ऐसा संत तो उसने अब तक नहीं देखा, न ही सुना। इसको किसी बात की चिंता ही नहीं है। इस बाबा से उसका कल्याण हो सकता है। अब तो वह रोज रात–दिन बाबा के पास रहकर हरिनाम करने लगी। दुनिया में चर्चा होने लगी कि

बाबा इतना सिद्ध था, परंतु माया ने किसी को नहीं छोड़ा। अब तो बाबा के पास किसी का भी आना जाना बंद हो गया। एक दिन बाबा वेश्या से बोला, "तुम्हारे आने से मेरा भजन कितनी तरक्की पर चला गया। लोग आकर मेरा माथा खाते थे, भजन के लिए तो कोई पूछता ही नहीं था। अपना रोना रोकर मुझे सुनाते थे। इससे तो पिंडा छूटा। अब कितने आनंद से हमारा तुम्हारा हरिनाम सुचारु रूप से हो रहा है।" वेश्या बोली, "हाँ बाबा! अब तो मेरा भी उद्धार निश्चित हो ही जाएगा।" बाबा बोले, "क्यों नहीं होगा? होगा ही।"

तब वेश्या बोली, "मेरे पास लाखों रुपया कमाया हुआ है। आपको देना चाहती हूँ।" बाबा बोला, "ऐसा कभी मत सोचना। देना हो तो भगवान् के मंदिर में चढ़ा आओ।" वेश्या ने पूछा, "क्या गुसाईंजी मेरा पैसा ले लेंगे?" बाबा बोला, "जा कर पूछ लो, क्या कहते हैं?" दूसरे दिन वेश्या मंदिर में गई और गुसाईंजी से प्रार्थना की कि उसके पास बहुत पैसा है, उसे ठाकुर जी के लिए ले लो। गुसाईंजी बोले, "तू वेश्या है तेरा पैसा ठाकुर जी नहीं ले सकते।" फिर क्या था। इतना सुनते ही वह ठाकुरजी के सामने चिल्लाने लगी, "आपने मुझे वेश्या का कर्म सौंपा। मेरा इसमें क्या दोष है? अब मैंने जो कमाई की है आपको लेनी पड़ेगी, नहीं लोगे तो मैं पांच–सात दिनों में तुम्हारे चरणों में प्राण दे दूँगी। बोलो! क्या कहते हो?" गुसाईं भी उसका उलाहना सुनकर हैरान हो रहा था कि यह कैसी वेश्या है? बोली, "गणिका भी वेश्या ही तो थी। उसको आपने कैसे अपनाया? और मैं भी वेश्या ही हूँ। यह भेदभाव क्यों? तुम कैसे भगवान् हो? तुम तो पत्थर के बने बैठे हो। भक्तों को धोखा दे रहे हो।" इस प्रकार वह जोर–जोर से चिल्ला–चिल्ला कर दहाड़ मार कर रोने लगी। तब गुसाईं ने देखा कि ठाकुरजी के गले की माला खिसक कर सिंहासन पर गिरी। गोसाईं समझ गया कि वेश्या की प्रार्थना ठाकुरजी ने सुन ली है। लेकिन विचार करने लगा कि जब ठाकुर, उसे स्वप्न में आदेश देंगे तभी वह उसका पैसा लेगा। उस धन से बार–बार संतों का भंडारा भी कर सकता है। अब तो ठाकुरजी भी फंस गए। यह वेश्या तो प्राण त्याग देगी और अब तो गुसाईं जी को स्वप्न देना ही पड़ेगा। रात में ठाकुरजी ने गुसाईं को स्वप्न दिया कि, "जैसा वेश्या बोले, निसंकोच होकर उसकी बात मान लेना। यह मेरा आदेश है।" अब गुसाईं को चिंता हो गई। वेश्या को बुलाने हेतु पुजारी को भेजा। पुजारी बोला, "मैं वेश्या के दरवाजे पर कैसे जा सकता हूँ? उसका दरवाजा तो बाजार के बीच में है। बाजार में

दोनों और सुनारों की दुकानें हैं और वे मेरे रिश्तेदार हैं। वे क्या सोचेंगे?" गुसाईंजी ने बोला, "जब दुकानें बंद हो जाएं तब उसके कमरे पर चले जाना। तुम्हारा जाना तो बहुत जरूरी है" बेचारा पुजारी, उनके आदेश से मजबूर होकर गया और वेश्या से बोला, "गुसाईंजी ने तुमको बुलाया है। लेकिन गुसाईं के घर पर मत जाना, उन्होंने मना किया है। मंदिर में जाना।" वेश्या बोली, "क्यों बुलाया है? कोई खास काम है?" पुजारी बोला, "ठाकुरजी ने गुसाईंजी को आदेश दिया है।" ऐसा सुनते ही वेश्या जोर जोर से रोने लगी। पुजारी ने कहा, "मेरा क्या हाल होगा। मुझे यहाँ से निकल जाने दो। बाद में जैसा चाहो, रो लेना। मेरी बदनामी कराओगी क्या? तुम अभी चुप रहो।" वेश्या के पास जाने से सभी डर जाते हैं। समाज का भी डर लगता है। आंख मिलाना भी दूभर हो जाता है। वेश्या गुसाईं के पास जाकर बोली, "क्या बात है?" गुसाईं बोला, "तुम्हारा जितना धन है मंदिर में चढ़ा दो। मैं स्वीकार कर लेता हूँ।"

वेश्या के पास लाखों रुपया तथा सामान भी बहुत था। स्वयं का मकान, दुकान भी थी। उसने मकान और दुकान बेचकर सब पैसा भगवान् को सौंप दिया और सिर मुंडवाकर, कृष्णदास बाबा के पास आ कर उनकी चेली बन गई। वैराग्य धारण कर अलग से आश्रम बनाकर भजन में लीन रहने लगी तथा रात–दिन हरिनाम जपती रहती। अब तो उसके पास साधु महात्मा तक आने लगे और सत्संग का परामर्श करने लगे। वेश्या इतनी बदल गई कि नामीगिरामी संत के पथ पर अग्रसर हो गई।

वृद्धावस्था आने पर हरिद्वार में जाकर अपना अंतिम जीवन विरहावस्था में ही बिताया। अंत में भगवान् को प्राप्त हो गई। यह श्री गुरुदेव ने ऐसी मार्मिक वार्ता सुनाकर अंकित करवाई थी। जब गुसाईंजी ने वेश्या के धन से भंडारा करना आरंभ किया और संतगण भंडारा पाने लगे तो उनको रात में बुरे स्वप्न आने लगे, स्वप्नदोष होने लगा। वे गुसाईं जी को आकर पूछने लगे कि, "जो आपने भंडारा किया है वह किसके अन्न का किया है?" गुसाईंजी ने कहा, "यह वेश्या के अन्न से भंडारा हुआ था।" संतगण आकर ठाकुरजी को उलाहना देने लगे कि, "आपने वेश्या का धन क्यों लिया?" तो ठाकुरजी ने सिद्ध संतों को स्वप्न में कहा, "मुझे वेश्या का धन लेना पड़ा। वेश्या ने मुझे उलाहना दे दे कर परेशान कर दिया था कि यदि आप मेरा धन नहीं लोगे तो मैं पांच–सात दिनों में तुम्हारे मंदिर में आकर प्राण त्याग दूँगी। अतः मुझे वेश्या का धन लेना पड़ा।" संत बोले, "आपने धन

तो ले लिया, ठीक है परंतु भंडारा करके हमारा धर्म क्यों बिगाड़ा? हमें तो शादी करने का रोग लग गया।"

भगवान् बोले, "मैं तो वेश्या का अन्न पचा सकता था, आप नहीं पचा सकते। आपको तो ऐसे अन्न को सिर से लगाकर और कणी मात्र लेकर सेवन करना चाहिए था। अब तुम सब तीन दिन का उपवास कर लो ताकि वेश्या के अन्न से तुम्हारा आमाशय खाली हो जाए फिर तुमको काम वासना नहीं सताएगी। तुमको तो मधुकरी का अन्न ही खाना उचित है। भंडारे में नहीं जाना ही तुम्हारे लिए ठीक होगा क्योंकि भंडारे में अधिकतर अन्न दूषित ही आता है। वह आप के लिए नुकसानकारक होता है। मधुकरी भी नित्य, एक घर से नहीं मांगना। नित्य नए–नए घर में जाकर भिक्षा करना उचित है। एक ही घर में जाने से भी तुम्हें माया पकड़ लेगी। जाओ भी, तो ऐसे समय में जब घरवाले खा चुके हों क्योंकि कम भोजन होने से कोई न कोई घर वाला भूखा रह जाएगा। इससे वह मधुकरी, अमृत से वंचित रह जाएगी।" मधुकरी सेवन अमृत सेवन ही होती है जिससे भजन में मन लगता है, नहीं तो मन उचाट हो जाता है। अब तो भविष्य में संतों ने भगवान् की शिक्षा ग्रहण कर मधुकरी से अपना जीवन यापन करना आरंभ कर दिया तो भजन में मन लगने लग गया। ठाकुरजी ने जब से भंडारे में जाने से मना किया तब से भंडारे में संतों का जाना बंद हो गया।

देखो! कलिकाल में अन्य साधन करने की आवश्यकता नहीं है। केवल हरिनाम पर ही आश्रित रहना उचित है। जितने भी हमारे पिछले गुरुवर्ग हुए हैं, सभी रात–दिन हरिनाम किया करते थे। उनके अनुगत में रहकर ही अपना जीवन यापन करना श्रेयस्कर है। केवल नाम अपराध से बच कर रहना परम आवश्यक है। नाम अपराध होने से भजन में गहरा नुकसान हो जाता है। नाम अपराध स्वयं करने से या अन्य से सुनने से भी हो जाता है। मन में सोचने पर भी नामापराध बन जाता है। भगवान् को सब कुछ सहन हो जाता है लेकिन नाम अपराध सहन नहीं होता। यद्यपि वह ब्रह्मा, शंकर ही क्यों न हों उनको भी दंड का भागी होना पड़ेगा। जिसने आज ही गुरुदेव से हरिनाम लिया है उस साधक का भी अपराध बन जाता है क्योंकि गुरुदेवजी ने नए साधक का हाथ ठाकुरजी के हाथ में सौंप दिया है अतः वह साधक अब ठाकुरजी का हो गया। माया के चंगुल से वह साधक छूट गया। ब्रह्मा का जन्म समाप्त हो गया और

उस जीव का जिस दिन श्री गुरुदेव से हरिनाम हुआ, उसी दिन से उसका नया जन्म होता है। ऐसा धर्म शास्त्र का वचन है।

एक आश्चर्यजनक घटना है। ध्यानपूर्वक सुनने की कृपा करें। किसी गाँव में एक बुड्ढा व्यक्ति था। उसके पांच पुत्र थे तथा पांच बहुएं थीं। बुड्ढे की पत्नी का स्वर्गवास हो गया था अतः वह बूढ़ा घर में बहुत परेशान होता था। उस बुड्ढे को पुत्र तथा पुत्रों की बहुएं बहुत परेशान करती थीं। गालियां देती थीं, कहती थीं कि, "बुड्ढे! तुझे शर्म नहीं आती, चाहे जहाँ थूक देता है, मूत देता है, खे–खे करता रहता है, हमें सोने भी नहीं देता है, तू मर जाये तो इस घर का सुखी दिन आ जाए।" कई बार बोलने पर ही उसे खाने को देती और कभी भूखा ही रह जाता बेचारा। पानी के लिए बोले तो झिड़क दें बोलें, "मरता ही नहीं है हमें परेशान करता रहता है। तू यहाँ से निकल जा। हमें मुँह मत दिखा।" पहनने का कपड़ा भी फटा पुराना समाज के भय की वजह से देना पड़ता। एक दिन बुड्ढा बहुत परेशान होकर रात में ही घर से निकल गया। एक साधु के आश्रम में पहुँचा। अपनी सब परेशानी साधु को बताई कि वह घरवालों से परेशान है, तो साधु बोला, "घरवाले तेरे अनुकूल नहीं होने का कारण, उनके पूर्व जन्म के संस्कार हैं और तेरे भी पूर्व जन्म के संस्कार हैं। यह दर्पण ले जा। इस दर्पण से पूर्व जन्म में कौन किस योनि में था, मालूम हो जाएगा। अतः तू एक बार अपने घर पर जाकर देख कि तेरा परिवार पिछले जन्म में किस योनि में था और तू किस योनि में था?" उसने वहीं पर साधु से दर्पण लेकर अपने को देखा तो देखता है कि वह पिछले जन्म में हिरण था। तो साधु बोला, "तू अपने परिवार को देखना, वे पिछले जन्म में कुत्ते होंगे। वह आपस में लड़ते होंगे और कुत्ते और हिरण की आपस में दुश्मनी रहती है। कुत्ते हिरण के पीछे पड़े रहते हैं।" वह बोला, "महात्माजी! वे दिन–रात आपस में लड़ते ही रहते हैं।

साधु बोला, "तो तेरा उनसे मेल कैसे खा सकता है? हिरण के पीछे कुत्ते तो स्वाभाविक ही भोंकते रहते हैं। अतः तेरी उनसे कभी नहीं बन सकती। तू एक बार घर पर जाकर इस दर्पण से जांच कर ले फिर मेरे पास आ जा।" बुड्ढा घर पर गया तो सब उसे देखते ही मिलकर पीटने को तैयार हो गए। बोले, "गया हुआ वापस क्यों आया तू?" उसने दूर से ही दर्पण में देखा तो सारा परिवार कुत्ते–कुतिया ही नजर आये। अब तो वह अपनी जान बचाकर साधु के पास आया और आकर सारा हाल बता

दिया। साधु ने कहा, "अब तू कहीं भी जा सकता है क्योंकि मैं तो किसी को अपने पास रखता नहीं हूँ।" बुड्ढा भूखा–प्यासा किसी गाँव से गुजर रहा था और एक घर पर जाकर पीने को पानी मांगा। दरवाजे पर एक बुढ़िया बैठी थी। बुढ़िया बोली कि, "बाबा तुझे क्या चाहिए?" बुड्ढा बोला, "मैं प्यासा हूँ, थोड़ा पानी पिला सकती हो?" बुढ़िया ने कहा, "हां, क्यों नहीं, पानी पियो और कुछ खा भी लो।" बुढ़िया का परिवार भी बड़ा था। बेटे, पोते, बेटों की बहुएं और बूढ़ी का पति भी मौजूद था। इतने में बूढ़ी का पति बाहर आया और बुड्ढे से पूछने लगा, "तू कहाँ का है? कहाँ जा रहा है?" बुड्ढे ने अपनी स्वयं बीती बता दी कि वह तो परिवार से बहुत परेशान है। बूढ़ी का पति बोला, "यार, तुम हमारे घर पर ही रहो। कुछ करना नहीं है। मौज से खाओ, पियो और हमें अच्छी–अच्छी शिक्षा दो क्योंकि तुम ने संसार को देखा है। हम भी तुम्हारी शिक्षा लेकर खुश रहेंगे।" बाबा तो चाहता ही था कि कहीं आसरा मिल जाए तो आगे का जीवन खुशी से बसर हो जाए। अतः हाँ कर दिया कि वह उनके घर में रह जाएगा। बूढ़ी के पति ने बोला, "खुशी से रहो।" अब बाबा ने सोचा कि साधु ने जो दर्पण दिया है, उससे देखता हूँ कि ये परिवार वाले पिछले जन्म में किस योनि में थे। तो बाबा ने दर्पण से देखा कि पूरा परिवार ही हिरण–हिरणी है। वह सब हिरण हिरणी की योनि में थे। अतः बाबा ने सोचा कि वह भी पिछले जन्म में हिरण ही था इसलिए यहाँ उसका गुजारा हो जाएगा।

यही है संसार में माया का तीर। आपस में परिवार में क्यों नहीं बनती है। न जाने किस–किस योनि से आपस में जीव इकट्ठे हो जाते हैं। एक जाति न होने से आपस में बनने का सवाल ही नहीं उठता। इसलिए संसार दुखालय कहलाता है।

पशु, पक्षियों का भी एक साथ निर्वाह नहीं होता। कोई शरीफ होता है और कोई बदमाश होता है। ऐसा हम देखते हैं। इसलिए जन्मों के स्वभाव बदलते नहीं हैं। स्वभाव केवल भगवद् नाम के सत्संग से ही बदल सकता है। इसका अन्य कोई साधन नहीं है। केवल हरिनाम। जब तक माया के तीन गुण– सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण पिछले संस्कार वश मौजूद रहेंगे, तब तक वह सूक्ष्म शरीर, जो इंद्रियों का पुंज है, मौजूद रहेगा। यही कर्मानुसार अगला जन्म करवाता रहेगा।

जब हरिनाम करते–करते यह गुण समाप्त हो जाएगा। निर्गुण वृत्ति अंतःकरण में जागृत हो जाएगी तथा सूक्ष्म शरीर की जगह दिव्य शरीर भक्त में पदार्पण हो जाएगा, तब इसके संग में प्रेमावस्था, विरहावस्था अंतःकरण के भाव में प्रगट हो जाएगी। यही क्रम है भगवत्प्राप्ति का तथा आवागमन हटने का। आवागमन ही जघन्य दुख का कारण बनता है लेकिन यह क्रम फलीभूत केवल सच्चे साधु के संग से ही होगा। साधु संग के अभाव में यह क्रम होगा ही नहीं। साधु की सेवा इसमें सम्मिलित है। साधु की सेवा से ही साधु की प्रशंसा प्राप्त कर साधक पर कृपा होगी। सेवा के अभाव में साधु के संग से भी कुछ प्राप्त होने वाला नहीं है। माया का प्रभाव ब्रह्मलोक तथा शिवलोक तक भी है। ब्रह्मा, श्री कृष्ण के बछड़े और ग्वालबाल चुरा कर ले गया तथा अपनी पुत्री के पीछे–पीछे दौड़ पड़ा। इसी प्रकार शिवजी मोहिनी के पीछे दौड़ पड़े थे। यदि ब्रह्मलोक और शिवलोक में माया नहीं होती तो यह अवगुण वहाँ कैसे आ सकते थे। माया केवल गोलोक और वैकुण्ठ लोक में नहीं है। वहाँ भगवान् का ही आधिपत्य है। वहाँ सुख ही सुख है। वहाँ जाकर साधक संसार में वापस नहीं आता है।

सम्बन्ध ज्ञान की वजह से, जिसको सम्बन्ध ज्ञान नहीं मिला, उसे वैकुण्ठ से वापिस आना पड़ जाता है। उसको भगवान्, किसी उच्च्य स्थिति वाले भक्त के घर में जन्म देते हैं। वहाँ वह आरंभ से ही यानि बचपन से ही मन से भजन करके सम्बन्ध ज्ञान उपलब्ध कर लेता है। तब उसे भगवान्, भगवद् गोलोक की प्राप्ति करवा देते हैं। वहाँ से साधक वापस नहीं आता है। तभी आता है जब भगवान् स्वयं धरातल पर अवतरित होते हैं। उनके संग लीला वर्धन करने हेतु सम्बन्ध ज्ञान वाला साधक धरातल पर अवतरित होता है और साधारण साधक इन लीलाओं का स्मरण करके भक्ति में उन्नत होता रहता है। कलियुग में हरिनाम स्मरण के अलावा दूसरा कोई साधन है ही नहीं। इस साधन से ही साधक गोलोक धाम पहुँच जाता है।

गुरु महिमा

17 फरवरी 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में इस दासानुदास अधमाधम
अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा
प्रार्थना है हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

भगवद्कथा करो! वही स्वरूप सर्वोत्तम है। यह चर्चा सुनो, जिससे संसार का लगाव और आसक्ति, शत प्रतिशत निर्मूल हो जाए एवं बिछुड़ा हुआ जीव फिर से भगवान् की गोद में चला जाए। यह अवस्था ही परमहंस अवस्था कहलाती है। इसे तुरीय अवस्था भी बोला जाता है। यह अवस्था कब उदय होती है? जब जीव का मन 100% संसार से हट जाए। यह अवस्था, तब ही उदय होती है जब मन परमानंद चिंतन में डूब जाता है। इस अवस्था से प्राणी को चिन्मय शरीर उपलब्ध हो जाता है। सूक्ष्म शरीर, जिसमें अनंत जन्मों के संस्कार भरे रहते हैं, पुंज होते हैं, संस्कारों का स्टोर होता है, मूल सहित खत्म हो जाते हैं। तभी इसका जन्म मरण के दारुण दुखों से पिंडा छूट जाता है तथा वैकुण्ठ या गोलोक धाम में पहुँच जाता है। इसका भगवान् से ही नाता जुड़ जाता है और जड़ सहित दुख का नाश हो जाता है। यह संसार क्या है? दुखालय है। दुख सागर है। धनवान भी दुखी और गरीब भी दुखी है। दुखी क्यों है? दुखी इस कारण से है कि मानव अपने अमर माँ–बाप, जो भगवान् हैं, उनसे बचपन में बिछुड़ गया है। जो माँ–बाप से बिछुड़ जाता है क्या वह कभी सुखी रह सकेगा? उसको कोई भी साथ में नहीं बैठने देगा। विचार करेगा कि न मालूम यह कैसा आदमी है? चोर है? डकैत है? दुष्ट स्वभाव का है? बातचीत करने से मुंह मोड़ लेगा। न इसे सोने की ठौर मिलेगी न खाने की व्यवस्था रहेगी। न कोई इज्जत करेगा तथा सभी तरफ से संसार से दुखी रहेगा। जो अपने अमर माँ–बाप से बिछुड़ा नहीं है, वह माँ–बाप की

संपत्ति का मालिक बन जाएगा। सभी इसकी इज्जत करेंगे। अतः हर प्रकार से सुखी रहेगा। माँ–बाप इसके रक्षक, पालक रहेंगे तो यह बेफिक्र होकर अपना जीवन बसर करता रहेगा। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष सब इसको हस्तगत हो जाएंगे।

इसका प्रत्यक्ष उदाहरण भक्त प्रह्लाद है, जो पांच साल का ही था। उस पर कोई आंच नहीं आई क्योंकि उसकी रक्षा स्वयं भगवान् कर रहे थे। उसको मारने में उसके पिता हिरण्यकश्यप ने कोई कसर नहीं छोड़ी परंतु अंत में स्वयं ही मारा गया। हिरण्याक्ष एवं हिरण्यकश्यप पूर्व जन्म में भगवान् के यहाँ जय एवं विजय नामक द्वारपाल थे। सनकादिकों को अंदर जाने से रोकने से इन्हें श्राप मिल गया। अतः ये तीन जन्म तक राक्षस हो गए। द्वारपाल होते हुए भी उनकी राक्षस प्रवृत्ति प्रगट हो गई।

एक जन्म में तो हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष हुए, दूसरे जन्म में रावण और कुंभकरण हुए, तीसरे जन्म में शिशुपाल और दंतवक्र। बाद में श्राप भोग कर वापिस अपने स्थान पर आकर भगवान् के द्वारपाल बन गए। यह सब भगवद् प्रेरणा से ही, लीला रचने हेतु हुआ। भगवान् ही प्रेरणा देकर, लीला की इच्छा हेतु, किसी भक्त से श्राप दिला देते हैं। लीला किये बिना भगवान् का मन नहीं लगता है। उनको लीला करने की आदत है। तो भगवान् की प्रेरणा के बिना तो एक पत्ता भी नहीं हिलता।

भगवद् माया के तीन स्वभाव होते हैं – सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। त्रिगुणी माया के बिना तो भगवद् सृष्टि चल ही नहीं सकती। दूसरी है योगमाया, जिसको भगवान् स्वयं अपनाकर संसार में अनंत लीलाएँ करते रहते हैं। इन लीलाओं को याद कर, स्मरण कर मानव अपना जन्म सफल कर लेता है। भगवान् से बिछुड़ा हुआ प्राणी भगवान् की गोद में चला जाता है। यह त्रिगुणमयी माया इतनी दुष्कर है कि इस को जीतना बहुत मुश्किल है। यह माया कब जीती जा सकती है? जब मानव भगवद् नाम को अपनाता है तो भगवद् नाम से जीव का स्वभाव बदल कर सभी गुण उसके ह्रदय में आकर जम जाते हैं और दुर्गुण ह्रदय से दूर हो जाते हैं। तब ही तो हमारा धर्मशास्त्र घोषणा कर रहा है :

कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिर सुमिर नर उतरहिं पारा।।

कलियुग में केवल नाम है। नाम के अलावा कुछ भी नहीं है। केवल नाम। मानव को जगा रहे हैं :

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

(चै. च. आदि 17.21)

इस कलियुग में दूसरा रास्ता नहीं है, नहीं है, नहीं है। तीन बार बोल दिया। मोहर लगा दी। तीन बार बोला कि कोई दूसरा रास्ता नहीं है ।

कृत युग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पाबहिं लोग।।

(मानस, उत्तर. दो. 102 ख)

कलियुग में दूसरा कोई रास्ता नहीं है। सतयुग, त्रेता, द्वापर में जो भक्ति की जाती है, वह केवल हरिनाम से ही अब यहाँ मिल जाएगी। मानव इसको प्राप्त कर अपना उद्धार कर सकता है। दुखों से अपना पिंडा छुड़ा सकता है। गर्भाशय से लेकर मरण अवस्था तक दुख ही दुख भोग करता रहता है लेकिन इसको कोई सुख का रास्ता बताने वाला नहीं मिलता है। जब किसी मानव की सुकृति, किसी साधु के संग से बन जाती है तो दयानिधि भगवान् उसके पास सच्चा साधु भेज देते हैं। भगवान् स्वयं ही साधु के रूप में आकर उसे अपनाते हैं। सुख पाने का अन्य कोई रास्ता अनंतकोटि ब्रह्मांडों में नहीं है। भगवान् बोलते हैं कि, "मानव, तुम कैसे भी मेरा नाम लो। मैं तुम्हें इस दुष्कर माया से छुड़ा दूँगा।" भगवान् बोलते हैं:

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

"तो मन से लो, बेमन से लो, सोते लो, चलते–फिरते लो कैसे भी लो, तो दसों दिशाओं में मंगल हो जाएगा। दसों दिशाओं में तो वैकुण्ठ भी है, गोलोक धाम भी है। मेरा नाम ही ऐसा प्रभावशाली है कि जो भी किसी प्रकार से मेरा नाम जपता है उसके अनंत जन्मों के पाप जलकर भस्म हो जाते हैं।" भगवान् बोलते हैं :

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।।

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 1)

"करोड़ों जन्मों के पाप भस्म हो जाएंगे। सन्मुख का मतलब है कि अभी संसार की तरफ मुड़ा हुआ है, मेरी तरफ आ जाए। संसार में जो

झुकावट है वो झुकावट मेरी तरफ हो जाये। बस, फिर उसका कल्याण हो गया। सन्मुख का मतलब है जब तू मेरा नाम लेगा तो तेरे अनंत जन्मों के पाप उसी समय जलाकर भस्म कर दूँगा।" फिर भगवान् बोल रहे हैं :

जौं सभीत आवा सरनाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं।।

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 4)

"जो दुखी होकर मेरे नाम की शरण में आ जाता है तो मैं उसे प्राणों से भी प्यारा रखता हूँ।"

नाम तो भगवान् को बहुत प्यारा लगता है। कहते हैं :

हरि से बड़ा हरि का नाम, अंत में निकला यह परिणाम।
हरि ने तारे भक्त महान और नाम ने तारे अनंत जहान।।

कोई भी भगवान् का नाम उच्चारण करता है तो भगवान् उसी समय प्रकट हो जाते हैं। लेकिन मानव को भगवान् दिखाई नहीं देते। इसका कारण है कि माया के सत, रज, तम के यह तीन परदे भगवान् के और मानव के बीच में लगे रहते हैं। जब मानव भगवान् का हरिनाम लगातार करता रहता है तो यह माया के तीनों पर्दे आँखों के सामने से हट जाते हैं और भगवान् दिख जाते हैं। यह सब शास्त्र की वाणी है। मैं अपने मन से नहीं बोल रहा हूँ। यह श्रीमद्भागवत महापुराण में है। माया के अंधेरे में कुछ भी दिखाई नहीं देता। जब माया दूर हो जाती है तब उजाला होने से सब कुछ दिखने लगता है।

भगवान्, मानव को कितनी सरलता से मिल सकते हैं। फिर भी मानव की आंखें खुलती नहीं हैं।

बिबसहुँ जासुनाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं।।

(मानस, बाल. दो. 118 चौ. 2)

कोई जबरदस्ती भी अगर किसी से नाम उच्चारण करवा दे, जबरदस्ती भी भगवान् का नाम किसी के मुख से निकल जाए तो उसके लिए कह रहे हैं कि उसके गहरे रचे–पचे पाप, जो अनेक जन्मों से गहरे जमें हुए हैं, भगवान् बोलते हैं कि, "मैं उन पापों को जलाकर भस्म कर देता हूँ।"

उलटा नामु जपत जगु जाना, बालमीकि भये ब्रह्म समाना।

(मानस, अयोध्या. दो. 193 चौ. 4)

वाल्मीकि तो घोर पापी था। वह तो जंगल में भोले भाले जानवरों को मारकर अपने परिवार को खिलाता रहता था। वह भी राम नाम को उल्टा जप कर त्रिकालदर्शी बन गया। रामजी का अवतार तो हजारों साल बाद में हुआ था। वाल्मीकि ने रामायण पहले ही रच दी थी कि भगवान् ऐसी ऐसी लीलाएँ करेंगे। सीताजी को राम ने वनवास दे दिया तो सीताजी वाल्मीकि आश्रम में ही रही थीं। लव–कुश वहीं पर जन्मे क्योंकि वनवास के समय सीता को गर्भ था। भगवान् ने जगत् की बातें सुनकर सीता को वनवास दिया था। वहीं पर लव–कुश ने शस्त्र चलाना सीखा। राम ने अश्वमेध यज्ञ करने का विचार किया। इस यज्ञ को करने पर पूरे संसार को जीतना पड़ता है। अतः घोड़े को चारों ओर जाने को छोड़ा जाता है। यह नियम है कि यदि कोई घोड़े को पकड़ लेगा तो उसे युद्ध करना पड़ता है। जब घोड़ा वाल्मीकि आश्रम की तरफ गया तो दोनों बच्चे, लव–कुश, धनुष विद्या सीख रहे थे। घोड़े को देखकर उन्होंने उसे पेड़ से बांध दिया। जब घोड़ा अयोध्या नहीं पहुँचा तो राम ने गुरु वशिष्ठजी से इस बारे में सलाह ली। राम ने कहा, "घोड़ा अभी तक आया नहीं।" वशिष्ठजी ने कहा, "घोड़े को छुड़ाना होगा, लगता है कि किसी ने पकड़ लिया है। हनुमानजी को भेजो। तलाश करें कि घोड़ा किसने पकड़ा है।" तो हनुमानजी ने देखा कि घोड़ा तो वाल्मीकि आश्रम में बंधा पड़ा है। लव–कुश बाण विद्या सीख रहे थे तो हनुमान जी ने लव कुश को बोला, "यह घोड़ा तुम्हारे पिताजी का है। इसे छोड़ दो। मैं ले जाऊँगा।" तो लव–कुश ने बोला, "हम क्षत्रिय हैं। युद्ध किए बिना हम घोड़ा नहीं छोड़ेंगे।" जब हनुमानजी ने जबरदस्ती की तो दोनों भाइयों ने हनुमानजी को भी पेड़ से बांध दिया।

अब बहुत देर हो गई। रामजी, गुरु वशिष्ठ को बोले, "घोड़ा अब तक नहीं आया।" फिर बारी–बारी से लक्ष्मण को, भरत को, शत्रुघ्न को भेजा। फिर भी घोड़ा नहीं आया क्योंकि, उन्होंने लव–कुश पर बाण चलाए लेकिन बाण लव–कुश को लगते नहीं थे, वह वापिस जा कर चलाने वाले को ही लग जाते थे। अतः सब घायल हो गए। गुरु वाल्मीकि ने उनको गुरु कवच पहना रखा था। गुरु कवच को कोई तोड़ नहीं सकता। नारायण कवच टूट सकता है, विष्णु कवच टूट सकता है, राम कवच टूट सकता है, लेकिन गुरु कवच कभी भी टूट नहीं सकता। तो फिर वशिष्ठजी ने कहा, "राम तुम स्वयं ही जाओ। अब तक कोई वापिस नहीं आया है। क्या बात है? अब तुम स्वयं जाकर देखो।" जब रामजी गए तो देखा कि सभी वहाँ बंधे पड़े थे। राम ने कहा, "मैं तुम्हारा पिता हूँ।" दोनों भाइयों ने

कहा, "देखिए! हम क्षत्रिय हैं, हमारा धर्म है कि कोई भी हो, युद्ध के बिना घोड़ा नहीं छोड़ेंगे।" तो युद्ध शुरू हुआ। राम ने तीर चलाना शुरु किया और उधर से लव–कुश ने भी तीर चलाना शुरु किया तो वह तीर कवच की वजह से लव–कुश को तो लगता नहीं था और वापिस जाकर रामजी को लगता। लव–कुश को गुरु ने गुरुकवच पहना रखा था। राम ने वाल्मीकिजी से प्रार्थना की तो वाल्मीकिजी दोनों भाइयों को बोले, "अब तुम्हारी जीत हो गई। अब मेरे कहने से घोड़ा छोड़ दो।" तब लव–कुश ने घोड़ा छोड़ दिया। तब सब लोग जो घोड़ा छुड़ाने गए थे, रामजी के साथ अयोध्या वापिस चले गए और वशिष्ठजी ने अश्वमेध यज्ञ पूरा किया। इसमें श्री गुरुदेव की महिमा बताई गई है। भगवान् ने भी गुरुजी की तरफदारी होने से हार मान ली है। यह शास्त्र वचन है। कहते हैं :

कवच अभेद गुरु पद पूजा, एहि सम बिजय उपाय न दूजा।

(मानस, लंड्का. दो. 79 चौ. 5)

गुरु कवच अभेद होता है। कोई नहीं तोड़ सकता। राम ने हार मान ली। वाल्मीकिजी से प्रार्थना की और घोड़े को छुड़वा लिया।

ऐसा है कलिकाल में जीव को भगवान् बड़ी सरलता से, सुगमता से मिल जाते हैं। हमारे गुरुवर्ग को मिल चुके हैं तथा चंद्रसरोवर, गोवर्धन में मुझे भी साक्षात् द्वारकाधीश ने छः–सात फुट साइज में दर्शन दिया है और मेरे साथ जो आठ–दस भक्त थे, उनको भी वहाँ दर्शन हुआ। जिनको भी दर्शन हुआ है, उनका नाम, "इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति" पुस्तक में लिखा हुआ है। ऐसे सभी को दर्शन हो सकता है। मैं भी साधारण गृहस्थी ही तो हूँ।

कलिकाल में यह साधन है – केवल हरिनाम, केवल हरिनाम।

"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।"

इस मंत्र को रोज जपना चाहिए। रोज 64 माला करनी चाहिए। 64 माला करने में तीन घंटे लगते हैं। शुरु शुरु में ज्यादा समय लगेगा लेकिन बाद में तीन घंटे में या पौने तीन घंटे में हो जाएगा। इस महामंत्र की कम से कम 64 माला नित्य जपने से अर्थात् एक लाख हरिनाम से भगवान् का दर्शन हो सकता है। छद्म रूप में हनुमानजी के दर्शन भी मुझे हुए हैं।

आप सोचोगे कि अनिरुद्ध दास तो अपनी बड़ाई करता रहता है। तो बड़ाई तो वह करेगा जिसे कुछ चाहिए। मैं तो निष्काम विचार का हूँ। मुझे कुछ नहीं चाहिए। यह चर्चा इस कारण से कर रहा हूँ कि कलिकाल में भगवद् दर्शन बहुत सुलभ है क्योंकि इस युग में भगवान् के ग्राहकों की कमी है। इस युग में भगवान् के ग्राहक न के बराबर होते हैं। जहाँ किसी वस्तु की कमी होती है उस वस्तु की कीमत अधिक हो जाती है। भगवद् नाम ही भगवान् को खींचकर भक्त के नजदीक ला देता है।

अतः धर्मशास्त्र यह बता रहे हैं कि फिर मानव को भगवद् दर्शन क्यों नहीं होता। इसका खास कारण है कि साधक हर प्रकार से भगवान् को दुखी करता रहता है। कहावत है कि किसी की आत्मा मत सताओ। ऐसे तो नहीं कहते कि किसी का शरीर मत सताओ। वह अपने अश्लील वचनों से सामने वाले को दुखी करता रहता है। दुख आत्मा को होता है, शरीर को नहीं होता। शरीर तो आत्मा का घर है और घर तो जड़ होता है। जड़ को दुख कैसे हो सकता है? मान लो कोई मेरे मकान की खिड़की को तोड़े तो क्या मकान रोएगा? नहीं, मकान में रहने वाला रोएगा। इसी प्रकार हम दूसरे की आत्मा को सताते रहते हैं तो भगवान् हम पर राजी (खुश) कैसे रहेंगे। जिसका रिजल्ट (परिणाम) क्या होगा कि माया हमको दुख देती रहेगी। शरीर रोगी हो जाएगा, मन अशांत रहेगा, कोई काम में सफलता नहीं मिलेगी अतः जिंदगी भर रोता रोता ही मरेगा, 84 लाख योनियों में चला जाएगा, घर में आपस में कलह होता रहेगा तो माया ऐसे ही साधक को दुखी करती रहेगी जैसा कि हम प्रत्यक्ष में देख भी रहे हैं। कहने का मतलब है अपने स्वभाव के अनुसार ही मानव दुख पाता है। कोई किसी को दुख नहीं देता। अपना स्वभाव ही दुखी करता है। यही तो माया है। यही तो अज्ञान है। यही तो अंधकार है। यही तो मूर्खता है। यह तो हुई भक्त, साधक की चर्चा।

अब आगे भी मानव 84 लाख योनियों को दुखी करता रहता है। जिनमें भगवान् परमात्मा रूप से उनके हृदयमंदिर में विराजमान हैं, इनको भी मानव सताता रहता है। तो क्या भगवान् कभी इससे सुखी रह सकेंगे? जब भगवान् को ही मानव सताता रहता है तो क्या ऐसा मानव स्वप्न में भी सुख का दर्शन करेगा? वह तो दुख सागर में डूबा रहेगा। अतः शास्त्र बोल रहा है कि मानव जन्म दुर्लभ से भी सुदुर्लभ है। अनंत अरबों, खरबों चतुर्युगी के बाद भी मिल जाए तो गनीमत है। मानव जन्म कई जन्मों की सुकृति से मिलता है। जब किसी जीव द्वारा भगवान् के प्यारे साधु की सेवा बन जाए क्योंकि साधु भगवान् का सबसे प्यारा है।

धर्मशास्त्र बता रहे हैं कि कैसे मानव **84** लाख योनियों को परेशान करता रहता है। उदाहरण से बताया जा रहा है जैसे कोई सांप रास्ते से जा रहा था और वहाँ बहुत से लोग बैठे थे। उनकी नजर सर्प पर गई तो बोलते हैं, "मारो! मारो! दुश्मन जा रहा है।" तो किसी बूढ़े ने कहा, "यह अपने रास्ते से जा रहा है। इसे क्यों मारते हो? यह भाग कर तो किसी को मारता नहीं है, खाता नहीं है। दबने पर अपनी जान बचाने के लिए ही मारता है। इसे मत मारो।" उस सांप की कुल उम्र हजार वर्ष की थी। इस समय उसकी उम्र दो सौ वर्ष थी। एक नवयुवक ने लाठी से उसको मार डाला तो जिस नवयुवक ने उसको मारा, वह हजार साल तक सांप की योनि भुगतेगा। जिसको मारा है, वह भी आठ सौ साल तक फिर से सांप की योनि भोगेगा। भगवान् बोलते हैं कि, "मैंने जीव को उसके कर्मानुसार ही उस योनि में जीवन यापन करने के लिए जन्म दिया है तो इसको मारने का किसी को हक नहीं है। यदि कोई भी किसी भी योनि को मारेगा तो उसे उसी योनि में जन्म लेना पड़ेगा।" भगवान् कहते हैं कि, "जिसको जो स्वभाव मैंने दिया है वह उसी स्वभाव के अनुसार अपना जीवन बिताएगा। जब किसी को जीवन देने की सामर्थ्य नहीं है तो मारने का अधिकार कैसे हो सकता है?" जैसे बिच्छू काटता है, मच्छर काटता है, खटमल काटता है तो उनके जीवन को बचाओ, उन्हें मारो मत। वरना मारने वाले को उसी की योनि में जन्म लेना पड़ेगा क्योंकि भगवान् सभी के हृदय मंदिर में विराजमान रहते हैं। आत्मा (हृदय में बैठा परमात्मा) सबके कर्मों को देखती रहती है। उसके कर्मानुसार उसको उस योनि में जाना पड़ता है। अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि भगवान् ने बोला है कि मानव जन्म होना सुदुर्लभ से भी सुदुर्लभ है।

भगवान् की माया इस कारण से सबको दुखी करती रहती है क्योंकि शुभ मार्ग पर कोई चलता नहीं है। माँ–बाप अपने पुत्र से कहते हैं कि, "तू शराब मत पी।" लेकिन मानता नहीं है और फिर शराब पीकर उसके फेफड़े खराब हो जाते हैं और वह छोटी उम्र में मर कर नरक को चला जाता है। यही तो माया है।

धर्मशास्त्र बने हैं मानव को सुखी करने के लिए, लेकिन मानव उन्हें न मान कर उल्टे रास्ते चलता रहता है और दुख मोल लेता है तो सुख की हवा भी कैसे लगेगी? इसलिए धर्मशास्त्र का क्या दोष है ? दोष है गलत रास्ता चलने वाले का। मानव भी क्या करे? उसके पिछले संस्कार

उसको बुरे काम करने के लिए प्रेरित करते रहते हैं। अतः सुखी रहने का केवल एक ही रास्ता है। वह है सत्संग।

भगवान् श्रीमद्भागवत पुराण में बोल रहे हैं, "उद्धव! मैं केवल सत्संग से ही मिलता हूँ। सत्संग भी सुकृति के अभाव में नहीं मिलता है।"

बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता

(मानस, सुन्दर. दो. 6 चौ. 2)

संत से ही सत्संग मिलता है स्वयं भगवान् नहीं आते हैं। संत को भेजकर सुकृतिशाली को सत्संग का लाभ उठवाते हैं। कुछ ऐसे पिछले संस्कार वाले होते हैं कि जब तक संसार की बातें होती हैं तो वहाँ बैठे रहते हैं और जैसे ही सत्संग की बात शुरू होती है तो वह उठ कर चले जाते हैं क्योंकि पिछले कुछ संस्कार के कारण, उसे सत्संग अच्छा नहीं लगता। सत्संग उसके कान में पड़ जाए तो उसका जी घबराता रहता है। उठ कर चला जाता है। इस प्रकार का वातावरण मैंने खूब अनुभव किया है। मैंने कहा, "थोड़ी देर बैठो न, सत्संग सुनो।" तो कहता है, "अमुक काम बहुत जरूरी है। अतः मैं बैठ नहीं सकता।"

संसार में जो हरकत होती रहती है उसे भी मुझे बोलना जरूरी होता है। इसको बोलने से थोड़ी आंखें खुलती हैं। सुनने वाला महसूस करता ही है कि वास्तव में हम गलत रास्ते पर हैं लेकिन मजबूरी है, मन चाहता ही नहीं है। सब मन पर निर्भर है। बस यही तो माया है। मानव मुट्ठी बांधकर आता है लेकिन खाली हाथ जाता है। प्रश्न आता है कि मुट्ठी बांधकर क्यों आता है? अपने पुराने अच्छे–बुरे कर्म, संस्कार मुठ्ठी में बांधकर लाता है, जो जीवन को चलाने हेतु उसके काम आएंगे। उन्हें भोग लेने पर जब खाली हो जाता है तो मरने पर मुट्ठी खोलकर जाता है।

अब जो इस जन्म में शुभ–अशुभ कर्म किए हैं वह अगले जन्म में काम आएंगे। यह चक्कर कभी खत्म होने वाला नहीं है। जब कभी किसी सच्चे संत की कृपा होगी, तभी इस चक्कर से पिंडा छूटेगा।

कलियुग का सर्वश्रेष्ठ गुण : हरिनाम से भगवद् प्राप्ति

21

24 फरवरी 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण युगल में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा अहैतुकी प्रेमा भक्ति की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

भगवान् चर–अचर प्राणियों का अमर बाप है। विचार करने की बात है कि बाप अपने बेटे को कितना चाहता है लेकिन बेटा ही ऐसा नालायक बन गया कि बाप के आदेश को ही नहीं मानता, अतः माया जो भगवान् की शक्ति है, उस बेटे को अनेक प्रकार से दुख कष्ट देती रहती है। दुख कष्ट किस प्रकार का होता है? माया उसे रोगी बना देगी, कोई काम में सफलता नहीं होने देगी, आपस में कलह करवा देगी, मन में सदैव अशांति फैला देगी, नींद आने नहीं देगी, कंगाल बना देगी आदि–आदि अनंत दुख सागर में डाल देगी। पूरी उम्र भर रोता रहेगा और अंत में, संसार में आसक्ति, मोह होने से नर्क या 84 लाख योनियों में डाल देगी, तो सर्दी, गर्मी, बरसात से दुखी होता रहेगा। जब तक उसे अपने बाप भगवान् की गोद नहीं उपलब्ध होगी, तब तक यह दुख सागर में गोता खाता रहेगा। यही तो भगवान् की माया है।

कलियुग में भगवान् बहुत ही सरलता से मिल जाते हैं क्योंकि कलिकाल में अधिकतर भौतिक साम्राज्य संसार में फैला रहता है अतः ऐसे ऐसे आविष्कार होते रहते हैं जिससे मानव यह सोचता एवं बोलता है कि वह सब मानव की ही देन है। भगवान् कहीं नहीं है। भगवान् को किसने देखा है। यह सब अंधविश्वास है। शास्त्र भी मानव ने ही रचे हैं। भगवान्

को मानने वाले बिल्कुल मूर्ख हैं, भावुक हैं, इनमें सोचने समझने की बुद्धि ही नहीं होती, कमाया तो जाता नहीं, निठल्ले बैठकर खाना चाहते हैं। मानव तो चांद पर पहुँच गया है। मानव ही भगवान् है। वैज्ञानिक ही भगवान् है। जबकि इन नास्तिकों को मालूम नहीं है कि चंद्रमा तो सूर्य से लाखों योजन ऊँचा है, दूर है जैसा कि हमारा धर्म शास्त्र बोल रहा है। यह कहते है कि मानव ही कृत्रिम गर्भाधान करता रहता है, इसमें भगवान् क्या करेगा? लेकिन आस्तिक पूछता है, "तुम मौत को तो रोक लो।" इनके पास इसका कोई जवाब नहीं है। कलियुग भगवान् का दुश्मन है। अतः कलियुग में भगवान् को कोई मानेगा नहीं।

भगवान् इस कलियुग में इस कारण जल्दी मिलते हैं कि भगवान् के ग्राहक गिने–चुने होते हैं। यह ध्रुव सत्य सिद्धांत है कि जिस चीज की कमी होती है उसका महत्व बहुत ज्यादा होता है। भगवान् का मन भक्तों के बिना लगता नहीं है अतः यदि थोड़ा बहुत भी कोई मानव भगवान् को चाहता है तो भगवान् शीघ्र प्रसन्न होकर उसको दर्शन दे देते हैं। 500 वर्ष पहले हमारे गुरुवर्ग को दर्शन हुआ है। मुझको भी तो 2012 में चंद्रसरोवर, गोवर्धन में भगवान् के दर्शन हुए हैं, और जो मेरे साथ में कुछ विदेशी एवं कुछ भारत से भक्त थे, उनको भी भगवान् के दर्शन हुए हैं जो 'इसी जन्म में भगवत्प्राप्ति' पुस्तक में लिखा हुआ है कि किस–किस को दर्शन हुए हैं। प्रत्यक्ष में प्रमाण की क्या आवश्यकता है। तभी तो प्रत्क्षय होने से विदेशी और भारत के भक्त मेरे घर पर प्रत्येक इतवार (रविवार) को आते रहते हैं। नहीं तो किसी को समय कहाँ है जो मेरे पास आए? लेकिन बोलते हैं, कि इनके पास आने से हमारा जीवन ही बदल गया है। जहाँ मीठा–मीठा होता है वहाँ चीटियां अपने आप चली जाती हैं, उनको बोलना नहीं पड़ता। शुद्ध चुंबक जंग लगे लोहे को भी अपनी ओर खींच लेता है, वह यह नहीं देखता कि इस लोहे में जंग लगी हुई है।

भगवान् ने जब कलि महाराज को राज्य दिया तो कहा, "तुझे चार लाख बत्तीस हजार वर्ष तक धरातल पर राज्य करना है तो कलि महाराज बोले, "जैसा आपका आदेश है वैसा पालन करता रहूँगा।" यह ध्रुव सिद्धांत है कि जैसा राजा वैसी प्रजा होती है। कलि महाराज धर्म को मानता ही नहीं है, तो प्रजा कैसे मान सकती है। भगवान् ने कलियुग से पूछा, "तू किस प्रकार से राज्य करेगा?" कलियुग महाराज बोला, "मैं तो तामसिक स्वभाव का हूँ। मैं तो तामसिक वृत्ति से ही राज्य करूँगा कि सब से पहले तो आपकी सब मर्यादाओं को नष्ट कर दूँगा। समय असमय मौसम बदलने

लगेंगे। प्रकृति को क्षोभ करता रहूँगा। कहीं पर सूखा लाऊँगा और कहीं पर सुनामी लाऊँगा जिससे लाखों जनता नष्ट हो जाये। देश–देश में लड़ाई करवाता रहूँगा। कहीं भूकंप लाकर पृथ्वी को हिला कर शहरों को पहाड़ों के तह में नष्ट कर दूँगा। कहीं तूफान लाकर हर जगह को तहस– नहस कर दूँगा। इतनी बीमारियों का आविष्कार कर दूँगा जो कभी सुनी नहीं है। इससे जनता दुखी होती रहेगी और भी न जाने मैं, क्या–क्या दुखों और कष्टों का आविष्कार करता रहूँगा। जिसकी कोई गिनती नहीं है।"

तो इसके लिये सूरदास जी बोल रहे हैं, ध्यान से सुनना! सूरदास जी त्रिकालदर्शी थे। वह बता रहे हैं कि कलि महाराज से कैसे बचा जा सकता है।

अरे! मन धीरज क्यों न धरे,
संवत् दो हजार से ऊपर
पूरब पश्चिम उत्तर दक्षिण, चहुँ दिशि काल पड़े
अकालमृत्यु सब जगमें व्यापे, परजा बहुत मरे
सहस्र वर्ष तक सतयुग व्यापे, दुख की दशा फिरे
स्वर्ण फूल बन पृथ्वी फूले, धर्म की बेल बढ़े
अरे! मन धीरज क्यों न धरे।।
अरे! काल व्याल से वही बचेगा।
जो हरि का नाम करे, जो गुरु का ध्यान धरे।
सूरदास! यह हरि की लीला, टारे नाहीं टरे।

यह मुहर लगा दी कि ऐसा जमाना आने वाला है इसलिए हरिनाम करो, हरिनाम से बच जाओगे। कलियुग कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा।

मानव दुखी क्यों है? इस कारण है कि वह परमात्मा की सृष्टि को, जिसमें आत्मा के रूप से परमात्मा विराजमान है, को दुखी करता रहता है। दुख शरीर को नहीं व्यापता है, आत्मा को व्यापता है। शरीर तो आत्मा का घर है। जिस प्रकार, यदि मेरे कमरे की खिड़की को कोई तोड़े तो क्या कमरा रोएगा? कौन रोएगा? जो इस में रहता है, वह रोएगा। अतः कहावत है :

'किसी की आत्मा मत सताओ', ऐसा तो नहीं कहते कि किसी का शरीर मत सताओ। ऐसा कहते हैं कि किसी का जी मत दुखाओ। यह किसके लिए बोला जाता है? यह 84 लाख योनियों के लिए बोला जाता

है। चींटी को भी मत सताओ। चींटी चलती है क्योंकि परमात्मा उसमें बैठा हुआ है। इसमें भगवान्, आत्मा रूप से विराजमान है। पेड़ में भी भगवान् है, हाथी में भी भगवान् है। भगवान् ने उनके कर्मानुसार उनको योनियां दी हैं। इनको दुख देने से आत्मा अर्थात् परमात्मा दुखी हो जाता है। जिस जीव ने भगवान् को दुखी कर दिया तो क्या भगवान् उसे सुख देंगे? कभी भी सुख नहीं मिलेगा।

जो भक्त मेरे गुरुदेव द्वारा बताई गई तीन प्रार्थनाएं रोज करता है उसे भगवान् स्वयं लेने आते हैं। इसमें केवल दो मिनट लगते हैं। ऐसा भक्त जब मरता है तो भगवान् वैकुण्ठ धाम में या गोलोक धाम में उसका भव्य स्वागत करवाते हैं। भगवान् तो दयानिधि हैं। थोड़ा सा भी जीव याद कर ले तो भगवान् बहुत बड़ा अहसान मानते हैं क्योंकि सब चर–अचर भगवान् के बेटे हैं। भगवान् यदि प्रसन्न हो जाए तब ऐसी दृष्टि हो जाएगी कि वह जीव मात्र से प्यार करेगा, तो ऐसे को तो बिच्छू भी नहीं काटता क्योंकि सब में आत्मा रूप में वह बैठा है। सांप भी नहीं खाएगा, शेर भी नहीं खाएगा। शास्त्र का वचन है कि :

जा पर कृपा राम की होई। ता पर कृपा करहिं सब कोई।।

देखो! आत्मा रूप से भगवान् भक्तों को चेता रहे हैं। तुम प्रह्लाद भाव में बन जाओ तो हिरण्यकश्यप रूपी कलि महाराज से बच जाओगे। स्वयं कलि महाराज का कोई जोर नहीं चलेगा। स्वयं ही मारा जाएगा। प्रह्लाद नामनिष्ठ था अतः नाम भगवान् ने उसकी रक्षा और पालन किया। प्रह्लाद की रक्षा स्वयं भगवान् ने की। हिरण्यकश्यप प्रह्लाद को मार नहीं सका। अंत में जीत प्रह्लाद की हुई। मैं साधारण शब्दों में बोलता हूँ जिससे सबको समझ आ जाए। किसी को कठिनाई न हो। मैं सरल भाषा में ही बोल रहा हूँ।

शास्त्र बोल रहे हैं कि एक व्यक्ति अपने जीवन में इतने पाप कर ही नहीं सकता, जितना भगवान् का एक शुद्ध नाम समस्त पापों को जलाकर भस्म कर देता है। जैसे हमारे यहाँ पड़ी एक क्विंटल घास को माचिस की एक तीली से आग लगाओ तो एक तीली से ही सारा घास जलकर राख का ढेर हो जाएगा।

प्रश्न उठता है जब मानव सारा दिन हरिनाम लेता रहता है तो भी सुखी नहीं होता। क्या कारण है? बात तो ठीक है। व्यक्ति के हृदय में तीन धाराएं बहती रहती हैं – सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। इन धाराओं की

वजह से हृदय से शुद्ध नाम नहीं निकलता है। शुद्ध नाम, निर्गुण धारा बहने पर ही निकलता है। जैसे द्रौपदी ने निर्गुण धारा से 'गोविंद' को पुकारा था और भगवान् ने द्रौपदी की रक्षा की। द्रौपदी का वस्त्र अनन्त गज लंबा हो गया जिससे दुश्शासन हार मान कर अलग से बैठ गया, थक गया।

शुद्ध नाम कब निकलता है? जब अपनी शुद्ध कमाई का पैसा हो? अपने पसीने की कमाई ही शुद्ध नाम मुख से निकाल सकती है एवं प्रसाद ग्रहण करते समय भगवन् नाम का जप या स्मरण होता रहे तो जो रस बनेगा, वह निर्गुण होगा। निर्गुण रस ही भगवान् से अटूट सम्बन्ध करवा देगा। अटूट सम्बन्ध होते ही हृदय में भगवान् के लिए तुरंत छटपट हो जाएगी। जब अष्टविकार शरीर में उदय हो जाएंगे तो भगवान् भक्त से दूर नहीं रह पाते। तुरंत अदृश्य में आकर, उसे अपनाकर सुख विधान करते हैं। भगवन् नाम की ही कीमत है। समस्त धर्मशास्त्र को पढ़ने का एक ही उद्देश्य है कि भगवन् नाम में भक्त का मन लग जाए। जब ऐसा होगा तो भगवान् के लिए तड़पेगा। न भूख लगेगी, न नींद आएगी और कहेगा, "मेरे को कब मिलोगे? हे प्राणनाथ! मुझे आप कब मिलोगे? मैं कहाँ जाऊँ? किससे पूछूँ? मैं कहाँ जाऊँ?" यह अवस्था आ जाएगी। जैसा शास्त्र बोल रहा है उसके अनुसार अपने मन को लगाना चाहिए। तीर्थ यात्रा, मंदिर जा कर दर्शन एवं संत समागम का केवल एक ही उद्देश्य है कि हरिनाम में मन लग जाये।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

देखिए धन्वन्तरि, जो आयुर्वेद के प्रवर्तक हैं। क्या बोल रहे हैं? ध्यान पूर्वक सुनने की कृपा करें।

अच्युतानन्त गोविन्द नामोच्चारणभेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।।

(पाण्डवगीता श्लोक 25)

यह प्रत्यक्ष है। "मैं सत्य सत्य कह रहा हूँ कि मानव, तू अच्युत, अनंत और गोविंद का नाम ले। कोई भी रोग तेरे पास आने से डरेगा।"

'रोग राक्षस हैं और नाम है 'हरि का बलिष्ठ'। बलवान के पास कोई भी नहीं जाता। कमजोर को ही सब सताते हैं। मैं तो आपके सामने हूँ।

कुछ महीनों बाद मैं 90 साल का हो जाऊँगा। मेरे शरीर में कोई रोग नहीं है। यह मैं अपनी बड़ाई नहीं कर रहा। हरिनाम की बड़ाई कर रहा हूँ। 20 साल के नवयुवक जैसी मेरे शरीर में ताकत है और पांच साल के बच्चे जैसी दृष्टि है। हरिनाम करने हेतु 30–45 साल से रात में 12–1 बजे उठ कर प्रातः 6–7 बजे तक हरिनाम करता हूँ। यह मैं सबको केवल हरिनाम की शक्ति एवं कृपा वर्णन कर रहा हूँ। अपनी बड़ाई करना न पचने वाला जहर है। जो अपनी बड़ाई करता है, वह नरक में जाता है। बड़ाई कौन चाहता है जिसको कोई कामना हो। मैं तो निष्काम, एक साधारण गृहस्थी हूँ। तभी तो भगवान् मेरे सानिध्य में रहते हैं। भगवान् सबके सानिध्य में रह सकते हैं, यदि कोई भी भगवान् के बनाए हुए चर–अचर प्राणियों को दुख न दे। उन्हें दुखी न करे। जितना हो सके तो उनकी सेवा करे। दुख आत्मा को होता है, शरीर को नहीं होता। शरीर तो आत्मा का पहनने का कपड़ा है। जब कपड़ा फट जाता है तो आत्मा नया कपड़ा पहनती है। यही तो मानव को समझ नहीं आती। बस यही माया है।

भगवान् की यह माया कब हटती है? जब किसी नामनिष्ठ संत का संग मिल जाए अर्थात् सत्संग से ही माया हटती है। तभी तो श्रीमद्भागवतपुराण में भगवान् बोल रहे हैं, "उद्धव! मैं निर्मल सत्संग से ही मिलता हूँ। निर्मल सत्संग कहाँ मिलेगा? शुद्ध संत की कृपा कहाँ उपलब्ध होगी? इस कलिकाल में शुद्ध संत मिलना खांडे की धार है। जिस जीव की पिछले जन्मों की सुकृति होगी, उसे ही भगवान् सच्चे संत से मिला देते हैं। सच्चे संत की क्या पहचान है? उसके आचरण से तथा प्रभाव से उसके कुछ दिन के संग से, जीवन में बदलाव दिखाई देने लगेगा। जो किसी भी विषय का स्पेशलिस्ट (विशेषज्ञ) होगा, वही किसी को स्पेशलिस्ट (विशेषज्ञ) बना सकेगा। जो स्पेशलिस्ट (विशेषज्ञ) ही नहीं है, तो वह कितना भी चाहे बकबक करे, सामने वाले पर कोई प्रभाव नहीं डाल पाएगा। शुद्ध चुंबक ही जंग लगे लोहे को खींच सकता है। कमजोर चुंबक तो अच्छे लोहे को भी नहीं हिला सकता, खींचना तो बहुत दूर की बात है। स्कन्ध पुराण में भगवान् बोल रहे हैं कि वे मेरे सब से प्यारे हैं जो स्वयं हरिनाम करते हैं और दूसरों को करवाते हैं।

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्।
स्मरन्ति स्मारयन्ते ये हरेर्नामानि वै कलौ।।32।।

(गर्गसंहिता / खण्ड 10 (अश्वमेधखण्ड) / अध्याय 61, गर्गमुनि)

"मनुष्यों में वे ही सौभाग्यशाली हैं तथा निश्चय ही कृतार्थ हैं जो कलिकाल में हरिनाम का स्वयं स्मरण करते हैं और दूसरों को भी स्मरण करवाते हैं। यह स्कन्ध पुराण में लिखा है। अठारह पुराणों में से स्कंद पुराण एक पुराण है। तीखी दाढ़ वाले कलिकाल दुष्ट सर्प का भय अब दूर हो जाएगा क्योंकि गोविंद नाम के दावानल से दग्ध होकर शीघ्र ही वह राख का ढेर हो जाएगा।"

जो इस कलिकाल में नित्य हरिनाम करते हैं वे ही कृतकृत्य हैं, भाग्यशाली हैं। कलि उनसे थर्राता रहता है, उनके पास तक नहीं आता।

अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः।
पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तो मृगा यथा।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ।।

(गरुड़पुराण– 1.228.12)

"विवश होकर भी भगवान् का नाम उच्चारण करने पर मनुष्य सब पापों से इस प्रकार मुक्त हो जाता है जैसे सिंह से डरे हुए हिरण भाग जाते हैं।"

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।।

(मानस. सुन्दर. दो. 43 चौ. 1)

"मेरा नाम लेते हुए मानव के अनेक जन्मों के पाप जलकर भस्म हो जाते हैं। 'सन्मुख' का अर्थ है मेरी तरफ आ जाए अर्थात् मेरा नाम ले। बस, फिर आगे का जीवन मैं संभाल लूँगा। चिंता की कोई बात नहीं है।"

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

(श्रीगीता 18.66)

"मेरी शरण में आ जा। मैं सब सुख का विधान कर दूँगा।"

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

अरे! बेमन से, जबरदस्ती भी, लालच से भी भगवान् का नाम ले लो तो दसों दिशाओं में आनंद हो जाता है। ग्यारह दिशा तो होती नहीं। दसों दिशाओं में वैकुण्ठ और गोलोक भी आ गया तो वैकुण्ठ और गोलोक मिल जाएगा। कैसे भी लो। भाव से, कुभाव से, नामाभास से भी। नामाभास उसे

कहते हैं कि भगवान् में मन नहीं लगता है। मन इधर–उधर भागता रहता है। उसे ही नामाभास कहते हैं, तो ऐसे भी हरिनाम करने से वैकुण्ठ तो शर्तिया मिल ही जाएगा। अतः उसका उद्धार होना निश्चित ही है। यह शास्त्र का वचन है।

तो हम कितने भाग्यशाली हैं और फिर भगवान् ने हमको अच्छा सत्संग दे दिया। हम कितने भाग्यशाली हैं! यह सत्य है कि जो हरिनाम करता है वह अवश्य ही वैकुण्ठ जाएगा। वैकुण्ठ का क्या अर्थ है जहाँ कोई कुंठा नहीं हो, जहाँ कोई दुख नहीं हो, जहाँ कोई कष्ट नहीं हो। देखो! अनंत कोटि अखिल ब्रह्मांडों में सभी चर–अचर, भगवान् की संतानें हैं। भगवान् अपनी संतानों को अपनी गोद में लेना चाहते हैं, लेकिन ये संतानें माया के खेल में इतनी मस्त हैं कि अपने पिता की तरफ नजर ही नहीं करते। भगवान् बोलते हैं "मैंने संसार में अनंत धर्मग्रंथों को बनाया और उनका विस्तार किया है, लेकिन यह मानव उनकी तरफ दृष्टिपात ही नहीं करता अर्थात् देखता नहीं है। इनमें बताए नियमों के अनुसार जीवन नहीं चलाता है।" केवल कुछ गिने चुने लोग ही इन धर्मग्रंथों के अनुसार अपना जीवन चलाते हैं। भगवान् कहते हैं "इस सृष्टि में मुझे चाहने वाले संत कुछ ही गिनती के हैं। मेरी कृपा के बिना ऐसे संत किसी को नहीं मिल सकते। जिन पर मेरी कृपा होगी, उन्हीं को सच्चा संत मिलेगा।" अतः अरबों–खरबों मानवों में से कोई एक मेरी गोद में आता है। यह अवसर भी सबको उपलब्ध नहीं होता। जो मेरे प्रिय, सच्चे संत की सेवा करते हैं, यह सुकृति भी उसी मानव की होती है अन्य किसी कर्म से यह सुकृति नहीं होती क्योंकि साधु भगवान् का प्यारा बेटा है। जो साधु से द्वेष करता है, वह तड़प–तड़प कर मरता है। कहते हैं –

इंद्र कुलिस मम सूल बिसाला। कालदंड हरि चक्र कराला।।
जो इन्ह कर मारा नहिं मरई। साधु द्रोह पावक सो जरई।।

(मानस, उत्तर. दो. 108 घ चौ. 7)

शिवजी कह रहे हैं कि जो इंद्र के वज्र से, मेरे त्रिशूल से, यमराज के दंड से और भगवान् के सुदर्शन चक्र से भी नहीं मरता, वह साधु से द्रोह होने से पावक (अग्नि) में तड़प–तड़प कर मरेगा। वह जल्दी नहीं मरेगा, बहुत दुख पा कर मरेगा। पावक अग्नि कैसी होती है? जो लोहे को पानी बना देती है। साधु को दुख देने पर ऐसी आग में दुखी होकर मरेगा। इसलिए साधु से डरो। साधु अगर मार भी दे तो हाथ जोड़कर उनके

चरणों में पड़ जाओ। कभी भी साधु से द्रोह मत करो। न उनकी कोई चर्चा करो कि वह ऐसा है, वैसा है। तुमको क्या लेना देना। अपने भगवान् की भक्ति करते रहो। अपने रास्ते चलते रहो। तुम्हें इससे क्या लेना देना कि वह अच्छा है या बुरा है। कभी भी ऐसा मत करो।

अरे! कलियुग में भगवान् मिल जाएं तो हम कितने भाग्यशाली हैं! कलियुग में भगवान् बहुत जल्दी मिल जाते हैं। भगवान् से बिछुड़े हुए हमें कितना समय हो गया। अरबों, खरबों चतुर्युगी निकल गए, भगवान् तक नहीं पहुँच सके, परंतु अब हमें ऐसा समय, अवसर मिला है कि हमने भारतवर्ष में जन्म लिया है। भगवान् ने कितनी कृपा की है। हमको सच्चा सत्संग मिल गया है। भगवान् ने हमको सब कुछ खाने को दिया है, सब कुछ दिया है। अभी भी अगर हमने भगवान् को प्राप्त नहीं किया तो कितना बड़ा नुकसान होगा। फिर 84 लाख योनियों में भटकते रहेंगे। गर्भाशय भी कितना दुखदायी स्थान है। हरिनाम से हम भगवान् को सहज में प्राप्त कर सकते हैं। इस कलियुग में दूसरा रास्ता नहीं है, नहीं है, नहीं है।

केवल हरिनाम करो। केवल हरिनाम करो। हरिनाम करने से ही आपको सब सुविधाएं मिल जाएंगी। सब सुख मिल जाएंगे। प्रह्लादजी ने तो केवल हरिनाम ही किया था। वाल्मीकिजी ने भी तो सिर्फ हरिनाम ही किया था और त्रिकालदर्शी बन गए। इतने उदाहरण हैं हरिनाम के और नारदजी तो हमेशा हरिनाम करते रहते हैं और कुछ नहीं करते। इसलिए हरिनाम करो। यदि कलि से बचना हो तो हरिनाम करो। बस, केवल हरिनाम, हरिनाम, हरिनाम। भगवान् कहते हैं, "स्वयं हरिनाम करो और दूसरे से भी हरिनाम करवाओ। उससे प्यारा मेरा कोई नहीं है।" चैतन्य महाप्रभुजी कहते हैं कि, "गाँव–गाँव में जाओ और सबसे हरिनाम करवाओ। खुद भी हरिनाम करो और सबसे करवाओ।" यह भगवान् की कृपा हमें मिली है। हम कितने भाग्यशाली हैं! इसलिए हरिनाम करो।

हरि बोल! हरि बोल! हरि बोल! हरि बोल!
निताई गौर हरिबोल!
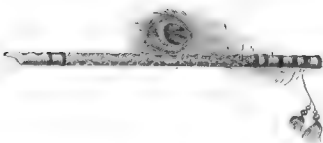
भगवद् नाम का प्रभाव

3 मार्च 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद करें।

देखिए! इस कलिकाल में भगवान् बहुत जल्दी मिल जाते हैं क्योंकि इस समय में भगवान् के ग्राहक नहीं है। ग्राहकों की कमी है। इसलिए भगवान् का थोड़ा बहुत भी भजन करने से भगवान् बड़े खुश हो जाते हैं। देखिए! मनुष्य जन्म सुदुर्लभ है। दुर्लभ नहीं सुदुर्लभ है। मानव जब से अपने अमर पिता भगवान् से बिछुड़ा है तब से मानव अभी तक भगवान् की गोद में नहीं पहुँचा। इसका कारण क्या है? मानव अपने माँ–बाप को भूल गया है और भगवान् की माया में फंस गया है। माया भगवान् की शक्ति है जिसको आदेश है कि वह मानव को फंसाती रहे, जिससे मानव भगवान् के पास न आ सके। टीवी और फोन कलि महाराज के अमोघ हथियार हैं। यह भगवान् से दूर करते हैं। भगवान् ने शिवजी को भी आदेश दे रखा है, "तुम आगम शास्त्रों का आविष्कार कर दो ताकि मानव गलत मार्ग में पड़ कर चक्कर ही काटता रहे।" शिवजी को ऐसा आदेश भगवान् ने क्यों दिया? भगवान् ने इस कारण से दिया क्योंकि इसके बिना उनकी जगत् सृष्टि नहीं चल सकेगी। दूसरा कारण है कि भगवान् को चाहने वालों से उन्हें बंधना पड़ेगा। अनंत अरबों–खरबों चतुर्युगी से जीव भगवान् से बिछुड़ा हुआ है। जीव को भगवान् की माया अपने चंगुल में फँसाये रहती है। इसका कारण धर्मशास्त्र बोल रहे हैं कि माया बड़ी दुष्कर है। माया से छूटना बहुत मुश्किल काम है।

जब भगवान् की कृपा होगी, तभी माया से छुटकारा हो सकता है। प्रश्न यह उठता है कि भगवान् की कृपा कब होगी? भगवान् की कृपा तब

होगी, जब मानव से भगवान् के आश्रित किसी साधु की, किसी प्रकार की सेवा बन जाएगी तो वह साधु, मानव को भगवान् की गोद में जाने का मार्ग बता देगा।

जब मानव साधु की कृपा से भगवद्भक्ति शुरू करेगा तब निष्काम कर्म करने से माया उससे बहुत दूर हो जाएगी तथा उसे भक्ति मार्ग में चलने की मदद करती रहेगी क्योंकि भगवान् ने माया को आदेश दे रखा है, "जो मानव मेरे आश्रित हैं उन्हें मत सताना।"

कलियुग में भगवान् को प्राप्त करने का एक ही केवल, एक मात्र साधन है, भगवान् का हरिनाम जप। अनंत जन्मों से भटकने से मानव का मन स्थिर नहीं रह सकता। फिर भी भगवान् ने इतनी कृपा की है कि अगर मानव का मन न भी लगे तो भी उसका उद्धार कर देंगे, लेकिन नित्यप्रति 64 माला अर्थात् एक लाख नाम जप करना होगा। चाहे मन लगे चाहे नहीं लगे तब भी जपना बहुत जरूरी है। अधिक जपो फिर तो सोने पर सुहागा है, सोने में सुगंधी है। फिर तो कहना ही क्या है। हमारे धर्म शास्त्र में इतनी सहूलियत दी हुई है कि :

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

(मानस. बाल. दो. 27, चौ. 1)

"आप भाव से लो, मन से लो, बेमन से लो, आलस्य से लो, सोते, चलते–फिरते कैसे भी लो तो भी दसों दिशाओं में तुम्हारा मंगल हो जाएगा।" जो बेमन से या जबरदस्ती भी नाम जपेगा, किसी भी समय में, कहीं पर भी बैठ कर जपेगा या चलकर, खाते–पीते, सोते–जागते हरिनाम जपेगा तो उसका इस जीवन में उद्धार होना निश्चित ही है अर्थात् वह वैकुण्ठ में चला जाएगा। उसका दुखों से पिंडा छूट जाएगा। कोई नियम नहीं है, स्नान करो या न करो। जैसी भी अवस्था हो भगवान् का नाम लेते रहो।

हमारा धर्म शास्त्र बोल रहा है कि भगवान् के नाम में भगवान् से भी अधिक शक्ति है। भगवान् ने तो, जो उनके संपर्क में आया, उसका ही उद्धार किया लेकिन नाम ने तो अनगिनतों का उद्धार कर दिया। शास्त्र बोल रहा है कि मानव सारी जिंदगी भर, रात–दिन पाप करता रहे तो भी वह इतना पाप नहीं कर सकता जितना भगवान् का केवल एक शुद्ध नाम ही उसके सारे पापों को एक क्षण में जलाकर भस्म कर देता है। यह पद्मपुराण में लिखा हुआ है। मैं अपने मन से नहीं बोल रहा हूँ। फिर प्रश्न

उठता है कि मानव तो बहुत नाम लेता रहता है फिर उसका प्रभाव क्यों नहीं होता? इसका कारण है कि मानव के अंदर तीन धाराएं बहती रहती हैं। तीन धाराएँ क्या हैं? सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। ये धाराएँ संग से तथा खान–पान से बनती रहती हैं तथा मन इन धाराओं से चंचल रहता है। हरिनाम में मन नहीं लगता। कहावत है :

राम–राम सब कोई कहे, दशरथ कहे न कोय।
एक बार दशरथ कहे, कोटि यज्ञ फल होय।।

दशरथ का मतलब है, पांच कर्मेंद्रियां, पांच ज्ञानेंद्रियां तथा एक मन। अगर यह एकाग्र हो जाएँ तो हरिनाम का एक नाम ही मानव के उद्धार का कारण बन जाए लेकिन जापक का ऐसा नाम होता नहीं है और साथ ही अपराध भी होता रहता है। लेकिन निराश होने की आवश्यकता नहीं है। धीरे–धीरे सफलता मिल ही जाती है। उदाहरण के लिए क्या कोई एल. के.जी में बैठे बिना पी–एच.डी में जा सकता है? क्या खड्डे में बीज बोने पर, उसी समय फल मिल सकता है? गर्भाधान करते ही क्या शिशु प्रगट हो जाएगा? अतः तसल्ली से ही कुछ मिलेगा।

हम कितने भाग्यशाली हैं कि भगवान् ने हमें भारतवर्ष में जन्म दिया। यहाँ भगवान् अवतार लेते रहते हैं, साधु संग मिलता रहता है, सतगुरु की शरणागति उपलब्ध होती रहती है। तभी तो विदेशी, शांति प्राप्त करने हेतु अपने देशों को छोड़कर भारत में आते रहते हैं। विदेशों में शांति का नामोनिशान नहीं है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

जब कोई कार्यक्रम किया जाता है, कोई आयोजन होता है तो पहले स्टेज (मंच) आदि का प्रबंध किया जाता है, कार्यकर्ताओं का प्रबंध किया जाता है। भगवान् कृष्ण के अवतार से पहले योगमाया ने मृत्युलोक में धरातल पर सभी देवी देवताओं को समुद्र, नदियों, पहाड़ों के रूप में स्थित किया ताकि भगवान् कृष्ण को सभी सुविधाएं उपलब्ध हो जाएं। वैकुण्ठ में अजनाभवर्ष नाम का एक ही हिस्सा था। उसे योगमाया ने मृत्युलोक में धरातल पर लाकर स्थापित कर दिया। पूरे संसार में और दूसरी जगह ऐसा प्रबंध नहीं है जैसा प्रबंध भारतवर्ष में है। इसीलिए भारतवर्ष की उपाधि भी अजनाभवर्ष के तुल्य ही रखी गयी है। अतः इसे भारतवर्ष कहते

हैं। इसे भरतखंड भी कह सकते थे। वहाँ (वैकुण्ठ में) अजनाभवर्ष है तो यहाँ भी भारतवर्ष है। राजा भरत के नाम से ही इसका नाम भारतवर्ष रखा गया है। इसे हिंदुस्तान भी बोला जाता है क्योंकि यहाँ पर हिंदू जाति अधिक थी। जब अंग्रेज यहाँ आए तो उन्होंने इसका नाम इंडिया रख दिया। यहाँ की नदियां वैकुण्ठ की देवियां हैं, पहाड़ देवता हैं, समुद्र भी देवता हैं। हिमालय की पुत्री पार्वती, शिवजी को ब्याही गई है कि नहीं? हिमालय पहाड़ ही तो है। गंगा, यमुना, सरस्वती, कावेरी, नर्मदा, गोदावरी आदि देवियां, नदियों के रूप में आकर, जो भी इनमें स्नान करते हैं, उनके पाप धोती रहती हैं। महाराज सगर के पुत्रों का उद्धार भी तो गंगा ने ही किया है। यमुना का दूसरा नाम कालिंदी है जो भगवान् कृष्ण की पत्नी है। अब क्या शक रह गया? इन नदियों के किनारे किनारे आश्रम बनाकर साधु, भगवान् का भजन करते रहते हैं। समुद्र भी देवता हैं। नदियों में स्नान करने से, पाप नष्ट हो जाते हैं, पहाड़ों की गोद में जाकर मानव तप करता है, समुद्र मानव को रत्न देता है जैसे रामजी को सेतुबंध, रामेश्वरम् में पुल बाँधने के समय समुद्र ने दिए। पुल बांधने में देर होने से राम ने समुद्र के लिए अग्निबाण का संधान किया, "अभी तुझे जलाकर राख कर दूँगा।" तब समुद्र ने डर के मारे, अमूल्य रत्न, सोने की थाली में लाकर राम को भेंट दिए और कहा, "मैं पुल बाँधने में सहायता करूँगा। मुझे क्षमा करना।"

इसी प्रकार कृष्ण ने समुद्र को बोला, "मैं यहाँ द्वारका बसाऊँगा, नगर बसाऊँगा तो तुम 48 कोस तक जगह खाली कर दो।" तो समुद्र ने सब जगह खाली कर दी थी। जब कृष्ण अपने धाम में पधारने लगे, तो समुद्र को कहा, "तुम सात दिन में द्वारिका को डुबो देना। हमारी प्रजा सात दिन में शहर खाली कर देगी।" ये सब श्रीमद्भागवत में लिखा हुआ है। इसी प्रकार से नदियों के, पहाड़ों के, समुद्रों के, अनेक अलौकिक उदाहरण हैं। अतः यह सिद्ध हो गया कि देवी–देवता, नदियों, पहाड़ों और समुद्र के रूप में इस धरातल पर प्रकट हैं अन्य जगहों में विदेशों में इनका पदार्पण नहीं हुआ है क्योंकि भगवान् का अवतार यहीं पर हुआ करता है। इसी स्थान पर भगवान् की लीलाएँ होती रहती हैं।

भारतवर्ष में ही भगवान् की लीलाओं के अलग–अलग स्थान प्रसिद्ध हैं जैसे वृंदावन, गोकुल, बरसाना, नंदगाँव, गोवर्धन, द्वारिका, 12 वन तथा 24 उपवन। यह सब स्थान भगवान् की लीला के लिए ही योगमाया ने रचित किए हैं। इसी स्थान अर्थात् भारतवर्ष में मानव का जन्म होना

हंसी–खेल नहीं है। हम कितने भाग्यशाली हैं कि हमारा जन्म यहाँ हुआ। यही तो भगवान् की असीम कृपा का फल है। फिर भी मानव सोता रहता है। अपना जीवन यूं ही बर्बाद कर देता है तथा नरकों में तथा 84 लाख योनियों में चक्कर काटता रहता है। कितना बड़ा नुकसान कर रहा है। यही तो माया का विस्तार है। इस माया से पिंडा छुड़ाना बहुत मुश्किल है। केवल कलियुग में हरिनाम ही ऐसा सरल, सुगम साधन है कि मानव इसको जपकर अपना उद्धार कर सकता है। इस साधन में कोई नियम भी नहीं है। किसी भी दशा में इसको अपना सकता है। न कोई खर्च है न कोई बाधा है। लेकिन बिना सत्संग के इस मार्ग पर चलना नहीं हो सकेगा। जिसको सुकृति उपलब्ध हो वही इस मार्ग में आ सकता है। भगवान् के प्यारे साधु की सेवा करने से ही सुकृति हो सकती है। तन, मन, वचन से ही साधु की सेवा की जा सकती है। भगवान् बोल रहे हैं कि:

जौं सभीत आवा सरनाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं।।

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 4)

"जो डर कर भी मेरी शरण में आ जाता है उसे मैं प्राणों से भी ज्यादा प्यारा रखता हूँ।" भगवान् उसका रक्षा पालन करते हुए उसे हृदय से चिपकाए रखते हैं। माया भी उसका साथ देती रहती है अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इसी जन्म में शरणागत को उपलब्ध हो जाते हैं। गीता में 18वें अध्याय के 66वें श्लोक में भगवान् कहते हैं कि :

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

(श्रीगीता. 18.66)

जैसे शिशु माँ की शरण में रहता है, वह किसी और को कुछ नहीं जानता और केवल माँ की पूर्ण शरणागति में रहता है, तो माँ उसकी कितनी देखभाल करती है। इसी प्रकार भगवान् भी अपने शरणागत की पूरी देखभाल करते हैं, जैसे पांच साल के प्रह्लाद को, हिरण्यकशिपु ने, जो दस हजार हाथियों का बल रखता था, कितना दुख दिया। वह तो उसे गला घोंटकर मार देता लेकिन प्रह्लाद भगवान् के नाम की पूर्ण शरणागति में था अतः हिरण्यकश्यप उसका बाल भी बांका नहीं कर सका और स्वयं मृत्यु को प्राप्त हो गया। इससे बढ़कर उदाहरण और क्या हो सकता है?

देखिए ! कलिकाल के मानव को हर तरह से कमजोर समझ कर भगवान् ने अति दया की है, "तू मेरा नाम किसी भी तरह से उच्चारण कर।

मैं तुझे दुख सागर से पार कर दूँगा। तुझे कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है, न ही योग करने की आवश्यकता है, न ही धर्म करने की आवश्यकता है, न ही ज्ञान मार्ग पर जाने की आवश्यकता है। गृहस्थी में, गृहस्थी को निभाते हुए किसी भी तरह केवल मात्र मेरा नाम लेता रह। चाहे मन लगे चाहे न लगे। इसकी परवाह मत कर। मैं तुझे अपने धाम वैकुण्ठ ले जाऊँगा।" अपनी गृहस्थी को निभाते हुए, सच्ची कमाई करते हुए अपना जीवन बसर करता रह। ऐसे श्री चैतन्य महाप्रभु ने हरिनाम लेने के लिए जबरन प्रेरित किया। उन्होंने कहा, "जो एक लाख अर्थात् 64 माला नहीं करेगा, न तो मैं उससे बोलूँगा, न मैं उसके घर जाऊँगा, न ही उसके हाथ का प्रसाद पाऊँगा।" यह सब उन्होंने इसलिए बोला कि जबरन भी नाम लेने से वे सब दुख सागर से पार हो जाएंगे। जितने भी संप्रदाय हैं चाहे वह मुसलमानों के हों, चाहे सिक्खों के हों या ईसाइयों के हों। सभी संप्रदायों में केवल मात्र नाम को ही सर्वोत्तम बताया गया है। भगवद् नाम के अभाव में तो कोई संप्रदाय है ही नहीं। चलते–फिरते, खाते–पीते, कहीं भी बैठ कर, किसी भी समय, किसी भी अवस्था में, मेरा नाम ले सकता है। अपना काम करो और मेरा नाम करो। हाथों से काम करो, जीभ से नाम करो। तो क्या आपत्ति है? यदि सुखी रहना हो तो मेरा नाम करो वरना दुख तो संसार में भरा पड़ा है, कोई भी सुखी नहीं है। करोड़पति भी दुखी और कंगाल भी दुखी। चर–अचर प्राणियों में कोई भी सुखी नहीं है। दुखी क्यों है? जहाँ सुख नहीं, वहाँ दुख ही तो प्रगट होगा। सुख है केवल भगवद् शरण में। शरण कैसे मिलेगी? केवल भगवद् नाम में ही सुख सागर लहरा रहा है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

कहते है :

कृत युग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग।।

(मानस, उत्तर. दो. 102 ख)

कितना सरल, सुगम रास्ता है। फिर भी हरिनाम नहीं करते हो? वेद–पुराण चिल्ला–चिल्लाकर मानव को समझा रहे हैं कि भगवान् के चरणों में ही सुख है। न ही धन में सुख है, न मन में सुख है, न घर में सुख है, न तन में सुख है, न वन में सुख है, कहीं भी सुख नहीं है। केवल

भगवद् स्मरण में ही सुख है। सुख कौन नहीं चाहता? सभी चर–अचर प्राणी सुख के लिए दौड़ रहे हैं। दुख कोई नहीं चाहता, फिर भी दुख सागर में डूब रहे हैं। यही तो भगवद् माया है। तभी तो भगवान् कृष्ण श्रीमद् भागवतपुराण में बोल रहे हैं, "हे उद्धव! मैं सत्संग से ही मिलता हूँ। बिना सत्संग मैं नहीं मिल सकता। मैं केवल सत्संग से ही मिलता हूँ और कोई मार्ग नहीं है और सत्संग मिलेगा, मेरे प्यारे साधु के पास ही। साधु ही मेरा साक्षात् रूप है। मैं स्वयं नहीं आता। मैं सन्त के रूप में आकर ही सत्संग का लाभ देता हूँ। कोई विरले भाग्यशाली को ही संत मिलते हैं। संत ढूंढने से नहीं मिलते। मैं ही भाग्यशाली के पास संत को भेजता हूँ।" जिसको भगवान् के दर्शन हो जाते हैं वह परमहंस अवस्था उपलब्ध कर लेता है। इस अवस्था को तुरीय अवस्था भी कहा जाता है। यह पागल नहीं होता। इसके समस्त दुर्गुण तन–मन से हट जाते हैं तथा समस्त गुण हृदय में भर जाते हैं।"

जिसको भगवान् का दर्शन हो जाता है, वह जीव मात्र का भला चाहता है। वह सब के हृदय में भगवान् को देखता है, दया की मूर्ति होता है, अन्य की भलाई में ही लगा रहता है। ऐसे अनेक गुण इस भक्त में आ जाते हैं। पांडव तो 24 घंटे भगवान् के पास ही रहते थे। क्या वह पागल हो गए थे? उनमें सभी गुण आ गए थे। वे सभी गुणों से ओतप्रोत हो गए थे। कौरव उन्हें तरह तरह के दुख दिया करते थे लेकिन फिर भी पांडव उनका भला चाहते थे। उनकी बुद्धि सुधारने के लिए प्रार्थनाएं किया करते थे। जिनको भगवान् के दर्शन हो जाते हैं, उनके हृदय में समता आ जाती है और समस्त शास्त्र भी प्रकट हो जाते हैं। हमारे गौर किशोरदास बाबा बिल्कुल अनपढ़ थे। अपना नाम भी लिखना नहीं जानते थे किंतु नित्य तीन लाख हरिनाम किया करते थे, इसलिए सब शास्त्र उनके हृदय में प्रगट हो गए। जो भी कोई कुछ पूछता, वह उसका उत्तर दे देते थे।

एक मानव को किसी ने बोला, "यार! तू एक बार हरिनाम उच्चारण कर ले। राम बोल दे।" लेकिन वह इतना जिद्दी था। उसने कहा, "मैं नहीं बोलूँगा।" उसे बार–बार कहते रहे तो हार कर उसने एक बार राम बोल दिया। फिर वह बोला, "बताओ इसकी क्या कीमत है? इस राम नाम का क्या प्रभाव है?" उन्होंने कहा, "यह तो मैं भी नहीं जानता। चलो! शिवजी से पूछ लेते हैं कि राम नाम का क्या प्रभाव है?" वह शिवजी के पास पहुँचे और पूछा, "राम नाम का क्या प्रभाव है?" शिवजी बोले, "मैं भी नाम का प्रभाव नहीं जानता।" तो उसने पूछा, "कौन बता सकता है।" तो शिवजी

ने कहा कि उनके पिता ब्रह्माजी राम नाम का प्रभाव बता सकते हैं। उसे लेकर ब्रह्माजी के पास गए और उनसे प्रार्थना की कि, "यह राम नाम का प्रभाव जानना चाहता है। कृपया करके बताएं।" ब्रह्माजी बोले, "राम नाम का प्रभाव और कीमत तो मैं भी नहीं बता सकता।" उन्होंने पूछा, "कौन बता सकता है?" ब्रह्माजी बोले, "यह केवल विष्णु भगवान् ही बता सकते हैं।"

अब उस मानव ने कहा कि देखो! मैं तो थक गया हूँ, मुझे ले कर चलो, तो उसके लिए पालकी मंगवाई। उसे पालकी में बैठा दिया और एक तरफ ब्रह्माजी जुते और एक तरफ शिवजी और एक तरफ वह आदमी। उस पूछने वाले को पालकी में बैठाकर ब्रह्माजी, शिवजी और वह आदमी, तीनों भगवान् विष्णु के पास पहुँचे और पूछा, "राम नाम का क्या प्रभाव है?" तब विष्णु जी बोले, "आपको राम नाम का प्रभाव नहीं मालूम। इसी नाम के प्रभाव से ही तो यह मेरी गोद में आ गया है।" फिर सभी राम नाम के प्रभाव को जानकर आनंदमग्न हो गए और सभी को शिक्षा देने लगे कि राम नाम जपा करो जिससे भगवान् की गोद में जा सको। भगवान् की गोद में सुख का समुद्र लहरा रहा है। दुख तो मूल सहित समाप्त हो जाता है। अब सब लोग हरिनाम में लग गए। उस व्यक्ति ने देखो कैसी शिक्षा दी सबको? अब सब लोग भगवान् का नाम लेने लगे।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

जिसका स्वभाव ऐसा (निम्नलिखित) होगा, भगवान् उसको एक पल के लिए भी नहीं छोड़ेंगे और उसके पीछे छाया की तरह रहेंगे। इसलिए ध्यानपूर्वक सुनो। ऐसा स्वभाव बना लो तो भगवान् एक पल के लिए भी आपको नहीं छोड़ेंगे। यह मैं बता रहा हूँ। मानव का एक फंडामेंटल (मूल) स्वभाव होता है जिसके द्वारा भगवान् का साक्षात् दर्शन एवं स्पर्श शत प्रतिशत होता है। इसे मैं पहले भी बता चुका हूँ परंतु फिर से बता रहा हूँ।

<u>पहला</u> है :

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।

(श्री शिक्षाष्टकम् 3)

जिसका ऐसा स्वभाव होगा। वही सतत हरिनाम कर पाएगा। कीर्तनीयः सदा हरिः। वही कीर्तन करने के लायक है जिसका ऐसा स्वभाव है कि अपने को तृण से भी बहुत नीचा समझे। यह समझे, "मैं तो बिल्कुल मूर्ख हूँ, मैं तो बिल्कुल नीच हूँ, मेरे अंदर कोई गुण नहीं है।" जो ऐसा विचार रखेगा उसे अहंकार नहीं आ सकता। ऐसा स्वभाव होना चाहिए तभी भगवान् मिल सकते हैं।

दूसरा है : नित्य तीन प्रार्थनाएं करना परम आवश्यक है। सोते समय, सुबह प्रातः जगते समय और स्नानादि के बाद करनी हैं। यह सभी भक्त समुदाय को मालूम भी है। इन तीन प्रार्थनाओं में अनंत धर्म शास्त्रों का बीज तथा प्राण भरा पड़ा है। नींद आने लगे तो प्रार्थना करो कि, "हे मेरे प्राणनाथ! जब मेरी मौत आये और आप मेरे तन से मेरे प्राणों के साथ बाहर निकलो तब मुझे अपना नाम उच्चारण करवा देना। भूल मत करना।" भगवान् को बांध दिया। भगवान् नहीं भूलते हम भूल जाते हैं। सुबह जब उठो तो प्रार्थना करो कि, "हे मेरे प्राणनाथ! मैं अब से लेकर जब तक सोऊँ तब तक जो भी काम करूँ वह सब आपका ही समझकर करूँ।" तो यह निष्काम कर्मयोग हो गया। "अगर मैं भूल जाऊँ तो आप मुझे याद करा देना।" तीसरी प्रार्थना सुबह स्नान आदि के बाद बोलो कि, "हे मेरे प्राणनाथ! मेरी ऐसी दृष्टि बना दीजिए, मेरी ऐसी निगाह बना दीजिए कि मैं कण–कण में और जीव मात्र में आपका दर्शन करूँ क्योंकि आप परमात्मा रूप में सब के हृदय में बैठे हुए हो और अगर मैं भूल जाऊँ तो मुझे याद दिला देना।" जो ऐसा करेगा उसको भगवान् एक सैकंड भी नहीं छोड़ेंगे और मरने पर भगवान् पार्षद नहीं भेजेंगे, स्वयं लेने के लिए आएंगे। श्री गुरुदेवजी गारंटी ले रहे हैं कि जो कोई अनपढ़ हो, गँवार हो, जिसका कोई सहारा न हो, जिसमें कोई गुण भी न हो, जिसे जगत् ने त्याग दिया हो, यदि वह मेरे कहे अनुसार नित्य ही शरणागति के ये तीन साधन अपने जीवन में अपनाता रहे तो ऐसे साधक को, ऐसी कोई शक्ति नहीं जो वैकुण्ठ धाम जाने से रोक सके। स्वयं परमात्मा भी नहीं रोक सकते। परमात्मा से बड़ा तो अनंत कोटि ब्रह्मांडो में कोई है ही नहीं। यह साधन दो मिनट का ही तो है।

भगवान् हमारे निष्किंचन महाराज को लेने के लिए स्वयं आए थे। निष्किंचन महाराज ने तो पहले ही बता दिया था कि आज वह जायेंगे। भगवान् आज उन्हें लेने आएंगे। मठ में नीचे से मंगला करके आए थे और ऊपर आकर बोले, "आज मैं जाऊँगा।" वहाँ सब को शिक्षा दी कि हरिनाम

करो। हरिनाम से भगवान् की कृपा मिलेगी और बात करते–करते कुर्सी पर लुढ़क गए। यह तो साक्षात् अभी की बात है।

तीसरा क्या है? कंचन, कामिनी, प्रतिष्ठा से दूर रहे। दसों दिशाओं में फिर सुख ही सुख है। कंचन में पैसा, दुकान, मकान, वैभव इत्यादि सब आता है। कामिनी में आता है कि सब स्त्री जाति को, नारी जाति को माँ समझे और प्रतिष्ठा अर्थात्, जब बड़ाई हो तो यह समझे कि यह उसकी बड़ाई नहीं हो रही, यह तो हरिनाम की वजह से बड़ाई हो रही है। ऐसा सोचने पर कि हरिनाम की वजह से बड़ाई हो रही है, अहंकार नहीं आएगा।

चौथा है कि संग्रह–परिग्रह इतना ही रखें जिससे जीवन चल जाए। ज्यादा संग्रह परिग्रह रखोगे तो मन उस में फंस जाएगा और मन फंसेगा तो भगवान् में कैसे लगेगा? अगर संग्रह–परिग्रह कम होगा तो फिर भगवान् की तरफ मन झुक जाएगा। जिसको पैसे का मोह नहीं है, वह बिल्कुल भगवान् का प्यारा है। यह उस पर भगवान् की बड़ी कृपा है कि उसे पैसे का मोह नहीं है, नहीं तो 99% लोगों को पैसे से मोह रहता है। 100 में से केवल एक व्यक्ति ऐसा होगा, जिसको पैसे से मोह नहीं होगा। पैसा, यह है खास माया। यही झगड़ा कराता है। पैसा सबसे बुरा है।

पांचवाँ, जब हम हरिनाम कर रहे हैं तब हम ऐसा सोचें कि भगवान् हमारे सामने खड़े हैं या हमारे पास बैठे हुए सुन रहे हैं। ऐसा अनुभव करो कि भगवान् मेरे पास हैं। मेरे को छोड़कर कहीं नहीं जा सकते। भगवान् मेरे पास ही रहते हैं।

छठा है कि जितना भगवान् ने दिया है उसी में संतोष रखें। हाय–धाय न करें।

जब आवे संतोष धन तो सब धन धूल समान।

कहें कि जो कुछ मिला है भगवान्, आपकी कृपा से बहुत कुछ मिला है। बच्चा जब जन्म लेता है मुट्ठी बांधकर आता है लेकिन जब जाता है तो मुट्ठी खोल कर जाता है। मुट्ठी बांधकर क्यों आता है? क्योंकि जो वह पीछे से कमाई करके लाया है पूरी जिंदगी में उसे खर्च करेगा।

सातवां है कि किसी में गुण–दोष नहीं देखें। देखेगा तो वह गुण–दोष उसके ह्रदय में आ जाएगा। गुण–दोष क्यों होते हैं? सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण से प्रेरित होकर ही गुण–दोष उसमें आते हैं। उसमें उस

बेचारे का क्या दोष है। पिछले जो भी कर्म किए हैं उसके अनुसार सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण की धाराएं बहती हैं। उसका स्वभाव उन्हीं से प्रेरित होता है इसलिए गुण–दोष देखने की कोई जरूरत नहीं है। दूसरों के गुण–दोष देखने से वह तुम में आ जाएंगे। इसलिए गुण–दोष मत देखो।

ऊपर बताए नियम के अनुसार जिसका स्वभाव और जीवन होता है उसे भगवान् एक क्षण के लिए भी नहीं छोड़ते। छाया की तरह उसके पीछे रहते हैं। जब भगवान् उसके पास में हैं फिर दुख तो पास आ ही नहीं सकता। उसके पास तो सुख का भंडार भरा पड़ा है। इसके अलावा समस्त धर्मशास्त्रों में भगवद् उपलब्धि का कोई भी साधन है ही नहीं। लेकिन यह स्वभाव प्रकट होगा केवल भगवद् नाम से ही, केवल हरिनाम से ही प्रकट होगा। हरिनाम से ही ऐसा स्वभाव बन जाएगा। भगवद् सत्संग करने से ही सब कुछ मिल जाएगा।

देखिए! आयुर्वेद के जो प्रवर्तक थे। धन्वन्तरि, वह बोल रहे हैं :

अच्युतानन्त गोविन्द नामोच्चारणभेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।।

(पाण्डवगीता श्लोक 25)

"वह कह रहे हैं भगवान् का नाम लेने से कोई भी रोग पास ही नहीं आएगा। सर्वरोगाः नश्यन्ति। सब रोग नष्ट हो जाएंगे। भगवान् का नाम ऐसा है कि सारे रोगों का नाश करने वाला है। मैं सच सच बोल रहा हूँ।" आप समस्त भक्तों को मैं कैसे समझाऊँ? हरिनाम नित्य करने से शरीर में कोई रोग नहीं आएगा। सदा स्वस्थ रहोगे। धन्वन्तरि भगवान् के अवतार बोल रहे हैं, "मैं सच सच कह रहा हूँ। हरिनाम करो। हरिनाम करो।"

मैं भी आपके सामने हूँ। 89 साल का हो गया हूँ। मैंने बचपन से हरिनाम किया है। मेरा शरीर बिल्कुल स्वस्थ है। कोई रोग नहीं है। सभी इंद्रियां बच्चे की तरह स्वस्थ हैं। मेरी आंखों की दृष्टि पांच साल के बच्चे की तरह है। मैं अपनी बड़ाई नहीं कर रहा हूँ। हरिनाम में आपकी रुचि हो जाए, इसके लिए ही बोल रहा हूँ। हरिनाम से अधिक शक्तिशाली अनंत कोटि ब्रह्मांडों में कोई नहीं है और शक्तिशाली के पास आने में हर कोई डरता है। शक्तिशाली के नजदीक कोई भी नहीं आ सकता और कमजोर को सब सताते रहते हैं। अतः ये रोग शरीर में आने से डरते रहते हैं। ऐसा

मौका भविष्य में मिलने वाला नहीं है। इसलिए रात–दिन हरिनाम में लग जाना ही सर्वोत्तम होगा।

ऐसा मुझे भगवान् का आदेश है कि स्वयं हरिनाम करो और दूसरों को भी हरिनाम में लगाओ। जहाँ तक हो सकता है, मैं सबको हरिनाम के लिए बोलता हूँ। अरे! हरिनाम में कुछ लगता नहीं है। शाम का भोजन कम करो और सुबह जागकर ब्रह्ममुहूर्त में हरिनाम करो क्योंकि दिन में मन नहीं लग सकता। रात में शांत वातावरण होता है, इसलिए हरिनाम रात में ही होता है, ब्रह्म मुहूर्त में आप जाग कर हरिनाम करो।

यह मौका फिर नहीं मिलेगा। मनुष्य जन्म फिर नहीं मिलेगा। इसलिए अभी से सतर्क हो जाओ और हरिनाम करो।

संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : हम 'वांछा कल्पतरु' मंत्र करते हैं जिसमें हम वैष्णवों से अपराध के लिए क्षमा मांगते हैं। फिर 'अनंतकोटि वैष्णव वृंद' प्रार्थना वैष्णव–अपराध के लिए अलग से क्यों है ?

उत्तर : 'वांछा कल्पतरु' यह प्रार्थना भजन गीति में है। उसे सब अंतःकरण से नहीं बोलते। वह तो ऊपर से ही बोल देते हैं, इसीलिए भक्तों की प्रार्थना 'अनंतकोटि वैष्णव वृंद' बताई गई है। भक्तों की इस प्रार्थना से भगवान् की कृपा मिल जाएगी। वैसे तो रोज ही 'वांछा कल्पतरु' बोलते रहते हैं, परंतु फिर भी अपराध होते रहते हैं। फिर अपराध तो नहीं होने चाहिएँ। इसका मतलब है कि उनके हृदय में नहीं बैठा। कोई भी अपराध करते हैं, इसका अर्थ है कि कठपुतली की तरह बोलते हैं। ऐसा गुण भी तो आना चाहिए, उनमें गुण तो आया नहीं है।

केवल 'एक नाम' ही पर्याप्त

10 मार्च 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा अहैतुकी प्रेमा भक्ति की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

सभी मानव पैसों के पीछे दौड़ते रहते हैं। राजा भी इसी प्रकार के कर पर कर लगाकर जनता को लूटते रहते हैं। दया नाम की कोई चीज नहीं है। जो चाहे जिसे मार दे। कोई रक्षक पालक नहीं है। अदालतों में पैसे वालों की जीत होती है और गरीब मारा जाता है। स्त्रियां स्वेच्छाचारिणी एवं उच्छृंखल वृत्ति की हो जाती हैं। शर्म बिल्कुल नहीं होती। स्त्रियों का ही बोलबाला रहता है। पुरुष स्त्रियों से दबे रहते हैं। इससे आप मुझसे नाराज नहीं हों। मैं तो केवल जो शास्त्र में लिखा है, वैसा बोल रहा हूँ। सती स्त्रियों के तो नामोनिशान ही नहीं हैं।

भविष्य में ऐसा जमाना आएगा जो भी भगवान् का नाम जपेगा उसे जेल में ठूँस दिया जाएगा या कड़ी सजा दी जाएगी। ऐसी हवा अभी भी कहीं–कहीं चल रही है लेकिन गुप्त रूप में है। अभी मालूम नहीं पड़ता। विदेशों में तो सामने ही हो रहा है। कोई भी जोर से भगवान् का कीर्तन नहीं कर सकता।

कलि महाराज तो हिरण्यकश्यप का प्रतीक है। भगवद् नाम से सख्त घृणा करता है। अभी तो कलि महाराज की संध्या ही आरंभ हुई है। जैसे सूर्य तो बाद में उदय होता है लेकिन आसमान में उसकी ललाई पहले से दिखती है, बाद में सूर्य सब की आंखों के सामने दिखाई देता है। इसी प्रकार कलि महाराज अभी इस धरातल पर आया नहीं है, उसकी छाया ही अभी तक आई है, उसकी आभा ही अभी आई है। जब स्वयं आएगा तब

देखना कि चर–अचर प्राणियों का क्या हाल होगा। न जिएंगे, न मरेंगे। तड़पते रहेंगे। मेरे गुरुदेव सबको चेता रहे हैं कि तुरंत हरिनाम आरंभ कर दो। हरिनाम आपकी कलि से रक्षा और पालन करता रहेगा। 64 माला नित्य, बेमन से भी करने पर, वैकुण्ठ धाम की उपलब्धि शत–प्रतिशत होगी। यह गारंटी है। साथ–साथ में अपने स्वभाव को भी सुधारने की कोशिश करे। किसी भी तरह के प्राणी को दुख न दें। दुख शरीर को नहीं होता है, आत्मा को होता है। शरीर तो आत्मा के पहनने का कपड़ा है। जब कपड़ा फट जाता है तब नया पहनना पड़ता है अर्थात् जब शरीर जीर्ण–क्षीर्ण हो जाता है तो आत्मा दूसरा नया शरीर धारण करती है। बार बार मानव शरीर क्यों देते हैं? इस कारण देते हैं कि भगवान् कहते हैं, "तू दुख सागर में डूब रहा है। मेरे पास आ जा। मेरे पास सुख ही सुख है। दुख का तो नामोनिशान ही नहीं है।" अतः बोला गया है कि मानव जन्म मिलना बहुत ही दुर्लभ है। अरबों, खरबों चतुर्युगों में भगवान् की कृपा से मानव शरीर मिला करता है। फिर मानव इसे हाय–धाय में खर्च कर देता है। हीरा हाथ में आया और पत्थर समझ कर गंदी नाली में फेंक दिया। कितना अज्ञान है। कितनी मूर्खता है। कौन इसे समझाए? केवल भगवान् का प्यारा साधु ही इसकी आंखें खोल सकता है वरना तो बंद आंखों से ही इस मृत्यु लोक से कूच कर जाता है। फिर उसी दुखसागर में पड़ा–पड़ा कराहता रहता है। गर्भाशय से लेकर मृत्युपर्यंत केवल दुख ही दुख इसको हस्तगत होता रहता है। वैकुण्ठ में जाना और भगवान् का आना बहुत ही सरल है, केवल मन को सुधार लो।

मन में ये तीन हलाहल विष न हो तो भगवान् तुरंत मिल जाएं– कंचन, कामिनी, प्रतिष्ठा। इन तीनों से मुंह मोड़ लो तो भगवान् मिलने में देर नहीं लगती। कंचन में क्या क्या है? कंचन में धन है, जो भी वैभव है, खेती–बाड़ी, मकान, दुकान जो भी है, सब कंचन में आता है। कामिनी जो स्त्रीजाति को अपनी माँ समझे। छोटी हो चाहे बड़ी हो, युवती हो, सबको अपनी माँ समझे। प्रतिष्ठा जब हो तो समझे कि यह तो हरिनाम की वजह से हो रही है। इसमें मेरा क्या है? इससे उसे अहंकार नहीं आएगा। जिसका ऐसा स्वभाव होगा भगवान् उससे छाया की तरह चिपके रहेंगे। भगवान् तो हाथ फैलाए खड़े हैं क्योंकि हम सब भगवान् के बच्चे हैं। बाप किसको नहीं चाहता? लेकिन पुत्र ही नालायक हो जाए तो बाप क्या करे? बाप का क्या दोष है? विचार करें माया इसके पीछे पड़ी हुई है। अगर जीव का भगवान् के प्यारे साधु से संग बन जाए तो माया इसका पीछा

छोड़ देगी। वह साधु इसे माया को हटाने का मार्ग बता देगा तो इसे सुख हस्तगत हो जाएगा।

कुछ नहीं करना होगा। केवल 64 माला नित्य हरिनाम की करनी होंगी। चाहे मन लगे चाहे न लगे। जैसे अनजान में, बेमन से कोई अमृत पी जाए तो वह उसे अमर बना देगा। इसी प्रकार बिना जाने जहर पी जाए तो उसे मार देगा क्योंकि इनका स्वभाव ही ऐसा है। ऐसे ही आग में जाने से या अनजाने से हाथ लगा दो, तो जला देगी। इसी तरह से हरिनाम को बेमन से भी लेंगे तो वह हरिनाम भगवद् चरण में पहुँचा देगा। शास्त्र बोल रहा है :

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

तो, बिना मन से भी, भगवान् का नाम लोगे, तो दसों दिशाओं में मंगल हो जाएगा। दस दिशाओं के अलावा ग्यारह दिशा तो होती नहीं और दसों दिशाओं में वैकुण्ठ और गोलोक धाम भी आ गया। वैकुण्ठ तो मिल ही जाएगा। हमारे पुराण कह रहे हैं कि एक ही हरिनाम में इतनी शक्ति है जितना पाप कोई जिंदगी भर में कर नहीं सकता। एक नाम ही काफी है। जैसे हमारे यहाँ क्विण्टल घास पड़ा हो और एक माचिस की तीली लगा दो तो तुरंत जलकर राख का ढेर हो जाएगा।

धर्मशास्त्र भगवान् के साँस से प्रकट हुए हैं। मैं जो कुछ भी बोलूँगा, शास्त्र सम्मत ही बोलूँगा ताकि किसी को एतराज न हो सके। एक शब्द भी शास्त्र के बाहर नहीं बोलूँगा।

चर–अचर प्राणियों के पीछे भगवान् की शक्ति माया पड़ी रहती है। इस की तीन शक्तियां हैं – सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। इनके स्वभाव पर ही चर अचर प्राणियों का जीवन निर्भर है। इसमें प्राणियों का कोई वश नहीं है। अतः परतंत्र अवस्था में रहते हैं। आत्मा सबकी एक ही है, सब की समान है। अतः चर अचर प्राणी अबले हैं। इसीलिए कहते हैं कि किसी की आत्मा मत सताओ। ऐसा तो नहीं कहते कि किसी का शरीर मत सताओ क्योंकि जो कुछ असर होता है, वह आत्मा को होता है, शरीर को नहीं होता। क्योंकि शरीर तो जड़ है। यह तो कपड़ा है। जब कोई किसी से द्वेष करता है तो वह अपने से ही द्वेष करता है। वह तो अपना ही दुख मोल लेता है। कोई किसी को दुख नहीं देता, स्वयं ही मोल लेता है। दुख

कौन चाहता है? सभी सुख की ओर दौड़ रहे हैं। फिर भी प्राणी का जबरन दुख से पाला पड़ जाता है। यह है अज्ञान, मूर्खता, अनभिज्ञता। ब्रह्मा किसी प्राणी को दुख–सुख नहीं देते। जो जैसा करता है वैसा भोगता है। इसमें ब्रह्मा, विधाता क्या करेगा?

(As you sow, so shall you reap)

जैसा करोगे वैसा भरोगे।

हम सब दुखी क्यों हैं? हम दुखी इसलिए हैं क्योंकि यह ज्ञान हमसे दूर है। यह ज्ञान कैसे उदय होगा? केवल हरिनाम से। हरिनाम निष्ठा कैसे होगी? केवल नामनिष्ठ महात्मा से ही आएगी और नामनिष्ठ महात्मा कैसे मिलेगा? जिस जीव की सुकृति होगी उसे ही भगवद् कृपा से नामनिष्ठ संत मिलेगा और सुकृति कहाँ से मिलेगी? भगवान् के प्यारे साधु की सेवा से। साधु कहाँ मिलेगा? भगवान् की कृपा से ही साधु संग प्राप्त होगा।

बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता

(मानस, सुन्दर. दो. 6 चौ. 2)

देखो! जो बोओगे वही मिलेगा। बाजरा बोओगे तो बाजरा मिलेगा, चावल नहीं मिलेगा। इसी तरह मानव के शरीर में तीन धाराएं बहती हैं। सतोगुण, रजोगुण एवं तमोगुण। इन धाराओं के अनुसार मानव का स्वभाव हो जाता है। जैसा स्वभाव होगा तो संतान भी उसी स्वभाव की प्रकट होगी। कहते हैं कि, "हमारा बेटा हमारा कहना नहीं मानता।" मानेगा कैसे? तुम्हारा दोष है। बच्चे का कोई दोष नहीं। स्वभाव को सतोगुणी या निर्गुणी बनाने हेतु सतयुग, त्रेता, द्वापर में गुरु आश्रम खोले जाते थे। पच्चीस साल बच्चे वहाँ रह कर धर्मशास्त्र की चर्चाएं सुना करते थे तो बच्चों का खून सात्विक या निर्गुण हो जाया करता था तो उनके बच्चे देवता स्वभाव के जन्म लेते थे। क्रोधी मानव का क्रोधी बच्चा जन्म लेगा। लोभी मानव का लोभी बच्चा जन्म लेगा। प्रेमी मानव का प्रेमी बच्चा जन्म लेगा। यह तो ध्रुव सत्य सिद्धांत है। इसमें राई मात्र भी फर्क नहीं है। इसी कारण कलियुग में बच्चे राक्षस स्वभाव के हो रहे हैं। जैसा माँ–बाप का स्वभाव होता है वैसा ही संतान का स्वभाव होगा। इसमें कोई दो राय नहीं है।

भगवान् दयानिधि कहलाते हैं लेकिन मानव भगवान् को चाहता ही नहीं है अतः वह दुखी रहता है। जहाँ सुख का भंडार भरा पड़ा है,

अज्ञानतावश वहाँ इसका मुख होता ही नहीं है। मानव अपनी ही आत्मा को सताता रहता है। सभी चराचर प्राणियों की आत्मा एक ही है। जिस प्रकार मानव की एक उंगली में दर्द हो जाता है तो पूरे शरीर में ही दर्द व्याप्त हो जाता है, केवल उंगली दुखी नहीं होती। इसी प्रकार जब मानव सामने वाले को सताता है तो वह स्वयं को ही सता रहा है। इसको यह ज्ञान ही नहीं है। मूर्खतावश जानता नहीं है। जिस प्रकार टट्टी खाने की वस्तु नहीं है लेकिन सूअर उसे बड़े चाव से खाता है। इसका कारण है कि यह गलत रास्ते से जा रहा है। उसको सही रास्ता बताने वाला कोई नहीं है। सूअर के सामने मिठाई रख दो तो वह नहीं खाएगा।

इसी प्रकार मानव का स्वभाव बिगड़ा हुआ है। इसे धर्मशास्त्र की चर्चाएं सुहाती नहीं हैं जो कि सुख का रास्ता है और उसे सांसारिक चर्चाएं, जो दुख का रास्ता है, बहुत मीठी लगती हैं क्योंकि इसका स्वभाव सूअर से भी कम नहीं है। सूअर तो फिर भी अज्ञानी है लेकिन मानव में तो भगवान् ने बुद्धि दी है। अच्छा बुरा सोचने की शक्ति दी है। जानबूझकर गलत, दुखदायी रास्ते पर जाता है।

जाको प्रभु दारुण दुख देही। ताकी मति पहले हर लेही।।

कर्म ही ऐसा कर रहा है तो दुख ही पाएगा। भगवान् किसी को दुख नहीं देते क्योंकि भगवान् सबके बाप हैं। क्या बाप अपने बच्चों को, अपने बेटों को दुख देता है? अगर बेटा ही नालायक हो और बाप का कहना नहीं मानता हो तो इसमें बाप का क्या दोष है?

जैसा करोगे वैसा भरोगे।

As you sow, so shall you reap

भगवान् ने सुख पाने हेतु धर्मशास्त्र रचे हैं लेकिन मानव का दिमाग खराब है, उधर उसकी रुचि होती ही नहीं। संसार की बातों में तो सोना भी छोड़ देगा। सारी रात गप–शप में बिता देगा जो कि निरर्थक है। यही तो माया है। भगवान् को दया आई तो जीव को मानव देह दे देता है लेकिन यह मानव इस देह का दुरुपयोग करता है, फिर 84 लाख योनियों में चक्कर काटता रहता है। कलियुग में भगवान् ने मानव को अपनी गोद में पहुँचने का ऐसा सरल, सुगम रास्ता, दया करके दिया है, "तू मेरा नाम ले। नाम लेने में कोई कष्ट नहीं। कहीं पर भी बैठकर किसी समय भी ले ले। कहीं जाने की जरूरत भी नहीं है। जहाँ पर है वहीं पर मेरा नाम ले।

मेरे नाम में ही सुख है अन्य कहीं भी सुख नहीं है। कोई पैसा नहीं लगेगा। केवल नाम ले। नाम हर प्रकार से तेरी मदद करेगा। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष घर बैठे ही उपलब्ध हो जाएगा। तेरा रक्षा, पालन भी मेरा नाम ही करेगा।" हमें, हमारे गुरुवर्ग के पदचिह्नों पर चलना चाहिए। उन्होंने केवल नाम लिया और भगवान् उनके पास उनके लिए दूध लेकर आते थे, उनसे मिलते थे। बस किसी भी चर–अचर प्राणी को सताना नहीं है। ऐसा स्वभाव बना लो। भगवान् कहते हैं, "फिर मैं तुम्हें एक पल के लिए भी छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा। सदा तेरे पास ही रहूँगा। छाया की तरह चिपका रहूँगा। सब तरह से तुम्हारी देखभाल करूँगा। तुम्हें सुख ही सुख उपलब्ध होगा। दुख का तो नामोनिशान भी नहीं रहेगा। जिसने भी मेरा नाम लिया है वह हमेशा के लिए सुखी हो गया और जिसने मेरा नाम नहीं लिया वह दुख सागर में गोता खाता रहा।"

भगवान् ने स्वयं सृष्टि रची है और सृष्टि के रूप में भी स्वयं ही हैं। जिस मानव की ऐसी दृष्टि बन गई उसके लिए भगवान् दूर नहीं है। वह सदा भगवान् की गोद में खेलता है लेकिन यह अवस्था केवल मात्र हरिनाम जपने से ही उपलब्ध हो सकेगी अन्य कोई भी साधन और मार्ग नहीं है। नाम की महत्ता तो चारों युगों में ही है लेकिन कलियुग में अधिक इसलिए भी है क्योंकि मानव हर प्रकार से कमजोर है, शक्तिहीन है। अतः घर बैठे ही भगवान् मिल जाएं। प्रह्लाद तो पांच साल का बच्चा था। घर बैठे ही हरिनाम ने उसे सर्वसमर्थ बना दिया। उसका रक्षा पालन किया। उसका बाल भी बांका नहीं हो सका। यह प्रत्यक्ष उदाहरण सामने मौजूद है। अब भगवान् अपने हरिनाम को जपने का तरीका बता रहे हैं। कह रहे हैं :

प्रेम से हरिनाम जपो और कानों से सुनो

Chanting harinama sweetly and listen by ears

और शिवजी क्या कह रहे हैं?

सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं।।

(मानस, बाल. दो. 118 चौ. 2)

मन लगाकर हरिनाम जपने से मानव का सारा जीवन ऐसे चला जाएगा, जैसे कोई गाय के खुर को उलांघ जाए। चार इंच के खुर को तो एक बच्चा भी उलांघ सकता है। यह भगवान् का ही कहना है। मन

लगाकर कैसे जपें? जो जपें उसे कान से सुनते रहो और ऐसा अनुभव करो कि भगवान् आपके पास में बैठे हैं और अपना नाम सुन रहे हैं। भगवान् को अपने पास से दूर जाने मत दो। जब इस प्रकार से जप होगा तो भगवान् के मिलने में देर नहीं होगी। मिलने में देर होने पर भक्त को रोना आ जाएगा। रात की नींद और दिन की भूख गायब हो जाएगी। दिन का एक क्षण भी भगवान् से दूर नहीं होगा। इस रोने में जो आनंद सागर लहराएगा उसे भक्त ही जान पाएगा। अन्य को बताने में असमर्थ होगा जैसे कोई मिठाई का स्वाद किसी को नहीं बता सकता। भक्त ऐसा ही हो जाता है।

भक्त की ऐसी स्थिति क्यों नहीं आती? इस का कारण है संसार की ओर अधिक झुकाव है। अतः हरिनाम जपते हुए मन एकाग्र नहीं होता। मन संसार की ओर भागता रहता है। जहाँ मन की हलचल रहेगी, वहाँ भगवान् के लिए द्रवता कैसे आएगी? संसार का कोई भी काम मन की एकाग्रता के बिना नहीं हो सकता। तो फिर भगवान् के नाम का काम कैसे बन सकता है। सारी उम्र ऐसे ही रोते–रोते चली जाएगी और फिर भविष्य में मानव जन्म कब मिलेगा, इसका कोई पता नहीं। फिर इस दुख सागर में गोता खाता रहेगा। कितना अज्ञान है। कैसी मूर्खता है।

जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ।।

(मानस, बाल. दो. 21, चौ. 2)

शास्त्र बोल रहा है कि नाम का प्रभाव अगर जानना चाहते हो तो उसे जीभ से जपो तो तुम को मालूम पड़ेगा कि नाम में कितनी शक्ति है। शास्त्र बोल रहा है –

कृत युग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग।।

(मानस, उत्तर. दो. 102 ख)

देखो! हरिनाम में कितनी सरलता है। कलियुग में जन्म केवल भाग्यशालियों का होता है। देवता भी तरसते हैं कि हमारा कलियुग में जन्म हो जाए। हमारा भारत वर्ष में जन्म हो जाए। तो हम भगवान् को प्राप्त कर सकते हैं। जो लाभ सतयुग, त्रेता और द्वापर में मानव को अत्यंत कठिनता से उपलब्ध होता है वह इस कलियुग में हरिनाम को जीभ से

जप कर तथा कान से सुनकर उपलब्ध हो जाता है। कितना सरल, सुगम साधन मानव को हस्तगत हो गया है फिर भी कर्मफूटा मानव इसका लाभ नहीं उठाता। इसका कारण है कि –

जाको प्रभु दारुण दुख देही। ताकी मति पहले हर लेही।।

ऐसा अवसर हाथ आने पर भी भगवान् उसकी बुद्धि बिगाड़ देते हैं ताकि दुखों पर दुख भोगता रहे क्योंकि उसके कर्म ही ऐसे हैं। भगवान् इसमें क्या करेगा? क्योंकि उसके पिछले जन्मों के संस्कार खराब हैं अतः उसे इस तरफ सुमार्ग पर आने नहीं देते। सारी उम्रभर हाय–धाय और अंत में रोता रोता ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। बस यही माया का प्रकोप है। कहते हैं –

बिनु सतसंग बिबेकु न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।।

(मानस, बाल. दो. 2 चौ. 4)

संत के बिना सत्संग नहीं हो सकता। कहते हैं :

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग।।

(मानस, सुन्दर. दो. 4)

लवमात्र का सत्संग ही मन को बदल देता है। क्षण भर का सत्संग ही मानव को सुमार्ग पर चला देता है।

देखिए! गुरु नानक देव जी बोल रहे हैं :

पोस्त, डोडा, भांग, धतूरा उतर जाए परभात।
अरे नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात।।

ऐसा नाम होना चाहिए। हर समय नाम का चिंतन होता रहे। इस प्रकार का मन जिस भक्त का बन गया, वह परमहंस अवस्था में पहुँच जाता है, तुरीय अवस्था उसे उपलब्ध हो गई। उसका जीवन पूर्ण रूप में वैरागी बन गया। अब वह कठपुतली की तरह से जीवन यापन कर रहा है। वह भगवान् के कर कमलों में पहुँच गया है, जैसे जड़भरत हुए हैं। जैसे शराबी को पता ही नहीं होता कि मेरे शरीर का कपड़ा शरीर से हट कर नीचे गिर गया है या मैं गंदी नाली में पड़ा हुआ हूँ। ऐसी स्थिति परम भक्त शिरोमणि की हो जाती है। यह अवस्था सुपरनेचुरल (अलौकिक) है। भगवान् कृष्ण

ने अर्जुन से बोला, "हे अर्जुन! अभ्यास एवं वैराग्य ही मुझे प्राप्त करने का साधन है। अभ्यास मतलब हरिनाम की 64 माला नित्य करो।" भगवान् ने अर्जुन को बोला, "इस काम वैरी को मार।" काम का अर्थ है इच्छाओं का दमन कर। कामनाओं का नाश कर, तभी वैराग्य उदय हो जाएगा। इच्छाएं मन पर हावी रहेंगी तो वैराग्य मन में नहीं आ सकता। संग्रह–परिग्रह बिल्कुल कम रखो, नहीं तो उसमें मन फंसता रहेगा और अंत में भगवान् ने 18वें अध्याय के 66वें श्लोक में बोला है :

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

(श्रीगीता– 18.66)

"सभी धर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आ जा। मैं तुझे सब तरह से सुखमय कर दूँगा।" शरण कैसी होनी चाहिए? यह शिशु के रूप में समझा जा सकता है जैसे एक शिशु अपनी माँ की ही पूर्ण शरणागति में रहता है। यह अपने बाप को भी नहीं जानता। माँ इस शिशु का अष्टयाम ध्यान रखती है। 24 घंटे ध्यान रखती है। उसका पालन–पोषण बड़े प्रेम से करती है। भार नहीं समझती, प्यार से करती है, वात्सल्य से करती है। इसके लिए रात भर जागती है। बच्चा जब बीमार हो जाता है तो बाप अपने सुख से नींद सोता है लेकिन माँ रात भर गोदी में लेकर उसे सुलाती रहती है।

ध्यान से सुनिए! जब मानव मरता है तब ऐसी अशुभ घटनाएं होने लगती हैं। क्या होती हैं? स्वप्न में गधे पर या ऊंट पर चढ़कर चलता है, स्वप्न में तेल में स्नान करता है, नंगा होकर चलता है। और कान को बंद करने से अंदर की घू–घू की आवाज सुनाई नहीं देती। साँस रुक–रुक कर आने लगता है और नसों में खिंचाव होने लगता है। जब यह लक्षण होने लगते हैं तब आंखों से कम दिखाई देता है। कभी दिखता है कभी नहीं दिखता तो ऐसे में समझना होगा कि आत्मा 24 घंटे के अंदर शरीर से निकल जाएगी। उस समय घरवालों को रोना नहीं चाहिए। जब ऐसी हालत दिखने लगे तो जोर–जोर से हरिनाम कीर्तन करना चाहिए। श्रवण से भगवान् का कीर्तन सुनाई देगा और सुनते–सुनते उसकी मौत हो जाएगी तो भविष्य में जन्म मरण नहीं होगा और उसकी मुक्ति हो जाएगी। अगर घरवाले रोएंगे तो मरणशील का ध्यान घर वालों की तरफ जाएगा और अंत में इसी भाव में मौत आ जाएगी तो मरणशील मानव वहीं पर कीड़ा, मकोड़ा, छिपकली आदि बन कर जन्म लेगा। घरवालों ने इसका

कितना बड़ा नुकसान किया। भविष्य में अगले अरबों–खरबों युगों में भी मनुष्य जन्म नहीं मिलेगा। जब मरणशील को श्मशान में ले जाएं तो उसके बाद खूब रो लो। तब रोने में नुकसान नहीं होगा। रोना तो आएगा ही। लेकिन उसके जीते जी मन को अंदर से सख्त रखो। अंदर ही अंदर रो लो ताकि उसको सुनाई न दे।

मरते समय जो आवाज कान में जाएगी, उसी आवाज के भाव में वह मर जाएगा। मन का भाव ही अगला जन्म देता है। इसका ध्यान रखना परम आवश्यक है। चाहे मरने वाला कितना ही प्यारा और नजदीक का हो, रोने को बिल्कुल बंद रखो। इसमें मरने वाले का ही भला है। रोने से तो दुश्मनी जैसा काम हो जाएगा। इसलिए रोना कभी नहीं। जब वह मर जाये, उसे श्मशान में ले जाएं तो बारह दिन तक खूब रोओ। लेकिन उसके सामने कभी मत रोओ। उसके सामने रोने से तो उसके दुश्मन की तरह हो जाओगे, क्योंकि अंत में जो भाव होता है उसी में ही उसका जन्म होगा तो संसार में उसका जन्म हो जाएगा। अगर संकीर्तन करोगे तो उसको नाम सुनाई देगा। अंदर से ही नाम को सुनने से उसका कल्याण हो जाएगा।

एक महात्मा थे। उन्होंने खूब भजन किया। उनसे कुछ गलत काम भी हो गए। मृत्योपरांत उनसे पूछा गया कि पहले पाप का फल भोगेंगे या पुण्य का फल भोगेंगे। उसने कहा कि उसका पाप थोड़ा ही है तो पहले वह नरक जायेंगे। नरक में जाकर उसने देखा कि वहाँ पर सब कराह रहे हैं, दुखी हो रहे हैं, व्याकुल हो रहे हैं, उसे दया आ गई और जैसी उसकी कीर्तन करने की आदत थी उसने तो वही हरिनाम करना शुरू कर दिया। हरिनाम करते ही उन सब को हरिनाम कान से सुनाई दिया तो सबके लिए विमान आ गए। उसने एक नहीं सारे नरकों का उद्धार कर दिया। यमराज बोले, "अच्छा आया तू! तूने तो मेरा पूरा साम्राज्य ही खत्म कर दिया।" वह बोले, "यमराजजी! आप देखिए, कल से ही यह वापिस भर जाएगा। आप चिंता क्यों करते हो।" यमराज बोले, "तू तो सबको ही वैकुण्ठ ले गया।" उन्होंने कहा, "यमराजजी! क्या आप जानते नहीं, नाम में कितनी शक्ति है?" यमराज भी तो भगवान् का रूप ही है।

नाम की बहुत शक्ति है, इसलिए सबको नाम करना चाहिए। चाहे मन लगे या न लगे, तो भी भगवान् का नाम करना चाहिए। देखो! अभी तो तुम जवान हो, बुढ़ापे में तो नाम निकलेगा ही नहीं क्योंकि बुढ़ापे में कई रोग

आ जाएंगे और मन रोगों में चला जाएगा, दुख में चला जाएगा। इसलिए शुरू से ही हरिनाम करना चाहिए। जब ताकत है तब से ही हरिनाम करना चाहिए। जब हरिनाम करोगे और बुढ़ापा आएगा, तब हरिनाम का अभ्यास रहेगा। तब खाट में पड़े–पड़े भी हरिनाम करोगे, फिर तुमसे कोई पाप नहीं होगा। जब खटिया में पड़े पड़े ही हरिनाम करोगे तो तुम्हारा उद्धार हो जाएगा। इसलिये हरिनाम करते रहो।
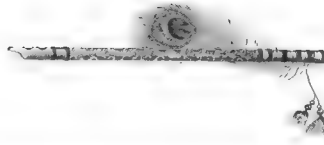
संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : मंदिर में भक्त 64 माला नहीं करते हैं तो क्या उनके हाथ का प्रसाद नहीं पाना चाहिए ?

उत्तर : जो 64 माला नहीं करते हैं। जो पुजारी 64 माला नहीं करते हैं, भगवान् उनके हाथ का भोग नहीं खाते हैं। जब भगवान् ने भोग ही नहीं लगाया तो प्रसाद कैसे हुआ ? तो इसीलिए मंदिर में रहने वाले भक्तों को प्रसाद नहीं मिलता। प्रसाद न मिलने से कलह होगा। कलह होगा, आपस में लड़ाई झगड़े होंगे, राग–द्वेष हो जाते हैं, क्योंकि प्रसाद तो हृदय को निर्मल बनाता है और वहाँ प्रसाद मिलता नहीं है। इसलिए वहाँ पर माया का साम्राज्य बन जाता है। जब पुजारी 64 माला करेगा तभी भगवान् अरोगेंगे। जो 64 माला नहीं करते, भगवान् उनके हाथ से नहीं खाते। वहाँ भगवान् भूखे रहते हैं। इसलिए जो 64 माला नहीं करता है उसके हाथ से कुछ नहीं खाना चाहिए। नहीं तो आपको हरिनाम में नुकसान होगा।

समस्त धर्मशास्त्रों का प्राण : केवल हरिनाम

17 मार्च 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तजनों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार करें और हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद करें।

भक्तजन सुनें। प्राणी मात्र कैसे अपना बनता है? कैसे अपने वश में आता है? एक तो भय से आता है। दूसरा प्यार से आता है। सर्कस में शेर मालिक के भय से उस के कहे अनुसार नाचता है और प्यार से भगवान् भक्त के आश्रित हो जाते हैं, जैसे भक्त बोलता है, भगवान् प्रेम के वश वैसा ही उसका आदेश पालन करते रहते हैं।

चारों युगों का अलग–अलग वातावरण रहता है। सतयुग में सच्चाई अधिक होती है। धीरे–धीरे त्रेता में, द्वापर में सच्चाई का वातावरण चौथाई कम होता जाता है एवं कलियुग में तो सच्चाई का नामोनिशान ही नहीं रहता है। यह युग कलह प्रधान है, इसमें बचने का केवल एक ही रास्ता है, भगवान् से नाता जोड़ लो। नाता कैसे जुड़ सकेगा? केवल मात्र हरिनाम जपने, कीर्तन करने से एवं साधु के संग से। कलि महाराज, हिरण्यकश्यप का प्रतीक है और भक्त, प्रहलाद का प्रतीक है। हरिनाम की शरण में चले जाओ तो कलि महाराज भक्त पर कोई प्रभाव नहीं कर पाएगा।

कलियुग केवल स्वार्थ का साम्राज्य फैला देगा। 'प्रेम' नाम का वातावरण बिल्कुल समाप्त हो जाएगा। नारियां स्वेच्छाचारिणी स्वभाव की बन जाएंगी और नर, नारियों के आश्रित हो जाऐंगे। यह शास्त्र कह रहा

है, मैं नहीं कह रहा हूँ। नारियों का जो गहना है शर्म, वह उच्छृंखलता में बदल जाएगा। शर्म मूल सहित गायब हो जाएगी।

जो नारी उल्टे आचरण की नहीं है यह समझना होगा कि उस पर प्रभु की असीम कृपा है। परिवार से कोई सलाह मशवरा न ले कर, ससुराल से सलाह लेने लगेंगे, जिसके पास पैसा रहेगा वह अदालतों से अपनी जीत करवा लेगा। पैसे वाला जितना भी दुष्ट चरित्रवान हो उसे लोग पंडित समझेंगे। संन्यासी, वानप्रस्थी घर–गृहस्थी जुटाते रहेंगे, जो पैसे देगा वही शिष्य बन सकेगा। गरीब कितना ही चरित्रवान हो, आस्था वाला हो, उसे कोई शिष्य नहीं बनाएगा, इस युग में पैसा ही भगवान् का स्थान बना लेगा। नीची जातियों के लोग भगवा कपड़ा पहनकर, ऊंचे सिंहासन पर बैठकर मनमाना आचरण करने लगेंगे।

जो मैं बोल रहा हूँ यह श्रीमद्भागवत और रामायण में लिखा हुआ है। धर्मशास्त्र का उसे नाममात्र का भी ज्ञान नहीं होगा। भोली–भाली जनता उसके चंगुल में फंसती जाएगी, स्वयं भी डूबेगा और आश्रितों को भी डुबो देगा। चारों ओर लूट–खसोट का साम्राज्य बनता रहेगा, सज्जन परेशान रहेगा और दुष्टों का बोलबाला रहेगा लेकिन अंत में भला सज्जन का ही होगा। भगवान् तो सबके ही हृदय में बैठे हैं तो मानव में दुष्टपना कैसे हो सकता है? यह प्रश्न सबके सामने उठना स्वाभाविक ही है। इसका उत्तर है कि मानव के संस्कार और स्वभाव पिछले जन्म के होते हैं। स्वभाव, भगवान् के भजन के बिना अच्छा नहीं होता। कलियुग में भगवान् ने अच्छा स्वभाव बनाने हेतु अपना नाम यानि हरिनाम संकीर्तन हेतु, नाम जपने हेतु धर्मशास्त्र में बोला है जिसके अपनाने से मानव के स्वभाव, पिछले बुरे संस्कार बदलकर अच्छे बन जाते हैं। बुरे स्वभाव वाला मानव कभी शांति उपलब्ध नहीं कर सकता, वह तो जन्म भर हाय–हाय में रोता हुआ ही जीवन काटता रहता है। अब जैसा स्वभाव होता है, तामसिक, राजसिक वैसे ही अंदर बैठा परमात्मा उसे प्रेरित कर तामसिक, राजसिक कर्म में संलग्न करता रहता है इसलिए पिछले कर्मानुसार ही स्वभाव व संस्कार उसे प्रेरित कर कर्म करवाते रहते हैं। इसमें इसका क्या वश है? जबरन उसे माँस–मदिरा में लगा देते हैं। इसमें परमात्मा का क्या दोष है? परमात्मा तो केवल देखता रहता है कि यह क्या कर रहा है? जैसा करता है उसका भोग स्वयं भोगता है। अच्छा करेगा तो सुख पायेगा और बुरा करेगा तो दुख भोगेगा। बस यही तो माया है।

संसार रूपी एक पेड़ है। इस पर दो पक्षी बैठे हैं। एक जीव और दूसरा परमात्मा, परमात्मा भोक्ता है और जीव भोग्य है, लेकिन जीव भोक्ता बन बैठा है अतः परमात्मा की वस्तु लेने से उसे कर्म का फल भोगना ही पड़ेगा। इसमें परमात्मा का क्या दोष है? जैसा करो वैसा भरो। तभी तो धर्मशास्त्र, इससे बचने हेतु बोल रहा है।

जो भी कर्म करो भगवान् का ही समझ कर करो। क्यों करूँ? यह प्रश्न उठता है। इसका उत्तर यह है कि सब कुछ भगवान् का ही तो है। जीव कहाँ से कुछ लाया है? जो कुछ उसे मिला है वह भगवान् ने ही तो दिया है। फिर भी मानव इस पर अपना कब्जा करता है, यह अन्याय ही तो है। अब अन्याय की सजा तो इसे भुगतनी ही पड़ेगी। मानव जन्म लेता है तो मुट्ठी बंद करके आता है। इसका मतलब यह है कि पिछले जन्मों में जो कर्म किया और भविष्य में जो करेगा, उसे अपने संग में मुट्ठी में बांधकर लाता है, जिसे वह इस जीवन में काम में लेगा। जब मृत्यु का समय आता है, तब हाथ पसारकर जाता है अर्थात् जो कर्म वह पीछे से लाया था, वह सब खत्म करके जा रहा है। अब उसने जो शुभ–अशुभ कर्म किए हैं उसे अगले जन्म में भोगेगा। संस्कार के पुंज हुआ करते हैं। यह संस्कार के पुंज, नित्य हरिनाम करने से जलकर भस्म हो जाते हैं। इसलिए हरिनाम करना चाहिए। धर्मशास्त्र यह बोल रहा है। कहते हैं :

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।।

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 1)

"मेरी माया सबको दुख सागर में डुबाती रहती है, अतः माया से मुख मोड़ कर मेरी तरफ मुख कर लो अर्थात् मुझे याद कर लो। इसका साधन है हरिनाम की नित्य 64 माला करो। एक लाख नाम करो। तुमने जो अनंत जन्मों के पापकर्म किए हैं उन्हें मैं जलाकर भस्म कर दूँगा।" शास्त्र बोल रहा है। "लेकिन तुम मेरी तरफ आते ही नहीं हो। तो दुख सागर में गोते खाते रहो। मैंने सुख पाने का मार्ग बता दिया है फिर भी तुम्हारी आंखें नहीं खुलतीं, इसमें मैं, भगवान् भी क्या कर सकता हूँ?" पिता पुत्र को समझा समझा कर थक गया परंतु पुत्र ने पिता का कहना नहीं माना तो पिता का क्या दोष है? अपना किया स्वयं भोगो। यही तो माया है। कलियुग में अनेक मर्यादाएं समाप्त हो चुकी हैं। संक्षेप में बताया जा रहा है कि प्राकृतिक मौसम आदि समय पर नहीं होते हैं, कहीं अधिक वर्षा और कहीं सूखा, कहीं अधिक सर्दी, कहीं तूफान, कहीं भूकंप। यह सब कलि

महाराज के प्रकोप के कारण हैं। ऐसा सुना गया है कि भविष्य में महायुद्ध होगा इससे प्रजा बहुत कम हो जाएगी। जो भक्त होगा वही बचेगा। भगवान् तो बचाएंगे ही जैसे प्रह्लाद को बचाया था। वह तो बेचारा पांच साल का ही था और उसका पिता हिरण्यकश्यप, जिसके पास दस हजार हाथियों का बल था, वह तो गला दबा कर ही मार देता लेकिन नहीं मार सका।

जाको राखे साइयां मार सके न कोय।
बाल न बांका कर सके, जो जग बैरी होय।।

(संत कबीर जी)

इस कलिकाल में बहुत सारे जानवरों की नस्लें खत्म होती जा रही हैं, फलों के पेड़ भी नष्ट होते जा रहे हैं, कटीले पेड़ सारे संसार में हो जाएंगे।

उदाहरण के तौर पर अगर हम से कोई दुखी होता है तो हम कैसे सुखी रह सकते हैं? अब ध्यान से सुनिए!

आत्मा, परमात्मा का पुत्र है। जीवमात्र की आत्मा, सभी की समान है। तभी तो बोला जाता है कि किसी की आत्मा मत सताओ। ऐसा तो नहीं बोला जाता कि किसी का शरीर मत सताओ। शरीर तो आत्मा का पहनने का कपड़ा है, जब फट जाएगा तो नया कपड़ा पहनना पड़ जाता है जैसे किसी के दांत में दर्द हो गया। अब ध्यान दीजिये! दांत तो शरीर से जुड़ा हुआ है। केवल दांत में ही दर्द होना चाहिए, पर नहीं, पूरे शरीर में दर्द महसूस करेगा। शरीर के दुख को महसूस करेगा। इसी प्रकार सबकी आत्मा एक है। हम किसी को दुख देंगे तो हम कैसे सुखी रह सकते हैं? हमको भी दुख महसूस होगा ही क्योंकि सब का खून लाल होता है और हमारा भी खून लाल है। इसका मतलब है कि वह हमारा भाई है। तो क्या हम भाई को दुख देंगे? तो परमात्मा भी कैसे सुखी रह सकता है? बताओ! परमात्मा को भी दुख महसूस होगा क्योंकि परमात्मा के बेटे को सताया है। बस इसी कारण से जीव सदा दुखी रहता है क्योंकि जो बीज बोओगे, वही तो हाथ में आएगा। दुख का बीज बोया है, तो दुख ही हस्तगत होगा। सुख कैसे आ सकता है? जब गहरे दिमाग से सोचेंगे, तभी यह चर्चा समझ में आएगी वरना कुछ भी हस्तगत नहीं होगा। जैसे दांत शरीर से जुड़ा हुआ है। इसी प्रकार आत्मा, परमात्मा से जुड़ी हुई है तो आत्मा को

दुख होगा ही। आत्मा, परमात्मा का पुत्र होने से परमात्मा कैसे सुखी रहेगा? कोई किसी के बेटे को सताए, तो बाप कैसे सुखी रह सकता है? निष्कर्ष यह निकलता है कि जीव के सुखी रहने का प्रश्न ही नहीं उठता अतः सब को सुखी करने के लिए तथा अपने को सुखी करने के लिए तन, मन, वचन से सेवा की जाए, तब जीव को दुख आने का सवाल ही नहीं उठता।

संत भगवान् का प्यारा क्यों है? संत के दर्शन से ही जीव का कल्याण हो जाता है। संत भगवान् के बेटों का सदा भला चाहता रहता है। सभी चर अचर प्राणी, भगवान् की संतानें हैं। किसी भी बाप की संतानों को कोई प्यार करेगा तो बाप स्वतः ही उससे प्यार करेगा। खुश हो जाएगा। संत के हृदय में भगवद् नाम सदा ही रमा रहता है। कहावत है–

सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें।।

(मानस, बाल. दो. 20 चौ. 3)

देखो! भगवान् को किसी ने देखा नहीं है लेकिन उनका नाम लेने से वह हृदय में प्रकट हो जाएंगे। प्यार से भगवान् प्रकट हो जाते हैं। जब हृदय में प्रकट हो जाएंगे तब स्वतः ही हृदय के अवगुण चले जाएंगे, सब गुण हृदय में प्रकट हो जाएंगे क्योंकि भगवान् के नजदीक में अवगुण रहने का प्रश्न ही नहीं होता।

मन से हम भगवान् का उच्चारण करते हैं। भगवान् कण–कण में व्याप्त हैं तुरंत आ जाएंगे। थोड़ी देर भगवान् हमारे पास रहेंगे। जापक का मन फिर बाजार में या अन्य कहीं चला जायेगा तो भगवान् जापक को कहेगा कि, "तुमने मुझको बुलाया और अब उठ कर कहाँ चला गया?" ऐसे स्मरण से भगवान् से प्यार नहीं होगा। भगवान् का नाम लेते हुए, भगवान् को पास में रखना पड़ेगा। आपने किसी दोस्त को बुलाया और बातचीत कर रहे हो और फिर बीच में ही आप उठ कर चल दिए और फिर आए ही नहीं, तो फिर दोस्त तो बोलेगा कि आपने उसे क्यों बुलाया था। इसी तरह से भगवान् बोलते हैं। सुकृति तो इकट्ठी हो जाएगी, श्रवण बेकार नहीं जाएगा। कल्याण अवश्य होगा क्योंकि भगवद्नाम का स्वभाव ही ऐसा है, कल्याण करने का। जैसे जाने–अनजाने में अग्नि से हाथ छू जाए तो अग्नि का स्वभाव है, जलाने का, अतः जला देगी। इसी प्रकार अनजाने में हम जहर पी जाएं, उसका स्वभाव है मारने का, अतः मार देगा। इसी

प्रकार अनजाने में, हम अमृत पी जाएं तो उसका स्वभाव है अमर बनाने का, तो वह अमर बना देगा क्योंकि अमृत का स्वभाव ऐसा ही है। इसी प्रकार हरिनाम का स्वभाव मंगल विधान कर देगा क्योंकि हरिनाम का स्वभाव ही मंगल करने का है।

जीव दुखी क्यों है? दुखी इस कारण से है क्योंकि यह गलत रास्ते पर जा रहा है। इसको पता भी नहीं है, कि सुख का रास्ता कैसा है? कहाँ पर है? इसी कारण सत्संग की बहुत जरूरत रहती है जो धर्मशास्त्रों में तथा साधु के पास उपलब्ध हो सकेगा। जीव को सत्संग और साधु के पास संग तभी उपलब्ध होगा, जब जीव की सुकृति होगी। सुकृति कैसे उपलब्ध होगी? सुकृति तब उपलब्ध होगी जब धर्मशास्त्र एवं संत समागम होगा, वरना मानव जीवन व्यर्थ के कामों में ही चला जाएगा। फिर मनुष्य जन्म नहीं मिलेगा। अनंतकोटि चतुर्युगी, अरबों–खरबों चतुर्युगी के बाद मिल जाए, तो गनीमत है नहीं तो नहीं मिलेगा।

सत्संग की यह बहुत अच्छी चर्चा है। सुन लीजिए। एक बार वशिष्ठजी में और विश्वामित्रजी में आपस में बहस हो गई। क्या बहस हुई? वशिष्ठजी कहते हैं कि सत्संग बड़ा है और विश्वामित्र कहते हैं कि तपस्या बड़ी है। अब इसका निर्णय कौन कर सकता है? विश्वामित्र बोले कि इसका निर्णय शिवजी कर सकते हैं, उनके पास चलते हैं। अब दोनों भक्त शिवजी के पास पहुँचे। शिवजी ने पूछा, "आप दोनों का यहाँ कैसे आना हुआ?" दोनों ने कहा, "हम आपसे एक निर्णय करवाने हेतु, आपके चरणों में आए हैं।" शिवजी बोले, "आदेश करो, क्या निर्णय करवाना चाहते हैं?" वे बोले, "हम आदेश नहीं करते हैं, हम प्रार्थना करते हैं।" शिवजी ने कहा, "बोलो! क्या बात है?" तो वशिष्ठजी बोले, "मैं तो सत्संग को बड़ा बताता हूँ और यह तपस्या को बड़ा बताते हैं। आप निर्णय करके बताओ कि तपस्या बड़ी है या सत्संग बड़ा है। "शिवजी तो मुसीबत में फंस गए। सोचने लगे कि किसको बड़ा बताएं, जिसको बड़ा बताएंगे, दूसरा नाराज हो जाएगा। शिवजी ने यह कह कर टाल दिया कि, "मैं इसका निर्णय नहीं कर सकता।" दोनों ने पूछा, "तो फिर इसका निर्णय कौन कर सकता है?" तब शिवजी ने कहा, "मेरे पिता ब्रह्माजी के पास चले जाओ, वह निर्णय कर देंगे।" अब दोनों ने ब्रह्माजी के पास जाकर निवेदन किया। वशिष्ठजी ने कहा, "मैं तो सत्संग को बड़ा बोलता हूँ और विश्वामित्र तपस्या को बड़ा कहते हैं तो आप हमारा निर्णय कर दो। इन दोनों में से कौन बड़ा है

तपस्या या सत्संग?" अब तो ब्रह्माजी भी फंस गए, सोचने लगे कि किस को बड़ा कहें? यदि एक को बड़ा बताते हैं तो दूसरा नाराज हो जाएगा। दोनों ही महान भक्त हैं। ब्रह्माजी बोले, "इसका निर्णय तो मैं भी नहीं कर सकता।" दोनों ने पूछा, "फिर हमारा निर्णय कौन कर सकता है?" ब्रह्माजी ने कहा, "मेरे पिता विष्णु हैं। आप उनके पास चले जाओ। वह निर्णय कर देंगे।" अब दोनों विष्णुजी के पास पहुँचे और निवेदन किया कि, "हमारा निर्णय करें कि सत्संग बड़ा है या तपस्या।" अब तो विष्णुजी भी दुविधा में फंस गए सोचने लगे कि अगर एक को बड़ा बताएंगे तो दूसरा नाराज हो जाएगा।

अब विष्णु भगवान् बोले, "हे महात्माओ! यह तो बड़ी कठिन समस्या है। इसका निर्णय तो मैं भी नहीं दे सकता।" यह सुनकर वे दोनों बोले, "जब आप तीनों ही इसका निर्णय नहीं दे सकते तो फिर इस संसार में इसका निर्णय कोई नहीं दे पाएगा।" विष्णुजी ने कहा, "मुझे एक विचार आया है कि इसका निर्णय भगवान् शेषनागजी दे सकेंगे क्योंकि शेषनाग ने, इस पृथ्वी को धारण कर रखा है। उनके पास चले जाओ। वह इसका निर्णय अवश्य देंगे।" अब दोनों ने बोला, "जब आप इतने बड़े होकर, इसका निर्णय नहीं दे सके, तो वह कैसे देंगे? उनके सिर पर तो पूरी पृथ्वी का भार रखा है। उस भार को उठाए हुए, वह कैसे हमारा निर्णय कर सकेंगे?" विष्णु ने कहा, "शेषनाग ने कभी भी, किसी को, उसके प्रश्न का उत्तर दिए बिना वापिस, नहीं लौटाया है। उन्हीं के पास जाकर, अपनी समस्या बताओ, वह जरूर इस समस्या का समाधान कर देंगे।"

अब दोनों महात्मा पाताल में शेषनाग के पास गए। शेषनाग ने देखा कि आज भगवान् के भक्त, मुझे दर्शन देने आ रहे हैं। शेषनाग ने अपने हजार फनों से झुककर उनका आदर सत्कार किया और बोले, "आप भले आए। आपके दर्शन से तो मैं निहाल हो गया। मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?" उन्होंने शेषनाग से प्रार्थना की कि, "हमारी एक समस्या है। अपनी समस्या लेकर, हम शिवजी, ब्रह्माजी और विष्णुजी के पास भी गए थे, परंतु वह हमारी समस्या का हल नहीं बता पाए और आपके पास भेजा है। आप ही हमारी समस्या का हल बता दीजिए।" शेषनागजी ने कहा, "क्या समस्या है? बताइए? मुझे क्या करना है? दोनों ने अपनी समस्या बताई कि, "वशिष्ठजी कह रहे हैं कि सत्संग बड़ा है और विश्वामित्रजी कहते हैं कि तपस्या बड़ी है, तो दोनों में से कौन बड़ा है? आप इसका

निर्णय कर दो।" अब तो शेषनाग भी फंस गए, सोचने लगे किसको बड़ा बताऐं? दोनों ही उच्च कोटि के भक्तराज हैं, जिसको बतायेंगे दूसरा नाराज हो जाएगा। फिर बोले, "आप थोड़ी देर के लिए विश्राम कीजिए, मेरे ऊपर भार है। मैं थोड़ी देर विश्राम कर, आपको बताता हूँ।"

शेषनाग ने सोचा कि वह तो बहुत बड़ी समस्या में फंस गये। इसका उपाय त्रिलोकीनाथ से ही पूछा जाए। त्रिलोकीनाथ को स्मरण किया तो हृदय में आकाशवाणी हुई कि, "इन्हें बोलो कि मेरे सिर पर पृथ्वी का भार पड़ा हुआ है। आप दोनों में से कोई इस पृथ्वी के भार को संभाल लो तब मैं आराम से इसका समाधान कर सकता हूँ।" दोनों ने पूछा, "आप ही बताओ कि हम दोनों में से कौन पृथ्वी का भार ले।" अब शेषनागजी बोले, "हे विश्वामित्रजी! आप ही इस पृथ्वी का भार संभालो।" विश्वामित्रजी बोले, "मैं कैसे संभालूँ?" शेषनागजी ने कहा, "बिना भजन की ताकत के पृथ्वी ऊपर रुक नहीं सकती इसलिए आप अपनी तपस्या, पृथ्वी को अर्पण कर दो।" विश्वामित्र ने पृथ्वी को अपने दस हजार वर्ष की तपस्या देकर कहा, "हे पृथ्वी मैया! मैं अपनी दस हजार वर्षों की तपस्या, आपको अर्पण कर रहा हूँ। आप मेरे हाथों में रुक जाना।" शेषनागजी बोले, "मैं नीचे होता हूँ, अब आप अपने हाथों से पृथ्वी को रोक लीजिए वरना पृथ्वी रसातल में चली जाएगी।" विश्वामित्र जी ने दस हजार वर्षों की तपस्या देकर पृथ्वी को अपने हाथों में लिया लेकिन पृथ्वी नीचे खिसकने लगी। विश्वामित्रजी घबरा गए कि वह दब जायेंगे। शेषनागजी ने कहा, "आप अपनी पूरी तपस्या की शक्ति पृथ्वी को दे दो।" तब विश्वामित्रजी बोले, "अच्छा! मैं अपनी साठ हजार वर्ष की तपस्या का फल देता हूँ।" और फिर जब हाथों पर पृथ्वी को लिया, तब पृथ्वी फिर से खिसकने लगी। विश्वामित्रजी घबरा गए कि वह पृथ्वी के नीचे दब जायेंगे, वह तो चकनाचूर हो जायेंगे, बोले, "आप ही इसे संभालो।" शेषनागजी ने वशिष्ठजी से कहा, "आप ही अपना कुछ सत्संग का प्रभाव, पृथ्वी को दे कर देखो कि आपके सत्संग की शक्ति से पृथ्वी रुकती है या नहीं।" वशिष्ठजी ने कहा, "जब साठ हजार साल की तपस्या से पृथ्वी नहीं रुकी, तो फिर मेरे सत्संग से कैसे रुकेगी? ठीक है। फिर भी मैं आपके आदेश का पालन करता हूँ।"

वशिष्ठजी ने पृथ्वी से कहा, "हे पृथ्वी माँ! यदि क्षण भर की भी सत्संग की महिमा हो तो आप मेरे हाथ पर रुक जाना।" वशिष्ठजी के ऐसे

कहने पर पृथ्वी उनके हाथ पर आ कर रुक गई। एक इंच भी नीचे नहीं आयी। इस तरह से शेषनागजी, उन दोनों की नाराजगी से बच गए। त्रिलोकीनाथ ने हृदय–आकाश में वाणी सुनाकर, शेषनागजी को बचा लिया। विश्वामित्रजी नीचे सिर करके बैठ गए। शेषनागजी बोले, "विश्वामित्र जी! आप सत्संग के प्रभाव से ही तो तपस्या के रास्ते पर गए थे। सत्संग किया तभी आपको तप मिला। बिना सत्संग के कोई शुभ मार्ग पर जा ही नहीं सकता।" विश्वामित्रजी ने कहा, "यह बात तो बिल्कुल ठीक है। मैं सत्संग से ही बड़ा हुआ हूँ। सत्संग उपलब्ध हुए बिना तपस्या हो ही नहीं सकती।"

श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण बोल रहे हैं, "हे उद्धव! मैं केवल सत्संग से ही मिलता हूँ।" वशिष्ठजी, विश्वामित्रजी के चरणों में पड़ कर बोले, "मेरी वजह से ही आपको दुख हुआ है।" संत तो ऐसे ही होते हैं। उन्हें घमंड नहीं होता। वशिष्ठजी चरणों में पड़कर क्षमा माँगने लगे। तब विश्वामित्रजी ने कहा, "आपका कोई दोष नहीं, मुझे अहंकार हो गया था कि मैं सबसे बड़ा तपस्वी हूँ। भगवान् ने, मेरा अहंकार का छेदन करके मुझे ज्ञान दिया है।" दोनों रसातल से बाहर आकर पृथ्वी पर प्रेम से आलिंगनबद्ध हो गए और सबको बता दिया कि लवमात्र का सत्संग ही, मानव का मन बदल सकता है। श्रीरामचरितमानस भी यही बता रही है कि सत्संग से भगवान् मिलते हैं। कह रहे हैं :

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग।।

(मानस, सुन्दर. दो. 4)

लवमात्र का सत्संग भी बहुत प्रभावशाली है तो सत्संग की बहुत महिमा है।

जब बुरा समय आता है, तब नीचे लिखे लक्षण प्रकट होने लगते हैं। परिवार के सदस्यों में लोभ, क्रोध, असत्य आकर घुस जाता है। सारा व्यवहार ही कपटपूर्ण होने लगता है। यहाँ तक कि भाई से सलाह–मशविरा नहीं करते और ससुराल वालों से सलाह–मशविरा करने लगते हैं। माता–पिता, सम्बन्धी, पति–पत्नी में झगड़ा–टंटा शुरू हो जाता है। जब समय बुरा हो, तब बाएं अंग फड़कने लगते हैं, हृदय धड़कने लगता है, सियार दिन में बोलने लगते हैं, कुत्ता घर की तरफ मुंह करके चिल्लाता

रहता है, गाय आदि पशु बाएं ओर से चलने लगते हैं। जब ऐसे अशुभ लक्षण होते हैं तब गधे दाएँ ओर करके चलते हैं, कौवा रात भर कांव–कांव करता रहता है, मन में शांति नहीं रहती, मन उखड़ा–उखड़ा रहता है तो समझना होगा कि भविष्य में कोई दुर्घटना होने वाली है। इसका निवारण करने हेतु भगवान् के हरिनाम का कीर्तन करने से एवं जप करने से दुर्घटना टल जाती है व मामूली होकर चली जाती है।

हरिनाम चिंतामणि, हरिभक्तिविलास जो गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय का प्रमुख ग्रंथ है, रामायण तथा नारदीय पुराण इन सब में लिखा है, "भगवद् नाम कैसे भी लो तो उस जीव का निश्चित रूप से उद्धार होकर वह जन्म मरण से छुट्टी पा जाएगा। भगवान् ने इतना सुगम और सरल रास्ता जीवों को दिया है। इसका कारण है कि अनंत अरबों–खरबों युगों से जीव चर–अचर प्राणियों में अपना जीवन काट कर मनुष्य जन्म में आया है अतः इसका मन चंचलता में रहना स्वाभाविक ही है। अतः मेरे नाम में इसका मन स्थिर नहीं रह सकता अतः किसी भी हालत में, बेमन से भी मेरा नाम लेगा तो उसका उद्धार निश्चित है। नाम लेने में कोई नियम भी नहीं है।" देखिये! मुसलमान एक वाक्य का उच्चारण किया करते हैं हरामी! हरामखोर!. ... तूने ऐसा काम क्यों किया? तो इस में "राम" शब्द उच्चारण हो गया। तो उस मुसलमान का भी उद्धार हो गया। अब प्रश्न यह उठता है कि मानव तो बहुत नाम जपता है तो उसका उद्धार होना चाहिए। भगवान् कहते हैं कि इसका उद्धार होना निश्चित है। फिर अधिक नाम क्यों लिया जाए जब एक ही नाम से उद्धार हो जाएगा? इसका उत्तर यह है कि मुसलमान ने जो नाम हरामी बोला, वह गहरे अंतःकरण से बोला था। इसलिए एक नाम ने ही उसका उद्धार कर दिया।

मानव यदि अंतःकरण से नाम ले तो उसको भी अष्ट विकार प्रगट हो जाएगा। अष्ट विकार क्या है? अष्ट विकार है, रोना, शरीर पसीने से लथपथ होना, जुबान तुतलाना, शरीर थर्राना, विकलता आ जाना, बेहोश हो जाना इत्यादि। इस तरह के लक्षण शुद्ध भक्त को ही प्रकट होते हैं। जैसे बिना समझे कोई जहर की एक बूंद पी ले तो एक बूंद ही मार देगी क्योंकि जहर में मारने की शक्ति है। इसी प्रकार कोई एक बूंद अमृत की पी ले तो वह एक बूंद भी अमर बना देगी। इसी प्रकार कोई बिना समझे अनजाने में अग्नि में हाथ लगाए तो अग्नि जला देगी। इनको कहना नहीं पड़ता कि तुम अपना प्रभाव दिखाओ। अपने–अपने गुण अनुसार अपना

प्रभाव स्वतः ही दिख जाएगा। इसी प्रकार भगवद् नाम का प्रभाव है। भगवद् नाम कैसे भी मुख से उच्चारण हो जाए तो नाम अपना प्रभाव दिखाकर ही रहेगा। जैसे समाज में एक चलन है कि एक दूसरे से मिलने पर राम–राम जी ! सियाराम जी ! जय गोपीनाथ जी ! क्यों बोलते हैं कि किसी तरह से तो मानव के मुख से भगवद् नाम निकल सके। लेकिन किसी मानव को इतना ज्ञान नहीं है कि ऐसा भगवद् नाम का उच्चारण क्यों करते हैं वह इसलिए करते हैं कि जिंदगी में कभी तो भगवद् नाम का उच्चारण हो जाए। यदि यह बात समझ में आ जाए तो मानव तुलसी माला पर हरिनाम जपना शुरु कर देगा। ऐसा नहीं होता इसका कारण है कि इनको नाम का सत्संग कहीं पर नहीं मिलता है। अतः नाम के प्रति अनभिज्ञ हैं।

अपना नाम तो भगवान् को भी प्यारा लगता है जो भी कृष्ण बोलता है तो राधा उसके पीछे हो जाती हैं। अतः वृन्दावन में रिक्शेवाला हटो–हटो न बोलकर राधे–राधे बोलता है तो सामने वाला हटकर चलने लगता है, तो उसके पीछे कृष्ण हो जाते हैं। मैं धर्म शास्त्रों की ही बात बोलता हूँ। मैं अपने मन से कभी नहीं बोलता यदि बोलूँ तो अपराध हो जाए या विरोधाभास हो जाए। मेरा बोलना इतना ही तथ्य रखता है कि सभी मानव भगवद् हरिनाम 24 घंटे में आधा घंटा ही कर लें। इतना समय तो सभी को मिलता है। गपशप में घंटों बिता देते हैं। गपशप से क्या मिलेगा? समय की बर्बादी होगी, जीवन बेकार चला जाएगा। बाद में मानव जन्म नहीं होगा। अरबों खरबों युगों तक चराचर प्राणियों की योनियों में चक्कर काटते रहो और दुखी जीवन बिताते रहो। अतः जब तक शरीर में शक्ति, बल है कुछ समय हरिनाम करना सुखकारक होगा। बुढ़ापे में कभी भी हरिनाम नहीं होता। कहीं जाने की जरूरत नहीं। घर में ही सब कुछ हो सकता है। सर्दी लगे तो ओढ़ कर बैठ जाओ, गर्मी लगे तो पंखा कर लो। पर हरिनाम करो।

भक्तिजननी एकादशी

24 मार्च 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण युगल में अधमाधम इस दासानुदास
अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो एवं
हरिनाम में रुचि होने की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

मेरे गुरुदेव भगवान् को प्राप्त करने के रास्ते बता रहे हैं। चार साधन ऐसे हैं जिनसे भगवान् बहुत प्रसन्न हो जाते हैं। अब मैं बताता हूँ कि चार साधन क्या हैं?

एक तो हरिनाम, दूसरा एकादशी, तीसरा साधुसेवा और चौथा है, सांड की सेवा। इन सब साधनों से भगवान् बहुत प्रसन्न हो जाते हैं। यह चार साधन सबको जरूर करने चाहिएँ। इससे भगवान् बहुत खुश होते हैं। आपके ऊपर कोई दुख संकट नहीं आने देंगे। जब भगवान् खुश हो जाएंगे तो फिर क्या बात है।

जा पर कृपा राम की होई। ता पर कृपा करहिं सब कोई।।

जिस पर भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं। उसे बिच्छू भी नहीं खाता, सांप भी नहीं खाता क्योंकि सब में भगवान् परमात्मा रूप में बैठे हुए हैं।

एकादशी भक्ति की जननी है। एकादशी भक्ति की माँ है। एकादशी न करने से भक्ति नष्ट हो जाती है। भगवद् नाम और एकादशी ही भक्ति को जागृत करते हैं अतः जो इन दोनों का पालन करता है वह शत–प्रतिशत वैकुण्ठ में पदार्पण करता है।

एकादशी पालन करने का नियम है कि दशमी को एक समय भोजन करें। दूसरे दिन एकादशी को निर्जल रहें। यदि सामर्थ्य न हो तो फलाहार करें। द्वादशी पर सूर्य उदय के बाद ठीक समय पर पारण करें ताकि

एकादशी खंडित न हो। ऐसा करने से शुद्ध उपवास होता है। निभे, तो ज्यादातर उपवास करना ही उत्तम होगा लेकिन एकादशी करना परम आवश्यक है। तभी मानव का जन्म सार्थक होगा। शास्त्र कहता है 8 साल की उम्र से लेकर 80 साल की उम्र तक एकादशी करनी चाहिए। 80 साल की उम्र के बाद बहुत कमजोरी आ जाती है पर अगर किसी से हो सके तो करना चाहिए, अच्छा होता है। इसका उदाहरण है कि एक बार एक गाय बहुत तड़प रही थी तो किसी भक्त ने गाय के कान में कहा, "मैं अपनी एकादशी का फल आपको देता हूँ।" तो वह गाय पांच मिनट में ही मर कर दुख से छूट गई। दूसरा उदाहरण है, अभी कुछ दिन पहले की बात है, एक कुत्ते के शरीर में खुजली और घाव हो गए थे। वह तड़प रहा था परंतु उसके प्राण नहीं निकल रहे थे। एक भक्त ने पानी में हरिनाम जप कर, उस पानी का छींटा, उस पर मारा। छींटा मारते ही दो मिनट में उसके प्राण छूट गए। इसका बहुत बड़ा प्रभाव होता है।

एकादशी को यह खाद्य पदार्थ प्रयोग कर सकते हैं। सेंधा नमक, काली मिर्ची, कोई ताजा फल, अदरक, हल्दी काम में लेना सर्वोत्तम होगा। एकादशी को संभव हो तो कोई दवा न लें एवं पेस्ट या चूर्ण से दंत–मंजन न करें। द्वादशी को कभी भी तुलसी चयन न करें। उस दिन तुलसी माला भगवान् को पहनाने से, तुलसी और भगवान् दोनों ही असीम कृपा करते हैं।

मृत्युलोक से वैकुण्ठ और गोलोक जाने की एक ऐसी गाड़ी है जिसके दो पहिए हैं। एक है भगवद्नाम, दूसरा है एकादशी उपवास। इस गाड़ी में बैठकर साधु लोग, मृत्युलोक से रवाना होते हैं। इस गाड़ी को सतगुरु द्रुतगति से ले जाते हैं। इसको खींच कर ले जाने वाले आठ घोड़े होते हैं। वे हैं, अष्ट विकार जैसे अश्रु, पुलक आदि यह आठ घोड़े ले जाते हैं। जो भी इस गाड़ी में बैठ गया वह चाहे कितना ही बड़ा पापी हो, सीधा सुख सागर के किनारे पहुँच जाएगा और दुख से उसका पिंडा छूट जाएगा। सीधा वैकुण्ठ पहुँच जाएगा।

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।।

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 1)

यह प्रत्यक्ष उदाहरण है। सन्मुख होय...जब इस गाड़ी में बैठ जाओगे तो सीधे वैकुण्ठ चले जाओगे। जन्मकोटि...अनंतकोटि जन्मों के पाप

जलकर उसी समय भस्म हो जाते हैं। यह तो गाड़ी में बैठना हुआ। वैकुण्ठ और गोलोक धाम जाने का रास्ता कौन सा है? जिस पर यह गाड़ी चलती है वह कौन सा रास्ता है? तुलसी का मार्ग। यदि तुलसी मार्ग नहीं है तो गाड़ी नहीं जा सकती। रास्ता न हो तो कोई गाड़ी चल नहीं सकती। इस रास्ते को किसने बनाया? स्वयं भगवान् ने बनाया।

संक्षेप में एक कथा सुनिए। एक बार नारदजी शादी करना चाहते थे। भगवान् अपने भक्तों को माया में फंसाना नहीं चाहते। नारद जी ने भगवान् से कहा, "आप मुझे अपना स्वरूप दे दीजिए। मैं एक स्वयंवर में जा रहा हूँ क्योंकि मैं शादी करना चाहता हूँ।" नारदजी ने कहा, "हे हरि! मुझे सुंदर हरि स्वरूप दो। हरि के रूप से वह कन्या/लड़की मुझे वरण कर लेगी।" भगवान् ने सोचा कि नारद माया में फंस रहा है इसलिए ऐसा रूप देना होगा जिससे वह लड़की इसकी तरफ देखे भी नहीं। भगवान् बोले, "हाँ ! मैं तुम्हें हरि का ही रूप दूँगा।" नारद भगवान् की बात को नहीं समझ पाया और खुश हो कर स्वयंवर में जाकर बैठ गया और सोचने लगा कि उसके जैसा सुंदर स्वरूप तो किसी का होगा ही नहीं। इसलिए लड़की झट से उसे पसंद करके उसके गले में वरमाला डाल देगी क्योंकि भगवान् ने उसे अपना रूप ही तो दिया है। नारद को मालूम नहीं था कि भगवान् ने उसे बंदर का रूप दे दिया है। 'हरि' बंदर को भी कहते हैं। नारद के बगल में स्वयंवर में बैठे हुए दो राक्षस मन ही मन मुस्कुरा रहे थे कि कितना खुश हो रहा है। उचक उचक कर अपना चेहरा आगे की ओर लड़की को दिखा रहा है। लड़की ने नारद की तरफ देखा तक नहीं और भगवान् के गले में माला पहना दी क्योंकि इस स्वयंवर में भगवान् भी उपस्थित थे। वह लड़की वास्तव में लक्ष्मी थी। बगल में बैठे राक्षस राजाओं ने हंस कर नारद से बोला, "जरा जाकर अपना मुख तो देखो। आपका कैसा सुंदर मुखड़ा है। ऐसा मुखड़ा संसार में किसी का भी नहीं है।" उनके पास एक छोटा सा दर्पण था जो उन्होंने नारद को दे दिया। सब ठहाका मार कर हंसने लगे। नारद ने अपना चेहरा देखा तो उसको क्रोध आ गया। नारद ने क्रोध में राक्षसों से कहा, "जाओ तुम ब्रह्मराक्षस बन जाओ।" भगवान् ने राक्षसों से भी लीला की है। भगवान् अपने भक्त से ही श्राप दिलवाकर लीला रचते हैं। उन्हें भी नारद से श्राप दिलवा दिया। स्वयंवर का विसर्जन हो गया। सब राजा स्वयंवर से बाहर आ गए। अब तो नारदजी की आंखें क्रोध से लाल हो गईं और वह हुंकार भरने लगे, "अब मैं भगवान् को नहीं छोड़ूँगा। उन्होंने मुझको धोखा दिया है।"

"अरे! मुझे बंदर का रूप दे दिया।" नारद ने जो माँगा था, भगवान् ने तो वही रूप दिया था। नारद ने भगवान् से कहा था कि, "आप मुझे भी हरि का रूप दे दो।" अब चलते–चलते नारदजी ने भगवान् को याद किया तो भगवान् प्रकट हो गए। भक्त के बुलाने पर भगवान् आ जाते हैं। भगवान् ने नारद को प्रणाम किया और बोले, "नारद ! इतने उग्र रूप में कहाँ जा रहे हो?" नारद को और तेज गुस्सा आ गया और चिढ़ कर बोला, "आपके ऊपर तो कोई समर्थ नहीं है। आप मनमानी करते रहते हो। इसका मजा मैं आपको चखाता हूँ।" क्योंकि क्रोध से बुद्धि खराब हो जाती है, सोच विचार खत्म हो जाते हैं। नारदजी ने भगवान् से कहा, "आप ने मुझे बंदर का रूप दिया है। अब आप भी मेरी तरह स्त्री वियोग में रोते रहोगे और बंदर ही आपकी सहायता करेंगे। भविष्य में आप किसी संत को धोखा मत देना वरना दुख पाओगे।" इतने में भगवान् अप्रकट हो गए। अब नारद की आंख खुली और पछताने लगा कि उससे बहुत बड़ी गलती हो गई। भगवान् को श्राप दे दिया, यह तो अच्छा नहीं किया। अब वह क्या करे? इस अपराध से कैसे बचे? अतः विचार आया कि भोले भाले महादेवजी से ही इसका उपाय पूछना चाहिए। महादेवजी के पास जाकर पूछा, तो महादेवजी बोले, "जो श्राप तुमने दिया वह तो मिट नहीं सकता। इस अपराध से बचने का एक ही उपाय है कि तुम अष्टप्रहर हरिनाम करो।" नारद ने पूछा, "कितना करूँ?" महादेव बोले, "कम से कम अष्टप्रहर में जितना होता है उतना करो। हरिनाम तो जरूरी है, तभी तुम इस अपराध से उऋण हो सकोगे वरना इसका भोग तुम्हे भोगना ही पड़ेगा।"

भगवान् ने मानव को हर प्रकार से स्वस्थ रखने के लिए धर्म शास्त्रों में भी बताया है जिससे मानव स्वस्थ रह सके और वापिस भगवान् तक जाने के लिए प्रयास कर सके। इसके लिए भगवान् धन्वन्तरि ने अवतार लिया। मानव रात–दिन आहार लिया करता है। भक्ष्य–अभक्ष्य खाता रहता है जिससे इसके पेट को कभी आराम नहीं मिलता। पेट शरीर की जड़ है अगर जड़ स्वस्थ रहेगी तभी शरीर स्वस्थ रहेगा। कभी सिर दर्द, कभी बुखार, कभी दस्त, कभी नींद आना बंद हो जाता है, कभी भूख नहीं लगती है आदि आदि बीमारियां आकर मानव के तन को आक्रांत करती रहती हैं। पेट को स्वस्थ रखने हेतु सप्ताह में एक बार इसे आराम की जरूरत होती है। इसके लिए भगवान् ने उपवास का प्रादुर्भाव किया है। जैसे राजकीय कर्मचारियों को त्योहारों की तथा इतवार (रविवार) की छुट्टी दी जाती है। मानव के शरीर को आराम और विश्राम मिलता है। शरीर ताजा होने से

कर्म भी सुचारु रूप से और अधिक होता है, मन से होता है। मानव को खाने पीने से अपच हो जाता है। पेट को आराम नहीं मिलता है जिससे शरीर में विष की मात्रा बढ़ जाती है और विष से शरीर में कई तरह की बीमारियों का प्राकट्य हो जाता है। आजकल तो वैसे भी खाद्य पदार्थ जहरीले होते हैं अतः अधिक जहर शरीर में प्रवाहित होता रहता है। ऐसे ऐसे रोग प्रगट होते हैं जिनका पिछले समय में नाम भी नहीं सुना था। ऐसे रोग उभर कर आ गए हैं जिनसे मानव आक्रांत रहता है। अगर शरीर स्वस्थ नहीं है, तो भगवान् का भजन होने का प्रश्न ही नहीं उठता। गरीबी भी अधिक है। डॉक्टरों की फीस भी आसमान छू रही है। दवा खरीदना भी असंभव हो गया है। इसीलिए संसार को दुखालय बोला जाता है। धनवान भी दुखी है और गरीब भी दुखी है। धनवान को अपच की वजह से नींद नहीं आती, कई तरह की चिंताएं घेरे रहती हैं। जो भगवान् का सहारा लिए हैं वह थोड़े कम परेशान हैं। जो पूरी तरह भगवान् में रत हैं, उन्होंने शांति से सुख का रास्ता ले रखा है।

एकादशी व्रत करना मानव भक्तों के लिए बहुत जरूरी है। एक तो भक्ति बढ़ेगी, दूसरा शरीर निरोग रहेगा और निर्जल एकादशी करना तो सर्वोत्तम है ही। निर्जल एकादशी करने से जो खाने पीने से शरीर में विष फैला है, पानी न पीने से वह जहर को सोख लेगा। जो भगवान् ने नियम बनाए हैं वह मानव के शरीर को स्वस्थ रखने के लिए ही बनाए हैं। इन नियमों पर मानव ध्यान नहीं देता है। भगवान् कहते हैं, "मुझे उपलब्ध करने हेतु शरीर स्वस्थ रहना बहुत जरूरी है। शरीर स्वस्थ रहेगा तभी तो मुझे याद कर पाएगा।"

भगवान् दो प्रकार की सेवा करने से बहुत प्रसन्न होते हैं। एक तो साधु की सेवा और दूसरी सांड की सेवा। सांड की सेवा से गायों की जनरेशन (संख्या) बढ़ती है और साधु की सेवा तन, मन, वचन तथा धन से होती है।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने जो मर्यादा बांधी है उसका उल्लंघन जो मनुष्य करता है वह स्वप्न में भी सुखी नहीं रह सकता। प्रथम में भक्ति की नींव माँ–बाप से स्थापित होती है। जो माँ–बाप के आदेश का पालन नहीं करता वह भक्ति की क्लास में बैठ ही नहीं सकता, फिर चाहे कितना भी जप, तप करें, सब निरर्थक होगा। जो अपने माँ–बाप की अवहेलना करता है उसकी संतान उससे भी बुरी होगी। ऐसी संतान होगी जो माँ–बाप की

सेवा से दूर रहेगी। माँ–बाप को पीट भी सकती है। इसका कारण है कि अंदर बैठा परमात्मा इसका कर्म देख रहा है, जैसा कर्म करेगा वैसा ही इसे भुगतना पड़ेगा। भक्ति की पहली सीढ़ी है, पहली क्लास है, एल.के.जी. है, माँ–बाप की सेवा। यदि मानव अपना सुख चाहे तो प्रथम में माँ–बाप की सेवा कर आशीर्वाद ले, भक्ति पथ पर बिना बाधा के अग्रसर होता रहेगा। यह ध्रुव सत्य सिद्धांत है। इस कलिकाल में माँ–बाप को कोई पूछता ही नहीं है। उन्होंने अपनी संतान के लिए क्या–क्या कुर्बानियां नहीं कीं? उसको संतान भूल जाती है अतः दुख पाती है। यदि मानव को घर में ही रहना नहीं आया तो समाज में क्या रहना आएगा।

आजकल स्वार्थ का साम्राज्य फैला हुआ है। यदि मतलब होगा तो बात करेगा नहीं तो उधर देखेगा भी नहीं। अभी तो कलियुग की संध्या ही आई है। भविष्य में क्या हाल होगा, भगवान् ही जाने। अतः हरिनाम की शरण में जाना ही सर्वोत्तम होगा। यही मार्ग मानव को सुख का मार्ग दिखाएगा। जीवन को बेकार मत करो वरना फिर पछताना पड़ेगा। देखो! दसों दिशाओं में दुख की हवा बह रही है। इससे बचने का केवल एक ही उपाय है केवल हरिनाम की शरण। हरिनाम करो।

कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिर सुमिर नर उतरहिं पारा।।

कृत युग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जे गति होइ सो कलि हरि नाम ते पाबहिं लोग।।

(मानस, उत्तर. दो. 102 ख)

हरिनाम से सब कुछ मिल जाएगा।

कलिकाल में हरिनाम जपने वाले की सभी निंदा करते रहते हैं। और जो मांस मदिरा भक्षण करता है, झूठ, कपट करता है, उसकी कोई चर्चा नहीं करता। भगवान् ने इसका भी उत्तम उपाय बता दिया है।

निंदक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय।।

(संत कबीर जी)

भगवान् कहते हैं, "चिंता मत करो। कोई तुम्हारी चर्चा करता है तो करने दो।" वह आपके पाप ले रहा है, आपको खुश होना चाहिए। जो भक्त

की निंदा करता है वह तो अच्छा है। निंदक के पास उसके सब पाप चले जाते हैं। इसलिए निंदक को हमेशा अपने पास में रखो। यदि उसके लिए मकान भी बनाना पड़े तो बना दो, वह तुम्हें निर्मल, शुद्ध कर देगा। निंदक भक्त को निर्मल कर देगा। भगवान् निंदक पर दारुण कष्ट भेज देगा। भक्त अपराध तो बहुत खतरनाक होता है लेकिन मानव अज्ञानवश करता रहता है।

जाके प्रिय न राम–बैदेही।
तजिये ताहि कोटि वैरी सम, यद्यपि परम सनेही।।

(गो. तुलसीदास कृत विनय–पत्रिका, पदाङ्क 174, दो. 1)

जो भगवान् के भजन में बाधा करता हो, वह कितना भी प्यारा हो उसे तुरंत छोड़ दो। जो भगवान् के भजन में रोड़ा अटकाता है उससे बात मत करो। कितना ही प्यारा हो, उसे छोड़ देना चाहिए, चाहे माँ–बाप हो, चाहे पति–पत्नी हो, चाहे भाई हो, चाहे अपनी संतान हो, उनसे बोलना बंद कर दो। उससे कोई लेना देना नहीं है। मेरे गुरुदेव ऐसा मार्ग बता रहे हैं जिस पर चलने वाले को भगवान् एक क्षण के लिए भी छोड़ नहीं सकते, छायावत चिपके रहेंगे। लेकिन जो भक्त इस मार्ग पर चलेगा उसे ही भगवान् हृदय में दर्शन देकर, उसके हृदय में आकाशवाणी करते रहेंगे। यह मार्ग ध्यानपूर्वक श्रवण करें। किसी एक के अपनाने से ही उसकी 21 पीढ़ी वैकुण्ठ में चली जायेंगी।

मेरे पास पंजाब से लोग आते हैं जिन्हें अपने कुल और गोत्र का ही पता नहीं है। अपने कुल में शादी नहीं करते। किसी भी जाति की लड़की से शादी कर लेते हैं तो विपरीत स्वभाव होने की वजह से आपस में बनती नहीं है। तलाक की नौबत आ जाती है। जो संतान होती है, वह वर्णसंकर होती है अतः जो मेरे पास आते हैं, मैं उन्हें बताता हूँ कि आप अपने संतान की शादी अपने कुल में ही करें जिससे कि आपस में प्यार हो। जब खून ही मेल नहीं खाता तो सुख शांति कैसे होगी? बस इतना ही देख लेते हैं कि लड़की भक्त है, चाहे वह किसी भी जाति की हो, सम्बन्ध कर लेते हैं। ऐसे कई परिवार मेरे पास आते रहते हैं, जिनमें आपस में मनमुटाव रहता है। अगर कबूतरी की शादी कौवे से कर दी जाए तो कैसे बनेगी? उनका खून ही अलग–अलग है। आप देखते हो कि अस्पताल में भी जब तक खून नहीं मिलता, खून नहीं चढ़ाया जाता। गलत खून चढ़ाने से रोगी मर जाएगा।

मैं पूछता हूँ आपका गोत्र कौन सा है? तो कहते हैं कि गोत्र तो पता नहीं। ये जन्मपत्री भी नहीं मिलाते और सम्बन्ध कर लेते हैं। राजस्थान में ऐसा नहीं है। जब तक अपना कुल गोत्र नहीं मिलता तब तक शादी नहीं करते। जब लड़का लड़की की जन्मपत्री मिल जाती है तभी शादी करते हैं। पंजाब में ब्राह्मण सरदारनी से शादी कर लेता है या किसी भी जाति में कर लेता है। ऐसा मैंने प्रत्यक्ष देखा है। तलाक की नौबत आ जाती है। पंजाब वाले कहते हैं कि उन्हें उनका कुल और गोत्र किसी ने नहीं बताया। इस कारण हम क्या करें। शादी तो समय पर करनी ही पड़ती है। आपके यहाँ 'जागे' (जो वंशावली का रिकॉर्ड रखते हैं) नहीं हैं जो कुल गोत्र बताते हैं? हमारे राजस्थान में तो 'जागे' हैं जिन्हें सभी पीछे की पीढ़ियों का कुल गोत्र पता रहता है। उनके पास लिखा हुआ रहता है। वे अब तक सब के कुल गोत्र का हाल बताते रहते हैं। ऐसा पंजाब में नहीं है। इस कारण यहाँ पर मायावाद फैला हुआ है। हरियाणा और पंजाब में शादी के रिश्ते में कुल, गोत्र कोई नहीं देखता। अतः वर्णसंकर संतान होती हैं, जो भारत वर्ष देश को अराजकता में बदल रही हैं। यह समय ही ऐसा है जहाँ कलि महाराज का शासन है। कलि महाराज सभी मर्यादाओं को खत्म करता जा रहा है, धीरे–धीरे राजस्थान भी इसकी चपेट में आ रहा है। इसमें भगवान् भी क्या करें। भगवान् ने ही तो कलि महाराज को ऐसा करने का आदेश दिया है। सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग सब भगवान् ने ही तो रचा है। इसमें समय का क्या दोष है। ऐसा तो होगा।

शेर इतना खतरनाक नहीं होता, जब बहुत भूखा होता है तब ही मनुष्य को खाता है, वरना जानवरों को ही अधिकतर खाता है। लेकिन दोगला बघेरा अधिक खतरनाक होता है। यह पेड़ पर चढ़े आदमी को भी नहीं छोड़ता। यह उल्टे पैरों से पेड़ पर चढ़ जाता है। यह वर्णसंकर जाति का है। वर्णसंकर अधिक खतरनाक होता है। शेर पेड़ पर नहीं चढ़ता चाहे वह किसी भी जाति का हो। हमारे यहाँ बकरी चराते हैं, ग्वालों के पास लोहे का खंडा होता है, जिससे हिंसक प्राणी डरता है। यह दोगला बघेरा बकरियों के साथ–साथ चलता है। बघेरा पहाड़ की तलहटी में चलता है और अंत में बकरी को ले ही जाता है ग्वाल नहीं बचा पाते। हमारे पहाड़ में 9 बघेरे हैं, ऐसा ग्वाल बोलते हैं।

पैसा ही खास शक्तिशाली माया है। जिसको पैसे का लोभ नहीं, समझो उस पर भगवान् की असीम कृपा बरस रही है। पैसे के पीछे ही देश

से देश लड़ रहे हैं। पैसे के पीछे राजा से राजा लड़ रहा है। पैसे के पीछे बेटा बाप लड़ रहे हैं। पैसे के पीछे पूरा संसार आपस में लड़ रहा है। पैसे के रूप में भगवान् ने अपनी शक्तिशाली माया संसार में फैला रखी है ताकि कोई मेरे पास न आ सके। पैसे में ही अटका रहे। पैसा ही बुरे से बुरा कर्म करवाता है। गरीब बुरे काम से बच जाता है क्योंकि उसे तो दो समय की रोटी मिलना भी दूभर होता है। उसकी इंद्रियां पैसा न होने की वजह से काबू में रहती हैं और धनवान की इंद्रियां उसे हर प्रकार से सताती रहती हैं। बुरे आचरण में धनवान मजबूर हो जाता है, चाहते हुए भी वह अपनी आदतें नहीं छोड़ पाता क्योंकि उसके ऊपर गहरा रंग चढ़ गया है। अतः पैसा न होना ही अच्छा है। जो मिल जाए, उसी में संतोष रखें तो सुखी रहेंगे। और धनवान का तो सुख बहुत दूर भाग जाता है। हम प्रत्यक्ष देखते भी हैं कि धनवान को रात में नींद नहीं आती। दिन में चिंताओं से भयभीत रहता है। भूख न जाने कहाँ चली गई। उसे तो दूध भी पचता नहीं फिर ऐसे पैसे का क्या फायदा हुआ । टैंशन पर टैंशन (परेशानी) लगी रहती है और ऊपर से रोग लगे हुए हैं। गरीब का ऐसा नहीं होता। जो पैसे का लोभी है वह भगवान् को कैसे प्राप्त कर सकता है?
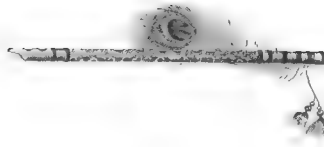
संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : क्या हर एक जीव आत्मा ने भगवद् धाम वापस जाना है ?

उत्तर : हाँ! जीवात्माओं की तो गिनती नहीं है, अनंत हैं। जैसे पृथ्वी के कण अनंत हैं, जैसे तारे अनंत हैं, वैसे ही जीव भी अनंत हैं। लेकिन जब साधु संग मिलेगा तब वह भगवान् के पास जा सकेगा। साधु संग के बिना असंभव है। बिल्कुल असंभव है। साधु संत के संग बिना नहीं जा सकता।

निर्गुणता में ही भगवान् मिलते हैं

31 मार्च 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में इस दासानुदास
अधमाधम अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा
हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

भगवान् ने कलि महाराज को, चार लाख बत्तीस हजार साल का राज्य दिया है। यह कलि, हिरण्यकश्यप का प्रतीक है। वैसे यह धर्म का शत्रु है। अशुभ कर्म करने वाले का दोस्त है। अशुभ कर्म करने वाला सुखी दिखेगा और शुभ कर्म करने वाला दुखी दिखेगा लेकिन, अंत में भला शुभ कर्म करने वाले का ही होगा। अभी तो कलि महाराज की संध्या ही दृष्टिगोचर हुई है, स्वयं तो वह अभी आया ही नहीं, जब आएगा तब देखना क्या हाल होगा। 30–40 साल पहले एक टिड्डी नाम का उड़ने वाला जानवर, इस पृथ्वी पर था। वह इतनी बड़ी संख्या में था कि आकाश में उड़ कर आकाश को ढक लेता था। यह जानवर, पेड़ों के पत्तों को खाकर पेड़ों को नंगा कर देता था। फसल का नामोंनिशान मिटा देता था। यह कलि महाराज की ही मेहरबानी थी। अब तो उसकी नस्ल ही समाप्त हो गई। कुछ साल पहले चील, गिद्ध जैसे जानवर होते थे, जो मरे हुए जानवरों को खाकर वातावरण को शुद्ध कर दिया करते थे। अब उनकी भी नस्लें खत्म हो गईं एवं अन्य जानवरों की नस्लें भी खत्म होती जा रही हैं क्योंकि यह कलि का जमाना है। अब मानव की नस्ल भी समाप्त होती जाएगी, ऐसा ही समय आएगा। ऐसा रोग आया है जिसे डेंगू बुखार बोला जाता है। यह एक प्रकार के मच्छर की जाति से होता है। जिसको यह मच्छर काट लेता है, वह मर भी जाता है और जीने की स्थिति में, शरीर को दो–तीन माह के लिए तोड़ देता है, ऐसा जहरीला मच्छर है। आजकल कई प्रकार के बम बनाए गए हैं। इनमें एक जीवाणु बम भी है। ये जीवाणु

बहुत जहरीले एवं खतरनाक हैं। यह जीवाणु, जिस मानव को या जीवधारी चर–अचर प्राणी को काटेगा, तो वह तुरंत ही मर जायेगा। डॉक्टर भी इसका इलाज नहीं कर सकेंगे। जब यह बम पृथ्वी पर छोड़ दिया जाएगा, तब कोई भाग्यशाली ही इससे बच पाएगा। भगवान् का भक्त ही केवल बच पाएगा क्योंकि भगवान् उसकी हमेशा रक्षा करते रहते हैं। सुकृतिवान ही इससे बच पाएगा। सुना भी है कि एक बार महायुद्ध होगा। एक देश दूसरे देश पर बम डालेंगे। यह बम बड़े विनाशकारी रहेंगे। यह लीला सब भगवान् ही कराते हैं।

जब अधिक अत्याचार, विप्लव, अराजकता फैलेगी, तब भगवान् ही एक दूसरे को प्रेरणा देकर, पृथ्वी को बहुत कुछ, खाली करा देंगे जैसे भगवान् ने प्रेरणा देकर, प्रभास क्षेत्र में, अपने कुटुंब को ही, एक प्रकार की सुरा पिलाकर, आपस में एक दूसरे को मरवा दिया। बेटे ने बाप को मार दिया, भाई ने भाई को, ससुर ने जमाई को आदि आदि। आपस में क्रोध करके, एक दूसरे को मार दिया था। यह श्रीमद्भागवत में ही लिखा है। जब भगवान् ने अपने परिवार वालों को ही नहीं छोड़ा, तो जो संसार की जनता दुष्टपना करने लग गई है, उसे कैसे छोड़ सकते हैं? बीमारी भी भगवान् भेजते हैं। सौ साल पहले एक बार चूहे से एक बीमारी फैली थी, तब एक दिन में ही, एक परिवार में कई सदस्य मर जाते थे। उस समय भी काफी जनता बेमौत मारी गई थी। इसीलिए गुरुदेव सबको चेता रहे हैं कि हरिनाम की शरण में चले जाओ। एक लाख हरिनाम नित्य करो ताकि भगवान् आपकी रक्षा–पालन करेंगे जैसे प्रह्लाद की रक्षा व पालन किया।

कहावत है कि जो ऊँचा चढ़ता है तो उसे एक दिन नीचे गिरना ही पड़ता है। भगवान् की सृष्टि में ऐसा होता ही रहता है। इतिहास इसका प्रमाण है। राजसिक, तामसिक जनता पैदा हो रही है। जिसका विनाश की ओर जाना स्वाभाविक ही है। बहुत साल पहले, जापान में हिरोशिमा और नागासाकी पर अमेरिका ने बम डाला था, परंतु अभी भी उस जमीन पर कुछ पैदा नहीं होता। वहाँ की जमीन जल गई, वहाँ से पेड़ पौधे मूल सहित चले गए। ऐसी विनाशकारी घटना तभी होती है, जब भगवान् के नाक में दम आ जाता है, तब भगवान् को ऐसा करना ही पड़ता है। कहावत है :

विनाशकाले विपरीतबुद्धिः।

(संस्कृत सुभाषितानि – 04, चरक, सुभाषित 285)

जब विनाश का समय आता है, तब बुद्धि विपरीत हो जाती है। कहते हैं –

जाको प्रभु दारुण दुख देही। ताकी मति पहले हर लेही।।

तो वह पहले ही गलत काम करने लग जाता है। जब मानव सिर पर चढ़ जाता है, उसे सजा देकर ही ठीक किया जाता है। ऐसे यह कभी मानेगा नहीं। बिना मारे तो भूत भी नहीं मानता। बिना मारे तो सर्कस का शेर भी मास्टर के अधीन नहीं होता, अपनी आदत नहीं छोड़ता।

ध्यान से मेरी बात सुनो। जो दूसरों में दोष देखता है, वह कभी सुधर नहीं सकता। सुधारना हो तो स्वयं अपने में दोष देखो, तो वह भगवान् का प्यारा हो जाएगा। अपने में दोष देखने से उसे कभी दोष नहीं आएगा। पहले अपने को सुधारो। दूसरा तो अपने आप ही सुधर जाएगा। देखा गया है कि दूसरों को सुधारने की कोशिश करते हैं तो दूसरा स्वप्न में भी सुधर नहीं सकता। पहले स्वयं योगी बनो, फिर दूसरे पर प्रभाव पड़ेगा, वरना बकबक करते रहो कुछ प्रभाव नहीं होगा।

इस दुनिया में सभी दुखी हैं। दुखी क्यों हैं? क्योंकि दुख का ही काम करते रहते हैं तो दुख ही हस्तगत होगा।

जो बोओगे वही तो मिलेगा।

As you sow, so shall you reap

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।

(मानस, उत्तर. दो. 40 चौ. 1)

अरे! सुख दोगे, तो सुख ही मिलेगा। तन, मन, वचन से सब को सुखी करो। इसमें चर–अचर सब प्राणी आ गए हैं। भगवान् सबके हृदय में बैठे देख रहे हैं, कि अमुक क्या कर रहा है? वैसा ही फल भगवान् उसे देते हैं। कोई किसी को दुख–सुख नहीं दे सकता, अपना कर्म ही सुख–दुख का कारण है। कहावत है :

करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा।।

(मानस, अयोध्या. दो. 218 चौ. 2)

मनुष्य जन्म भगवत्कृपा से पाया है, इसे बुरे रास्ते से बर्बाद मत करो। फिर ऐसा अवसर हस्तगत नहीं होगा। हीरा मिला है, गंदी नाली में फेंक दिया तो फिर पछताना पड़ेगा।

अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गईं खेत

यह तेरा, मेरा ही दुख का कारण है। इसी को माया कहते हैं। जिस दिन यह तेरा–मेरा, दिल से चला जाएगा। उस दिन सुख का समुद्र उमड़ जाएगा। उस दिन भगवद् प्राप्ति हो जाएगी। जब आए थे, तब क्या कुछ लेकर आए थे? खाली हाथ आए थे। ऐसा सोचना चाहिए कि जो मिला है, वह मेरे पूर्व जन्मों के कर्मों से मिला है। अब दूसरे से लेने की इंतजार क्यों करते हो। यदि दुखी किया है, तो दुख आएगा।

श्रीमद्भागवत महापुराण से उद्धृत यह शब्द ब्रह्म, साक्षात् श्रीकृष्ण है। शब्द ब्रह्म है। जब भगवान् जाने लगे तो वे श्रीमद्भागवत में प्रवेश कर गए। उसे ही शब्द ब्रह्म कहते हैं, वह साक्षात् कृष्ण है।

अब देखिए! संख्या 'सात' का महत्व –

- सात दिन में ही जीव जन्म लेता है और सात दिन में ही मरता है। आठवां दिन तो होता ही नहीं है। सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, और रवि। इन्हीं सात दिनों में जन्म लेता है और इन्हीं सात दिनों में मरता है।
- सात साल की उम्र में भगवान् कृष्ण ने, सात दिन के लिए गिरिराज गोवर्धन उठाया था।
- सात दिन का ही श्रीमद्भागवत सप्ताह होता है।
- ब्रह्मा के पुत्र, सप्त ऋषि भी सात ही हुए थे। यह सप्त ऋषि आकाश में ध्रुव लोक की परिक्रमा किया करते हैं।
- युधिष्ठिर महाराज ने अर्जुन को द्वारिका का हाल जानने के लिए भेजा था तो वह भी सात माह में वापिस आया था।
- जब शादी होती है, तो दूल्हा–दुल्हन भी अग्नि के सात फेरे लेते हैं, परिक्रमा करते हैं।
- मनु के पुत्र, प्रियव्रत ने पृथ्वी की सात परिक्रमा की थीं। उन्होंने सोचा कि, "मैं रात को दिन कर दूँगा।" उन्हें रात पसंद नहीं थी। श्रीमद्भागवत

में लिखा है, सात समुद्र बन गए और सात ही द्वीप बन गए। उन्होंने अपने सात पुत्रों को द्वीपों का राजा बना दिया।

- सात कोस की ही गिरिराज जी की परिक्रमा हुआ करती है और संगीत के भी सात ही स्वर होते हैं।
- बरसात के दिनों में जो इंद्रधनुष आकाश में बनता है उसमें भी सात रंग होते हैं।

तो देखा, सात की कितनी कीमत है।

मेरे गुरुदेव कह रहे हैं कि अपने स्वभाव को सुधारो। मनुष्य जन्म बार–बार नहीं मिलेगा। स्वभाव को सुधारो। भगवान् की लीला को तो ब्रह्मा और शिवजी भी नहीं समझ सकते। भगवान् बोलते हैं कि, "मेरा भक्त कुछ–कुछ समझता है।" भक्त किसे कहते हैं? "जो जीव मेरे ही पास में रहता है।" जैसे जादूगर की बात कोई नहीं समझता लेकिन उसका जमूरा उसकी करामात समझ लेता है। ऐसे ही भक्त का आचरण होता है। भक्त ही समझता है कि भगवान् की क्या लीला है? जैसे एक साल के शिशु का आचरण अपनी माँ के प्रति होता है। शिशु, माँ से एक पल भी दूर रहना नहीं चाहता। जैसे माँ शिशु की हर हरकत को पहचानती है। ऐसे ही भगवान् भी भक्त की हर इच्छा को जानते हैं और भक्त भी भगवान् की हर लीला को पहचानता है। अतः अनंत कोटि ब्रह्मांडो में भगवान् और भक्त ही सर्वोपरि और प्रमुख आश्चर्यमय पदार्थ हैं और अन्य समस्त मायामय पदार्थ हैं। अनपढ़ भक्त भी समस्त शास्त्रों का ज्ञाता है। इसमें विद्वानजन की आवश्यकता नहीं है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण, हमारे गौरकिशोरदास बाबाजी हैं, जो बिल्कुल अनपढ़ थे। वैराग्य की मूर्ति थे। सभी धर्मशास्त्र उनके हृदय में जागृत थे।

सभी भक्तों की समस्या है कि हरिनाम करने के लिए माला लेकर जब बैठते हैं तो मन एक मिनट में इधर–उधर चला जाता है, टिकता नहीं। तो मन को कैसे लगाया जाए कि भगवान् हमारे पास में रहे? मन को रोकने का एक तरीका है कि जब हमारे सामने प्रसाद की थाली आए, फिर प्रसाद वाली थाली को नमस्कार करो और बोलो, "इस प्रसाद को मेरे गुरुदेव ने और भगवान् ने पाया है और अब इसे मैं पाऊँगा तो मेरे प्रसाद का रस निर्गुण बन जाएगा।" निर्गुणता में ही भगवान् मिलते हैं। तो मेरा मन सिर्फ हरिनाम–मय हो जाएगा। इसके बाद दाहिने हाथ में जल लेकर थाली के

चारों ओर चार बार घुमा लो। पानी को अपने सामने गिरा दो। ये महाप्रसाद की परिक्रमा हो गई। अब प्रसाद पाना आरंभ करो। एक–एक ग्रास में आठ–आठ बार मन ही मन में हरिनाम करते रहो। फिर मन कैसे जाएगा, इधर उधर? तो मन हरिनाम में लगता रहेगा। 20–25 ग्रास तो पेट में जाएगा ही। इसके एक माह के अभ्यास के बाद जापक का मन 50% तक स्थिर होने लगेगा। आजमा कर देख सकते हो।

बहुत से भक्त कहते हैं कि इसके पहले हम प्रसाद पाते थे तो हम प्रसाद को नमस्कार नहीं करते थे। न हम खाते समय हरिनाम जप करते थे। न हम पानी, थाली के चारों तरफ घुमाते थे तो हमारा मन चंचल रहता था। प्रसाद पाते वक्त हमारा मन चारों ओर भाग जाता था। प्रसाद का रस बनता था, तामसिक और राजसिक। अतः मन का चंचल रहना स्वाभाविक ही है। अतः नाम का जप आनंदपूर्वक नहीं होता था। आजमा कर देखो कि रिजल्ट क्या आता है। बहुत भक्तों ने कर के देखा है, उनका मन रुकने लग गया है।

जैसा अन्न वैसा मन। जैसा पानी वैसी वाणी।

यह ध्रुव सत्य सिद्धांत है। शुद्ध कमाई होना परम आवश्यक है। वरना रिजल्ट (नतीजा) गलत होगा। सच्चाई में ही सफलता मिल सकती है। पानी पियें तो भगवान् का नाम स्मरण करते हुए पियें तो यह भगवद् चरणामृत बन जाएगा। रिजल्ट होगा कि वाक्सिद्धि हो जाएगी और झूठ बोलना रुक जाएगा। सच बोलना तो है ही, क्रोध आना भी बंद हो जाएगा। पानी पीना अमृत में बदल जाएगा। जहाँ अमृत भरा होगा वहाँ जहर आएगा ही नहीं क्योंकि यह आपस में दुश्मन हैं। जहाँ रात होती है, वहाँ दिन नहीं होता। जहाँ दिन होता है, वहाँ रात नहीं होती क्योंकि दोनों में दुश्मनी है। जहाँ सुख होता है, वहाँ दुख नहीं आता और जहाँ दुख है, वहाँ सुख नहीं आ सकता। यह ध्रुव सत्य सिद्धांत है।

कृष्ण की आत्मा राधा है। यह श्रीमद्भागवत में लिखा है, पर जो भक्त अकेली राधा की उपासना करते हैं, वह गलत रास्ते पर जा रहे हैं। उन्हें अष्टसात्विक विकार नहीं आ सकते। उन्हें अश्रु पुलक उदय नहीं हो सकते। जो नैष्ठिक ब्रह्मचारी हो वही राधा का उपासक हो सकता है पर युगल सरकार की उपासना में किसी नैष्ठिक ब्रह्मचारी की आवश्यकता नहीं होती है। कई भक्त प्रत्यक्ष में देखते भी हैं कि मंदिर, मठों में अकेली राधा का विग्रह नहीं होता है और न ही अकेले कृष्ण होते हैं। युगल

सरकार के विग्रह ही भक्तों को सर्वप्रिय होते हैं। अकेले कृष्ण की उपासना भी उचित नहीं है।

युगल उपासना ही सर्वोत्तम है।

मैंने प्रत्क्षय देखा है कि संन्यासी, बाबाओं के पास अकेली राधा का ही चित्रपट रहता है। शास्त्रीय विचार करने से तो यह अनुचित ही है क्योंकि राधा, कृष्ण के बिना नहीं रह सकती और कृष्ण भी राधा के बिना नहीं रह सकते। अकेली राधा की उपासना केवल नैष्ठिक ब्रह्मचारी ही कर सकते हैं। परमहंस अवस्था हो, तुरीय अवस्था हो तो वह राधा की उपासना कर सकते हैं। जहाँ कृष्ण अकेले किसी भक्त को दर्शन देते हैं, वहाँ राधा जी आत्मा के रूप में कृष्ण के संग में रहती हैं । श्रीमद्भागवत महापुराण में लिखा है कि राधा, कृष्ण की आत्मा है। आत्मा के अभाव में शरीर कुछ नहीं कर सकता। ऐसे ही द्वारिका में भगवान् कृष्ण की सोलह हजार एक सौ आठ रानियां थीं, जिनमें भौमासुर द्वारा कैद की गई राजकुमारियां भी थीं। लेकिन राधाजी के बिना कृष्ण एक पल भी नहीं रह सकते। आत्मा के रूप में राधाजी, कृष्ण के संग में थीं। द्वारका की रानियां कहती थीं कि कृष्ण रात को अपने शैया पर स्वप्न में रोते रहते हैं। जब पूछा गया कि, "वे क्यों रोते रहते हैं?" तो उन्होंने कहा, "वे गोपियों की अनुपस्थिति से रोते रहते हैं।" राधा के लिए नहीं बोला। गोपियां उन्हें प्राणों से प्यारी हैं। उन्होंने ये नहीं बोला कि वे राधा की अनुपस्थिति से रो रहे हैं। यह बोले कि वे गोपियों की अनुपस्थिति से रोते हैं और गोपियों की याद में रोते हैं, वे गोपियों के ऋणी हैं। राधा तो आत्मा रूप से उनके अंदर विराजमान रहती हैं। जो ब्रह्म था, उसी ने दो रूप प्रकट किए हैं। एक प्रेमिका और एक प्रेमी का। एक राधा और दूसरा कृष्ण। राधा के वपु से सब देवियां प्रकट हुई हैं और कृष्ण के वपु से ग्वाल–बाल प्रगट हुए हैं।

भगवान् कृष्ण ही स्वयं बनने वाले हैं और बनाने वाले भी वही हैं। भगवान् कृष्ण के बिना तो इस संसार में कुछ है ही नहीं। उदाहरण देता हूँ कि जब ब्रह्माजी भगवान् कृष्ण के बछड़े, गाय और ग्वाल–बाल चुरा कर ले गए, तब भगवान् कृष्ण हूबहू वैसे ही ग्वाल–बाल, बछड़े और गाय स्वयं बन गए। यहाँ तक कि ग्वालबालों के छींके, लकुटी और गाय हांकने वाली लकड़ी, स्वयं ही बन गए थे। अतः यह सिद्ध हो गया कि भगवान् ही संसार में सब कुछ हैं। भगवान् कृष्ण के बिना तो संसार में कुछ है ही नहीं। राधा, भगवान् की पत्नी नहीं है, प्रेमिका का अवतार है।

भगवान् की खास पत्नी वृंदा देवी है। तुलसी माँ है।

धन्य तुलसी मैया, पूर्ण तप किये,
श्री–शालग्राम–महा–पटराणी नमो नमः

(तुलसी आरती)

यह तुलसी महारानी के लिए बोला गया है। रुक्मिणी, सत्यभामा, जामवंती आदि भी भगवान् को इतनी प्यारी नहीं, जितनी प्यारी वृंदा देवी है। वृंदा देवी, तुलसी मैया को राजी (खुश) किये बिना भगवान् भक्त को बिल्कुल दर्शन नहीं देते, न मिलते हैं।

तुलसी माँ की हर प्रकार से सेवा करना परम आवश्यक है। समय पर पानी देना होगा, गर्मी और सर्दी से बचाना होगा, आरती करना होगा, चार परिक्रमा करनी होंगी, पवित्र जगह पर तुलसी माँ को रखना होगा, कीड़े लगने पर हल्दी का पाउडर ऊपर से पत्तियों पर छिड़कना होगा, छह माह में, थोड़ा गाय का गोबर, जड़ में डालना होगा। इससे जड़ में कीड़े नहीं लगेंगे। द्वादशी के दिन तुलसी पत्र चयन नहीं करना चाहिए। तुलसी मंजरी और पत्रों को भगवान् को भोग लगाना और भगवान् के चरणों में अर्पित करना एवं तुलसी माला बनाकर भगवान् को गले में धारण कराना। तुलसी मैया को दण्डवत् करना, तुलसी मणियों पर भगवद्नाम जपना, तुलसी माला को नंगा नहीं रखना। गोमुखी (माला झोली, जपमाला थैली) में तुलसी माला को रखना। समय–समय पर तुलसी माला की झोली को धोते रहना, तुलसी माला झोली को स्वच्छ जगह पर रखना, तुलसी माला झोली को गले में रखकर भगवान् को दण्डवत् नहीं करना। पेशाब करते समय तुलसी माला झोली को पास में न रखना आदि यह सब ध्यान में रखना चाहिए।

तुलसी माँ की सेवा करने से भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं। तुलसी माँ हमारी जन्म–जन्म की अमर माँ है। यही हमको अपने पति परमेश्वर से मिला देगी। तुलसी माँ की कृपा बिना भगवान् स्वप्न में भी नहीं मिलेंगे। जप माला में सुमेरु स्वयं भगवान् कृष्ण हैं और दोनों ओर की मणियाँ, गोपियों की प्रतीक हैं। जब हाथ में जप माला लेते हैं तो पहले तुलसी माला को सिर से लगाओ, फिर हृदय से लगाओ। तुलसी माँ के चरणों का चुंबन करो, इसके बाद एक से चार बार हरिनाम जप करो, फिर झोली में हाथ डालो तो तुलसी माँ अपने पति सुमेरु को ही उंगलियों में पकड़ा

देंगी। करके देखो। प्रत्यक्ष में प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं है। ये शास्त्र में भी नहीं लिखा है। यह स्वयं गुरुदेव ने लिखा है। आजमा कर देख सकते हो। यदि जप करते समय बुरा भाव मन में आ गया तो तुलसी माला उलझ जाएगी या उंगलियों से छूट जाएगी या टूट जाएगी और शुभ भाव आएगा तो सुमेरु ही उंगलियों में पकड़ा देगी। यह कहीं शास्त्रों में नहीं लिखा है। यह स्वयं भगवान् ने ही बताया है। कुछ प्रभावशाली शास्त्रों में कहीं नहीं है, भगवान् प्रेरणा करके बताते रहते हैं। भगवान् की प्रेरणा के बिना तो पेड़ का पत्ता नहीं हिलता। जिस जीव की जैसी आदत होती है, भगवान् वैसी ही प्रेरणा करते रहते हैं। सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण के अनुसार प्रेरणा होती रहती है। अतः किसी में गुण–दोष देखना व्यर्थ की चेष्टा है। इससे भक्ति नष्ट होती है। जो भगवान् ने दिया है उसी में संतोष रखने में सुख ही सुख है। दुख का तो नामोनिशान ही नहीं है। तभी तो कहावत है :

संतोषी सदा सुखी।

जीव के हृदय में चार कोष्ठ होते हैं मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। यह मेरा–तेरा भगवान् को नहीं सुहाता है। अतः भक्त के अहंकार को नष्ट करते रहते हैं। जो निरहंकारी होता है, वही भगवान् को उपलब्ध करता है।

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।

(श्री शिक्षाष्टकम् श्लोक 3)

जिसका ऐसा आचरण होता है वही भगवान् का नाम जप सकता है।

भक्त किसे कहते हैं? भक्ति का अर्थ है भगवान् में आसक्ति। भगवान् में आसक्ति किस तरह हो सकती है? यह हो सकती है गुरु आश्रम में भर्ती होने से। भक्ति किसलिए होती है? भक्ति होने का परम लाभ क्या है? भक्ति इस कारण होती है कि सच्चा ज्ञान उपलब्ध हो अर्थात् ऐसा ज्ञान उपलब्ध हो जाए कि यह संसार स्वप्न के समान है। जैसे रात को सोने में स्वप्न आता है और सुबह जागने पर गायब हो जाता है। कोई प्रभाव नहीं रहता। बस ऐसा ही ज्ञान गुरु आश्रम से मिल जाता है। पहला गुरु आश्रम माँ–बाप का घर है, घर ही आश्रम है। शिशु को जन्म से ही माँ–बाप से ज्ञान उपलब्ध होता है यही है एल.के.जी. में भर्ती होना। एल.के.जी. से

चौथी क्लास तक माँ–बाप से ही ज्ञान मिलता है। माँ–बाप के आदेश का पालन करना ही सबसे सच्चे ज्ञान की उपलब्धि है। अगर इसी आश्रम में ही भर्ती नहीं हुई तो भक्ति की उच्चतम स्थिति, भगवत्प्राप्ति का सर्टिफिकेट (प्रमाण–पत्र) भी प्राप्त नहीं हो सकता। पहले भक्ति होगी माँ–बाप की। इसके बाद आध्यात्मिक गुरु के आश्रम में भर्ती होना आवश्यक है। यहाँ ज्ञान होगा, धर्मशास्त्रों का, जो भगवान् के साँस से प्रगट हुए हैं और भक्त का भगवान् के पास पहुँचने का मार्ग गुरु ही प्रदर्शित करते हैं। इन शास्त्रों को हृदय में धारण करके भक्त सब से सुखकारक मार्ग पर चलता है। इसके संपर्क में जो भी जीव आता है, उसे भी ज्ञान होने से, वह भक्त और भगवान् का अनुगमन करता है। यही है मानव देह उपलब्ध करने का सच्चा सुखकारक रास्ता। जो मानव माँ–बाप की सेवा नहीं करता, वह भगवान् और भक्त की सेवा स्वप्न में भी नहीं कर सकता। उसकी भक्ति केवल श्रम मात्र ही होगी।

जो एल.के.जी. में भर्ती नहीं हुआ वह पी–एच.डी. का सर्टिफिकेट कैसे प्राप्त कर सकता है? जो माँ–बाप के आश्रम में भर्ती नहीं हुआ, वह भगवान् के पास कैसे जा सकता है? मर्यादा पुरुषोत्तम राम जी ने जो मर्यादा बांधी है, उसे जो मानव नहीं अपनाता, उसे स्वप्न में भी सुख नहीं मिल सकता। ऐसे मानव का जीवन व्यर्थ चला जाता है, उसे सुख की हवा भी नहीं लगेगी। दुखी होकर हाय–हाय करता हुआ मर जाएगा। अंत में अगली योनि दुखदायक उपलब्ध होगी। मानव जन्म अनंतकोटि चतुर्युगी के बाद ही उपलब्ध होगा। अतः शिशु काल से ही हरिनाम करते हुए भगवान् की शरणागति लेनी चाहिए। हरिनाम ही सद्बुद्धि दे कर भगवद् मर्यादाओं से बाहर नहीं जाने देगा और सुख का जीवन प्रदान करता रहेगा। माँ–बाप को अपनी संतान को तीन साल की उम्र से ही भगवद् शिक्षा देना आरंभ कर देना चाहिए ताकि बाहर का वातावरण उस पर हावी न हो सके। प्रहलाद, ध्रुव ने तो पांच साल की उम्र में ही भगवद् प्राप्ति कर ली थी।

कलिकाल का वातावरण बहुत खराब है। अतः छोटे बच्चों पर इसका प्रभाव तुरंत पड़ जाता है। टीवी तो बच्चों को बिगाड़ रहा है। बच्चों को टीवी से दूर रखना चाहिए। बच्चों का हृदय स्वच्छ होता है जिसपर गंदगी तुरंत चढ़ जाती है। अतः माँ–बाप को इस का ध्यान रखना चाहिए। यह बहुत जरूरी है, वरना बच्चा बिगड़ कर राख हो जाएगा। फिर माँ–बाप इसे सुधार नहीं सकेंगे। गहरा रंग चढ़ने से उतरना असंभव हो जाता है।

कहते हैं कि हमारा बच्चा, हमारा कहना नहीं मानता। इसमें बच्चे का कोई दोष नहीं है, माँ–बाप का दोष है। उन्होंने बच्चे पर नजर नहीं रखी। किसी चीज को अगर हम नहीं देखेंगे तो वह चीज मैली हो जाएगी। फिर उसका मैल छूटना मुश्किल हो जाएगा।

प्रत्येक चर–अचर प्राणी में तीन धाराएं सदा बहती रहती हैं– सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण। इन धाराओं से प्रेरित होकर मानव कर्म करता रहता है। इसी कारण सतयुग, त्रेता, द्वापर में गुरु आश्रम होते थे जिनमें प्राथमिक शिक्षा दी जाती थी। पच्चीस साल तक युवा शिक्षा ग्रहण करता था। शादी के बाद सात्विक खून होने से संतान सात्विक आचरण की होती थी। इस कलियुग में मानव की धारा तामसिक और राजसिक हो गई है, अतः संतान का आचरण भी तामसिक और राजसिक होता जा रहा है, जो सबको दुख देता रहेगा क्योंकि इस समय की शिक्षा केवल पैसा कमाने की ही दी जाती है। धार्मिक शिक्षा का तो नामोनिशान नहीं है, अतः सभी दुखी जीवन काट रहे हैं। यह कलियुग के प्रभाव से ही है। इसमें किसी का दोष नहीं है। जो कुछ हो रहा है कलियुग की वजह से हो रहा है।
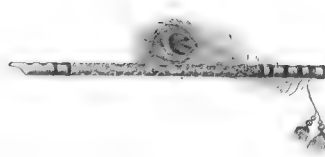
संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : यह कैसे संभव है कि हरिनाम साध्य भी है और साधन भी है ?

उत्तर : हरिनाम साध्य भी है और साधन भी है। साध्य क्या है ? हरिनाम क्या है ? हरिनाम स्वयं कृष्ण हैं। कृष्ण हैं मतलब साध्य है। और हम साधन कर रहे हैं। हम साधन को जप रहे हैं। भगवान् अपने नाम से स्वयं हैं और उनका नाम स्मरण करने से वह साधन हो गया।

हरिनाम जप अर्थात् भगवान का सानिध्य

27

7 अप्रैल 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में इस दासानुदास अधमाधम
अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा प्रार्थना है
हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

आज एकादशी है। एकादशी 8 साल की आयु से 80 साल तक की आयु तक सब को करनी चाहिए।

भगवान् किस कर्म से खुश होते हैं? एकादशी पालन करने से, हरिनाम करने से तथा सांड को दलिया खिलाने से, भगवान् अधिक खुश होते हैं।

शुद्ध एकादशी का नियम है कि दशमी को एक बार खाओ, और एकादशी को निराहार रहो और द्वादशी को पारण करके, शाम का भोजन मत करो। अगर किसी से नहीं निभे, तो एकादशी को फलाहार कर सकते हो।

धरातल को दुखी देखकर, कृष्ण ही, 28 बार द्वापर बीतने के बाद, चैतन्य महाप्रभु का अवतार लेते हैं। इस अवतार में स्वयं चैतन्य महाप्रभुजी ने हरिनाम जप किया है, स्वयं ने आचरण किया है तथा सभी जीवों को एक लाख यानि 64 माला करने का आदेश दिया। एक लाख नाम करने को क्यों बोले? क्योंकि जो एक लाख नाम नित्य जपेगा, वह इसी जन्म में वैकुण्ठ प्राप्ति कर लेगा, जो एक लाख नाम नहीं करेगा, या 16 माला, या 32 माला करेगा, उसका अगला जन्म मनुष्य का ही दिया जाएगा, ताकि अगले जन्म में, वह एक लाख नाम नित्य करके वैकुण्ठ में चला जाए।

जैसे जगत में, पाठक पाठशाला में पढ़कर, अगली आठवीं की पाठशाला में भर्ती होता है, जब आठवीं की पाठशाला पास कर लेता है, तो दसवीं पाठशाला में जाता है और दसवीं में जब पास हो जाता है, तो अगली पाठशाला (कॉलेज) में जाना पड़ता है। इस पाठक को एक पाठशाला से दूसरी पाठशाला में जाना ही पड़ता है। तब ही वह उच्च शिक्षा प्राप्त करके राजकीय सर्टिफिकेट उपलब्ध करता है। सर्टिफिकेट से फिर, जीवन चलाने का रोजगार मिल जाता है। इसी प्रकार, भगवान् को प्राप्त करने हेतु एक लाख हरिनाम नित्य करना चाहिए। जो भक्त इस पाठशाला में भर्ती नहीं हुआ, वह माया की पाठशाला में भर्ती होता है, जहाँ दुख कष्ट के अलावा, सुख का नाम निशान ही नहीं है। अतः कहने का मतलब है कि केवल मात्र हरिनाम करते रहना चाहिए, कलियुग में कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है। केवल हरिनाम करो, चाहे मन लगे चाहे नहीं लगे, तो दुखालय रूपी संसार से, निश्चित रूप से नैया पार हो जाएगी। फिर शास्त्र बोल रहा है –

कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिर सुमिर नर उतरहिं पारा।।

'केवल' क्यों लिखा है? क्योंकि दूसरा रास्ता नहीं है, नहीं है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

(चै. च. आदि 17.21)

अर्थात् कलियुग में दूसरा रास्ता नहीं है, नहीं है, नहीं है। तीन बार बोला है, इसलिए हरिनाम करो।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

अब कोई संशय करे कि चैतन्य महाप्रभुजी, कृष्ण के अवतार नहीं हैं तो उसका शास्त्रीय प्रमाण, मेरे गुरुदेव दे रहे हैं। भगवान् कृष्ण स्वयं बोल रहे हैं। कहाँ बोल रहे हैं? कूर्म पुराण में बोल रहे हैं :

कलिना दह्यमानानां उद्धार्य तनु–भृतं,
जन्म प्रथम संध्यायां भविष्यति द्विजालये।।

(कूर्म पुराण)

अर्थात्, मैं इस पृथ्वी पर ब्राह्मणकुल में कलिरूपी दावानल से जलते हुए भक्तों के उद्धार के लिए, कलियुग की प्रथम संध्या में, अवतीर्ण होऊँगा। कौन कह रहे हैं? यह भगवान् कृष्ण कह रहे हैं। अच्छा! दूसरा प्रमाण, संशय निवारण करने हेतु बताया जा रहा है :

नाम सिद्धांत संपत्ति प्रकाशन परायणः।
क्वचित् श्री कृष्ण चैतन्य नामालोके भविष्यति।।

(देवी पुराण)

क्या कह रहे हैं? देवी पुराण में, एक प्रसंग में महादेवजी अपनी पत्नी पार्वती को कह रहे हैं, "हे, पार्वती! हरिनाम संकीर्तन से, भगवान् के नाम से ही, जीवों का परम कल्याण होगा।" श्री चैतन्य महाप्रभुजी ने स्वयं जपकर, अन्य सभी जीवों को भी, जबरन नाम में लगाया है, ताकि अनंत कल्पों से, उनसे बिछुड़े हुए प्राणी, वापस उनके पास आ जाएं। जन्म–मरण के दारुण दुख से छुट्टी पा जाएं।

शिवजी फिर पार्वती को कह रहे हैं, "यह हरिनाम से ही, सभी जीवों की सारी इच्छा पूर्ण हो जाएँगी। इस महान सुखकारी संपत्ति का प्रसार करने हेतु, भगवान् स्वयं, श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभुजी के रूप में, नवद्वीप नामक धाम में प्रकट होंगे। यह बोला कि होंगे, तो बाद में हुए। सनातन धर्मावलंबी भक्त, अपने परिवार के किसी व्यक्ति का देहांत होने पर, गरुड़ पुराण का आयोजन करते हैं, उसमें स्पष्ट रूप से लिखा है, कि भगवान् कृष्ण ही श्रीचैतन्य महाप्रभु के रूप में नदिया में प्रकट होंगे। यह गरुड़ पुराण में लिखा है।

"वृंदावन में जैसे गोपियों के संग में, कृष्ण नाचते हैं, उसी प्रकार कृष्ण, चैतन्य महाप्रभु जी के रूप में, संकीर्तन में, जगन्नाथपुरी धाम में नाच कर सभी भक्तों को, प्रेम प्रदान करेंगे।" इस विषय में, इस शास्त्र में, तीन जगह अवतार का वर्णन है।

कलिना दह्यमानानां परित्राणाय तनु–भृतं।
जन्म प्रथम संध्यायां करिष्यामि द्विजातिषु।।

(गरुड़ पुराण)

यह गरुड़ पुराण में आया है कि भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं, "कलि द्वारा तापग्रस्त जीवों के परित्राण हेतु कलियुग की प्रथम संध्या में, द्विज जाति यानि ब्राह्मण के यहाँ जन्म लूँगा।"

अहं पूर्णो भविष्यामि, युगसंधौ विशेषतः।
मायापुरे नवद्वीपे, भविष्यामि शचीसुतः।।

(गरुड़ पुराण)

फिर और क्या कहते हैं? अर्थात् भगवान् कृष्ण कहते हैं कि, "द्वापर युग की समाप्ति तथा कलियुग के प्रारंभ में ही, मायापुर नवद्वीप धाम में, शची देवी के पुत्र रूप से, पूर्णावतार के रूप में, मैं प्रकट होऊँगा।" यह वचन, शास्त्र कह रहे हैं।

कलेः प्रथम संध्यायां, लक्ष्मीकांतो भविष्यति।
दारुब्रह्म समीपस्थः संन्यासी गौर विग्रहः।।

(गरुड़ पुराण)

यह पुराण क्या कह रहे हैं? "कलियुग की प्रथम संध्या में, षड् ऐश्वर्यपूर्ण भगवान् ही, दारुब्रह्म, श्री जगन्नाथजी के समीप, श्री गौरांग रूप धारण करके संन्यास वेश में अवतीर्ण होंगे। संन्यास के पहले वे लक्ष्मीकांत होंगे अर्थात्, उनकी पत्नी का नाम लक्ष्मी प्रिया होगा।"

गोकुल में, नंद महाराज ने, गर्गाचार्य से प्रार्थना की थी कि इन दोनों बच्चों के नामकरण कर दो, तो गर्गाचार्य बोले, "कंस बहुत दुष्ट है, उसको मालूम हो जाएगा, यह ठीक नहीं है।" तब नंद महाराज बोले, "अरे! गौशाला में एकांत है। कोई भी वहाँ नहीं जा सकता। वहाँ किसी को मालूम नहीं पड़ेगा और आप गौशाला में नामकरण कर दो।" तब गर्गाचार्य ने गौशाला में नामकरण किया। गर्गाचार्य ने नंदबाबा को बोला, "यह तुम्हारा बच्चा, यह कभी–कभी पीतवर्ण भी धारण करता है।" यह चैतन्य महाप्रभु की तरफ ही इशारा है।

"कलियुग का साम्राज्य, चार लाख, बत्तीस हजार वर्ष का होगा। इसमें कलि महाराज, धर्म–कर्म को समूल नष्ट कर देंगे। तब भगवान् विष्णु, ब्राह्मण के यहाँ अवतार लेकर, दुष्टों का नाश करेंगे। इतना अत्याचार होगा, इतना अधिक उपद्रव होगा, इतनी अधिक अराजकता

फैलेगी कि भगवान् को सहन नहीं होगा। तब भगवान् को अवतार लेना ही पड़ेगा। इस कलियुग के पांच हजार वर्ष बीतने पर, स्वयं कृष्ण दया पारावार होकर चैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतार ग्रहण करेंगे।"

भगवान् को दया क्यों आती है? भगवान् को दया इस कारण से आती है कि चर–अचर, सभी प्राणी भगवान् की संतान हैं। जब संतान, भगवान् का कहना नहीं मानती तो उनको भगवान् सतयुग, त्रेता, द्वापर में खूब समझाते हैं कि, "तुम अच्छे मार्ग पर चलो।" माँ–बाप, संतान को समझाते ही हैं कि यह उनका काम ठीक नहीं है, अच्छे रास्ते पर चलो। जब माँ–बाप की नहीं मानते, तो माँ–बाप परेशान हो जाते हैं और ऐसी संतान से मुख मोड़ लेते हैं। अब संतान के पाप का घड़ा भर जाता है।

जाको प्रभु दारुण दुख देही। ताकी मति पहले हर लेही।।

विनाशकाले विपरीतबुद्धिः।।

(संस्कृत सुभाषितानि–04 , चरक, सुभाषित 285)

फिर क्या होगा? नहीं मानेंगे, तो विनाश होगा। जब विनाश होने का समय आता है तो उसके विचार, शास्त्र के विरुद्ध हो जाते हैं। तो ऐसे मानव को सुधारने के लिए इस जगत में, थाने का, या कोर्ट का प्रबंध किया जाता है। जहाँ, इनको बड़ी सजाएं दी जाती हैं। मार से तो भूत भी कांपता है, मार से तो सर्कस का बबरी शेर भी मानव के कहे अनुसार नाचता है, बंदर भी मदारी के कहे अनुसार, समाज को सभी तरह से, नाच के दिखाते हैं। रीछ बड़ा खतरनाक जानवर होता है, जो पेड़ पर चढ़ कर भी मानव का भक्षण कर जाता है। जब इस प्रकार के हिंसक, खतरनाक जानवर भी, मार के आगे सीधे हो जाते हैं, तो मानव की तो क्या चलेगी? भगवान् ने, इसी कारण से, नरकों का आविष्कार किया। जैसे यहाँ थाना (जेल) है, वहाँ नर्क का आविष्कार किया, वहाँ, मानव जाति को बहुत ही खतरनाक घोर कष्ट में डाला जाता है। भगवान् ने मानव को अनुशासित करने हेतु ही अनेक धर्म शास्त्र दिए हैं जो उनकी साँस से प्रगट हुए हैं कि जिनको पढ़कर सुधर जाए। तब भी नहीं सुधरते, तो भगवान् ने सतयुग, त्रेता, द्वापर, के बाद खतरनाक कलियुग का आविष्कार किया। बहुत खतरनाक है कलियुग। भगवान् ने सोचा कि इसमें तो मानव सुधरेगा ही, लेकिन फिर भी नहीं सुधरता। तब भगवान् ने दया करके, एक सुगम, सरल मार्ग बता दिया, "मेरी संतानो! मेरा नाम लेकर ही सुधर जाओ। अरे!

सतयुग, त्रेता, द्वापर में तो ऐसे कठिन नियम, तपस्या है कि कलियुग का मानव तो उसकी छाया को भी नहीं पकड़ सकता। जंगल में जाकर, हजारों साल तक बिना जल के, बिना खाए, एक पैर से खड़े होकर, भगवान् को याद करो। तब कहीं भगवान् को दया आने से, आकर दर्शन देते हैं। यह तो सतयुग की भक्ति हुई व त्रेतायुग में, सभी राष्ट्रों को अधीन करो, अश्वमेध यज्ञ करो और भी बहुत तरह के यज्ञ हैं जिनमें अनाप–शनाप खर्च होता है तब कहीं भगवान् आते हैं। अरे! द्वापर में निर्मल व शुद्ध हृदय से, भगवान् का अर्चन–पूजन करो, तब कहीं भगवान् प्रसन्न होते हैं तथा पूजन में गलती होने का बहुत डर रहता है तथा स्वच्छता के साथ पूजन होना भी अनिवार्य है। लेकिन कलियुग में तो कुछ करना ही नहीं पड़ता। शुद्ध–अशुद्ध का कोई ध्यान ही नहीं है, कोई नियम भी नहीं है, कैसे भी भगवान् का नाम ले लो, तो भगवान् खुश हो जाते हैं और बिना मांगे, सब कुछ दे देते हैं और धर्म का मूल हस्तगत हो जाता है। दर्शन सुगमता से मिल जाता है, जैसे हमारे गुरुवर्ग को दर्शन हुआ है। भगवान्, इनडायरेक्ट (अप्रत्यक्ष) रूप से तो, थोड़ा हरिनाम करने पर ही, दर्शन दे देते हैं।

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

कृत युग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पाबहिं लोग।।

(मानस, उत्तर. दो. 102 ख)

कितना सरल रास्ता है।

जिन्ह कर नामु लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं।।

(मानस, बाल. दो. 314 चौ. 1)

अरे! नाम लेने से, जड़ सहित दुख मिट जाते हैं।

अरे भगवान् के नाम की गूढ़ गति जानना चाहते हो :

जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ।।

(मानस, बाल. दो. 21, चौ. 2)

अरे! जीभ से नाम जप करके देख लो, नाम का कितना प्रभाव होगा। एक शुद्ध नाम, इतना शक्तिशाली है कि जन्मभर, पाप करता रहे, तो भी

मानव, उतना पाप नहीं कर सकता। एक नाम ही, उसका उद्धार कर देगा। और भगवान् धन्वन्तरि जो, अमृत का कलश लेकर आए थे। जो आयुर्वेद के प्रवर्तक हैं। वह कह रहे हैं :

अच्युतानन्त गोविन्द नामोच्चारणभेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।।

(पाण्डवगीता श्लोक 25)

"मैं सच सच कह रहा हूँ कि नाम रूपी औषधि से सभी रोग नष्ट हो जायेंगे।"

मैं आपको बता रहा हूँ। देखो! हरिनाम की कृपा। हरिनाम की कृपा, कितनी कृपा है। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। अब मैं 90 साल का होने वाला हूँ। हरिनाम की कृपा से कोई रोग नहीं है, रत्तीभर रोग नहीं है। आंखों की नजर भी मेरी 5 साल के बच्चे जैसी है और मुझे 30–40 साल हो गए कभी बुखार हुआ ही नहीं। मुझे याद भी नहीं है कि कब चढ़ा था? मेरे पैरों में लड़खड़ाहट जरूर है क्योंकि 30–40 साल से, मैं बस एक तख्त पर बैठा हुआ हूँ, कहीं घूमा नहीं हूँ, इसलिए। मेरे पैरों में कोई दर्द नहीं है। यह क्या है? हरिनाम की कृपा। रात को 12–1 बजे जग जाता हूँ और सुबह तक हरिनाम करता हूँ। इतने बूढ़े आदमी को तो, कमर में दर्द हो जाए, घुटनों में दर्द हो जाए। मुझे कुछ नहीं होता, यह मैं अपनी बड़ाई नहीं कर रहा हूँ, यह हरिनाम की चर्चा कर रहा हूँ। हरिनाम में क्या है? अमृत बरस गया। अरे! शरीर में अमृत भर गया और जो जहर था – काम, क्रोध, मोह, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष सब निकल गया। अतः स्वाभाविक है, हरकत बिना इन्द्रियाँ भी शिथिल हो जाती हैं। 20 साल के युवक की तरह ताकत है, पैरों में दर्द का नाम निशान नहीं है, केवल लड़खड़ाहट है। बिना बैंत के चलता रहता हूँ। जब अधिक कहीं दूर जाना पड़ता है तब मैं बैंत का सहारा लेता हूँ। इसे मेरी बड़ाई नहीं समझें, यह तो मैं हरिनाम की वजह से ही बोल रहा हूँ। भक्त लोग कहते हैं कि, आपका हरिनाम अब तक कितना हो चुका है? कोई कहते हैं 800 करोड़ हो गया है। भाई! मैं नहीं जानता, मुझे मालूम नहीं है। लेकिन लोग कहते हैं कि जबसे आप कर रहे हो, तब से कैलकुलेशन (गणना) किया तो 800 करोड़ हो चुका है, और अब भी करते ही रहते हो। 5 लाख भी किया है आपने, और 3 लाख तो करते ही रहते हो। क्योंकि हरिनाम के अलावा मेरे

पास कोई काम नहीं है। 30–40 साल से 9 बजे से पहले सो जाना, और 12–1 बजे उठ जाना, फिर अपने हरिनाम में लग जाना। यह सब मेरे गुरुदेवजी की कृपा और भगवान् की कृपा से ही हो रहा है। इसमें मेरी कोई शक्ति विशेष नहीं है। नित्य ही श्रीमद्भागवत, चैतन्य चरितामृत और तुलसीदासकृत रामायण का पठन होता रहता है। अतः मुझे एक पल की भी फुर्सत नहीं है।

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।

(मानस, उत्तर. दो. 40 चौ. 1)

अरे! दूसरे का हित करना ही सबसे बड़ा धर्म है। सतयुग, त्रेता, द्वापर के मानव तथा देवता तक, भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि हमारा जन्म, कलियुग में व भारतवर्ष में हो जाए तो हम सुगमता से वैकुण्ठ की प्राप्ति कर लेंगे। हम कितने भाग्यशाली हैं कि ऐसा शुभ अवसर हमको मिला है, फिर भी हम सोते रहते हैं।

भविष्य में कई कल्पों में भी ऐसा शुभ अवसर नहीं मिलेगा।

कलियुग में भगवान् को कोई मानता ही नहीं है। भगवान् के ग्राहक बहुत कम होने से, विरले भक्त होने से, भक्तों की कीमत बढ़ गई। कलिकाल में, भगवान् इस कारण ही शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं, जहाँ किसी वस्तु की कमी हो जाती है, तो उसकी चाहना ज्यादा होने से कीमत बढ़ जाती है। भगवान् ने कलियुग इसी कारण बनाया है कि मेरी संतान, मुझे सरलता से उपलब्ध कर ले तथा केवल मेरा नाम संकीर्तन करके तथा नित्य एक लाख नाम जप कर, अपना मनुष्य जन्म सफल कर ले। इस समय में उमर भी कम होती है, मानव अनेक रोगों से ग्रस्त रहता है, खान पान भी दूषित रहता है, पीने का पानी तक शुद्ध नहीं मिलता। ऐसे कमजोरी महसूस करके ही, भगवान् ने दया करके, अपने को उपलब्ध करने का सरल, सुगम मार्ग, अपनी संतानों को दिया है।

इस युग में चारों ओर उपद्रव ही उपद्रव होते रहते हैं, कहीं सूखा पड़ता है, पानी के लिए मानव तरसता रहता है, कहीं पर सुनामी लाकर गाँव के गाँव डूब जाते हैं, कहीं इतनी बरसात हो जाती है कि सब चर–अचर परेशान हो जाते हैं, कहीं पर तूफान आकर, सब को तहस नहस कर देता है, कहीं भूकंप आने से गाँव के गाँव जमीन में धंस जाते हैं।

यह सब क्या है? यह कलियुग के तमाशे हैं। समय पर मौसम नहीं होते, स्वार्थ का बोलबाला हो गया है। माँ–बाप को कोई नहीं मानता, तो वृद्धावस्था बड़ी मुश्किल से निकलती है, घर–घर में कलह होता रहता है, भाई–भाई से सलाह नहीं लेता, सालों से सलाह लेने लगता है। मैं यह सब शास्त्रीय बात कह रहा हूँ। अपने मन से नहीं कह रहा हूँ। कहने का मतलब है कि मर्यादाओं का नामोनिशान ही खत्म हो जाता है।

अब ऐसी कुछ बात बता दूँ कि आजकल जो जन्मपत्री बनती है, वह 99% गलत होती है। अब जैसे ही बच्चा पेट से बाहर आता है, नर्स उसी समय को जन्म का समय बता देती है, यह समय बताने से टेवा (जन्मपत्री) गलत बन जाता है। जब तक बच्चा, पेट की नाल से जुड़ा रहता है, तब तक वह पिछले जन्मों से जुड़ा हुआ रहता है। जब नाल काटा जाता है, वही समय ही सही जन्म का समय होता है, इस समय से बनी जन्मपत्री सही होती है। जैसाकि श्रीमद्भागवत महापुराण बता रहा है कि इस समय बच्चे के हेतु दान इत्यादि का संकल्प मन में बोल देना चाहिए। उससे बच्चा शरीर से स्वस्थ रहेगा, बुरे ग्रह नहीं आएंगे, बच्चे के लिए बहुत से लाभ हैं। इसका शुभ प्रभाव माँ पर भी पड़ेगा। माँ भी स्वस्थ रहेगी। जैसाकि नंदबाबा, कृष्ण के लिए करते थे, ब्राह्मणों को सर्वश्रेष्ठ दान देते थे क्योंकि ब्राह्मण ही भगवान् के इष्टदेव हैं।

जैसा श्रीमद्भागवत पुराण में बोल रहे हैं कि मानव के शरीर में चार कोष्ठ होते हैं मन, बुद्धि, चित, अहंकार। अहंकार ही तेरा–मेरा का भाव उत्पन्न करता है। यही भाव जन्म–मरण का कारण होता है। मन संकल्प विकल्प करता है, जो माया से सम्बन्धित है। बुद्धि निर्णय करती है कि ये ठीक है, ये ठीक नहीं है। चित्त में चिंतन जन्म लेता है। चिंतन, शुभ–अशुभ दोनों प्रकार का है। यदि चिंतन होते ही, उसको हटा दिया जाए तो यह मन तक नहीं आएगा, मन तक आने पर ही अपना प्रभाव दिखा देगा, मन पर आने के बाद इन्द्रियाँ इस चिंतन को पकड़ लेंगी, जब इन्द्रियाँ पकड़ लेंगी, तो कर्म करवाकर ही छोड़ेंगी। चिंतन अच्छा भी हो सकता है तथा बुरा भी हो सकता है। बुरा चिंतन होने पर फौरन उस जगह को छोड़ दो और किसी श्रेष्ठ, वृद्ध मानव के पास जा बैठो या ज्ञानी पुरुषों के पास जा बैठो, थोड़ा ठंडा पानी पीना भी इसमें सहायक होगा। ठंडे पानी से स्नान कर लो तो शीघ्र खत्म हो जाएगा। बुरे चिंतन का यही सही सुगम उपाय है। करके देखो, कितना सही रिजल्ट (नतीजा) आपके हाथ में आता है।

मानव में पाँच कोश होते हैं – उसे अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश तथा आनंदमय कोश कहते हैं। आत्मा, आनंदमय कोश में विराजमान रहती है। इसका कनेक्शन (सम्बन्ध) चारों कोशों से जुड़ा रहता है। जब यह कनेक्शन टूट जाता है, तो आत्मा अन्नमय कोश से निकल कर कर्मानुसार दूसरे शरीर में चली जाती है। लिंग शरीर, कभी खत्म नहीं होता, यही कर्म भोगने का शरीर है, जब यह समाप्त हो जाता है, तो दिव्य शरीर मिल जाता है।

यह दिव्य शरीर मिलता है सत्संग से, जैसे यमलार्जुन, पेड़ की योनि में नंदबाबा के आंगन में खड़े थे, कृष्ण को इनका उद्धार करना था, तो ओखल से बँधे हुए दोनों पेड़ों के बीच में से, निकलने से, ओखल अटक गया, कृष्ण ने जोर लगाया तो दोनों उखड़कर जमीन पर गिर गए। उनमें से दिव्य शरीर लेकर, दोनों खड़े हो गए और कृष्ण को नमस्कार किया। जब दिन में पेड़ गिरने से जोर का शब्द हुआ तो सब इकट्ठे हो गए, वहाँ जो बच्चे खेल रहे थे, उन्होंने, सबको कहा, "इन पेड़ों में से दो चमत्कारी पुरुषों को निकलते हुए हमने देखा है।" बच्चे कभी झूठ नहीं बोलते, तब सबको विश्वास हो गया कि ये नारदजी के श्राप के कारण वृक्षयोनि में अपना कर्म भोग रहे थे। यह प्रसंग श्रीमद्भागवत महापुराण में पढ़ने को मिलता है। दिव्य शरीर, तब तक नहीं मिलता, जब तक पिछले संस्कारों वाला लिंग शरीर, समाप्त नहीं होता। भगवान् की भक्ति से ही, दिव्य शरीर उपलब्ध होता है। दिव्य शरीर से जीव भगवान् के वैकुण्ठ आदि अनेक धामों में जाकर आनंद भोगता है।

वैकुण्ठ धाम तथा गोलोक धाम भी अनंत हैं, जिसका जैसा भाव, भगवान् के प्रति होता है, वह उसी भाव से उस धाम में जाता है, ऐसा धर्मशास्त्र बोल रहे हैं। भगवान् की उपलब्धि का स्थान कहाँ है। चित्त है, यह मन से जुड़ा रहता है। जैसे चित्त में अच्छी–बुरी स्फुरणा हो जाती है मन इसे पकड़ लेता है। अच्छी स्फुरणा से भगवद् प्राप्ति होती है, और बुरे से संसार का बंधन हो जाता है।

अब ध्यानपूर्वक मेरे भगवद्स्वरूप श्रीगुरुदेव की बात सुनने की कृपा करें! आप भगवान् की गोद में शीघ्र चले जाओगे। भगवान्, आपको एक सैकंड नहीं छोड़ेगा। भगवान् आपके पीछे छायावत चिपका रहेगा। भगवान् अपने भक्तों को कह रहे हैं कि, "इस स्वभाव वाले, मेरे प्यारे भक्त को मैं

छोड़ना चाहूँ, तो भी नहीं छोड़ सकता क्योंकि इसने मुझे मजबूर कर दिया। मेरे में ताकत नहीं कि मैं इसे छोड़ दूँ। इसे त्याग दूं।" आपको भगवान् को कैसे याद करना है जो नीचे लिखा जा रहा है। जिस प्रकार से भरतजी, अपने बड़े भाई को याद करते थे, इसी प्रकार आप भी याद करो।

पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू।।

(मानस, अयोध्या. दो. 325 चौ. 1)

हरिनाम करते हुए भगवान् को पास में रखो और जैसे भरतजी ध्यान कर रहे हैं, "मेरे प्यारे बड़े भाई राम और माता सीता ऐसी चिलचिलाती धूप में नंगे पाँव काँटों भरे रास्ते से जा रहे हैं। लक्ष्मण सहित इन तीनों के पाँव जल रहे होंगे। काँटों से पग छलनी हो गये होंगे, तो रोने के सिवाय उनकी क्या सहायता करूँ?" भरतजी इस जीभ से हरिनाम करते कह रहे हैं, "हा मैया! हा राम! हा लक्ष्मण भईया! मेरा हर एक पल युग के समान बीत रहा है।" इस तरह से हरिनाम करना चाहिए। इस प्रकार से हरिनाम जपो तो भगवान् आपको 100% दर्शन देंगे तथा आपको छोड़कर जाने में असमर्थ हो जाएंगे।

ऐसी अवस्था क्यों नहीं आती? ऐसी अवस्था इस कारण से नहीं आती है कि एक तो आप भगवान् को चाहते ही नहीं हो। दूसरा कारण है कि आपका झुकाव 80% घर–गृहस्थी में है और आपने मनुष्य जन्म का महत्त्व ही नहीं समझा कि मनुष्य जन्म भी बार बार मिलेगा या नहीं। मनुष्य जन्म कितना कीमती है, इसको आपने नहीं जाना। मनुष्य जन्म, फिर अनेक कल्पों तक भी नहीं मिलेगा। 84 लाख योनियों में चक्कर काटते रहोगे। अतः हम कितने भाग्यशाली हैं कि भगवान् ने भारत में हमें जन्म दिया है और इस अवसर को खो देने से बहुत बड़ा नुकसान है। मौत का कोई ठिकाना नहीं है कि एक साँस आये, दूसरी नहीं आये। मौका चूक गए तो पछताओगे। सीता भी इसी तरह भगवान् को याद करती थी। सुनो :

जेहि बिधि कपट कुरंग सँग धाइ चले श्रीराम।
सो छबि सीता राखि उर रटति रहति हरिनाम।।

(मानस, अरण्य. दो. 29 ख)

जैसे भगवान् रामजी, हिरन को मारने के लिए गए थे, वही छवि, याद कर करके सीता 'राम! राम!' कर रही है। जीभ से हरिनाम रट रही है। 'राम! राम!' कर रही है।

सतयुग, त्रेता, द्वापर के मानव कहते हैं कि हमें भगवान् कलियुग में जन्म दे दे तो वे हरिनाम जप करके अपना उद्धार कर लें। इसी प्रकार देवता भी तरसते हैं, "हमारा कलियुग में जन्म हो जाए तो हम सुखी हो जाएं।" और कलियुग के मानव तो दुष्कृति की वजह से अपना जीवन माया की गोदी में काट रहे हैं जो दारुण दुख का भंडार है। कलियुग में भगवान् का उपलब्ध होना, कितना सरल और सुगम है। जब भक्त सात तरह के आचरण का पालन करने का स्वभाव बना लेता है तो भगवान् उसे छोड़ना ही नहीं चाहते हैं, छाया की तरह उसके पीछे रहते हैं, चिपके रहते हैं।
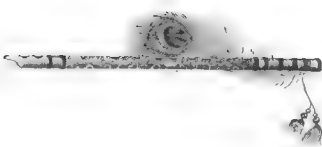
संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : जब हरिनाम धीरे-धीरे से करते हैं तो कृष्ण नाम अच्छा सुनाई देता है, प्रीति भी होती है और आनंद भी आता है। पर ऐसा करने से संख्या नहीं होती ?

उत्तर : जल्दी-जल्दी करके भी हरिनाम कान से सुना जा सकता है। लेकिन इनको आदत (अभ्यास) नहीं है। आदत हो गई तो उतना ही जल्दी हो जाएगा और सुनाई भी देगा।

प्रेम से हरिनाम जपो और कानों से सुनो

Chanting Hari Naam sweetly and listen by ears

सब मन का ही खेल है

28

15 अप्रैल 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण युगल में अधमाधम इस दासानुदास
अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा
अहैतुकी प्रेमा भक्ति की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

मनुष्य मन, वाणी और शरीर से पाप करता रहता है। यह पाप क्यों करता है? जबकि मानव जानता भी है कि इस पाप से नरक की उपलब्धि होगी, तब भी करता है। इसका कारण है, इसके पिछले जन्म के कर्म संस्कार। सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण इसे प्रेरित करके अशुभ पाप कर्म में अग्रसर करते रहते हैं। इसमें इसका कोई वश नहीं है। करे भी क्या? न चाहते हुए भी करना पड़ रहा है। इन पाप कर्मों को हटाने हेतु साधु संग व धर्म शास्त्र ही केवल मात्र उसके सहायक बन सकते हैं, अन्य कोई भी मार्ग नहीं है। साधु संग भी तब ही मिलेगा जब भगवान् की कृपा होगी।

बिनु हरि कृपा मिलें नहीं संता

(मानस, सुन्दर. दो. 6, चौ. 2)

यह ध्रुव सत्य सिद्धांत है। सच्ची कहावत है।

शक्ति रहते तथा बुढ़ापा आने से पहले यदि सुकृतिवान को साधु संग उपलब्ध हो जाए तो मानव पाप करने से बच सकता है। योग से, तीर्थ सेवन से, ज्ञान से, यज्ञ से पाप करने की वासना नहीं जाती, केवल भगवद् नाम से ही जाती है। भगवान् का नाम चाहे अवहेलना पूर्वक ही क्यों न लिया जाए, पाप वासना की गंध समाप्त हो जाती है। एक शुद्ध नाम में ही वह शक्ति है कि इतना पाप जन्म भर में मानव कर ही नहीं सकता। अजामिल कितना पापी था। कुल्टा पत्नी से दस पुत्र उत्पन्न किए और अनाचार में लीन था। उसका अपने बेटे के मोह के कारण, जिसका नाम

नारायण था, मरते समय 'नारायण' नाम मुख से निकल गया तो उसे वैकुण्ठ की उपलब्धि हो गई। जैसे बिना जाने अमृत पी जाएं या बिना जाने जहर खा जाएं तथा बिना जाने अग्नि छू जाएं तो वह अपना प्रभाव दिखाए बिना नहीं रहते। ऐसे ही हरिनाम बिना जाने ही गिरते, पड़ते भी उच्चारण हो जाय तो अपना प्रभाव डाले बिना रह नहीं सकता। अतः गुरुदेव सब भक्तों से प्रार्थना कर रहे हैं कि मेरी बात मान लो। तुम नित्य एक लाख नाम अर्थात् 64 माला उच्चारण से करो ताकि वैकुण्ठ की उपलब्धि हो जाए।

अंत समय में जब मौत आए तो मन भगवद् चिंतन में लगना चाहिए। इसका लक्षण मेरे भगवद् स्वरूप गुरुदेव बता रहे हैं। पांच कर्म इंद्रियों में खिंचावट महसूस होगी। साँस लगातार न आ कर रुक रुक कर आने लगेगी। आंखों में धुंधलापन आने लगेगा। कान में बहुत गहराई से ऊंडा आवाज सुनाई देगी जैसे कोई गहरे कुएं में आवाज दे रहा हो। हाथ पैरों की नसों में खिंचावट महसूस होने लगेगी। जो उम्र भर काम में व्यस्त रहा होगा वह कर्म बार–बार चिंतन में आने लगेगा, जैसे कि किसी ने उम्रभर बकरियां चराई हैं तो उसे मरते समय बकरियां ही बार–बार याद आती रहेंगी। इस याद में प्राण निकल जाएंगे तो अगला जन्म बकरी का ही होगा अर्थात् कहने का मतलब है जो अपने जीवन में जिस कर्म में संलग्न रहा है वही मरते समय याद आएगा। अंत समय के भावानुसार अगला जन्म उसे उपलब्ध होगा। मरते समय, इसे इतनी पीड़ा होने लगेगी कि जैसे हजार बिच्छू काटते हैं, डरावने यमदूत लेने आते हैं, लेकिन जो भगवान् की शरण में रहकर जीवन भर हरिनाम करता रहता है उसे अंत में स्वयं भगवान् लेने आते हैं। मरने के समय इसका चित्त भगवान् का ही चिंतन करता है, इसे जरा भी कष्ट नहीं होता, आसानी से प्राण शरीर से निकल जाते हैं। आत्मा आनंदमय हो कर भविष्य में संत के सानिध्य में चली जाती है। जैसे हाथी के गले से माला टूट जाती है और हाथी को इसका पता ही नहीं पड़ता कि गले से माला टूट गयी है। जैसे मेरे गुरु भाई निष्किंचन महाराज बोलते बोलते चले गए हैं। बिल्कुल स्वस्थ थे, भगवान् की मंगला आरती करके अपने कमरे में आए थे और जब ब्रह्मचारी दूध देने आया तो महाराज बोले, "ओ मुंडे! आज मैं जा रहा हूँ।" सभी कमरे में इकट्ठे हुए और महाराज बोलते–बोलते लुढ़क गए। भगवान् स्वयं लेने आए थे। अभी थोड़े दिन की ही बात है। मुझे बहुत प्यार करते थे। कभी कभी छींड की ढाणी भी आ जाते थे।

जो मानव माया में लिप्त है उसे मरने से पहले दस दिन में बुरे सपने आने लगते हैं। तेल में स्नान करता दिखाई देगा, गधे या ऊँट पर चढ़ता हुआ दिखाई देगा, डरावने स्वप्न, भूत आदि दिखाई देंगे, अपने पैरों की तरफ देखेगा तो काले दिखाई देंगे आदि–आदि लक्षण दस दिन में दिखाई देंगे। भैंसे पर यमराज दिखाई देगा।

जो भगवान् का भक्त होगा उसे आध्यात्मिक स्वप्न आएंगे, जैसे गुरु दर्शन होगा, मंदिर में ठाकुर दर्शन करता हुआ, मंदिर की परिक्रमा करता हुआ, दण्डवत् करता हुआ तथा सत्संग सुनता हुआ, तीर्थ में स्नान करता हुआ, संतोष से बातें करता हुआ, गरीबों की हर प्रकार से सेवा में रत होता हुआ, भगवान् उसकी ओर देख कर मुस्कुरा रहे हैं। स्वप्न में नाम जप करता हुआ, अष्ट सात्विक विकार उदय होते हुए गहरी निद्रा में अनुभव करेगा आदि आदि लक्षण दस दिनों में होंगे, तो समझना होगा कि अब तू संसार से विदा हो रहा है एवं अलौकिक संसार में पदार्पण कर रहा है। यह सब लक्षण धर्म शास्त्रों में अंकित हैं। मेरे गुरुदेवजी साक्षात् भगवान् के रूप हैं। सब भक्तों को स्वप्न सुनाकर सावधान कर रहे हैं। आप भक्तजन मानें न मानें जो कुछ लिखा जा रहा है वह किसी दिव्य शक्ति द्वारा ही प्रेरणा करके लिखा जा रहा है। इसमें साधारण मानव की शक्ति नहीं है। जो एक ही विषय पर इतना विस्तार से लिख सकता है। जो केवल भगवद् नाम, हरिनाम से ही सम्बंधित हैं। हरिनाम की क्या शक्ति है? कैसा प्रभाव है? कैसे जपना चाहिए? जपने पर क्या–क्या लक्षण सामने आते हैं? आदि–आदि वर्णन होता है।

कपिल–देवहूति संवाद अनुसार इस मानव के बंधन और मोक्ष का कारण केवल मात्र मन ही है। कुसंग में अपना जीवन बिताने पर यह बंधन का कारण हो जाता है। सत्संग में अपना जीवन बिताने पर यह मोक्ष का कारण हो जाता है। मन अनंत कल्पों से उस कुसंग में ही पड़ा रहता है। सत्संग तो भगवत्कृपा बिना मिल नहीं सकता। अतः मानव का मन कुसंग की वजह से चंचल रहता है। मन की स्थिरता ही मोक्ष का कारण बनती है, यह स्थिरता सच्चे साधु के संग से ही मिल सकती है। साधु संग भगवत्कृपा बिना नहीं मिल सकता।

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग।।

(मानस, सुन्दर. दो. 4)

सच्चे साधु का लव मात्र का संग ही मोक्ष का कारण बन जाता है। कलियुग में सच्चा साधु मिलना खांडे की धार है। जिसकी बहुत ही सुकृति होगी उसे ही सच्चा साधु भगवान् की कृपा से मिल सकेगा। शिवजी पार्वती को कह रहे हैं :

गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान।।

(मानस, उत्तर. दो. 125 ख)

वाल्मीकि को सच्चा साधु नारदजी मिले तो वाल्मीकि त्रिकालदर्शी हो गए। भगवान् मर्यादा पुरुषोत्तम राम तो हजारों साल बाद में प्रकट हुए और वाल्मीकिजी ने रामायण पहले ही रच दी कि भगवान् इस प्रकार से लीला करेंगे। कहने का मतलब है कि सच्चा साधु किसी भाग्यशाली को ही उपलब्ध होता है। सतयुग में, त्रेता में, द्वापर में सच्चे साधु बहुतायत से होते थे, लेकिन कलियुग में तो ढोंगी साधुओं की भरमार रहती है। संन्यासी भी घर बसाने लगते हैं। भगवान् मानव पर कितनी कृपा कर रहे हैं, फिर भी मूर्ख मानव समझता नहीं है।

बिबसहुँ जासुनाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं।।

(मानस, बाल. दो. 118 चौ. 2)

भगवान् बोल रहे हैं, "हे मेरी संतान मानव! तू जबरदस्ती ही मेरा नाम कर। मैं तेरे अनंत जन्मों के गहरे रचे–पचे पाप को जलाकर भस्म कर दूँगा।" इससे ज्यादा भगवान् की दया और क्या होगी?

जौं सभीत आवा सरनाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं।।

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 4)

मानव को भगवान् की शरण होने में क्या बाधा है? केवल किसी जीव मात्र को सताओ नहीं, बस भगवान् राजी (खुश) हो जाएंगे। यदि हो सके तो तन, मन, वचन तथा धन से सहायता करो। जब ऐसा मानव का स्वभाव बन जाएगा तो दुख कष्ट उसके पास आ ही नहीं सकता। क्यों नहीं आ सकता? क्योंकि उसने अच्छा कर्म किया है। कहावत है :

करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा।।

(मानस, अयोध्या. दो. 218 चौ. 2)

अमृत बीज बोओ तो सुख का फल मिलेगा। जहर बीज बोओगे तो दुख का फल हस्तगत होगा। कोई किसी को दुख दे ही नहीं सकता। अपना कर्म ही दुख का कारण होता है। भगवान् बोलते हैं कि, "जो कुछ तुझे मेरे द्वारा प्राप्त हुआ है उस कर्म को तू मेरा समझ के कर, तो तुझे उस कर्म का फल नहीं भुगतना पड़ेगा। यदि तू अपने लिए अपना समझकर करेगा तो इस कर्म का फल तुझे अवश्य ही भुगतना पड़ेगा। ऐसा करने से तुझे कौन सा श्रम होगा? कितना सरल, सुगम रास्ता बता दिया फिर भी तू समझता क्यों नहीं है। न समझेगा तो दुख भोग करता रह। अरे! तेरे जो भी सम्बन्धी हैं, यह सब तेरे लुटेरे हैं। यह तेरी कमाई खा रहे हैं, तू उन्हें पालता पोसता है, खाना–पीना देता है, पढ़ाता है, नौकरी के हेतु भगवान् से प्रार्थना करता है, फिर शादी में अनाप–शनाप खर्चा करता है, पुत्र को पत्नी ला कर देता है, फिर बेटा–बहू, तुझे पूछते भी नहीं हैं कि हमारे माँ–बाप कहाँ पर पड़े हैं। यह क्या है? लुटेरे हैं या प्यारे हैं? फिर इनमें फंसकर तू मुझे भूल जाता है जो कि मैं तुम्हारा जन्म–जन्म का साथी हूँ। सच्चे अमर साथी को भूल गया और नए–नए साथी बनाता रहता है। यह क्या तेरी समझदारी है?"

भगवान् की माया भी विचित्र ही है। उदाहरणस्वरूप चिड़ा–चिड़ी अपने अंडों को पंखों के नीचे सेते हैं। बच्चे हो जाने पर, दोनों कहीं से चुग्गा लाकर उनके मुख में देते हैं। थोड़े दिनों में उन बच्चों के पंख निकल आते हैं, बच्चे घोंसले में फुदकते हैं तो चिड़ा–चिड़ी आनंदमग्न हो जाते हैं। थोड़े दिनों में बड़े हो जाते हैं, उड़ने लग जाते हैं। एक दिन ऐसा आता है कि जंगल में उड़ जाते हैं, फिर माँ–बाप को कभी भी आकर मिलते नहीं हैं। यही माया है। इस मानव को भगवान् ने बुद्धि दी है। यह भी चिड़ा–चिड़ी से कम नहीं है। मानव से तो चिड़ा–चिड़ी अच्छे हैं जिन बेचारों को कोई ज्ञान ही नहीं है। खाना–पीना और भोग करना, इतना ही जानते हैं। मानव से तो सभी जीवमात्र मर्यादा में रहते हैं। मानव समझदार होकर भी हर वक्त गलत रास्ते में चलता है। फिर कहता है कि वह बहुत दुखी है। दुखी तो रहोगे ही जबकि तुम दुख ही बो रहे हो। जो बोओगे वही तो उपलब्ध होगा।

As you sow so shall you reap

जैसा करोगे वैसा भरोगे। इसमें किसका दोष है? दोष है तो स्वयं का।

श्रीमद्भागवत महापुराण बता रही है कि पहले भगवान् एक ब्रह्म के रूप में ही था। सब जगह सुनसान ही सुनसान था। सृष्टि बिल्कुल नहीं थी। तब भगवान् ने दक्ष प्रजापति को सृष्टि करने का आदेश दिया। पहले मानसिक सृष्टि होती थी। बाद में दक्ष को भगवान् ने आदेश दिया कि अब से स्त्री–पुरुष के संसर्ग से सृष्टि उत्पन्न करो। दक्ष ने सृष्टि उत्पन्न की, लेकिन नारदजी ने उनकी संतान को बोला, "गृहस्थ होने में क्या रखा है? भगवान् का भजन ही सर्वोपरि है।" और उनको भजन में लगा दिया, तो दक्ष ने नारदजी को श्राप दे दिया कि, "तुम सबको बिगाड़ते फिरते हो अतः तुम कहीं पर भी अधिक देर तक ठहर नहीं सकोगे।" पर नारदजी ने श्राप को सिर माथे पर स्वीकार किया कि जैसी भगवद् इच्छा हो उसी में खुशहाल रहना चाहिए। नारदजी जानते थे कि भगवान् की इच्छा बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता। अतः भगवान् की इच्छा है कि उन्हें श्राप दिला कर एक जगह रुकने का अवसर नहीं दिया। भगवान् किसी को प्रेरणा करके श्राप, वरदान दिलवाते रहते हैं।

श्री चैतन्य महाप्रभुजी लगभग 536 साल पहले बंगाल में, मायापुर के, नदिया धाम में अवतरित हुए थे। स्वयं कृष्ण ही श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में इस धरातल पर प्रकट हुए हैं। इनकी संतानें चर–अचर प्राणी, भगवान् कृष्ण से अनेक अनगिनत कल्पों से बिछुड़े हुए हैं। भगवान् को दयानिधि बोलते हैं, अतः दया परवश होकर 28 द्वापर के अंत में जब कलियुग की संध्या उदय हुई तब चैतन्य महाप्रभु के रूप में, राधा भाव भावित होकर, चर–अचर प्राणियों पर कृपा करने हेतु भगवान् कृष्ण ही इस मृत्युलोक के धरातल पर पधारे। जो भी भक्त इनके शरणागत होकर हरिनाम करेंगे उनका उद्धार इसी जन्म में होकर वैकुण्ठ धाम की उपलब्धि कर लेंगे। ऐसा क्यों किया? क्योंकि कलियुग में जीव हर प्रकार से दुखी रहते हैं, अनंत रोगों के शिकार बन जाते हैं, खाद्य पदार्थ दूषित हो जाते हैं, पानी तक दूषित रहता है, कोई भी शुद्ध वस्तु उपलब्ध नहीं होती, मानव में स्वार्थ भर जाता है, प्रेम तो मूल सहित गायब हो जाता है, कोई किसी का रक्षक पालक नहीं होता, मक्खियों की तरह मानव, मानव को मार देते हैं, जगह–जगह कसाईखाने खुल जाते हैं, जानवरों के मांस से पेट श्मशान बन जाता है, अधिकतर मांसाहारियों का साम्राज्य फैला रहता है। इस कलिकाल में हर ठौर दुख ही दुख है। दुख क्यों है? दुख इस कारण से है कि प्रत्येक देश में विनाशकारी बम आदि बनाए जा चुके हैं, अतः इनका परीक्षण समूह में होता रहता है, जिससे जहरीली बरसात होती है।

जहरीली बरसात से चराचर प्राणियों पर बुरा प्रभाव पड़ता रहता है। कलियुग में कोई मर्यादा नहीं रहती, समय पर न बरसात होती है, न गर्मी पड़ती है, न सर्दी होती है। कहीं सुनामी विनाश का कारण बन जाती है तो कहीं तूफान से सब ठौर अस्त–व्यस्त हो जाता है। कहीं सूखा पड़ता है, कहीं पर पीने का पानी नहीं मिलता। अन्न तक की असुविधाएं दसों दिशाओं में चक्कर काट रही हैं। रामसुखदासजी एक विरक्त संत हुए हैं, उन्होंने कहा था कि तीस–चालीस साल बाद पीने को पानी नहीं मिलेगा।

अतः भगवान् को दया आ गई तो चैतन्य महाप्रभु पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हैं। इसके प्रमाण नीचे लिखे जा रहे हैं। भविष्यवाणी करते हुए स्वयं भगवान् कूर्म पुराण, देवी पुराण, गरुड़ पुराण, आदि पुराणों एवं बृहद् नारदीय पुराण में कहते हैं कि, "कलियुग के प्रारंभ में श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में संसार के जीवों के कल्याण हेतु नवद्वीप धाम, मायापुर में पवित्र गंगा जी के किनारे शची माता के पुत्र के रूप में प्रकट होंगे एवं हरिनाम का प्रचार करेंगे। जिससे जीव मात्र मेरा नाम सुन–सुनकर परमसुख उपलब्ध करेंगे।"

कूर्म पुराण कह रहा है :

कलिना दह्यमानानां उद्धार्य तनु–भृतं,
जन्म प्रथम संध्यायां भविष्यति द्विजालये।।

(कूर्म पुराण)

कूर्म पुराण के अनुसार, "मैं इस पृथ्वी पर ब्राह्मण कुल में कलिरूप दावानल से जलते हुए भक्तों के उद्धार के लिए कलियुग की प्रथम संध्या में अवतीर्ण होऊँगा।"

नाम सिद्धांत संपत्ति प्रकाशन परायणः।
क्वचित् श्री कृष्ण चैतन्य नामालोके भविष्यति।।

(देवी पुराण)

देवी पुराण के प्रसंग में महादेवजी अपनी पत्नी पार्वती को कहते हैं कि, "हे पार्वती! श्री हरिनाम कीर्तन व भगवान् के नाम से ही जीवों का कल्याण होगा तथा सारी इच्छाएं पूरी होंगी। इनके लिए स्वयं कृष्ण ही चैतन्य नाम से, नवद्वीप नामक धाम में प्रकट होंगे।"

किसी के मरने के बाद उसके घर में गरुड़ पुराण पढ़ी जाती है। इसमें लिखा है "भगवान् कृष्ण ही श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट होंगे। वृंदावन में जैसे गोपियों के संग में नृत्य करते हैं उसी प्रकार नवद्वीप धाम में, जगन्नाथपुरी धाम में नृत्य संकीर्तन करेंगे। सभी को प्रेम प्रदान करेंगे।" इसी प्रकार से पुराणों में बहुत से श्लोक हैं जिनमें सूक्ष्म रूप में बताया गया है :

कलिना दह्यमानानां परित्राणाय तनु–भृतं।
जन्म प्रथम संध्यायां करिष्यामि द्विजातिषु।।

(गरुड़ पुराण)

"कलि द्वारा ताप ग्रस्त जीवों के परित्राण हेतु कलियुग की प्रथम संध्या में द्विज जाति के मध्य, मैं जन्म ग्रहण करूँगा।"

अहं पूर्णो भविष्यामि, युगसंधौ विशेषतः।
मायापुरे नवद्वीपे, भविष्यामि शचीसुतः।।

(गरुड़ पुराण)

भगवान् कृष्ण कहते हैं कि, "द्वापर युग की समाप्ति तथा कलियुग की शुरुआत में, मैं ही श्री मायापुर नवद्वीप धाम में शची देवी के पुत्र रूप से पूर्णावतार के रूप में प्रकट होऊँगा।" फिर कृष्ण बोल रहे हैं, "मैं संन्यास वेश में, एक हाथ में दंड तथा दूसरे हाथ में कमंडल धारण करके इस पृथ्वी तल पर श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतरित होऊँगा।"

कलेः प्रथम संध्यायां, लक्ष्मीकांतो भविष्यति।
दारुब्रह्म समीपस्थः संन्यासी गौर विग्रहः।।

(गरुड़ पुराण)

"कलियुग की प्रथम संध्या में षड्–ऐश्वर्य परिपूर्ण भगवान् ही दारू ब्रह्म, श्री जगन्नाथ जी के समीप, श्रीगौरांग रूप धारण कर, संन्यास वेश में अवतीर्ण होऊँगा। संन्यास लेने के पहले लक्ष्मी प्रिया से पाणिग्रहण करूँगा अर्थात् शादी करूँगा।"

कृष्ण ने अपना नाम चैतन्य महाप्रभु क्यों रखा? इसका कारण यह है कि 'चैतन्य' का अर्थ है कि सभी चर–अचर जीवों को चैतन्य करना, जागृत करना, सावधान करना। 'महा' शब्द इस कारण से रखा है कि महा

का अर्थ है कि भगवत् अवतारों में इतना करुण हृदय अवतार कोई नहीं है। श्री नित्यानंद नाम क्यों रखा? इस कारण से रखा कि जो जीव उनकी शरण में हरिनाम नित्य करेगा वह प्रत्येक क्षण आनंद ही आनंद में डूबा रहेगा। श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु ने अपना नाम 'हरि' इस कारण रखा है कि जीव मात्र कलिकाल में हर प्रकार से दुखी रहता है। दुखों को सुखों में बदलने हेतु कृष्ण ने अपना नाम इस प्रकार से रखा है। स्वयं अपना नाम नित्य, थैली में माला रखकर, जप किया है ताकि मेरे देखा देखी सभी हरिनाम की नित्य 64 माला अर्थात् एक लाख मेरा नाम लें जिससे इनका उद्धार हो जाए। इस दारुण दुखी संसार से पार हो कर मेरे धाम वैकुण्ठ में चले जाएं। ऐसा दयालु अवतार न कभी हुआ है न आगे होगा। संसार में जो प्राणी इधर नहीं आ सका वह तो निरा भाग्यहीन है। उसके हाथ में कीमती हीरा आ गया था, गंदी नाली में पत्थर समझ कर फेंक दिया। अब अनंतकाल तक इतना कीमती हीरा हस्तगत नहीं होगा।

अतः हम महान् भाग्यशाली हैं कि चैतन्य महाप्रभु की शरण में चले गए एवं अजनाभवर्ष में, जो वैकुण्ठ का टुकड़ा है, भारतवर्ष में हमारा जन्म, भगवान् ने कृपा कर दिया है। जीवन को चलाने की सभी सुविधा साथ में दी है तथा वैकुण्ठ में जाने का सरल, सुगम रास्ता बताने वाले सच्चे गुरु से मिला दिया है। यह मार्ग ऐसा है जिसमें काँटे आदि कुछ भी नहीं हैं, नरम–नरम बालू मार्ग में फैली हुई है, जिस पर चलना भी सुख कारक है। अनेक कल्पों से भगवान् की गोद से बिछुड़े हुए दुख सागर में डूबे हुए थे, कृष्ण ने कृपा कर हमें सुख सागर में पहुँचा दिया है। हमने पूर्व जन्मों में शुभ कर्म किए होंगे, भगवान् के प्यारे साधुओं की सेवा की होगी, तब ही भगवान् ने हम पर असीम कृपा की है। पूरी दुनिया की जनसंख्या देखते हुए, भगवान् के शरणागत 0.01% भी नहीं हैं।

चर–अचर प्राणी का शरीर एक घड़ी समान है, जब आत्मा रूपी सैल, इस शरीर रूपी घड़ी से निकल जाएगा तो शरीर रूपी घड़ी की टिक–टिक शब्द ध्वनि नष्ट हो जाएगी, फिर शरीर रूपी घड़ी किस काम की होगी? अतः इस शरीर रूपी घड़ी को फेंक दिया जाएगा क्योंकि यह जीव के लिए बेकार है। प्राणी का प्राण, शरीर रूपी घड़ी से अलग हो जाएगा तो शरीर रूपी घड़ी कोई काम की नहीं होगी। घड़ी का टिक टिक शब्द क्या है? यह है प्राणी के साँस का आना जाना। जब साँस का आना जाना बंद हो जाएगा तो शरीर रूपी घड़ी बेकार हो जाएगी, फिर इसको घर में कमरे में

रखना जगह को घेरना ही है। अतः शीघ्र से शीघ्र घर से बाहर निकालकर इसकी जगह दूसरी चीज को उपयोग करो। जिस प्रकार से अनजाने में अमृत पी जाएं, जहर पी जाएं, अनजाने में अग्नि छू जाएं तो यह तीनों अपना प्रभाव दिखाए बिना रह नहीं सकते, इसी प्रकार हरिनाम अनजाने में मुख से निकल जाए तो प्राणी का कल्याण हुए बिना रह नहीं सकता। अमृत, जहर, अग्नि माया की है लेकिन नाम तो स्वयं भगवान् का है, इसका प्रभाव तो भगवान् भी नहीं जानते।

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई।।

(मानस, बाल. दो. 25 चौ. 4)

संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : कुछ लोग कहते हैं कि अगर ध्यान पूर्वक हरिनाम का श्रवण भी किया जाए पर हृदय भगवान् के लिए न रोए तो हरिनाम भी कुछ फायदा नहीं कर पाएगा। क्या यह बात सही है ?

उत्तर : अजामिल को नामाभास से ही वैकुण्ठ की प्राप्ति हो गई। ध्यानपूर्वक सुनना, वह तो नामाभास से भी ऊँचा हुआ। जो कह रहे हैं कि हरिनाम में प्यार नहीं होता और हम हरिनाम करते हैं। तो वह तो नामाभास से भी ऊँचा है। सुपीरियर (श्रेष्ठ) हुआ। इससे उनका उद्धार तो हो ही गया। तुम भगवान् को ही तो पुकार रहे हो। अजामिल ने तो अपने पुत्र को पुकारा था।

कलियुग में दयावतार : हरिनाम

21 अप्रैल 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद करें।

पहले धरातल पर प्रजा बहुत कम थी, तो ब्रह्मा ने प्रजापति दक्ष को संतान उत्पन्न करके सृष्टि को बढ़ाने का आदेश दिया। दक्ष ने अपनी पत्नी से दस हजार पुत्र उत्पन्न किए और उन्हें आदेश दिया कि सृष्टि को बढ़ाओ। दक्ष के पुत्रों ने सिंधु नदी और समुद्र के संगम पर नारायण नामक तीर्थ में जाकर के स्नान किया तो उनका हृदय शुद्ध हो गया और वे तपस्या में लीन हो गए और सोचा कि संतान बाद में उत्पन्न करेंगे।

आजकल कलियुग में तपस्या का नामोनिशान ही नहीं है, तो संतानें होती हैं राक्षस। पहले सतयुग, त्रेतायुग और द्वापर युग में पच्चीस साल तक प्रजा की संतानें गुरु आश्रम में धर्मशिक्षा उपलब्ध कर, बाद में अपने कुल की लड़की से शादी करते थे तो संतानें देवता आचरण की उत्पन्न होती थीं। अब कलियुग में न कोई कुल देखते हैं, न जन्मपत्री मिलाते हैं, किसी भी जाति से शादी कर लेते हैं, तो संतानें राक्षस प्रवृत्ति की पैदा होती हैं। वर्णसंकर संतानें पैदा होती हैं जो माँ–बाप को तथा अन्य को सताती रहती हैं। तामसी स्वभाव होने से संतानें भी तामसी स्वभाव, राक्षस प्रवृत्ति की होती हैं। कहने का मतलब है कि शादी तभी करो जब शुद्ध संग करके हृदय को सात्विक गुणों से ओत–प्रोत कर लो, तो संतान सब को सुख देने वाली होंगी। जैसा कि "इसी जन्म में भगवद्प्राप्ति" में श्री गुरुदेव ने लिखा है कि मन माफिक संतान कैसे हो सकती है? उसको पढ़ो तो संतान देवता स्वभाव की होगी।

तो जब दक्ष की दस हजार संतानें, नारायण तीर्थ में तपस्या कर रहे थे, तो नारदजी ने उन्हें उपदेश देकर संन्यासी बना दिया। दक्ष को बड़ा दुख हुआ। फिर दक्ष ने दोबारा दस हजार पुत्र उत्पन्न किए, फिर नारदजी ने उन्हें भी संन्यासी बना दिया, तो दक्ष को बड़ा गुस्सा आया और नारदजी को श्राप दिया कि, "अब आगे तुम अधिक देर कहीं नहीं ठहर सकोगे।" नारदजी ने श्राप अंगीकार कर लिया। संत की यही तो पहचान है कि वह भी श्राप दे सकते थे, परंतु सहर्ष श्राप को स्वीकार कर लिया। नारदजी का दर्शन कभी असफल नहीं होता। बड़े भाग्य से नारदजी दर्शन किसी को होता है।

पहले मानसिक सृष्टि हुआ करती थी, तो सृष्टि बढ़ नहीं रही थी इसके बाद पुरुष–स्त्री संग का क्रम बना दिया गया। ब्रह्माजी ने सोचा कि ऐसे सृष्टि अधिक बढ़ेगी। भगवान् ने ब्रह्मा को इसी काम में नियुक्त किया है कि सृष्टि कम नहीं होनी चाहिए। अतः ब्रह्माजी ने पति–पत्नी संग का नियम शुरू कर दिया। यह सब श्रीमद्भागवत में लिखा है।

शिवजी को भगवान् ने आदेश दिया कि, "यदि सृष्टि अधिक बढ़ने लगे तो तुम संहार करते रहो" एवं एक आदेश और दिया कि, "तुम आगम शास्त्रों को लिख–लिख कर प्रचार करो ताकि प्रजा उसी में उलझती रहे। मेरी भक्ति की तरफ न आ सके। मैं सब कुछ देने को तैयार हूँ अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष दे सकता हूँ, परंतु भक्ति को छिपा कर रखता हूँ किसी को नहीं देता। ऐसा इसलिए करता हूँ कि भक्त के पीछे मुझको बिकना पड़ जाता है। मैं भक्त के अधीन हो जाता हूँ। काल और महाकाल मुझसे थरथर कांपता है लेकिन मैं भक्त से थरथर कांपता हूँ। भक्त से मेरी स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है। इसलिए मैं अपनी भक्ति सरलता से किसी को नहीं देता हूँ।" भगवान् ने विष्णु को आदेश दिया है, "ब्रह्माजी की सृष्टि का पालन पोषण तथा रक्षा करते रहो। यदि न करोगे तो ब्रह्मा की सृष्टि चलेगी नहीं। 'जीवो जीवस्य भोजनम्।' जीव के जीव को खाने से सृष्टि कम होती रहेगी। मैंने माया को सब तरह का अधिकार दे रखा है। वह सृष्टि को संतुलन में रखेगी।

यमराज को आदेश दिया है, "जो ब्रह्माजी की सृष्टि को परेशान करे, उसे नरक यातना देना तुम्हारा काम है।" इंद्र को आदेश दिया कि, "ब्रह्मा की सृष्टि में देवता, दानव दोनों होंगे उनसे तुम निपटते रहो। कभी मैं देवताओं की ओर से मदद करूँगा और कभी राक्षसों की ओर से मदद

करूँगा क्योंकि यह दोनों ही मेरी संतानें हैं। अच्छे बुरे दिन इन दोनों के ही आते रहते हैं। यह देख कर मैं दोनों की ही सहायता करता रहता हूँ। जब तुम मेरे पास आकर अपना दुख निवेदन करते हो तो मैं कहता हूँ कि अभी तुम चुप रहो, यह दिन राक्षसों के अनुकूल है। तुम्हारे दिन इस समय खराब हैं, अतः चुप रहना ही श्रेयस्कर होगा। दोनों के प्रति वात्सल्यता मेरे हृदय में रहना परमावश्यक ही है, लेकिन शुभ काम जो करेगा उसकी तरफ मेरा मन खिंच जाता है तो उसके लिए मैं कोई उपाय सोचता हूँ। जैसे मैंने वामन अवतार लेकर बलि से छीनकर, स्वर्ग, इंद्र को दे दिया। बलि भी कोई छोटा–मोटा धर्मशील नहीं था, परंतु वह राक्षसों का मालिक था। राक्षस सदा ब्रह्मा की सृष्टि को परेशान करते रहते हैं अतः मुझे उनकी ओर से मुख मोड़ना ही पड़ता है।"

कश्यपजी की दो पत्नियां हैं एक दिति और दूसरी अदिति। इन दोनों की ही संतानें भाई–भाई हैं। अदिति के देवता हैं एवं दिति के राक्षस हैं। एक सुपात्र संतान है तो दूसरी कुपात्र संतान है। लेकिन माँ–बाप को, वात्सल्यभाव से दोनों ही प्रिय हैं। कुपात्र संतान को माँ–बाप बाहर थोड़े ही निकाल देते हैं। उनको समझाते रहते हैं, नहीं समझते हैं तो यमराज की यातनाएं भुगतनी पड़ती हैं। दोनों भाई–भाई सदा लड़ते ही रहते हैं। यहाँ प्रत्यक्ष में देख ही रहे हो कि सगे भाई–भाई में कहाँ बनती है? आपस में लड़ते ही रहते हैं जैसे कौरव और पांडव। यहाँ तक कि कौरव जड़ मूल से ही पांडवों को खत्म करना चाहते थे। पांडव देवता रूप में थे, दूसरी ओर कौरव, राक्षस रूप में। धृतराष्ट्र भी अपनी संतान को, समझाना तो दूर रहा उनका पक्ष लेकर पांडवों को दुखी करवाता रहता था।

यह संसार है यह दो भावों से ही रचा गया है वरना आनंद की अनुभूति कैसे होगी? सुख–दुख का जोड़ा है, नर–नारी का जोड़ा है, शिष्य–गुरु का जोड़ा है, माँ–बाप का जोड़ा है, भाई–बहन का जोड़ा है। दो से ही यह संसार बनता है। सूर्य न हो तो अंधेरा कहाँ से जाएगा? रात–दिन का जोड़ा है, स्वर्ग–नर्क का जोड़ा है। भक्त–अभक्त का जोड़ा है। देवता–राक्षस का जोड़ा है, श्राप–वरदान का जोड़ा है, गर्मी–सर्दी का जोड़ा है, राधा–कृष्ण का जोड़ा है। यदि ऐसा न हो तो खेल अर्थात् लीलाएँ कैसे उद्‌भूत हो सकेंगी? राधा से सभी देवियां प्रकट हैं और कृष्ण से सभी ग्वाल–बाल प्रकट हैं। नर–नारी के बिना, चाहे वह पक्षी हो, चाहे जलचर हो, चाहे थलचर हो, सृष्टि हो ही नहीं सकती। सूरज–चंद्रमा का

जोड़ा है। सूर्य गर्मी का तथा चंद्रमा शीतलता का प्रतीक है। एक से एक दूसरे का जोड़ा रहता है।

हरिनाम का प्रत्यक्ष उदाहरण, मेरी दिव्य शक्ति बता रही है। ध्यान से सुनने की कृपा करें! जैसे अनजान में अमृत पी लिया जाए या अनजान में जहर पी लिया जाए, अनजान में अग्नि में हाथ लगा लिया जाए तो यह तीनों अपना प्रभाव दिखाए बिना नहीं रह सकते। इस प्रकार अनजान में भी हरिनाम मुख से निकल जाए तो यह अपना प्रभाव दिखाए बिना रह नहीं सकता। जापक का कल्याण करके ही रहेगा, जैसे अजामिल ने अनजान में अपने बेटे को पुकारा था। उसका नाम 'नारायण' था, तो अजामिल को वैकुण्ठ की उपलब्धि हो गई। ऐसे कहते हैं :

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

दस दिशाओं के अलावा ग्यारह्वीं दिशा तो होती नहीं। दसों दिशाओं में मंगल होगा अर्थात् वैकुण्ठ मिलेगा। मन से करो चाहे बेमन से करो, लेकिन नित्य एक लाख करना पड़ेगा। निश्चित रूप से वैकुण्ठ मिलेगा। दसों दिशाओं में नाम जापक का कल्याण होना निश्चित हो जाएगा। फिर बोलते हैं :

जिन्ह कर नामु लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं।।

(मानस, बाल. दो. 314, चौ. 1)

जितने भी दुख हैं, वह जड़ सहित खत्म हो जाते हैं। अगर किसी चीज की जड़ ही नहीं रही तो दुख कैसे पनपेगा? दुखों की जड़ ही खत्म हो गई तो दुख कहाँ से आएगा?

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

प्राणी के कर्मानुसार 84 लाख योनियां, इस संसार में बनाई गई हैं। इनमें भगवान् परमात्मा रूप से विराजमान रहते हैं। परमहंस भक्त, आत्मा रूप से भगवान् को देखता है, अतः किसी जीव को दुख नहीं देता, ऐसे भक्त के पीछे भगवान् छायावत् चिपके रहते हैं।

भूतकाल में, नामदेव, एक सच्चे संत हुए हैं। वह स्वयंपाकी थे, कहीं से मांग कर मधुकरी नहीं लाते थे। एक दिन चार रोटी बनाकर रखी और घी से चुपड़ने हेतु अंदर गए, इतने में एक कुत्ता रोटी लेकर भागा, तो नामदेवजी बोले, "भगवान्! रोटी चुपड़ी नहीं है।" अतः उसके पीछे भागे। बोले, "थोड़ा ठहर जाओ! अभी रोटी चुपड़ देता हूँ। सूखी रोटी अच्छी नहीं लगेगी।" तो भगवान् उस कुत्ते में ही प्रकट हो गए और बोले, "नामदेव! तुम सब जीवों में मुझे देखते हो, मैं तुम्हारी आंखों से दूर नहीं रह सकता।" अतः हरिनाम जापक की ऐसी वृत्ति होनी चाहिए, तब भगवान् दूर नहीं। ऐसा भक्त कैसे किसी प्राणी को दुख देगा? उल्टा वह तो हर प्रकार से सेवा में संलग्न रहेगा। चींटी में भी भगवान् है, हाथी में भी भगवान् है। ऐसों के लिए भगवान् कहाँ नहीं है? ऐसा प्राणी सदा सुखी रहेगा, दुख की छाया भी उसे नहीं छुएगी। भगवान् ने जो कुछ दिया है उसमें संतोष रखो तो कभी दुख नहीं आ सकता।

बच्चा मुट्ठी बांधकर जन्म लेता है। मुट्ठी बांधकर क्यों आता है? भूतकाल में जो शुभ–अशुभ कर्म किया है, इस जन्म में भोगेगा। जब जाता है अर्थात् मरता है, तब हाथ पसारे जाता है। अब तक जो किया, भोग कर जा रहा है, उसने जो शुभ–अशुभ कर्म किया है भविष्य में भोगेगा। गहराई से सोचो! जो भी तुम्हारे संगी, साथी, कुटुंबी हैं, यह सब लुटेरे हैं। इनके हेतु खाना–पीना, पहनना, शिक्षा देना, उनके लिए भगवान् से प्रार्थना करना, फिर काफी धन खर्च कर शादी करना, माँ–बाप, सब कुछ न्योछावर करते हैं। जब बूढ़े हो जायेंगे और कुटुंब के काम लायक नहीं रहेंगे, खटिया पर पड़ जाएंगे, तब देखना! क्या हाल होगा? पानी पीने को भी तरसोगे। समय पर खाना भी मिल जाए तो गनीमत है। इस समय में हम देख भी रहे हैं परिवार वाले भी कहने में नहीं चूकेंगे कि, "बूढ़ा मरता भी नहीं है। हर वक्त खसखस करता रहता है। सोने भी नहीं देता।" पोते को बूढ़ा बोलेगा कि, "अरे बेटा, संतोष! थोड़ा पानी लाकर पिला दे।" तो पोता, जहाँ बूढ़ा सो रहा होगा, वहाँ से दौड़ लगाएगा, कि बाबा बोल न दे। यह हाल हो रहा है। जब मर जाएगा, तब बड़ा मोच्छा (भंडारा) करेगा। अरे! जब जीवित था तब तो पूछा भी नहीं, अब मरने के बाद मोच्छा कर रहा है। यह है संसार का दिखावटी नाटक। बाद में बूढ़े को कोई याद भी नहीं करेगा। जब बूढ़ा खाट में पड़ जाएगा तो कोई आकर बूढ़े को कहेगा कि, "अब तो जाना ही अच्छा है।" तो बूढ़ा उत्तर देगा कि, "बात तो ठीक ही है, परंतु पोती की शादी देख कर जाऊँ तो अच्छा ही है।" फिर भी

इसकी आशा दूर नहीं हुई। "अरे बूढ़े! तुझको किसी ने पूछा तक नहीं, तुझे अभी भी वैराग्य नहीं हुआ, अब भी आशा में फंसा पड़ा है।" यही तो भगवान् की माया है। वर्तमान में सब देख ही रहे हो। युवक की शादी हुई नहीं कि माँ–बाप से कोई लेना–देना नहीं। अलग जाकर आनंद भोगेंगे। बुढ़ापे में सबका यही हाल होने वाला है। क्यों कल्पना के महल बनाता है? यही भगवान् की माया है। 'जीवन के दिन चार हैं, भज लो हरि का नाम।' पर हरि का नाम बहुत मुश्किल से निकलता है वैसे सारे दिन बक–बक करता रहता है। एक दूसरे की चुगली करता रहेगा।

अरे! अब पछताए क्या होत है जब चिड़िया चुग गई खेत

संसार में दसों दिशाओं में कुसंग का बोलबाला है। सत्संग का तो नाम निशान ही नहीं है। जो शराब, मांस भक्षण करता है उसकी कोई चर्चा नहीं करता है पर जो भगवान् का भजन करता है उसको सब चिढ़ाते हैं कि, "देखो! भक्त हो गया।" परंतु यह भी अच्छा ही है। कहावत है :

निंदक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुभाव।।

(संत कबीर)

जो नामनिष्ठ की निंदा करता है, तो जापक के पाप, निंदा करने वाले के पास चले जाते हैं। अतः जापक को तो खुश होना चाहिए। निंदक को तो पास में रखना चाहिए, अपने पास, मकान बना देना चाहिए उसके लिए, तो वह उसके (जापक के) पाप ले लेगा।

कलिकाल में ऐसा ही होता है। सभी काम उल्टे होते हैं। शगुन भी बेकार हो जाते हैं। मौसम भी समय पर नहीं होते। खान–पान भी दूषित होता है, अतः मानव का स्वभाव भी दूषित हो जाता है। स्वार्थ का संसार हो जाता है, प्रेम नाम की कोई चीज ही नहीं होती, पशु पक्षियों की नस्लें ही खत्म होती रहती हैं, पहाड़ों में फल आदि समूल नष्ट होते जा रहे हैं। कलियुग का जमाना, दुख का भंडार होता है। अतः हरिनाम की शरण में चले जाना ही श्रेयस्कर होगा। जो 64 माला नित्य करेगा तो उसे वैकुण्ठधाम निश्चित रूप से उपलब्ध हो जाएगा। यह शास्त्र का वचन हैः

जिन्ह कर नामु लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं।।

(मानस, बाल. दो. 314, चौ. 1)

दुखों की जड़ ही खत्म हो जाएगी।

हमारे जमाने में एक टिड्डी दल आता था, वह पेड़ों का एक पत्ता तक नहीं छोड़ता था। इतनी गहरी उड़ान भरता था कि सारा आसमान ढक जाता था। चालीस साल से पहले के जन्मे मानव ही उसे जानते हैं। आजकल एक जीवाणु बम बनाया गया है, यदि उसे छोड़ दिया गया तो वह टिड्डियों की तरह संसार में तहलका मचा देगा। वह कीट जानवर ऐसा खतरनाक होगा कि जिसको काट लेगा, वह तुरंत मर जाएगा। इतना जहरीला होगा।

हमारे जमाने में, प्लेग नाम की बीमारी चूहों से पैदा हुई थी। एक दिन में, एक ही परिवार के चार–पांच सदस्यों की मौत हो जाया करती थी। उनको जलाने हेतु न लकड़ी मिलती थी न जगह मिलती थी। उस समय ज्यादा दवाइयों का आविष्कार नहीं हुआ था। वैद्यों की भरमार थी। एलोपैथिक डॉक्टरो की संख्या कम थी। जीवाणु में भी भगवान् परमात्मा रूप से रहते हैं अतः जो भगवान् का भक्त होगा, जीवाणु मच्छर उसे काटेगा नहीं। सब प्रेरणा, भगवान् की आत्मा से ही होती है। भगवान् के बिना तो पेड़ का पत्ता तक नहीं हिलता अतः हरिनाम करना ही बचने का उपाय है, अन्य कोई उत्तम उपाय नहीं है। जैसे हिरण्यकश्यप, जो दस हजार हाथियों का बल रखता था, प्रह्लाद को गला घोंट कर मार सकता था, परंतु नहीं मार पाया क्योंकि भगवान् ने अंदर से प्रेरणा नहीं की।

प्राणी मात्र का शरीर क्या है? यह है मल–मूत्र का भंडार। प्रत्येक इंद्री में से घृणित मल निकलता ही रहता है। इसी को प्राणी सजाता रहता है। कितनी मूर्खता है। मल–मूत्र में पड़े कीड़े में और इसमें क्या अंतर हुआ? कहते हैं, "इस देवी का कितना सुंदर मुखड़ा है। इस के बाल कितने काली–काली अलकों वाले हैं। कमर तो इतनी पतली है कि टूट ही जाएगी। पैरों की तो पूछो ही नहीं, ठुमक ठुमक कर कितना मनमोहक डांस (नाच) करती है।" लेकिन इस प्रशंसा करने वाले को पूछो, कि इसके अंदर कितनी घृणित वस्तुएं भरी पड़ी हैं। तो क्या वह अब उससे प्रेम करेगा? बस यही तो माया है। नाली के कीड़े में और इस मूर्ख मानव में कोई अंतर नहीं है। यह भी नाली के कीड़े की तरह ही मग्न हो रहा है। बस यही तो भगवान् की माया है। मरने पर राख का ढेर बन जायेगा, गाड़ देने पर कीड़ों का झुंड बन जायेंगे और पेड़ पर लटकाने पर पक्षियों का

खाना बनेगा, जल में बहाने पर जल जंतुओं के खा जाने से हड्डियों का ढेर बन जाता है। इसके अलावा इस शरीर का अंत क्या है? केवल कंकाल।

अरे! स्वयं की इंद्रियां भी लुटेरी हैं। आंख अच्छे–अच्छे दृश्य देखने को परेशान करती है। मन की आंख कहती है, "मुझे सिनेमा दिखाकर लाओ।" सिनेमा कोई मुफ्त में देखा जाता है? उसके लिए पैसा खर्चा करो, साथ में पत्नी को भी ले चलो। बेचारे बच्चे कहाँ अकेले रहेंगे, इनको भी ले चलो। पैसा पास में है नहीं। फिर भी इधर उधर से लाकर, सिनेमा दिखाना पड़ता है। अब सोचो, यह मन की आँख, लुटेरों की सरदार है कि नहीं? कान कहता है, "मुझे ऐसी जगह ले चलो, जहाँ मेरे कान को सुनने का आनंद आए। अमुक जगह बहुत मनमोहक गाने हो रहे हैं।" कान कहता है, "मुझे वहाँ ले चलो, ताकि कान तृप्त हो जाएँ।" मन कहता है, "यह तो बहुत दूर है, वहाँ पर जाना असंभव है क्योंकि पैसा पास में है नहीं। सौ रुपए का टिकट है। मोटर का भी पचास रुपये लगेगा। तो रुपये बिना वहाँ नहीं जा सकते।" कान की इंद्री दबाव डालती है, "कहीं से लाओ, मुझे तो सुनना बहुत जरूरी है।" अब मन कहता है, "अमुक के पास जाओ, उससे रुपया लेकर आओ।" फिर मन कहता है, "पांच सौ रुपये ले तो आओगे फिर चुकाओगे कैसे? कोई धंधा–पानी भी नहीं है।" कान कहता है, "अभी लाओ, बाकी आगे देखा जाएगा। तुम तो अभी पांच सौ रुपये ले कर आओ।" अतः सभी इंद्रियों का यही हाल है। बेचारा मानव क्या करे? हर प्रकार से परेशान है। यह तो हुआ अपनी इंद्रियों का लुटेरापन जो प्रत्क्षय में हो रहा है। अब परिवार का लुटेरापन देखो। बेटा कहता है, "मुझे तो डॉक्टरी करनी है।" बाप कहता है, "इतना पैसा मैं कहाँ से लाऊँगा? मेरे पास तो कुटुम्ब पालने की भी मुसीबत रहती है।" बेटा बोलता है, "मैं कुछ नहीं जानता। मुझे तो नौकरी नहीं करनी है। चाहे खेत बेचो चाहे मकान बेचो। मैं कुछ नहीं सुनना चाहता।" अब वह क्या करे? क्षण मात्र के आनंद के लिए कितनी बड़ी मुसीबत ले ली। सब कुछ बेच कर डॉक्टरी करवाई। अब कहता है, "मुझे अमुक लड़की से शादी करनी है।" बाप कहता है, "अरे! वह अपने कुल, गोत्र की नहीं है।" बेटा कहता है, "मैं कुछ सुनना नहीं चाहता, मुझको तो उससे ही शादी करनी है।" मजबूरी से शादी कर दी। अब खून अनुकूल न होने से आपस में अनबन शुरू हो गई। अब तो जीवन ही दुख सागर बन गया। इसके पहले बेटे की पत्नी बोलती है, "मैं तुम्हारे माँ–बाप के पास नहीं रहूँगी, अलग से फ्लैट किराए पर लेना है।" बड़ी मुश्किल आ गयी। पति कहता है, "माँ–बाप की सेवा कैसे

होगी?" पत्नी बोलती है, "मैं कुछ नहीं जानती। मैं जैसा कहूँ वैसा करो, वरना मैं अपने पीहर जाती हूँ।" अब बेचारा क्या करे? हारकर, माँ–बाप से अलग रहता है, फिर भी चैन नहीं। "मेरे लिए अमुक गहना ला कर दो, मुझे सिनेमा देखने की आदत है, मुझे सिनेमा दिखाना पड़ेगा।" पति आस्तिक है और पत्नी को इसकी आदत पसंद नहीं है। अब तो घर नरक बन गया। सोना महंगा है, गहना बनाना भी जरूरी है। तो पैसा इतना कहाँ से लाऊँ? डॉक्टर होने के कारण क्लीनिक खोलता है और अनाप–शनाप गरीबों से पैसा लूटता है। दवाएं भी ऐसी देता है कि रोगी दोबारा आए और पैसा देकर जाए। अब माँ–बाप बूढ़े हो गए। उनको संभालने वाला कोई नहीं। तो पत्नी बोलती है, "यदि आपको माँ–बाप पर दया आती है तो उन्हें वृद्धाश्रम में भर्ती करवा दो।" विचार करने की बात है कि यह परिवार भी लुटेरे हैं। बेटे को पाला पोसा, कमाने हेतु योग्य बनाया, बाद में माँ–बाप की दशा कैसी हुई? यही तो माया है। यह तो मेरे गुरुदेव ने बहुत ही संक्षेप में वर्णन किया है। इसका विस्तार तो बहुत अधिक है।

यह सभी लुटेरे हैं। अतः हरिनाम करना ही सुखी होने का सर्वोत्तम साधन है। यही अगला जीवन सुखमय बनाएगा वरना तो नरक भोग करना पड़ेगा। इसके बाद 84 लाख योनियों में जाना पड़ेगा। जन्म पर जन्म एवं मृत्यु पर मृत्यु। यह चक्कर कभी खत्म होने का नहीं है। जो मांस, मदिरा खाता है उसको निश्चित रूप से नरक भोगना पड़ेगा, फिर 84 लाख योनियों में चक्कर काटना पड़ेगा। हम प्रत्यक्ष देख भी रहे हैं कि परिवारों में क्या बुरी दशा हो रही है। बुड्ढे को पानी पीने तक नहीं मिलता, प्यासा तड़पता रहता है। परिवार वाला कोई पूछता तक नहीं है। खाना तो बहुत दूर की बात है। फिर भी बुड्ढा मरना नहीं चाहता, कहता है, "मेरे पोते का दर्शन हो जाए, तब भगवान् मुझे ले जाना।" फिर बोलेगा कि, "मेरे पोते के बच्चे का दर्शन हो जाए, तब मरना ठीक होगा।"

करो हरिनाम जप मनवा उमर तेरी बीती जाती है,
मौत तुझे याद न आती है, मौत तुझे याद न आती है।
प्रभु कृपा से मानुष तन पाया फिर विषयों में भरमाया,
मौत तुझे याद न आती है मौत तुझे याद न आती है।
बालपन खेल में खोया, जवानी काम बस होया,
बुढापा खाट पर सोया,
फिर भी आशा मन सताती है, आशा मन सताती है।

कुटुम्ब परिवार सुत दारा स्वप्न सम देख संसारा,
यहाँ माया का विस्तारा,
कोई नहीं साथ जाती है तुझे जाना अकेला है ।।
जो हरिनाम करता है वह भव से पार होता है,
यह वेदवाणी बताती है यह वेदवाणी बताती है,
करो हरिनाम जप मनवा उम्र तेरी बीती जाती है।

(अनिरुद्ध दास)

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

श्री गुरुदेव बार–बार आंखें खोल रहे हैं। फिर भी मानव चेत नहीं करता। जब मौत सिर पर आएगी, तब रोता रोता जाएगा, बाद में कोई याद भी नहीं करेगा। यही तो भगवान् की माया है। सच्चे संत के बिना, यह माया दूर नहीं होती है।

ब्रह्मा के हजार चौकड़ी का एक दिन होता है। हजार बार सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग निकल जाते हैं, इतनी ही रात होती है। इस प्रकार सौ साल होते ही ब्रह्मा भी शांत हो जाते हैं। इसे ही कल्प बोला जाता है। श्रीमद्भागवत कहती है कि ऐसे अनेक कल्पों के बाद ही, भगवान् की कृपा से मनुष्य जन्म उपलब्ध होता है। उसको भी मानव यूं ही व्यर्थ खो देता है। कलियुग में दसों दिशाओं में कुसंग का बोलबाला रहता है। सत्संग का तो नाम–निशान ही नहीं होता। किसी विरले को ही भगवद् कृपा से सत्संग उपलब्ध होता है। भगवान् भी, श्रीमद्भागवत पुराण में कहते हैं कि, "उद्धव! मैं केवल मात्र, सत्संग से ही मिलता हूँ।" जो यह सत्संग सुनेगा, उसे हरिनाम में रुचि बनेगी। जो एक लाख नाम जप यानि 64 माला नित्य करेगा तो उसका निश्चित रूप से वैकुण्ठवास होगा। आज संसार इस सत्संग का लाभ उठा रहा है। मेरे गुरुदेव का एक ही उद्देश्य है कि दुखी मानव कैसे भी हरिनाम जप कर वैकुण्ठ की उपलब्धि कर ले, अन्य दूसरा कोई उद्देश्य नहीं है।
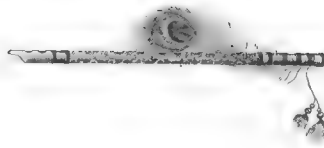
हरि से बड़ा हरि का नाम

28 अप्रैल 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा अहैतुकी प्रेमा भक्ति की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

मनुष्य जन्म का सबसे उच्चतम, सर्वोत्तम महत्व क्या है? सर्वोत्तम महत्व है भगवान् जिस कर्म से खुश हों। किस कर्म से खुश होंगे? जिस कर्म से गोपियों ने भगवान् को भी ऋणी बना दिया था। भगवान् ने अपने मुखारविंद से बोला है, "मैं, गोपियों का ऋण अनेक जन्मों तक भी उतार नहीं सकता।" अब प्रश्न उठता है कि गोपियां ऐसा कौन सा कर्म करती थीं कि भगवान् उस कर्म से उनके ऋणी हो गए? ऋणी होने का कारण यह था कि गोपियां प्रातः से लेकर शाम तक जो भी काम करती थीं, भगवान् हेतु ही करती थीं कि भगवान् इस कर्म से कैसे खुश रहें। गोपियां गृहस्थ थीं, उनके संतान भी थीं, पति की सेवा भी करती थीं, घर का सभी काम करती थीं, लेकिन इन कामों में व्यस्त होते हुए भी, एक क्षण भी कृष्ण को भूलती नहीं थीं।

इसीलिए कलियुग में भगवान् ने हमको हरिनाम दिया है। अगर हम 64 माला करेंगे तो भगवान् को भूलेंगे नहीं। भगवान् की याद ही सर्वोत्तम है। उनका भगवान् के प्रति चिंतन तैलधारावत् चलता ही रहता था, यही है उच्चतम भक्ति का स्वरूप। इस अवस्था को लाने का एकमात्र उपाय है केवल हरिनाम श्रवण। नाम श्रवण से एक प्रकार की लहर सी हृदय में दौड़ती है जो लहर भगवान् के वियोग को सहन नहीं कर सकती और सात्विक अष्ट विकारों को उदय करा देती है, जिससे भक्त की भूख, नींद गायब हो जाती है, बेचैन रहता है, हर एक क्षण युग के समान बीतने लगता है। तब भगवान् का दिल भी बेचैन हो जाता है। भगवान् गीता में

भक्तों को बता रहे हैं कि, "जैसे भक्त मुझे चाहता है, मैं भी उसी प्रकार से भक्त का बन जाता हूँ। भक्त नाचता है तो मैं भी नाचता हूँ। भक्त चिंता में हो जाता है तो मैं भी चिंता में हो जाता हूँ अर्थात् मैं भक्त की कठपुतलीवत् हो जाता हूँ, मैं भक्त का खरीदा हुआ गुलाम बन जाता हूँ।" यह सब शास्त्र की बातें हैं। "मैं किसी का आदेश नहीं मानता परंतु भक्त का आदेश मानने के लिए मैं मजबूर हो जाता हूँ। काल और महाकाल मुझ से थर–थर कांपते हैं। लेकिन मैं भक्त से थर–थर कांपता हूँ।" कैसी लीला है? "क्योंकि भक्त का जीवन ही मेरे लिए है एवं मेरा जीवन ही भक्त के लिए है। मुझे मेरी आत्मा भी इतनी प्यारी नहीं है जितनी प्यारी मेरे भक्त की विदीर्ण करने वाली वृत्ति विशेष है।" यह अवस्था भक्त को कैसे उदय हो सकती है? इसका उपाय है भक्त का स्वभाव। इसे ही कारण शरीर बोला जाता है। कलियुग में भगवान् को प्राप्त करने का उपाय कीर्तन है। इसलिए कीर्तन करना होगा।

भक्त का स्वभाव कैसा होना चाहिए?

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।

(श्री शिक्षाष्टकम् श्लोक 3)

ऐसा स्वभाव जिसका होगा वही कीर्तन करने योग्य है अर्थात् अहंकार की गंदगी नहीं हो। अपने आपको नीचा समझे, अपना मान नहीं चाहे और दूसरों को मान दे। जिसका ऐसा स्वभाव होगा, उसी से शुद्ध नाम हो सकेगा वरना अशुद्ध नाम होगा। परंतु अशुद्ध नाम भी सुख का विस्तार कर देगा क्योंकि नाम का प्रभाव ही ऐसा है कि केवल मुख से भगवद् नाम निकलना चाहिए। जैसे अमृत का, जहर का, अग्नि का स्वभाव ही ऐसा होता है कि अपना प्रभाव डाले बिना रह नहीं सकता। अनजान में इनका संग हो जाए तो इसके प्रभाव को भगवान् भी रोक नहीं सकते क्योंकि भगवान् ने ही इनको अपनी शक्ति दे रखी है। अतः भगवान् अपनी दी हुई मर्यादा को कैसे दूर कर सकते हैं? कैसे हटा सकते हैं?

दूसरा स्वभाव भक्त का कैसा होना चाहिए? कंचन, कामिनी, प्रतिष्ठा से वैराग्य हो, इनको जहर समान समझे। कंचन में आता है पैसा, मकान, जमीन, दुकान, रोजगार का धंधा आदि। इनमें भक्त का मन न हो, इसमें आसक्ति न हो। यही भक्त को फंसाती है एवं भगवान् से दूर रखती है।

कामिनी का अर्थ है नारी, जो बड़े बड़े महान धुरंधरों को भी पैरों नीचे कुचल डालती है। यही है भगवान् की शक्तिशाली माया। यह किसी बहाने से आती है, जिससे भक्त अंधा हो जाता है और इस को अंगीकार कर लेता है। हजारों साल की तपस्या या भक्ति एक क्षण में समाप्त कर देती है। इससे बचने का उपाय है केवल मन से हरिनाम को जपना। हरिनाम क्या है? यह है भगवान् की असीम शक्ति जो माया को पास में आने से रोकती है। यह माया भी भगवान् की ही है। लेकिन माया से अधिक शक्तिशाली भगवद् नाम है, जो भगवान् को भी हरा देता है। इसके आगे भगवान् भी शक्तिहीन बन जाते हैं। हाथ ऊपर खड़ा कर देते हैं। कहावत है :

"हरि से बड़ा हरि का नाम"

भगवान् ने तो उसी को सुख दिया जो उनके पास में आया लेकिन भगवद् नाम ने तो अनगनित जीवों को अपनाया है एवं भविष्य में भी अपनाते रहेंगे। नाम के आगे भगवान् ने भी हाथ ऊपर कर दिए, नाम से तो भगवान् भी हार गए। नाम के बिना तो सृष्टि का काम चल ही नहीं सकता। नाम बिना सब कुछ बेकार है। जब तक किसी भी वस्तु, चीज का नाम उच्चारण नहीं होगा तो वह काम हो ही नहीं सकता।

श्रीराम ने विजय करने हेतु लंका जाना था। बीच में समुद्र पड़ता था अतः बंदरों को आदेश दिया कि इस समुद्र पर पुल बांधना होगा, तब ही हमारी सेना लंका में जा सकती है। तब जाम्बवंत आदि भगवान् के सेवकों ने पुल बांधना आरंभ कर दिया और सभी बंदर, पहाड़, पेड़ आदि समुद्र में डालने लगे। भगवान् बैठे–बैठे सब देख रहे थे। एक गिलहरी भी समुद्र में अपने शरीर को भिगो कर आती और माटी में लोट कर समुद्र में उस माटी को छोड़ रही थी। यह देख कर जाम्बवंत ने भगवान् से बोला, "यह गिलहरी भी हमारी सहायता कर रही है।" तब भगवान् को उस पर इतनी दया आ गई और जाम्बवंत को बोले, "इस गिलहरी को मेरी गोदी में रखो। मैं उसको प्यार करूँगा।" जाम्बवंत ने गिलहरी को हाथ में पकड़कर रामजी की गोद में रख दिया तो रामजी ने प्रेम भरा करकमल उसके शरीर पर फिरा दिया, वही रामजी की उंगलियों के चिह्न धारा रूप में गिलहरी के शरीर पर बन गए। जाम्बवंत ने रामजी को बोला, "जब पुल बनाने की सहायता एक अनजान जानवर भी कर रहा है तो आप भी कुछ मदद करो।" भगवान् बोले, "क्या मदद करूँ?" जाम्बवंत बोले, "आप भी कोई पत्थर तो पानी पर रखो।" राम बोले, "ठीक है मुझे कोई पत्थर का टुकड़ा

हाथ में दे दो। मैं भी पुल बनाने की सहायता करूँगा और मुझे करना भी उचित है।" जामवंत ने पत्थर का टुकड़ा रामजी के हाथ में दिया तो रामजी ने उसे पानी पर रखा तो पत्थर पानी पर रखते ही डूब गया। रामजी ने बोला, "जाम्बवंत! यह पत्थर तो डूब गया।" तो जाम्बवंत ने बोला, "रामजी! जिसको आप छोड़ दोगे वह तो डूबेगा ही।" रामजी ने पूछा, "तो मैं क्या करूँ? जाम्बवंत!" भगवान् कैसे भक्त के पीछे भोले बन जाते हैं।

जाम्बवंत ने कहा, "मैं दूसरा पत्थर लाता हूँ, उसे पानी पर रखना।" तो रामजी बोले, "लाओ, परन्तु वह भी डूब जाएगा, फिर मेरी सहायता करने से क्या लाभ?" जाम्बवंत हंसने लगा और बोला, "रामजी! आप में कोई शक्ति नहीं है।" रामजी बोले, "जाम्बवंत! तुम कैसी बेकार की बातें कर रहे हो? मेरे में कोई शक्ति नहीं है। ऐसा कैसे कहते हो?" जाम्बवंत ने कहा, "हां! आप में कोई शक्ति नहीं है। आपके नाम में शक्ति है।" राम बोले, "मेरे नाम में शक्ति है, तो अब मुझे क्या करना है?" जाम्बवंत बोले, "अबकी बार मैं दूसरा पत्थर का टुकड़ा लाता हूँ उस पर मैं आपका नाम लिखता हूँ, तब आप उसे पानी पर रखना।" रामजी ने कहा, "ठीक है ! दूसरे पत्थर पर मेरा नाम लिख कर दो फिर मैं पानी पर रखता हूँ।" जाम्बवंत ने राम के हाथ में 'राम' नाम लिखा पत्थर दिया और कहा, "अब इसको पानी पर रखो।" जब राम ने उस पत्थर को पानी पर रखा तो पत्थर तैरता हुआ दूर चला गया। तो जामवन्त ताली बजाता हुआ नाचने लगा तो रामजी अचंभे में पड़ गए। यह क्या बात हो गई? "मैं तो वास्तव में कमजोर ही हूँ। मेरा नाम ही शक्तिशाली है।" जाम्बवंत बोला, "देख लिया रामजी! आप में कुछ नहीं है। आपके नाम से ही आप पुज रहे हो। आप में कोई शक्ति नहीं है।" तब जाम्बवंत बोला कि :

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई।।

(मानस, बाल. दो. 25 चौ. 4)

अर्थात् "कहाँ तक बड़ाई करें। नाम की शक्ति तो भगवान् भी नहीं जानते हैं।" सब बंदर इकट्ठे होकर तालियां बजा–बजा कर उछल कूद रहे थे और उच्चारण कर रहे थे, "हमारे राम का नाम ही सबसे बड़ा है। हम राम! राम! राम ही जपा करेंगे।" राम चुपचाप सिर नीचा कर बैठ गए कि वास्तव में उनका नाम ही उनसे अधिक प्रभावशाली है। जब पुल बांधने में बहुत समय लग गया तो राम ने सोचा कि यह समुद्र ही इसमें बाधा दे रहा है तो हाथ में धनुष ले कर और तीर का संधान किया और राम बोले, "हे

समुद्र! तुझे मैं अभी अग्निबाण से जला कर सुखा दूँगा।" तो समुद्र डर गया और अमूल्य थाली में रत्न आदि लेकर राम के चरणों में पड़ गया और बोला, "क्षमा करो भगवन्! मैं भी अब पुल बांधने में सहायता करूँगा। आपके चरणों में यह अर्पित कर रहा हूँ।" भगवान् तो दयालु होते ही हैं। रामजी ने कहा, "समुद्र! तुम शीघ्रता से शीघ्र पुल बांधने में सहायता करो।" तो समुद्र ने मगरमच्छ, व्हेल मछली आदि को आदेश दिया कि वे भी पुल बांधने की मदद करें वरना राम सब को मार देंगे। तब समुद्री घोड़े आदि पुल के नीचे इकट्ठे हो गए और अपनी पीठ पर पहाड़, पेड़ आदि रख लाए। समुद्र पर पुल शीघ्र बन गया। इससे पता चलता है कि समुद्र भी देवता है।

अगर भक्त की प्रतिष्ठा होती है तो उसे समझना होगा कि यह प्रतिष्ठा मेरी नहीं हो रही है। यह प्रतिष्ठा तो भक्ति की वजह से हो रही है। भक्ति में हरिनाम की हो रही है। जब वह जन्म लेकर इस धरातल पर आया तो उस समय किसी प्रकार की प्रतिष्ठा का नामोनिशान ही नहीं था। अब उसकी प्रतिष्ठा कैसे हो गयी? यह तो जब भक्ति को अपनाया अर्थात् भक्ति की शरण में आया, तब भक्ति ने ही मुझे कृपा कर प्रतिष्ठा प्रदान की है। तब अहंकार आने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। प्रतिष्ठा शूकर विष्ठा है, शूकर का भोजन कैसा गंदा होता है। इसी प्रकार प्रतिष्ठा उससे भी अधिक गंदी होती है। यह भगवान् की कृपा के बिना दूर नहीं होती। इसमें दुष्ट अहंकार, घमंड, गर्व, गंध स्वरूप से छुपा रहता है। इसको महसूस करना टेढ़ी खीर है, बड़ा ही असंभव है। अहंकार भगवान् को सुहाता नहीं है, अतः अहंकारी पर भगवान् की कृपा, स्वप्न में भी नहीं उपलब्ध होती।

कलियुग में भगवान् बहुत जल्दी मिल जाते हैं, अपने स्वभाव ठीक करो। जिसके आचरण ठीक होंगे, भगवान् उसके पीछे छाया की तरह चिपके रहेंगे।

जब हरिनाम आरंभ करें तो हमारी जन्म–जन्म की माँ वृंदा महारानी को याद करें। जप माला रूपी वृंदा माँ को सिर से लगाएं, हृदय से लगाएं, फिर वृंदा माँ के चरणों का चुंबन करें। इसके बाद पांच बार हरिनाम करो, तब अपना हाथ माला झोली में डालो तो सुमेरु जो भगवान् का स्वरूप ही है, जापक के हाथ में आएगा। तब हरिनाम जपना आरंभ करें। हरिनाम कौन है ? साक्षात् कृष्ण। जापक का जप आरंभ होते ही कृष्ण उसके पास में आ जाएंगे। यह माला की चर्चा शास्त्रों में नहीं है, यह तो श्री गुरुदेवजी ने प्रेरणा कर बताई है।

हरिनाम करते ही भगवान् उपस्थित हो गए। नाम जपते हुए कृष्ण को मन की आंखों से देखते रहो कि अब कृष्ण मेरे पास खड़े हैं, कैसा सुंदर इनका पीतांबर है, कैसी घुंघराली अलकें हैं जो ऐसी चमक रही हैं कि आंखें चुंधिया जाती हैं, कैसा मुस्कुराता हुआ मुखड़ा है कि देखते ही रहो। कैसा मनमोहक मुखारविंद है जिसकी किसी से तुलना नहीं की जा सकती। दंतावली की तो पूछो ही नहीं, लाल होठों के बीच सूर्य की चमक को भी मात कर रही है। इस प्रकार ऊपर मोरपंख मुकुट से लेकर चरणों तक मन की आंखों से देखते रहो और हरिनाम जपते रहो तो मन संसार में जा ही नहीं सकता। जो नित्य ही इस प्रकार से हरिनाम जपता रहता है उसे लगभग एक माह में सात्विक अष्ट विकार आना आरंभ हो जाता है। अश्रु–पुलक आदि प्रकट होने लगते हैं।

अधिकतर ऐसा होता है कि जापक हरिनाम आरंभ करता है तो भगवान् केवल एक पल मन की आंखों से नजर आते हैं, बाद में मन इधर–उधर बाजार में, खेत में, सब्जी मंडी में अन्य–अन्य जगह चला जाता है। तो भगवान् बोलते हैं कि, "तूने मुझे बुलाया ही क्यों था? अब कहाँ चला गया?" ऐसा जप भी सुकृति तो इकट्ठी करता है लेकिन असली अवस्था आने में देर हो जाएगी। एक उदाहरण से अच्छी तरह समझ सकते हैं कि किसी मानव ने फोन करके किसी साथी को घर पर बुलाया। वह घर पर आ गया, अब दोनों पास में कुर्सी पर बैठकर अपनी बातें करने लगे। थोड़ी देर बाद बुलाने वाला, आगंतुक को बिना पूछे ही उसे वहाँ छोड़कर चला गया और फिर उसके पास आया तक नहीं, तो आने वाला क्या कहेगा? "कैसा आदमी है मुझे कह कर भी नहीं गया और उठ कर चला गया।" वह कितना दुखी होगा, फिर दोबारा बुलाने पर वह उसके पास कभी नहीं आएगा और बोलेगा कि ऐसे बेकार आदमी के पास जाना, मुसीबत मोल लेना है। बस यही हाल हरिनाम जपने वाले पर शत प्रतिशत उतरता है। जापक शिकायत करते रहते हैं कि हम इतना जप करते हैं लेकिन कोई प्रभाव नजर नहीं आता। आएगा कैसे? मन में तो संसार बसा पड़ा है, संसार का फायदा हो जाएगा, परंतु भगवान् में प्रेम नहीं होगा। ऐसा जप करना भी उत्तम ही है। शास्त्र घोषणा कर रहा है :

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

"ऐसे जप से भगवान् से प्रेम होने में देर हो जाएगी लेकिन जप से लाभ ही लाभ है।"

और कहते हैं :

जिन्ह कर नामु लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं।।

(मानस, बाल. दो. 314, चौ. 1)

"जो भगवान् का नाम लेते हैं उसके जितने भी दुख हैं, झट से खत्म हो जाते हैं। जड़ ही खत्म हो गई तो दुख कहाँ से आएगा। यह शास्त्र के कथन हैं।"

बिबसहुँ जासुनाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं।।

(मानस, बाल. दो. 118 चौ. 2)

"जबरदस्ती भी अगर किसी के मुख से हरिनाम निकल जाए तो अनेक जन्मों के रचे–पचे पाप भी उसी समय जलकर भस्म हो जाते हैं।" यह शास्त्र बोल रहा है।

असली बात तो यह है कि परिवार में मरने वाले के लिए कोई नहीं रोता है। अपने सुख के लिए रोता है क्योंकि मरने वाले से इसे सहायता मिलती थी। इसलिए रोता है कि अब उसे सहायता नहीं मिलेगी और अब सहायता से वंचित हो गया। वह इसलिए रोता है। यदि कोई दूर का मरता है तो जूं भी नहीं रेंगती। कहते हैं, "मर गया होगा।" तो अपना कौन है? अपना है भगवान्। भगवान् से प्यारा कोई नहीं है। जो अंदर बैठा है वही सबसे प्यारा है।

एक कल्प में भगवान् की क्या व्यवस्था होती है? एक कल्प की ब्रह्मा की उम्र होती है। अनंत ब्रह्मा तथा अनंत शिव, अनंत कोटि ब्रह्मांडों में भगवान् के द्वारा कार्यरत रहते हैं। शिवजी, ब्रह्माजी के पुत्र हैं। ब्रह्माजी अपने जीवन काल में भगवान् के आदेश का पालन करते हैं। हजार चौकड़ी का ब्रह्माजी का एक दिन होता है। हजार बार सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग बीत जाता है इसे ही चौकड़ी बोला जाता है। ब्रह्माजी के जीवनकाल में 14 मनु अपने जीवन काल में भगवान् के आदेश का पालन करते हैं। एक मनु के काल को मन्वंतर बोला जाता है। प्रत्येक मनु के जीवन काल में एक इंद्र होता है और सात ऋषि होते हैं। प्रत्येक मनु के जीवन काल में भगवान् का अवतार होता है। मनु और शतरूपा के दो पुत्र

प्रियव्रत और उत्तानपाद हुए एवं तीन पुत्रियां देवहूति, अकूति एवं प्रसूति हुईं। भूतकाल में संकल्प से संतानें हुआ करती थीं। जब सृष्टि का अधिक विस्तार रुक गया तो बाद में नर–नारी संग से होने लगा। इन तीनों पुत्रियों से संसार भर गया। जब एक कल्प अर्थात् ब्रह्माजी के (देवताओं के) सौ वर्ष खत्म हो जाते हैं तो ब्रह्मा भी शांत हो जाते हैं तथा सब चर–अचर प्राणी ब्रह्माजी में समा जाते हैं। इसी प्रकार ब्रह्माजी का निवृत्ति काल भी एक कल्प का अर्थात् (देवताओं का) सौ वर्ष तक का सोने का समय होता है।

यह श्रीमद्भागवत महापुराण में बताया गया है कि जो जीव सौ साल तक सद्गृहस्थ रहता है उसे ब्रह्मा की पदवी उपलब्ध होती है। इसी प्रकार जो भी सौ वर्ष तक भगवद् भजन में लीन रहता है तो उसे शिवजी की पदवी दी जाती है। इसे ही जीव कोटि ब्रह्मा और जीव कोटि शिव बोला जाता है। वैसे तो भगवान् स्वयं ही ब्रह्मा तथा शिव रूप बन कर जाते हैं एवं अनंत कोटि ब्रह्मांडों का संचालन करते रहते हैं। इसी प्रकार से अनंत कोटि ब्रह्मांडों का संचालन स्वयं भगवान् ही करते हैं। भगवान् स्वयं सब कुछ बनते भी हैं और बनाने वाले भी हैं। यदि किसी जीव की ऐसी दृष्टि हो गई तो भगवान् उस जीव से एक निमेष मात्र भी दूर नहीं होते। ऐसे जीव में अवगुण जन्म ही नहीं लेता। अतः भगवान् ऐसे भक्त के पीछे–पीछे चलते रहते हैं।

राधा कौन है? यह कृष्ण की आत्मा ही है जैसाकि श्रीमद् भागवत पुराण बोल रहा है कि पहले इस ब्रह्मांड में कुछ नहीं था केवल ब्रह्म ही ब्रह्म था। सभी ठौर शून्य ही शून्य था। सुषुप्ति ही सुषुप्ति थी। अंधेरा ही अंधेरा था। जब भगवान् को लीला स्फूर्ति होने लगी तब एक से तो लीला हो नहीं सकती अतः योगमाया का उपयोग किया तो अपने शरीर से ही दो भाग प्रकट हो गए। एक प्रिया राधा और दूसरा प्रियतम कृष्ण। राधा के वपु से देवियां प्रकट हुईं और कृष्ण के वपु से उनके पार्षद प्रगट हो गए।

कश्यपजी की दो पत्नियां थी। एक थी दिति और दूसरी थी अदिति। दिति से राक्षस, दानव प्रकट हुए तथा अदिति से देवताओं का प्राकट्य हुआ। दोनों भाई–भाई होते हुए भी सदा आपस में लड़ते रहते हैं। इसका कारण स्पष्ट नजर आता है कि भगवान् की लीलाओं का प्रादुर्भाव कैसे होता है? भगवान् भक्त से ही श्राप और वरदान दिला कर अपनी लीलाओं को जन्म देते रहते हैं। दो के बिना लीला हो नहीं सकती। यह संसार ही

दो से बना है। जैसे अंधेरा–उजाला, श्राप–वरदान, दिन–रात, शुभ–अशुभ, शांति–अशांति, दुख–सुख आदि आदि युगल से ही भगवान् की सृष्टि का प्रादुर्भाव होता रहता है। भक्त भगवान् का प्यारा होता है। अभक्त अर्थात् नास्तिक भगवान् का वैरी होता है लेकिन भगवान् के लिए दोनों सम हैं। भगवान् कभी राक्षसों की सहायता करके इनकी वृद्धि करते रहते हैं तो कभी देवताओं की खुशहाली करते रहते हैं। भगवान् ने, जय–विजय को, जो भगवान् के द्वारपाल थे, सनकादिक ऋषियों से श्राप दिलाकर अपनी लीलाओं का प्राकट्य किया। हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यप, एक बार इनसे लीलाएँ रचीं। दोबारा रावण, कुंभकरण हुए तो राम अवतार लेकर लीलाएँ रचीं। तीसरी बार शिशुपाल और दंतवक्र से कृष्ण ने लीला रची। बिना श्राप–वरदान के अभाव में भगवद् लीला हो नहीं सकती।

यह सब भगवान् के लिए खिलौने हैं। जैसे एक छोटा शिशु मिट्टी का घर बनाता है और बनाकर उसी समय मिट्टी में मिला देता है। भगवान् भी योगमाया को अंगीकार कर खेल खिलौने बनाते रहते हैं एवं नष्ट करते रहते हैं। इन लीलाओं को ब्रह्मा और शिव भी समझ नहीं सकते, लेकिन नामनिष्ठ भक्त समझ जाता है। जो हरिनाम की 64 माला नित्य करता है, भगवान् की लीलाएँ उससे अदृश्य नहीं होतीं। जैसे बाजीगर के तमाशे को कोई समझ नहीं सकता लेकिन उसका जम्बूरा सब कुछ समझता है। अतः इस कलिकाल में यदि परम सुख चाहते हैं तो भगवद् नाम नित्य करो। 64 माला किया करे।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

कृष्ण ने दया परवश होकर श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में, राधा भाव लेकर अवतार लिया और नित्य, स्वयं, 64 माला, अपने ही नाम की जप कर, अपने आचरण से सिखाया और अन्यों को भी 64 माला नाम जप में संलग्न किया। इसका कारण है कि जो भक्त नित्य 64 माला हरिनाम की करेगा, उसे निश्चित रूप से वैकुण्ठ धाम की प्राप्ति हो जाएगी। कृष्ण अर्थात् चैतन्य को अपने नाम को जपने की क्या जरूरत थी? क्योंकि स्वयं के आचरण से ही अन्यों का भाव जागृत होता है, अतः भगवान् ने स्वयं ने आचरण किया।

20 अप्रैल रात में लगभग 10:00 बजे गौड़ीय मठ के आचार्य ने अपने जड़ शरीर से विदा होकर भगवद्धाम में पदार्पण किया है। श्री 108 श्री तीर्थ

गोस्वामी जी हमको छोड़कर चले गए अतः दुख का कारण तो बन गया है। जो आया है एक दिन जाना तो सभी को होता है। कपड़ा फट जाता है तो नया कपड़ा पहनना पड़ता है। इसमें दुख करने की क्या बात है? सच्चा ज्ञानी इसमें दुख से अलग रहता है। फटे कपड़े को उतारने से क्या दुख होगा? और नया कपड़े पहनने से क्या सुख होगा? सब ही सम अवस्था में है।

श्री भक्ति बल्लभ तीर्थ महाराज, रामनवमी को इस धरातल पर पधारे थे और वैशाख नवमी को ही अपने पुराने पोशाक को छोड़कर नई पोशाक पहन ली है अर्थात् मायामय शरीर को छोड़ दिव्यमय शरीर को धारण कर लिया है। जो चर–अचर प्राणी एक दिन आया है तो उसका एक दिन जाना परम आवश्यक है। न कोई रहा है न कोई रहेगा। यही है भगवद् लीला का प्रकरण। इसे कोई भी बदल नहीं सकता, जिसे सच्चा ज्ञान है वह जाने वाले का शोक नहीं करता। जिसको अधूरा ज्ञान है वह जाने वाले का शोक इस कारण करता है कि इससे मुझे बहुत मदद मिलती थी। यही उसका स्वार्थ है जिससे मरने वाले का शोक होता है, अन्य कोई कारण है ही नहीं। मरने वाले के दुख के लिए कोई नहीं रोता। रोता है अपने सुख के लिए। रोना अपने स्वार्थ के लिए है। कोई भी किसी का नहीं है। केवल भगवान् ही अपने हैं। यही जन्म जन्मों से चर–अचर प्राणियों के माँ–बाप हैं।

भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को बोला है, "तुम नर हो और मैं नारायण हूँ।" तब भी अर्जुन को विश्वास नहीं हुआ तो अंत में कृष्ण को विराट् रूप दिखाना पड़ा। तब अर्जुन जान सका कि कृष्ण नारायण ही हैं। इसी कारण से गुरुदेव, अनिरुद्ध दास के बारे में बता रहे हैं। यह शास्त्रों में नहीं है।

गुरुदेव माधव बोल रहे हैं, "यह अनिरुद्ध दास, राजस्थान में मेरा एक ही शिष्य है तथा केवल उसका परिवार शिष्य है।" गुरुदेव ने मुझे आदेश दिया, "तुम यहाँ के नहीं हो। भगवान् ने तुम्हें गोलोकधाम से भेजा है। तुम यदि कुछ बात छिपाओगे तो संसार का उद्धार नहीं कर सकोगे। तुम्हारे हाथों में भगवान् के आयुधों के सात चिह्न हैं। शंख, चक्र, गदा, पद्म, वैजयंती माला तथा शिवजी का त्रिशूल। तुम्हारी वजह से लगभग सारा संसार हरिनाम कर रहा है। यदि कोई तुम्हारी बड़ाई समझेगा तो नीचे गिर जाएगा। तुम्हारा शरीर चिन्मय हो चुका है। अब 90 साल की उम्र में

गुजर रहे हो। तब भी तुम्हारी आंखें, नजर 5 साल के शिशु की तरह है। तुम्हारे शरीर में रत्ती भर भी कोई रोग नहीं है। लगभग 40 साल से 12–1 बजे जाग कर 6 बजे तक एक आसन पर बैठकर हरिनाम करते रहते हो। लगभग 30 साल से बुखार आया ही नहीं है।" मेरे गुरुदेव बोल रहे हैं, "अनिरुद्ध दास के आदेश का पालन जो भी करेगा। वह निश्चय रूप से इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति तथा वैकुण्ठ वास कर लेगा। गुरुदेव कह रहे हैं कि, "मेरा शिष्य अनिरुद्ध निष्काम है।"

संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : जप के अलावा हम और क्या–क्या करें जिससे भगवान् बहुत जल्दी खुश हो जाएं ?

उत्तर : सबसे जल्दी प्रसन्न होंगे नाम से। नाम जपो। कान से सुनकर।

प्रेम से हरिनाम जपो और कानों से सुनो।

chanting harinama sweetly and listen by ear

इससे ज्यादा होगा। अब जितने ही गुरुवर्ग हुए हैं उन्होंने नाम से ही भगवान् को प्राप्त किया है। शिवजी भी नाम जपते हैं। अरे! वाल्मीकि तो नाम जप के प्रभाव से त्रिकालदर्शी हुआ कि नहीं। वाल्मीकि 'नाम' से तो हुआ। सबकुछ नाम से मिलेगा और किसी से नहीं मिलेगा। नाम करो। केवल नाम।

केवल भगवान् ही अपने हैं।

31

5 मई 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तजनों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार करें और हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद करें।

भगवान् के पास वैकुण्ठ में जाने का कितना सरल, सुगम तरीका है एवं वर्तमान में भी जब भगवान् को याद करोगे, भगवान् तुरंत बढ़िया स्वभाव वाले के पास आ जाएंगे। जैसे किसी को फोन द्वारा अपने पास बुलाते हैं, वह आगुंतक थोड़ी देर बाद में बुलाने वाले के पास आ जाता है। इसी प्रकार भगवान् तो इतनी देर लगाते ही नहीं है, एक निमेष मात्र में आ जाते हैं। निमेष का अर्थ है 1 सैकंड का 100 वां भाग। भगवान् के प्रकट होने का क्या मार्ग है? क्या उपाय है? कलियुग में केवल मात्र हरिनाम। न तप करने की जरूरत है, न योग करने की जरूरत है, न दान करने की जरूरत है, न तीर्थ करने की जरूरत है, न स्नान की जरूरत है। जरूरत है केवल, कान से सुनकर हरिनाम उच्चारण की।

शास्त्र बोल रहा है कि ध्यान से श्रवण करें!

जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ।।

(मानस, बाल. दो. 21, चौ. 2)

अर्थात् जीभ से नाम जप कर देख लो। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। जापक को स्वयं मालूम पड़ जाएगा। रामजी के भाई, भरतजी कैसे जपते थे? इसी प्रकार से जपना जरूरी है।

पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू।।

(मानस, अयोध्या. दो. 325 चौ. 1)

यह उस समय की चर्चा है, जब रावण सीताजी का हरण करना चाहता था तो उसने मारीच राक्षस को, हिरण बनने का आदेश दिया। मारीच, रावण के भय की वजह से पंचवटी के पास, चमकीला सोने जैसा रूप धरकर हिरण बन गया। जब सीताजी ने देखा कि हिरण तो बहुत सुंदर मनमोहक है तो वह रामजी से बोलीं कि, "हे प्राणनाथ! देखिए न उधर, कैसा सुंदर हिरण खड़ा है! आपकी ओर देख रहा है। मैं चाहती हूँ कि इसकी मृगछाला पर भजन करने में अद्‌भुत आनंद आएगा। आप उसे मार कर ले आओ।" राम तो सब जानते ही थे, लेकिन रामजी को लीला करनी थी अतः बोले, "मैं इसे अभी मार कर लाता हूँ।" जब रामजी उसके पीछे दौड़े, तो मारीच राक्षस कभी कहीं दुबक कर दिखाई नहीं देता और कभी कहीं दिखाई दे जाता। अतः इस प्रकार वह रामजी को दूर ले गया और बाण लगने पर जोर से बोला, "हा लक्ष्मण! हा लक्ष्मण!" सीताजी बोली, "लक्ष्मण! मेरे प्राणनाथ पर कोई विपत्ति आ गई है। जल्दी चले जाओ।" लक्ष्मण ने कहा, "माताजी! ऐसा नहीं हो सकता।" लेकिन सीताजी जबरदस्ती भेजने के लिए मजबूर हो गईं। अब लक्ष्मण भी क्या करे? लक्ष्मण को माँ का आदेश पालन करना पड़ा। लक्ष्मण ने कहा, "अच्छा! मैं जाता हूँ। मैं कुटिया के आगे एक रेखा खींच कर जाता हूँ। इस रेखा को लांघकर कुटिया के बाहर मत आना।" सीताजी बोलीं कि, "मैं इस रेखा को नहीं उलांघूँगी, तुम जल्दी जाओ।" अब सीताजी अकेली थीं तो रावण साधु के वेश में आकर बोला, "भिक्षां देहि!" सीताजी ने देखा कि एक साधु बाहर खड़ा है और भिक्षा मांग रहा है। भिक्षा लिए बिना यह कैसे जा सकता है तो बोली कि, "महात्माजी! मैं अभी भिक्षा लाती हूँ। आप थोड़ी देर ठहरो!" सीताजी भिक्षा लेकर आईं और रेखा के अंदर से भिक्षा देने लगीं तो रावण बोला, "मैं ऐसे भिक्षा नहीं लूँगा। बाहर आकर जहाँ मैं खड़ा हूँ, वहीं भिक्षा दो।" सीताजी भूल गईं कि रेखा के बाहर जाना नहीं चाहिए। फिर क्या था?

रेखा के बाहर आते ही रावण उन्हें पकड़कर आकाश मार्ग से लेकर चला गया। यह असली सीता नहीं थी वरना रावण वहीं पर जलकर राख का ढेर हो जाता। रामजी ने पहले ही सीता को कह दिया था कि, "मुझे लीला करनी है, तो तुम अग्नि की गोद में चली जाना।" अतः यह सीता नकली सीता थी। जब राम, लक्ष्मण कुटिया पर आए तो वहाँ सीता नहीं मिली तो राम ने लक्ष्मण को कहा, "लक्ष्मण! अकेली सीता को छोड़कर, तुमको मेरे पास नहीं आना चाहिए था।" तो लक्ष्मण बोला, "भैया! मैं क्या

करता? माँ मुझ पर बहुत गुस्सा करने लगी थी। अतः मजबूरी से आना पड़ा क्योंकि आपने हा लक्ष्मण! हा लक्ष्मण! बोला तो माँ समझी कि प्राणनाथ पर कोई विपत्ति आ पड़ी है। तो माँ का भी दोष नहीं है। फिर माँ क्या करती? मुझे आना ही पड़ा।" रामजी बोले, "लक्ष्मण! इन राक्षसों की माया को तुम नहीं समझ सकते। इस दुष्ट मारीच ने ही हा लक्ष्मण! हा लक्ष्मण! बोला था, मैंने नहीं बोला।" राम सब जानते हुए भी लक्ष्मण से अपना दुख बोल रहे हैं कि न जाने सीता को कौन उठा ले गया। चलो पता लगाते हैं। राम चिल्ला रहे हैं, "हा सीते! हा सीते! मैं कहाँ जाऊँ? कहाँ पाऊँ?" जंगल के पेड़ पौधों से पूछ रहे हैं, "हे अशोक, हे बरगद, हे जामुन, तुमने इधर से सीता को जाते हुए देखा है? गुलाब, जूही आदि फूलों के पौधों से पूछ रहे हैं कि सीता को तुमने देखा है?" यह सब लीलाएँ नारदजी के श्राप से प्रगट हो रही हैं। नारदजी शादी करना चाहते थे। लेकिन रामजी ने शादी करके नारद को गृहस्थ में फंसने से रोक दिया था। अतः नारदजी ने श्राप दे दिया कि वे भी अपनी पत्नी के लिए रोते फिरेंगे। रामजी, संसारी स्त्री में आसक्त लोगों के लिए ही लीला के माध्यम से विलाप कर रहे हैं। जब जटायु ने रावण को सीता को ले जाते हुए देखा तो अपने पंखों से रावण को घायल कर दिया। रावण ने अपने कटार से जटायु का एक तरफ का पंख काट डाला, वह जमीन पर आ गिरा। तब राम! राम! कहते प्राण छोड़ दिए। कथा को संक्षेप से ही मेरे गुरुदेव बता रहे हैं।

वैसे रामकथा तो सभी को मालूम है लेकिन बार–बार सुनने में आनंद आता ही है। जैसे सती स्त्री, अपने पतिदेव की चर्चा बार–बार सुनने में आनंद का अनुभव करती है। तो रामजी के वियोग में सीताजी, रामजी की वही छवि कि रामजी हिरण के पीछे भाग रहे हैं, हृदय में धारण करती हुई रोते–रोते राम का नाम जप रही हैं। सीता माँ, रामजी की धर्मपत्नी कैसे जपती थीं?

जेहि बिधि कपट कुरंग सँग धाइ चले श्रीराम।
सो छबि सीता राखि उर रटति रहति हरिनाम।।

(मानस, अरण्य. दो. 29 ख)

श्रीमद्भागवत पुराण में आता है कि अदिति देवताओं की माँ थी। कश्यप मुनि, अदिति के पतिदेव थे। एक बार अदिति बोली कि "दिति के पुत्र राक्षसों ने मेरे परिवार को घर से बाहर निकाल दिया है। पतिदेव कोई

उपाय बताएं।" तो कश्यपजी ने एक व्रत बताया। कथा लंबी है तो संक्षेप में बताया जा रहा है। व्रत पूरा हुआ तब भगवान्, अदिति के समक्ष प्रकट हुए और कश्यपजी के द्वारा वामन अवतार लेकर बलि महाराज को हराकर अदिति के परिवार को अपना स्थान दिलाया। राक्षस एवं देवता आपस में भाई–भाई हैं, लेकिन सदैव लड़ते रहते हैं। भगवान् के लिए दोनों ही सम हैं, लेकिन कहीं कहीं तरफदारी भी कर जाते हैं। इसका भी कोई उत्तम कारण ही होता है।

अब मेरे गुरुदेव बता रहे हैं कि भगवान् जल्दी कैसे मिलते हैं? जिस प्राणी का सात तरह का स्वभाव होगा, उसके पीछे भगवान् छायावत चिपके रहते हैं एवं आदेश का पालन करते रहते हैं। ध्यान पूर्वक सुनें।

1. तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।

प्राणी को तृण से भी नीचे स्वभाव का होना चाहिए। पेड़ की तरह सहनशील होना चाहिए। पेड़ मानव की कितनी सेवा करता है, फल, फूल, छाल आदि देता है। अन्य को मान दे, इज्जत दे, अपना मान न चाहे, ऐसा स्वभाव, जिसका होगा वही हरिनाम जप कर सकता है वरना हरिनाम जप होगा नहीं।

2. कंचन, कामिनी, प्रतिष्ठा से दूर रहे, घृणा करे। कंचन में घर–गृहस्थी की सभी वस्तुएं आ जाती हैं जैसे मकान, दुकान, खेत आदि तथा ऐश आराम की वस्तुएं, गाड़ी आदि। इन सब में जिसका मन आकृष्ट न हो। उपरोक्त सामग्रियों में जिसकी आसक्ति न हो। यह सभी कंचन में आती हैं। कामिनी– सभी को माँ समझे। वह नारी जाति के विषय में बोला गया है। यही खास माया है। यह बड़े बड़े महान धुरंधरों को अपने पैरों के नीचे कुचल डालती है। ब्रह्माजी तथा शिवजी तक इन से नहीं बच पाए तो साधारण व्यक्ति की तो बात ही क्या है। इनसे बचने का एक ही उपाय व साधन है, हरिनाम की शरणागति अर्थात् हरिनाम की 64 माला अर्थात् एक लाख हरिनाम नित्य ही करें, तो भगवान् की कृपा ही इस दुष्कर माया से बचा लेती है।

भगवान ही प्रेरणा के स्रोत हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है प्रह्लाद जो केवल पांच वर्ष का ही था। भगवन् नाम की शरण में था, तो उसका पिता हिरण्यकश्यप जो दस हजार हाथियों का बल रखता था, उसे मारने की

भरसक कोशिश की, परंतु प्रह्लाद का बाल भी बांका न कर सका। वह तो उसे गला घोटकर ही मार सकता था। क्यों नहीं मार सका? इसका खास कारण है कि हिरण्यकश्यप में भी परमात्मारूप से भगवान्, उसके हृदय में विराजित थे। भगवान् की प्रेरणा बिना तो पेड़ का पत्ता भी नहीं हिलता। भगवान् ने उसके हृदय में ऐसी प्रेरणा ही नहीं दी। दूसरे उपायों से ही प्रहलाद को मार देने के लिए राक्षसों को आदेश दिया तो राक्षसों ने प्रह्लाद को ऊंचे ऊंचे पहाड़ों से नीचे गिराया, समुद्र में डाला, धरती में दबाया, आग में जलाया आदि—आदि यातनाएं दी, परंतु हरिनाम ने प्रहलाद की रक्षा की। अंत में जब हिरण्यकश्यप ने व्यक्तिगत रूप से प्रह्लाद को मारना चाहा, तब स्वयं ही नरसिंह भगवान् के द्वारा मारा गया, तो कहने का मतलब है कि हरिनाम ने ही उसकी रक्षा की है। अतः सभी को हरिनाम नित्य करना चाहिए ताकि दुख समूल ही नष्ट हो जाए। शास्त्र वचन है :

जिन्ह कर नामु लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं।।

(मानस, बाल. दो. 314, चौ. 1)

तीसरी माया है प्रतिष्ठा अर्थात् बड़ाई। इसे शास्त्र बोल रहा है प्रतिष्ठा – शूकर विष्ठा। शूकर विष्ठा से गंदा तो कोई संसार में है ही नहीं। यह प्रतिष्ठा, ऐसी झीनी माया है कि इसका मन में पता तक नहीं चलता। ऐसा भक्त अनुभव करे कि यह बड़ाई उसकी क्यों हो रही है? इसका खास कारण है उसका हरिनाम जप, अर्थात् हरिनाम की ही बड़ाई हो रही है। तब भक्त को अहंकार नहीं होगा। अहंकार ही भक्त का खास दुश्मन है, जो हरिनाम की कृपा बिना दूर नहीं होता है, अर्थात् भगवान् इससे भक्त की रक्षा करते रहते हैं। यदि यह तीनों माया भक्त से दूर रहे तो भगवान् भक्त के पीछे छायावत् चिपके रहते हैं। भगवान् की भी ताकत नहीं कि ऐसे भक्त से दूर रह सकें। भगवान् स्वयं बोल रहे हैं, "काल और महाकाल मुझसे थरथर कांपता रहता है, परंतु मैं भक्त से थर—थर कांपता रहता हूँ क्योंकि भक्त ने मुझे प्रेम रस्सी से बांध रखा है। यह प्रेम रस्सी ऐसी अटूट है कि इसे तोड़ना बिल्कुल असंभव है।"

3. दो ही मिनट में भगवान् की उपलब्धि हो सकती है। यदि नित्य ही ऐसी प्रार्थना जीव करे तो। भगवान् जितनी शीघ्र सुनते हैं अन्य कोई नहीं सुनता। यह प्रार्थना वेदों का सार, पुराणों का सार तथा छह शास्त्रों का सार है। यह किसी दिव्य शक्ति ने, प्राणियों पर दया करने हेतु बताया

है। इन तीन प्रार्थनाओं को जो प्राणी, नित्य ही करेगा, वह इस जन्म में तथा अगले जन्म में सुख सागर में डूबा रहेगा। भगवान् ऐसे प्रार्थना करने वाले के पीछे छायावत् चिपके रहते हैं। इसमें दो राय नहीं है, 100% सत्य अटल साधन है।

पहली प्रार्थना है :– जब रात में सोने लगे, नींद आने लगे, तब बोलना है, "हे मेरे प्राणनाथ ! अंत समय में जब मुझे मौत आने लगे एवं आप मेरे तन से परमात्मारूप में बाहर निकलने लगो तो कृपा कर अपना नाम उच्चारण करा देना तथा बेहोशी में आपका नाम तथा आप की छवि हृदय में अंकित करवा देना। भूल मत करना।"

दूसरी प्रार्थना :– जब ब्रह्म मुहूर्त में जागे, तब बोलना है, "हे मेरे प्राणनाथ! इस समय से लेकर रात में नींद आने लगे तब तक, जो भी मैं कर्म करूँ, आपका ही समझ कर करूँ। चाहे मन से करूँ या तन से करूँ, आपका ही समझ कर करूँ एवं भूल जाऊँ तो कृपा कर याद दिला देना। भूल नहीं करना।" हम भूल सकते हैं, भगवान् कभी नहीं भूलेंगे। यह निष्काम कर्मयोग गीता अनुसार हो गया। अब नुकसान होगा तो भगवान् का होगा, यदि फायदा होगा तो भगवान् का होगा। हम निर्लिप्त रह गए।

तीसरी प्रार्थना :– जब भक्त व्यक्ति प्रातः स्नान करके संध्या वंदन करे तो भगवान् से प्रार्थना करे कि, "हे मेरे प्राणनाथ! मेरी ऐसी निगाह या दृष्टि बना दो कि मैं प्रत्येक प्राणी मात्र में तथा कण–कण में आपको ही देखूँ, तो आप मुझसे एक क्षण भी ओझल कैसे रह सकते हो? मैं किसी का भी बुरा कैसे कर सकता हूँ?" चींटी से लेकर हाथी तक में भगवान् ही दिखाई देंगे। यह तीन प्रार्थनाएं ऐसी प्रभावशाली हैं कि भगवान् भी चाहे कि, "मैं इससे दूर हो जाऊँ, तो मुझ में शक्ति ही नहीं कि मैं दूर हो सकूँगा।" इसी जन्म में तथा अगले जन्म में ऐसा भक्त भगवान् से अलग रह नहीं सकता, न ही भगवान् उससे अलग रह सकेंगे। भगवान् बंध जाएंगे। इस बंधन को भगवान् भी तोड़ नहीं सकते।

कुछ चर्चाएं शास्त्रों में नहीं हैं। यह तो किसी दिव्य शक्ति द्वारा ही प्रेरित होकर सबके समक्ष बताई गई हैं। इसका लाभ लेना श्रेयस्कर होगा। मौका छूटने पर पछताने के सिवाय कुछ नहीं मिलेगा। कुछ चर्चाएं बार–बार बोलनी पड़ जाती हैं ताकि भक्तों के हृदय में अंकित हो सकें।

4. जितना संग्रह–परिग्रह अधिक रखोगे तो भक्त का मन उस में फंसा रहेगा जो कि संसार की आसक्ति का कारण होगा। हरिनाम में मन कम लगेगा। अपने पास इतनी ही वस्तु रखो, जिससे जीवन यापन हो सके। जब भगवान् ने अंगुलियां दी हैं तो चम्मच की क्या आवश्यकता है? जब हाथ दिए हैं तो तकिए की क्या आवश्यकता है? इस छोटे से उदाहरण से समझा जा सकता है। जितनी चीजें बटोरोगे, उनमें मन तो फंसेगा ही। अतः सोच समझ के काम लेना श्रेयस्कर होगा। हमारे गुरुवर्ग दो करवे रखते थे। एक से शौच जाते थे, दूसरे से मधुकरी ला कर काम में लेते थे एवं एक झोपड़ी में ही रहा करते थे, तो भगवान् उनके पास ही रहा करते थे। कहने का मतलब है कि ऐसा स्वभाव बनाओ ताकि पापिन चिंता से दूर रह सको।

5. भगवान की सन्निधि : व्यक्ति फोन से अपने मित्र को अपने घर पर बुलाता है। मित्र आ कर कमरे में बैठ जाता है, तो बुलाने वाला भी बैठकर आपस में कुछ विषयों पर चर्चा करते हैं। थोड़ी देर बाद बुलाने वाला उठकर बिना पूछे चला जाता है तो आने वाला क्या कहेगा कि उसे बुलाया ही क्यों था? फिर बुलाने वाला आया तक नहीं तो आने वाला कितना दुखी हो जाएगा? दुबारा बुलाने पर आएगा ही नहीं। बस इसी प्रकार से भक्त नाम जापक, हाथ में माला झोली लेकर, अपने कुशासन पर बैठकर हरिनाम आरंभ करता है, तो भगवान् अपने नाम के पीछे तुरंत आ जाते हैं। थोड़ी देर तक जापक मन की आंखों से भगवान् को देखता रहता है, बाद में बाजार की ओर, खेत की ओर, सब्जी मंडी की ओर इत्यादि इत्यादि जगह चला जाता है तो भगवान् क्या कहेंगे कि, "मुझे क्यों याद किया? अब मुझे छोड़ कर कहाँ चला गया?" इस काम से भगवान् तो दुखी नहीं होंगे लेकिन जापक का शुद्ध नाम नहीं होगा।

जापक की शिकायत होती है कि मैं इतना हरिनाम करता हूँ, परंतु कुछ प्रभाव नजर नहीं आता। जापक को अपनी गलती दिखाई नहीं देती और हरिनाम पर दोषारोपण करता है। ऐसे जापक की अवस्था भी लाभप्रद होगी, लेकिन समय अधिक लग जाएगा। भगवत्प्रेम नहीं होगा। सात्विक अष्ट विकार, पुलक, रोना, पसीना आदि से दूर रहेगा। नाम का उच्चारण तो अपना प्रभाव दिखाए बिना नहीं रह सकता। जिस प्रकार अनजाने में अमृत पी जाए या अनजान में जहर खा जाए तथा अनजाने में अग्नि में अगर अंग छू जाए तो यह अपना प्रभाव दिखाए बिना नहीं रह सकते। इसी

प्रकार भगवन् नाम, कैसे भी मुख से निकल जाए, तो जापक का दसों दिशाओं में मंगल हो जाएगा। शास्त्र बोल रहा है।

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

जैसे भरत या सीता जपती थी, इसी प्रकार भक्त को जपना चाहिए। भरत का जपना है :

पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू।।

(मानस, अयोध्या. दो. 325 चौ. 1)

सीता का जपना है:

जेहि बिधि कपट कुरंग सँग धाइ चले श्रीराम।
सो छबि सीता राखि उर रटति रहति हरिनाम।।

(मानस, अरण्य. दो. 29 ख)

इस प्रकार जापक को भगवान् को साथ में रखना जरूरी है। भगवान् की सन्निधि परमावश्यक है तब ही शुद्ध नाम होगा। शुद्ध, अशुद्ध कृष्ण, राम शब्द की आवश्यकता नहीं है। मुसलमानों में गाली है हरामी। इसी से मुसलमान तर गए। बाल्मीकि मरा–मरा जप कर ही त्रिकालदर्शी हो गए। शुद्ध नाम इसे बोला जाता है कि जिसका नाम उच्चारण कर रहे हो, वह आपके पास में रहना चाहिए।

6. किसी के गुण दोष न देखो।

7. जो मिला है, उसी में संतोष करो।

यह सात आचरण अपनाओ तो हरिनाम तैलधारावत् होता रहेगा और भगवान् छायावत् संग में चिपके रहेंगे।

प्रत्येक प्राणी के हृदय में चार कोष्ठ रहते हैं : मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। इन चारों में अहंकार ही सबसे अधिक खतरनाक है। अहंकार का मतलब है "मै–पना" यही जन्म मरण का आविष्कार करता है। यदि यह दिल से दूर हो जाए तो भगवान् उससे एक क्षण भी दूर नहीं रह सकते। इस जन्म मृत्यु वाले संसार में कोई, किसी का नहीं है। जो भी परिवार में आता है, भाई, बहन, नाती–पोते अपना कर्जा चुकाने आते हैं। जब कर्जा

चुक जाता है तब जहाँ से आए थे, वहीं पर चले जाते हैं। यह एक मार्मिक बात है, जो भगवान् की कृपा के बिना समझ में नहीं आ सकती। कोई ऊंट बनकर कर्जा चुकाता है। कोई कुत्ता बनकर कर्जा चुकाता है। यहाँ जो भी अपना सम्बन्ध है, अपना कर्जा चुकाने के बाद, इस मृत्युलोक से रवाना हो जाते हैं। हम प्रत्यक्ष में देख भी रहे हैं कि बेटा बनकर, ऐसा रोगी हो जाता है कि उसके माँ–बाप लाखों रुपया रोग को हटाने हेतु लगा देते हैं। जब कर्जा चुक जाता है तो बेटा, जहाँ से आया था, वहीं पर चला जाता है। कोई मानव ही मानव को मार देता है। क्यों मार देता है? उसने भी उसे गला घोटकर मारा था। सांप बनकर, खाट पर चढ़कर प्राणी को काट लेता है, वैसे दब कर भी नहीं काटता। शास्त्रों में भविष्यकाल के अनेक उदाहरण मौजूद हैं। परिवार में कोई मर जाता है तो दहाड़ मार–मार कर चिल्लाते हैं। क्यों चिल्लाते हैं? इसलिए रोते हैं कि मरने वाले से बहुत सहायता मिलती थी। कहता है, "मेरा जीवन ही बेकार हो गया। इसके बिना मैं कैसे जीवन काटूँगा?"

अखबार या टीवी पर सुना गया या देखा गया कि ट्रेन टकरा गई जिससे 150 लोग मारे गए, तो सुनने वालों पर जूं भी नहीं रेंगी अर्थात् कोई दुख नहीं हुआ क्योंकि उनसे, इस व्यक्ति का कोई लेन–देन नहीं था। अतः यह निष्कर्ष निकला कि यह स्वार्थ का संसार है, स्वार्थ ही रुलाता है। देखा गया है कि शिशु के जन्म लेते ही माँ–बाप की मौत हो गई। फिर इस शिशु को कौन पालता है? यही शिशु, बूढा हो कर मरता है। प्रत्यक्ष उदाहरण है, प्रह्लाद तो पांच साल का ही था, उसका दुनिया में कोई नहीं था। बाप हिरण्यकश्यप भी दुश्मन बन गया, मारने की भरसक कोशिश की। परंतु मार न सका। कौन प्रह्लाद को बचाता रहा? केवल भगवान् ही अपना खास निजी है, अन्य सब कर्जा चुकाने आते हैं। जब प्राणी का जी घबराता है, तो उसे कोई याद आता है। 'जी' भी एक प्रकार से आत्मा है अर्थात् अनुभव कहता है कि आत्मा ही अपना खास साथी है, अन्य सब पराए हैं। कोई भी किसी का दुख–कष्ट नहीं बांटते हैं, सभी दिखावटी हैं, स्वयं को ही कष्ट भोगना पड़ता है।

करम प्रधान बिस्व करि राखा।

जैसा शुभ अशुभ–कर्म करता है, स्वयं को ही भोगना पड़ता है। अन्य इसमें कोई कुछ नहीं कर सकता।

जो सिपाही देश की ओर से, अपने तन, मन, जीवन को झोंक देता है ऐसा मिल्ट्री (सेना) का सेवक मानव जन्म को सफल कर लेगा। जो राजा अपने देश की जनता को बच्चों के समान समझता है, निस्वार्थ जीवन यापन कर रहा है, ऐसे धार्मिक राजा होते थे।

श्रीराम के काल में अर्थात् त्रेता युग में एक चकवा बैन राजा था। रावण ने सभी राजाओं को जीत लिया था। एक चकवा बैन ही स्वतंत्र रह गया था। रावण ने विचार किया कि चकवा बैन को जीतना बहुत ही जरूरी है। अतः रावण ने अपने राज्य लंका से, एक दूत भेजा कि जाकर चकवा बैन राजा से बोल दे, "रावण आप से युद्ध करना चाहता है। यदि युद्ध नहीं करना है, तो रावण की पराधीनता को स्वीकार करो।" ऐसे रावण ने दूत को कह कर भेजा। शायद उज्जैन उसकी राजधानी थी। दूत वहाँ पर गया और पूछने लगा कि, "चकवा बैन कहाँ मिल सकता है?" किसी शहर वाले ने कहा कि इस समय तो वह घर पर नहीं मिल सकता, तो दूत ने बोला, "तो कहाँ मिलेगा?" तो शहर के व्यक्ति ने कहा, "इस समय तो चकवा बैन अपने खेतों में पानी दे रहा होगा।" दूत ने कहा, "कैसी पागल जैसी बातें करते हो। राजा होकर खेत में पानी देगा?" वह व्यक्ति आगे चला गया तो दूत ने दस, बारह साल के बालक से पूछा, "तुम्हारा राजा चकवा बैन कहाँ मिल सकता है?" बच्चों को अधिक मालूम रहता है, तो बालक बोला, "महाशयजी! इस समय तो चकवा बैन अपने खेत में पानी दे रहा होगा। वहाँ आपको मिल जाएगा।"

दूत ने पूछा, "चकवा बैन का महल कहाँ पर है?" बालक ने कहा, "वह तो एक कच्चे मकान में रहता है।" दूत को बड़ा अचंभा हुआ कि बालक झूठ नहीं बोल सकता। अब तो दूत उससे मिलने के लिए उत्सुक हो गया। सोचने लगा कि ऐसा उसने आज तक कभी सुना नहीं कि कोई राजा होकर कच्चे मकान में रहे और अपने खेत में पानी दे, लेकिन उसको मिलना बहुत अच्छा होगा। खेत का पता पूछा और बताये अनुसार खेत पर गया तो एक बुढ़िया घास खोद रही थी। दूत ने उससे पूछा, "माई ! चकवा बैन कहाँ है?" तो बूढ़ी ने कहा, "तुम को दिखाई नहीं देता? वह खेत में पानी दे रहा है।" दूत ने बोला, "क्या वही चकवा बैन है?" बूढ़ी ने कहा, "हाँ! वही चकवा बैन है।" "अचंभा! अचंभा!" कहकर बुढ़िया के पास ही बैठ गया। बुढ़िया ने कहा, "यहाँ क्यों बैठ गए? जाकर मिलते क्यों नहीं हो?" दूत ने कहा, "जाता हूँ।" दूत ने देखा कि चकवा बैन, सिर पर एक

मैली कुचैली, फटे पुराने कपड़े की पगड़ी को लपेटे है और नीचे की ओर एक कपड़ा लपेटे, पानी दे रहा है। अब तो दूत को पास जाने में भी भय हो रहा था, सोचने लगा कि, "मैं इसको कैसे बोलूँ कि रावण आपसे युद्ध करना चाहता है?" लेकिन रावण के डर की वजह से हिम्मत बांधकर, पास में जाकर खड़ा हो गया और बोला कुछ नहीं। तब चकवा बैन बोला, "तुम कौन हो? क्या लेने आए हो?" तो दूत घबराया सा बोला, "मैं लंका से आया हूँ और रावण ने मुझे भेजा है।"

चकवा बैन बोला, "रावण क्या चाहता है? जो चाहिए मैं देने को तैयार हूँ।" दूत बोला, "रावण कुछ नहीं चाहता, आप से युद्ध करना चाहता है।" चकवा बैन बोला, "बहुत ठीक है।" अब चकवा बैन पानी देना बंद करके, उसके पास ही खेत में बैठ गया और दूत से बोला, "उस पेड़ से लकड़ी का एक टुकड़ा लाओ।" दूत ने समझा कि लकड़ी के टुकड़े से उसे ही मार न दे, लेकिन आदेश पालन तो करना ही पड़ेगा। पास ही में पेड़ था, उससे तोड़कर लकड़ी का टुकड़ा चकवा बैन के हाथ में दिया तो चकवा बैन बोले, "तुम लंका की चारदीवारी का नक्शा, इस खेत की जमीन पर बनाओ।" दूत ने नक्शा बना दिया। चकवा बैन ने उसी लकड़ी के टुकड़े से एक तरफ की कंपाउंड वॉल (दीवार) को ढाह (गिरा) दिया और दूत से बोला, "अपने राजा से बोल देना कि जब चाहो तब युद्ध के लिए तैयार रहे।" लंका में जाकर दूत ने देखा कि एक ओर की कंपाउंड दीवार ढही पड़ी है। रावण ने भी देख लिया था और दूत से बोला, "मैं मुहूर्त निकाल कर लड़ूँगा।" वैसे रावण डर गया कि चकवा बैन से जीतना असंभव है। ऊपर से डींग हांक रहा है ताकि दूत न समझे कि रावण डरा हुआ है, या डर गया है। ऐसे पुण्यवान् राजा होते थे। झोपड़ी में रहते थे। ऐसा ही अम्बरीष, पूरी दुनिया का राजा था लेकिन कोई आसक्ति नहीं थी। यह आसक्ति ही सबसे खतरनाक है। आसक्ति होनी चाहिए संतो में। आसक्ति होनी चाहिए भक्तों में, भगवान् में। संसार में आसक्ति रहेगी तो दुख ही दुख हस्तगत होगा। तो आसक्ति सबसे खतरनाक है।
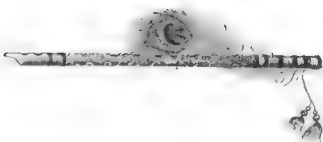
अलौकिकता का प्रतीक : भगवद् नाम

12 मई 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण युगल में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो एवं हरिनाम रुचि होने की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

यह स्वार्थ का संसार है। प्राणी मात्र का केवल भगवान् ही है। भगवान् ही प्राणी मात्र के रक्षक और पालक हैं। भगवान् का किसी से स्वार्थ नहीं है क्योंकि भगवान् के सभी चर–अचर प्राणी जन्म लेने से उनके पुत्र के समान हैं। माँ–बाप, संतान को निस्वार्थ होकर पालते हैं क्योंकि इन्होंने उनको जन्म दिया है। भविष्य में संतान इनकी माने या न माने परंतु पालन करना इनका धर्म है। बस यही तो माया है। माया का मतलब है जो न अब है, न आगे रहेगी, न पीछे थी। जैसे स्वप्न टूट जाने पर क्या वह दृश्य रहता है? सदा के लिए अदृश्य हो जाता है। अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि भगवान् ही अपने हैं अन्य सब माया का विस्तार है। यह समझ में आ जाए तो स्वार्थ की जड़ ही कट जाए। मतलब की जड़ ही कट जाए क्योंकि स्वार्थ माया का ही प्रतीक है। माँ–बाप कैसे खुश होते हैं कि उनका बेटा अब पांच साल का हो गया। माँ–बाप को यह पता नहीं कि उनका बेटा मौत की ओर अग्रसर हो रहा है। बस यही तो माया है। जानबूझकर रोज देखते हैं कि धीरे–धीरे मानव, श्मशान की ओर जा रहे हैं और एक दिन उन्हें भी श्मशान में जाना पड़ेगा, लेकिन सोच रहा है कि वह तो अमर ही रहेंगे। यही अज्ञान, माया का रूप है। इस माया बंधन से छूटने का एक ही उपाय है, एक ही, केवल, हरिनाम जप और कीर्तन। इससे माया दूर हो जाती है और ज्ञान का पर्दा खुल जाता है। हरि का नाम तो तीनों युगों में ही है परंतु कलियुग में विशेष रूप से प्रभावशाली होता है। कहते हैं :

कृत युग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पाबहिं लोग।।

(मानस, उत्तर. दो. 102 ख)

हरिनाम से ही कलियुग में उद्धार हो जाता है, हरिनाम करो। इसी से उद्धार हो जाएगा। केवल हरिनाम। कहीं भी बैठ कर कर सकते हो।

शिशु हूँ गौर हरि मैं आदि जन्म का तुम्हारा
सुना है दया का तू है भंडारा
जो निज कर्म से होता तरने का सहारा।
तो फिर क्यों ढूंढता सहारा तुम्हारा।।
इस पामर की नजरों में जब तुम आए।
उसी क्षण में तरने का हो गया सहारा।।
इस दुखी दुनिया की विनती सुनो मेरे बाप।
अरे! अनिरुद्ध दास शिशु है प्यारा तुम्हारा।।
शिशु हूँ गौर हरि मैं आदि जन्म का तुम्हारा।
सुना है दया का तू है भंडारा।।

श्री चैतन्य महाप्रभुजी के प्राकट्य को लगभग 532 साल हुए हैं। श्री चैतन्य महाप्रभुजी के जैसा दया का अवतार न अभी तक हुआ है न कभी भविष्य काल में होने की संभावना है। वैसे तो भगवान् दयानिधि कहलाते ही हैं, लेकिन चैतन्य महाप्रभुजी का दयानिधि अवतार सबसे विशेष रूप से है क्योंकि उन्होंने अपना नाम स्वयं जप कर मानव जाति का उद्धार किया है। इनको अपना नाम जपने की क्या आवश्यकता थी? इसलिए थी क्योंकि इस दुख सागर में मानव कितना दुख भोग रहा है, अब तो इसे इस दुख सागर से सुख सागर के किनारे पर लाना चाहिए। अतः उन्होंने, सभी मानव जाति को बोला है, "जो लखपति होगा मैं उसके घर पर जाकर प्रसाद पाऊँगा।" चैतन्य महाप्रभुजी कौन हैं? साक्षात् कृष्ण अवतार हैं। चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "जो लखपति नहीं है, मैं उस के घर पर नहीं जाऊँगा और उससे बात भी नहीं करूँगा एवं प्रसाद भी नहीं लूँगा।" तो सभी असमंजस में पड़ गए कि हमारे पास लाख तो क्या, दो रुपये भी नहीं हैं। लाख तो उनके पास पूरे जीवन में भी नहीं होगा। अतः वे तो चैतन्य महाप्रभुजी से वंचित ही रहेंगे। जब महाप्रभु अपनी माला पर हरिनाम कर

रहे थे, तब सभी उनके चरणों में बैठ गए। महाप्रभुजी ने पूछा, "आप क्यों आए हो? कुछ पूछना है?" तो आने वाले बोले, "हम तो इस जन्म में लखपति नहीं हो सकते, अतः आपके संग से वंचित ही रहेंगे।" तब महाप्रभुजी ने बोला, "लखपति पैसे से नहीं होता, भगवद् नाम से होता है। पैसा तो किसी के पास रुकता ही नहीं है। आज मेरे पास है, कल दूसरे के पास चला जाएगा, लेकिन भगवद् नाम ऐसा है जिसको कोई चोर नहीं चुरा सकता, न कभी कम होता है। जितना खर्च होता है, उतना ही बढ़ता रहता है। पैसा तो माया का प्रतीक है और भगवद् नाम अलौकिकता का प्रतीक है। अतः मैं तुमको यह अमर बूटी दे रहा हूँ, उसे तुम अपनाकर अमर बन जाओ। तुमको नित्य ही एक लाख नाम करना है अर्थात् 64 माला, वृन्दा माँ की शरण में हो कर, माला से करना है। माला, तुलसी मणियों की होनी चाहिए अन्य किसी काष्ठ माला से भगवद् नाम नहीं हो सकता। जब तुम रोज 64 माला जपोगे, चाहे तुम्हारा मन लगे या न लगे तो तुम इस दुख सागर संसार से निश्चित रूप से तर जाओगे। तुम देख नहीं रहे हो कि मैं स्वयं भी 64 माला नित्य कर रहा हूँ। समय होने पर इससे भी अधिक करता रहता हूँ।" सब ने पूछा, "हमने सुना है कि जब अट्ठाइसवें द्वापर का अंत होता है और कलियुग की संध्या शुरू होती है, तब आप अवतार लेते हो। ऐसा क्यों करते हैं? आपको तो शीघ्र अवतार लेना चाहिए। आप इतनी देर से अवतार क्यों लेते हैं?"

तब महाप्रभुजी बोले, "मैं स्वयं कृष्ण ही हूँ, लेकिन मैंने जब कृष्ण अवतार लिया था तब दुष्टों को संहार सुदर्शन चक्र से किया था। अब इस अवतार में, जो अंदरूनी (आंतरिक) शत्रु हैं, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, राग–द्वेष इत्यादि भगवद् नाम की दावाग्नि में जल मरेंगे। अब मुझे सुदर्शन चक्र की जरूरत नहीं पड़ेगी। केवल भगवद् नाम ही सुदर्शन चक्र का काम करेगा। मेरे कृष्ण के अवतार में तो मैंने सुदर्शन चक्र से दुष्टों को मारा था तो उनकी मुक्ति हो जाती थी। जैसे समुद्र का जल भाप से बने बादलों के माध्यम से बरस कर वापिस समुद्र में आ जाता है उसी प्रकार मुक्ति का मतलब है कि जो बूंद किनारे पर बाहर थी अब वह बूंद समुद्र में मिल गई। इसका अस्तित्व अलग नहीं रहा। परंतु अब मैं चैतन्य महाप्रभु का अवतार लेकर, मानव मात्र को भक्ति देकर समुद्र में मिलाना नहीं चाहता, इसकी सेवा लेकर आनंद भोग करना चाहता हूँ। अतः मैंने यह अवतार लिया है।"

तो मुक्त मानव वैकुण्ठ में या गोलोक धाम में नहीं जाता, लेकिन भक्त मानव का शरीर अलग रहता है। अतः भगवान् से सम्बन्ध बनाकर भगवान् और भक्त दोनों मिलकर आनंद का अनुभव करते रहते हैं। मान लो कि पानी भरकर कोई बर्तन रख दिया कुछ समय बाद आप देखोगे कि बर्तन का पानी कम हो गया। क्यों कम हो गया? पानी भाप बनकर आकाश में उड़ गया। इसी प्रकार सूर्य भगवान् अपने किरणों रूपी हाथों से समुद्र का पानी आकाश में ले जाते हैं और वह बादल बन जाता है। बादल कौन बनाता है? बादल सूर्य भगवान् ही बनाते हैं। जैसा कि श्रीमद्भागवत में लिखा हुआ है। जैसे राजा, महाराजा प्रजा से कर वसूल करते रहते थे। जब अकाल पड़ जाता है तो उसी पैसे को किसी भी रूप में प्रजा में बांट देते थे। इसी प्रकार सूर्य भगवान्, समुद्र से जल को कर के रूप में आकाश में स्थिर करके इसे फिर जल रूप में प्रजा में बरसा देते हैं अर्थात् बरसात रूप में बांट देते हैं। लेकिन यह जल रूपी कर सूर्य भगवान् नहीं बांटते। यह अधिकार स्वर्ग के राजा, इंद्र को सौंप रखा है। वही बादलों को आदेश देकर प्रजा को बरसात के रूप में बाँटा करता है। सब के अधिकार अलग–अलग होते हैं।

जब कृष्ण ने गिरिराज की पूजा की, तब इंद्र को गुस्सा आया कि कृष्ण ने उसकी पूजा बंद करवा दी तो इंद्र ने बादलों को आदेश दिया कि, "तुम वृंदावन जाकर जल बरसा कर उन्हें परेशान कर दो।" लेकिन कृष्ण ने सात साल की उम्र में सात दिन तक, गिरिराज पर्वत को अपनी तर्जनी उंगली पर धारण किया, तब इंद्र की आंख खुली और कृष्ण के चरणों में पड़ कर माफी मांगी। तो भगवान् को पहचानना बहुत ही मुश्किल है। इंद्र ही नहीं पहचान सका तो साधारण मानव क्या पहचानेगा। भगवान् की सब लीलाएँ तो खेल खिलौने जैसी हैं।

24 अवतारों में भगवान् ने अलग अलग लीलाएँ की हैं जिनको मानव सुन–सुनकर, अपना जीवन सफल करता रहता है। वैसे तो प्रत्येक मन्वंतर में भगवान् एक बार अवतार लेते ही हैं, लेकिन इनमें भगवान् का अंश थोड़ा ही होता है। ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मनु अवतार लेते हैं। एक मनु के काल को मन्वंतर बोला जाता है। ब्रह्माजी की हजार चौकड़ी का एक दिन होता है, जब ब्रह्माजी की सौ साल की उम्र पूरी हो जाती है तो इसे कल्प कहते हैं। मानव जन्म कई कल्पों के बाद मिलता है। अतः शास्त्र कहते हैं कि मानव जन्म सुदुर्लभ है, इसे बेकार कामों में मत

लगाओ। यही तो माया का कारागार है। माया, मानव को दुख देती रहती है क्योंकि मानव शास्त्र के विरुद्ध चलता रहता है और शास्त्र, मानव को सुखी रास्ता बताने हेतु ही भगवान् की साँस से प्रकट हुआ है। परंतु मानव शास्त्र को मानता ही नहीं है अपने मनगढ़ंत मार्ग पर चलता रहता है, तो माया इसे तरह–तरह के दुख देती रहती है। बाद में दंड के लिए 28 नर्क बनाए हैं वहाँ यातनाएं दी जाती हैं। वैसे तो अनंत नर्क हैं, खास 28 नरक हैं। इसमें चरम सीमा की यातनाएं जीव को भोगनी पड़ती हैं। सभी प्राणी भगवान् के बेटे हैं। पिता होने के नाते भगवान्, सबको अपने पास बुलाना चाहता है लेकिन प्राणी भगवान् के पास जाना ही नहीं चाहता। क्यों नहीं जाना चाहता? क्योंकि प्राणी जिस योनि में होता है, उसी में आनंद का अनुभव करता रहता है। यही तो माया है। वैसे किसी योनि में आनंद नहीं है, फिर भी मायावश इसमें आनंद मानता है, यही अज्ञान है।

एक बार नारदजी वैकुण्ठ में भगवान् के पास गए। भगवान् ने पूछा, "नारद! तुम तो सभी ओर जाते रहते हो। संसार का क्या हाल है?" तो नारदजी ने भगवान् से बोला, "भगवन्! संसार में कोई सुखी नहीं है। सभी अनंत काल से दुखी रहते हैं। आपके तो सब पुत्र समान हैं। आपको इन पर दया करनी चाहिए।"

तब भगवान् बोले, "दया तो मैं बहुत करता हूँ, परंतु जीव मेरे पास आना ही नहीं चाहता।" नारदजी बोले, "वैकुण्ठ में कौन नहीं आना चाहेगा? सब आने को तैयार हैं।" तो भगवान् बोले, "जाओ, जो वैकुण्ठ में आना चाहे उसे जाकर ले आओ।" नारद बोले, "अभी जाता हूँ। मैं लेकर आता हूँ।"

यह बोलकर नारद मृत्युलोक में आ गए। एक सत्तर, अस्सी साल का बूढ़ा, खटिया में पड़ा हुआ, खस–खस कर रहा था। तो नारदजी भी उसके पास ही बैठ गए और बोले, "बाबा शरीर से बहुत दुखी हो।" बाबा बोला, "बुढ़ापा तो सब को दुखी करता ही रहता है। बुढ़ापे में न तो कोई बेटा पूछता है, न बहू पूछती है, न पोता पूछता है। पानी तक पीने को भी तरसता ही रहता हूँ। खाना पीना तो बहुत दूर की बात है।" बाबा ने पूछा, "नारदजी! आपका दर्शन होने से मुझे बहुत सुख मिला है। आप मेरे पास कैसे आए हो?" नारदजी ने बोला, "बाबा! मैं तुम्हें वैकुण्ठ ले जाना चाहता हूँ।" तो बाबा बोला, "वैकुण्ठ तो बहुत सुख का स्थान है। मैं भी जाना

चाहता हूँ। आपकी बड़ी कृपा होगी, मैं जाने को तैयार हूँ।" नारदजी बोले, "तो चलो, मैं तुम्हारे लिए अभी साधन लाता हूँ।" बाबा बोला, "अभी नहीं, आप अगली बार आना। मैं अपनी पोती की शादी देखना चाहता हूँ। अभी तो मैं नहीं जाना चाहता।" नारदजी अचरज में पड़ गए कि भगवान् ने कहा था कि कोई नहीं आना चाहता तो सामने प्रत्यक्ष में देख लिया। अब वह भगवान् को क्या जवाब देंगे? लेकिन अब वह कहीं और जाकर किसी से पूछते हैं। सूअर सबसे गंदा होता है, नालियों के पानी पीता रहता है, भोजन भी विष्ठा खाता है, शायद वह वैकुण्ठ जाने को जरूर तैयार हो जाएगा।

नारदजी, एक रोगी सूअर, जो बुढ़ापे में अग्रसर हो रहा था, उसके पास बैठ गए। नारदजी ने पूछा, "सूअर! क्या हाल है?" सूअर कहने लगा कि, "मैं बहुत दुखी हूँ। चलना फिरना तो होता नहीं। भूख से प्राण निकल रहे हैं। पड़ा–पड़ा दिन गिन रहा हूँ। नाली में जो कुछ बह कर आता है, वही खा लेता हूँ। अब कब मौत आए और मैं इस दुख से छूट जाऊँ।" नारदजी बोले, "अरे! मैं तुझे वैकुण्ठ ले जा सकता हूँ।" सूअर बोला, "मैंने भी सुना है कि वैकुण्ठ तो बहुत सुखों का घर है। मैं चलने को तैयार हूँ।" नारदजी बोले, "तो चलो।" तो सूअर बोला, "क्या मेरा भोजन विष्ठा, वहाँ मिलेगा?" नारदजी बोले, "अरे दुष्ट! क्या कहता है? नारदजी चुप रह गए कि वास्तव में कोई भी वैकुण्ठ नहीं जाना चाहता। भगवान् ने सच ही बोला था कि उनके पास कोई नहीं आना चाहता। उन्होंने भगवान् की बात नहीं मानी और प्रत्यक्ष में देख भी लिया। अब वह भगवान् को क्या उत्तर देंगे? डरते डरते वह भगवान् के पास वैकुण्ठ में गए। भगवान् ने पूछा, "हे नारद! अनमने होकर कैसे बैठे हो? क्या बात है?" अब नारदजी क्या उत्तर देते? भगवान् ने पूछा, "क्या किसी को ले आए हो?" नारदजी बोले, "मैंने आपका कहना नहीं माना, इसी का दुख भोग रहा हूँ।" भगवान् बोले, "नारद! मेरी माया सभी जगह भ्रमण कर रही है, सब ओर अंधकार है।"

ध्यान से सुनिए! जो भक्त अपना सुख चाहे, वह भक्ति की छाया में रहे और जो अन्यों का सुख चाहे वह सर्वोत्तम भक्ति का प्रतीक है। इस प्रकार प्रह्लाद ने भगवान् से बोला, "सब का दुख मुझे ही दे दीजिए। मैं किसी का दुख नहीं देख सकता।" गोपियां, भगवान् के सुख के हेतु ही अपना जीवन धारण करती थीं तो भगवान् ने बोला, "हे गोपियो! मैं सदा ही तुम्हारा ऋणी रहूँगा। मैं तुम्हारा ऋण कभी किसी भी जन्म में, नहीं चुका सकता।"

जो अपना सुख चाहता है, उसमें मानवता का अंश नहीं है, वह तो पूरा ही मतलबी है, वह किस का भला कर सकता है? जिंदगी भर रोएगा तथा रोता हुआ ही इस संसार से चला जाएगा। भक्ष्य–अभक्ष्य खाता है तो पहले अनंतकाल तक नर्क भोगेगा और नर्क के बाद 84 लाख योनियों में दुख पाता रहेगा। भगवत्कृपा से कई कल्पों में जाकर मनुष्य जन्म मिल सकेगा। फिर भी मानव जन्म पाकर भी गलत रास्ते पर ही जाकर, अपना जीवन काटता रहेगा। बस यही तो माया है। यह माया का जंजाल है। मकड़ी अपने ही मुख से जाला निकालती है और उसी में फंस जाती है और उसी में मर जाती है। यही हाल मानव का है। क्षणभर के आनंद के लिए पूरा जाल बिछा लेता है और पूरी उम्र, उसी सेवा में फंसकर, दुनिया से कूच कर जाता है। कितना अज्ञान है। कितनी मूर्खता है। यही तो भगवान् की माया है, नहीं तो भगवान् की सृष्टि का विस्तार कैसे हो? जब किसी सच्चे संत का समागम उपलब्ध हो जाता है, तो उसका मानव जन्म सार्थक हो जाता है। यह अवसर भी भगवान् की कृपा के बिना उपलब्ध नहीं हो सकता। सच्चा संत वही है जिसकी संसार में आसक्ति नहीं है। संसार से वैराग्यवान हो, भगवान् व संत सेवा के अलावा कुछ नहीं चाहता हो।

यह पैसा ही सर्वशक्तिमान माया है। पैसे से इसका वैराग्य हो, ऐसा ही सच्चा संत का लक्षण है। कैसे कोई संत को पहचान सकता है? उसकी पहचान है कि उसके पास बैठने से शांति महसूस हो, उठने का मन न करे वह सच्चा संत है। संत के पास बैठने वाले पर उसकी वाइब्रेशन पड़ती हैं, वह एक आनंद का अनुभव करता है। यदि ऐसा नहीं है, तो वह कपटी संत है। कपटी संत के पास बैठने से बार–बार घर की याद आने लगेगी और उठ जाने को मन करेगा। लेकिन सभ्यता के नाते उठ नहीं सकते। तो वह दोबारा, उस संत के पास ही नहीं जाएगा। कलिकाल में ऐसे कपटी संतों की भरमार है जो सभी देख भी रहे हो। शुभ अवस्था केवल हरिनाम से प्रकट होगी। हरिनाम स्वयं भगवान् है। हरिनाम ही सच्चे संत को मिला सकेगा लेकिन यदि हरिनाम जापक, केवल यही चाहे कि हरिनाम में मेरी रुचि बन जाए। भगवान् मुझे कब दर्शन देंगे? यह लालसा जब जागृत होगी, तब समझना होगा कि हरिनाम ठीक तौर से हो रहा है, वरना तो भार रूप में हो रहा है। भार रूप में होना भी लाभप्रद ही है। समय लगेगा, नैया तो पार हो ही जाएगी।

भगवान् कृष्ण कहते हैं कि, "हे उद्धव! यह मन ही बंधन और मोक्ष का कारण है। जब यह संसार में आसक्त हो जाता है तो जीव के बंधन का

कारण बन जाता है और जब संत और भगवान् में आसक्त हो जाता है तो मोक्ष का कारण बन जाता है। अतः मन ही सब कुछ है।"

मैंने जो भक्त के स्वभाव और आचरण बताए थे, उसके अनुसार स्वभाव को ठीक करो तो भक्त के उद्धार होने में देर होने का प्रश्न ही नहीं उठेगा। जो मैंने पहले सात तरह के स्वभाव बता रखे हैं। बार–बार बोल रहा हूँ कि भक्तों के हृदयगम्य हो जाएँ। इसलिए बार बार बोलना पड़ता है कि इन्हें सुनकर भक्त विचार करेगा कि मेरा अमुक स्वभाव बिगड़ा हुआ है तो अपने स्वभाव को सुधारने की कोशिश करेगा। धीरे–धीरे ही स्वभाव सुधर सकेगा। जल्दी में कोई काम फलीभूत नहीं होता, बिगड़ जाता है। अपना स्वभाव अगर बिगड़ा हुआ है और वह दिखता ही नहीं है तो स्वभाव सुधर नहीं सकता। जब भक्त अपने स्वभाव को देखेगा कि यह ठीक नहीं, गंदा है, तो उसे सुधारने की कोशिश करेगा। कहावत है।

धीरे–धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आए फल होय।।

(कबीरदास जी)

जब समय आएगा, तब ही फल प्राप्त होगा। जल्दी करने से कुछ होने वाला नहीं है। माँ–बाप अपने शिशु को एल.के.जी., यू.के.जी. में भर्ती करवा देते हैं और यदि माँ–बाप सोचे कि बच्चा अभी ही पी–एच.डी. पास कर ले, तो कितनी बड़ी मूर्खता है। समय पर ही कुछ हस्तगत होगा। भक्तों के लिए भगवान् प्राप्ति के निमित्त सर्व आत्मा श्रीहरि के प्रति की हुई सेवा के समान कोई भी मंगल मार्ग नहीं है। संग और आसक्ति ही इसका खास कारण है। जब संग और आसक्ति, संतों के प्रति बन जाती है तो मोक्ष का द्वार खुल जाता है और जब आसक्ति, संसार के प्रति बन जाती है, तो यही बंधन का हेतु बन जाता है और जन्म मरण के चक्कर में फंस जाता है। भगवान् कहते हैं, "जो लोग सहनशील, दयालु, समस्त देहधारियों के अकारण हेतु, किसी के प्रति भी शत्रु भाव न रखने वाले, शांत, सरल स्वभाव, सबका सम्मान करने वाले होते हैं, और मुझ से अनन्य भाव से प्रेम करते हैं, मेरे लिए ही संपूर्ण कर्म, यहाँ तक कि अपने सम्बन्धियों का भी त्याग कर देते हैं, मेरे परायण हो कर, मेरी कथाओं का श्रवण करते रहते हैं तथा मुझ में ही चित्त लगाए रहते हैं जैसे गोपियां, हर क्षण मुझे याद करती रहती थीं। ऐसे स्वभाव वालों को, मैं एक क्षण भी छोड़ नहीं सकता क्योंकि वह भी मुझे एक क्षण को भी छोड़ने को तैयार नहीं। ऐसे भक्त को

यह संसार के ताप कोई कष्ट नहीं दे सकते। जिनका मैं ही प्रिय हूँ, आत्मा हूँ, उनका मित्र, गुरु, सुहृद और इष्टदेव हूँ। मेरे आश्रय में रहने वाले भक्त, सीधे मेरे वैकुण्ठ धाम में चले जाते हैं। उन्हें मेरा कालचक्र रत्ती भर भी बाधा नहीं दे सकता। मेरी दुष्कर माया भी इसका कुछ बिगाड़ नहीं सकती तथा हर समय इसकी सहायता करती रहती है। मेरी माया उन पर ही धाक जमाती है जो भगवान् से दूर रहते हैं, संसार में फंसे रहते हैं।" संसार में मनुष्य के लिए सबसे बड़ा कल्याण का साधन है कि उनका चित्त भक्ति द्वारा स्थिर हो जाए। यह भक्ति ही, कलियुगी जीवों के लिए एकमात्र साधन है। यदि एक लाख अर्थात् 64 माला नित्य करता है, तो अन्य कोई भी साधन करने की आवश्यकता नहीं है। इसी से, इसी जन्म में ही, अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की उपलब्धि हो जाएगी। अंत में भगवान् स्वयं आकर ऐसे भक्त को विमान में बिठाकर वैकुण्ठ धाम में ले जाएंगे। वहाँ पहुँच कर भक्त का भव्य स्वागत होगा। वहाँ के सभीजन उससे असीम प्रेम करेंगे। वहाँ पर सभी सुविधाएं उपलब्ध हो जाएंगी।

कृत युग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पाबहिं लोग।।

(मानस, उत्तर. दो. 102 ख)

इसलिए हरिनाम करो !

जिन्ह कर नामु लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं।।

(मानस, बाल. दो. 314, चौ. 1)

सकल अमंगल मूल नसाहीं....अरे! दुखों की जड़ ही खत्म हो जाएगी। सुख ही सुख का साम्राज्य फैल जाएगा। जब दुख की जड़ ही खत्म हो गई तो दुख कहाँ से आएगा?

श्रीमद्भागवत पुराण के दशम स्कंध में लिखा है कि मकड़ी अपने मुख से जाला फैलाकर, उसी में फंस जाती है। ध्यान से सुनिए! इसी प्रकार से मानव, क्षण मात्र के सुख के लिए, माया का जाल फैला कर, उसमें ही फंस जाता है। प्रत्यक्ष देख रहे हो, कहने की क्या जरूरत है? प्रथम में शादी करता है, फिर संतानें करता है, अपना सारा पाप की कमाई का धन, संतानों के लिए पढ़ाई में, शादी में और भात भरने में खर्च करता रहता है। अरे! पाप की कमाई का धन तो निश्चय ही दुख देगा। दुखी रहेगा, कोई सुख नहीं पायेगा। यह दुख देगा। उसने पाप की कमाई

लगाई है। पाप की कमाई का उसे ही भोग भोगना पड़ेगा। इस झमेले के कारण वह अपने खास ध्येय भगवद् प्राप्ति को भूल जाता है और अंत में मरकर नर्क में जाता है। वहाँ से आकर 80 लाख योनियों में, सर्दी, गर्मी, बरसात में आक्रांत होकर सारा जीवन व्यर्थ में ही व्यतीत कर देता है।

अच्छा! 80 लाख योनियां कौन सी हैं? 30 लाख तो पेड़ पौधे हैं, तो इन 30 लाख तरह के पेड़ पौधों में जन्म लेना पड़ेगा और सब कुछ बनना पड़ेगा तो कई युग तो पेड़ पौधों में ही लग जाएंगे। 20 लाख, आकाश में उड़ने वाले जानवर हैं, अब उनमें भी एक–एक में जन्म लेना पड़ेगा। कमेरी, कबूतर, पपीहा, कौआ बनना पड़ेगा। उसमें भी कई युग बीत जाएंगे। यह मैं नहीं कह रहा हूँ, श्रीमद्भागवत कह रही है। फिर 20 लाख जलचर हैं। जलचरों की आयु बहुत लंबी है। जो बड़ी–बड़ी व्हेल मछलियां हैं, उनकी 50 हजार साल की आयु है। कछुए की 10 हजार साल की आयु है तो इसमें ही कई युग बीत जाएंगे। अब बताओ? और 10 हजार चार पैर वाले, चौपाये हैं। वह पृथ्वी पर घूमते हैं उनमें भी जन्म लेना पड़ेगा। कुत्ता, बिल्ली, गाय, भैंस, हाथी बनना पड़ेगा, सब कुछ बनना पड़ेगा और चार लाख मनुष्य नहीं, चार लाख जातियां हैं। उनमें सब कुछ बनना पड़ेगा। कंजर, भंगी बनना पड़ेगा, ब्राह्मण, राजपूत, बनिया बनना पड़ेगा। जंगली जातियों में भी जन्म लेना पड़ेगा। अब आप सोचिए कि इतने युगों तक तो यूं ही भटकता रहेगा। इसी प्रकार मनुष्य अपना जीवन बिता देता है। अरे! यह मनुष्य जन्म किस लिए मिला है? अब भी आंखें खोल लो। मनुष्य जन्म मिलने वाला नहीं है। भगवान् की बड़ी कृपा होगी, तभी मिल सकेगा। वह भी कृपा तब होगी जब किसी संत की सेवा, सहायता हो जाएगी, क्योंकि संत भगवान् का प्यारा बेटा है। तो संत की कृपा से ही तुम को मनुष्य जन्म मिल सकेगा। तो ऐसा अवसर तुमको कहाँ मिलेगा? बड़ा मुश्किल है, ऐसा अवसर मिलना। इसलिए अपने जीवन को भगवान् से प्यार में लगाओ। हरिनाम करो। हरिनाम से तुम्हारा उद्धार होगा।

इसी प्रकार जन्म से मरण तक का चक्कर, इसके पीछे लगा ही रहता है, तो जीवन का क्या मूल्य है? आदि से अंत तक दुख ही दुख भोग करता रहता है, यही मूल्य है। दुख के सिवा सुख नहीं है। यह दुख है सुख की केवल छाया दिख रही है। एक काम किया उसमें थोड़ा सुख मिला और फिर दूसरी बार में दुख आ गया। यह तो आता रहता है, तो क्या सुख मिला? सोचता है, "अरे! कार खरीद लूँगा और बड़े आनंद से सैर करूँगा।" उसने कार खरीदी और लेकर जंगल की तरफ चला गया।

बीहड़ जंगल, जहाँ हिंसक पशु रहते हैं। अब शाम हो गई। कार खराब हो गई। अब खड़ा–खड़ा रो रहा है। "अब क्या करूँ? अब तो रात को मुझे कोई जानवर खा जाएगा। यहाँ शेर है, बगीरा है, बाघ है। मैं रात भर क्या करूँगा अब? हे भगवान्! मेरी रक्षा करो।" अब भगवान् को याद करता है। भगवान् तो बहुत कृपालु हैं। भगवान् को याद किया तो एक ट्रक, जो लकड़ियों का भरा हुआ था, उसको रोका। ट्रक वाले को बोला, "अरे भैया! मेरी इस गाड़ी को ले चलो, मेरी गाड़ी खराब हो गई है। मैं रात को क्या करूँगा?" ट्रक वाले ने कहा, "नहीं मेरे पास समय नहीं है।" फिर से ट्रक वाले को बोला, "अरे भैया! जो पैसा लोगे, मैं दूँगा।" ट्रक वाला बोला, "मैं दो हजार रुपए लूँगा।" तो बोलता है, "मैं तीन दे दूँगा। ठीक है!" गाड़ी को रस्सी से ट्रक के साथ बांध के ले आए। सुख मिला? क्या कार में सुख मिला? दुख ही दुख है, चारों तरफ। इसलिए कोई सुख नहीं है। यही है माया। यह भगवान् की माया है। भगवान् की दुष्कर माया से चारों तरफ दसों दिशाओं में अंधकार ही अंधकार फैला हुआ है। जहाँ ऐसा हो वहाँ भला सुख हो सकता है? मानव जीवन सुख के लिए मिला था जो व्यर्थ में गवाँ दिया। जिससे जीव को सच्चा मार्ग उपलब्ध हो जाता है, इसी को सत्संग बोला जाता है। यही मेरे ठाकुरजी ने बोला है, "तुम रोज सत्संग करो। इससे सबका भला होगा।" इसीलिए मैं उनकी आज्ञा का पालन कर रहा हूँ। तभी बोला है।

तबहिं होइ सब संसारी मोह भंगा। जब बहु काल करिअ सतसंगा।।

बहुत काल तक सत्संग होगा तभी संसार का मोह भंग होगा। तभी तो मन बदलेगा। दो मिनट में मन नहीं बदलता है, काफी दिनों तक सत्संग करना पड़ता है। इसलिए मैं जो बोलता हूँ, उसे सब को सुनना चाहिए। मैं तो कुछ नहीं चाहता। मैं तो भगवान् की आज्ञा का पालन कर रहा हूँ, तभी तो संसार से मोह–ममता, आसक्ति दूर हो सकेगी। भगवान् श्रीमद्भागवत में बोलते हैं कि, "हे उद्धव! मैं केवल सत्संग से ही मिलता हूँ और किसी दूसरे साधन से नहीं मिलता हूँ।"
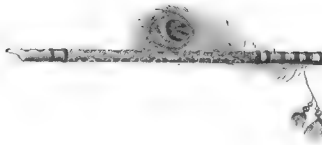
कलियुग का सहारा : केवल हरिनाम

19 मई 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में इस दासानुदास अधमाधम
अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा
हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

मैं आपको बता रहा हूँ कि इस कलियुग में भगवान् बहुत जल्दी मिल जाते हैं। बस स्वभाव को ठीक करना है। सात स्वभाव जिसके ठीक होंगे, उनको भगवान्, दर्शन दिए बिना रह नहीं सकते।

सभी भक्तों की एक समस्या है कि हमारा मन एक क्षण भी स्थिर नहीं रहता। एक पल नहीं टिकता। टिकेगा कैसे? कोई सहारा ही नहीं। सहारे के बिना तो संसार का काम चल ही नहीं सकता। सबको सहारा चाहिए। पृथ्वी को भी सहारे की जरूरत थी, अतः शेषनागजी ने अपने फनों पर पृथ्वी को रखा हुआ है। शेषनागजी को पृथ्वी का बोझ ऐसे महसूस हो रहा है, जैसे एक सरसों का दाना सिर पर रखा हो। शेषनागजी भी अपने हजारों मुखों से भगवद् नाम लेते रहते हैं क्योंकि भगवद् नाम लिए बिना मन को शांति मिल ही नहीं सकती। हरिनाम की बड़ी कीमत है। जैसे प्राणीमात्र साँस के बिना एक पल भी नहीं रह सकता, ऐसे ही हरि का नाम भी साँस का प्रतीक है। हरिनाम के बिना जीव मात्र जीवित रह ही नहीं सकता। अतः कलियुग में हरिनाम का ही सहारा है जिसके अभाव में जीव मात्र को किसी प्रकार की सुख शांति मिल ही नहीं सकती। शिवजी भी हरिनाम के बिना एक क्षण भी नहीं रह सकते। तो भक्तगण को चाहिए कि नित्य ही हरिनाम जप का सहारा लें ताकि जीवन सुखमय व्यतीत हो सके। आसमान के तारे भी एक दूसरे के आकर्षण के सहारे ही एक जगह पर रहते हैं। देश भी आपस में एक दूसरे के सहारे अमेरिका, रशिया, यूरोप, एशिया आपस में सहारे से ही टिके हुए हैं। अनंत कोटि ब्रह्मांड भी

एक दूसरे के आकर्षण के सहारे से टिके हुए हैं। यह हुई उच्च कोटि की वार्ता। अब निम्न कोटि की वार्ता भी सुनने के योग्य है। मानव को सभी जातियों का अर्थात् सभी कर्मकांडियों का सहारा लेना पड़ता है। जैसे बढई हमें फर्नीचर बना कर देते हैं, कुम्हार हमें मिट्टी के घड़े आदि देते हैं। जिसका जो भी कर्म है, उससे प्रत्येक मानव जाति को सहारा लेना ही पड़ता है। कंपनी हमें कपड़ा बनाकर देती है, किसान हमें खाद्य पदार्थ देते हैं आदि–आदि। इसी तरह सहारा लेना पड़ता है। शिशु को माँ–बाप का सहारा है। पढ़ने वाले को अध्यापक का सहारा लेना पड़ता है। आध्यात्मिक गुरु हमें धर्म मार्ग पर चलाते हैं अर्थात् बिना सहारे के संसार का काम चल ही नहीं सकता तो मन को भी तो सहारा चाहिए। यह बड़े महत्व की चर्चा का प्रसंग है कि मन बिना सहारे के कैसे रह सकता है? किसी न किसी का सहारा चाहिए। मन को चाहिए साधु संत का सहारा। गुरुदेव का सहारा। धर्मशास्त्र का सहारा। मंदिर का सहारा आदि आदि। बहुत विस्तार है। अतः समझने के लिए संक्षेप में ही कहना उचित रहेगा।

जब हरिनाम करने बैठे तो ह्रदय की आंख से गुरुचरण देखते हुए हरिनाम जपना चाहिए। जब हरिनाम करने बैठे हैं जैसे ह्रदय की आंख है, अंदर में, ह्रदय में भी आंख, नाक, कान सब कुछ होता है। उसकी आंख से गुरुचरण देखते हुए हरिनाम जपना चाहिए। इससे मन को भी सहारा मिल गया। मन की आंखों से भगवद् चरण का चिंतन करना चाहिए। मन की आंखों से हम अमेरिका चले जाते हैं। कहने का मतलब यह है कि हमें संसार याद नहीं आए। जब हरिनाम करने बैठे हैं तो भगवद् सम्बन्धी लीलाएँ ही हमारे मन में आएँ तो इससे हमारा मन निर्मल हो जाएगा और मन को सहारा मिल गया तो मन कहाँ जाएगा? 'चेतो दर्पण मार्जनम्' चित्त के दर्पण का मार्जन हो जाता है।

साधकों का एक बहुत बड़ा प्रश्न होता है कि हमारा मन स्थिर नहीं होता। मन में एकाग्रता नहीं आती। इसका भी सरल से सरल हल हो सकता है। कहावत है :

जैसा अन्न वैसा मन। जैसा पानी वैसी वाणी।

इससे मन स्थिर हो जाएगा। भक्तगण करके देखें। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं हुआ करती है। एक तो शुद्ध कमाई का अन्न हो तथा भोजन भी सात्विक होना चाहिए। सात्विक भोजन का मतलब है जिसका

भगवान् को भोग लगा हो। कम मसाला हो। मिर्च कम, खटाई कम, स्वादमय, तथा अमणिया (भोग) हो।

जब भगवान् को भोग लगाएं तो कम से कम पांच मिनट तो पर्दा लगाकर भगवान् को भोग रखो और जो भोग बनाने वाला है, अगर हरिनाम करते हुए भोजन बनाए तो निर्गुण वृत्ति आ जाती है, तो उसको खाने वाले का मन स्थिर हो जाएगा। इसलिए भोजन बनाते समय हरिनाम करते रहना चाहिए।

यह मैं सभी माताओं को बोल रहा हूँ इससे सब को फायदा होगा। भोग लगाते हुए चिंतन करो कि भगवान् अब खा रहे हैं, अब दही खा रहे हैं, अब मीठा खा रहे हैं, अचार खा रहे हैं, ऐसा ध्यान करो कि अब तो खा चुके, अब आचमन कर रहे हैं। तब यह प्रसाद 100% भगवान् का ही खाया हुआ हो जाएगा। ऐसा एक दिन में तो नहीं होगा, एक माह करके देखो। भगवान् अवश्य ही खाते हुए नजर आएंगे। मानो, चार चपाती रखें तो पर्दा हटा कर देखोगे और दो चपाती गायब हो गई। खीर के प्याले से थोड़ी खीर भी नीचे गिर गई। देखोगे! ऐसा भगवान् भक्त की श्रद्धा बढ़ाने के हेतु ही करते हैं। भगवान् पागल नहीं हैं जो खीर नीचे गिरा देंगे या कहीं गिरा देंगे। यह केवल भक्त को प्यार ही दिखाने हेतु ऐसा करते हैं। भगवान् का चित्रपट ऐसी लीलाएँ करेगा। चित्रपट में अपराध होने का डर नहीं रहता, मूर्ति में डर रहता है। लेकिन भगवान् किसका भोग खाते हैं? जो 64 माला अर्थात् एक लाख हरिनाम करता है। उसका भोजन भगवान् आकर खाते हैं। जो एक लाख हरिनाम नहीं करते उसका अर्पित भोग भगवान् नहीं खाते हैं। इसलिए माताओं से प्रार्थना है कि जब आपका भोजन बनाने का काम है तो एक लाख हरिनाम जप कर ही लिया करो तो भगवान् खाएंगे। श्री चैतन्य महाप्रभुजी ने बोला है, "जो एक लाख हरिनाम करेगा उसके यहाँ आकर भोजन करूँगा। जो एक लाख हरिनाम नहीं करेगा तो मैं उसके यहाँ, न जाऊँगा, न भोजन करूँगा, न ही उससे बात करूँगा।" चैतन्य महाप्रभुजी स्वयं कृष्ण का अवतार हैं। कलियुग में इस आदेश को कौन मानता है? मंदिरों में पुजारी से कुछ भजन होता नहीं है, तब भगवान् के आदेश की अवहेलना हो जाती है। वहाँ कलि महाराज का शासन हो जाता है।

श्री गुरुदेव चर्चा में फिर से बता रहे हैं कि क्यों हरिनाम में मन नहीं लगता? इसी को खोलकर बता रहे हैं कि जब महाप्रसाद थाली में सामने

आए, पत्तल पर आए तो भक्त महाप्रसाद को नमस्कार करें और प्रार्थना करें, चिंतन करें कि इस प्रसाद को मेरे गुरुदेवजी ने पाया है, मेरे ठाकुरजी ने पाया है, अब मैं भी पाऊँगा तो मेरा मन स्थिर हो जाएगा। निर्गुण हो जाएगा और पूर्व जन्म के जो संस्कार हैं, वह जलकर भस्म हो जाएंगे।

इसके बाद दाएं हाथ में जल लो और प्रसाद की थाली के चारों तरफ चार बार परिक्रमा करो। फिर एक–एक ग्रास के साथ आठ–आठ बार मन में हरिनाम करते रहो। इस प्रकार करने से मन कहीं नहीं जाएगा, मन भगवद् विषय में ही रहेगा। इस प्रकार आप प्रसाद के, 20–25 ग्रास तो पेट भर कर खाएंगे ही। पेट भर जाएगा और चिंतन सात्विक धारा में हो गया। इससे जो भोजन का रस बनेगा, वह निर्गुण बनेगा और इससे संसारी आसक्ति कम होती चली जाएगी और आध्यात्मिक आसक्ति उदय होती जाएगी। यह प्रत्यक्ष करके देखो। तब मन हरिनाम में स्थिर होने लगेगा। लेकिन यह एक दिन में नहीं होगा, एक माह तक करके देखो कि क्या लाभ होता है?

इसके पहले भक्त भोजन को न तो भगवान् को भोग लगाता था, न थाली को नमस्कार करता था। ग्रास खाता था तो मन इधर उधर चला जाता था, कहीं बाजार में गया, कहीं सब्जी मंडी में, कहीं ऑफिस (दफ्तर) में, कहीं और कहीं चला गया, संसार में चला जाता था। इसलिए जो भोजन कर रहा था वह तामसिक, राजसिक धारा में ओतप्रोत रहता था। धारा में मन चंचल रहेगा ही। फिर स्थिर होने का प्रश्न ही नहीं उठता। इसमें मन की गलती नहीं है, इसमें स्वयं की गलती है। जैसा अन्न वैसा मन। दूषित अन्न से तो दूषित मन होगा ही। इसमें गलती स्वयं की है। लेकिन जब उक्त प्रकार से भक्त, भगवद् महाप्रसाद का भक्षण करेगा तो पिछले जन्मों के कुसंस्कार जलकर भस्म हो जाएंगे। यही तो बाधा कर रहे हैं, भगवान् के दर्शन में। कहावत है :

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।।

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 1)

करोड़ों जन्मों के पाप उसी समय जलकर भस्म हो जाएंगे। जैसा गुरुदेव बता रहे हैं, करके देख लो कि क्या लाभ मिलता है?

मन भगवान् में क्यों नहीं लगता? इसका खास कारण है खान–पान तथा संग। जैसा संग होगा वैसा ही रंग चढ़ेगा। भगवान् के मिलने में देर

नहीं, लेकिन साधक भगवान् को चाहता ही नहीं है। यह तो अपनी सुख–सुविधा ही चाहता है। मेरे मकान बन जाए, मेरे कार आ जाए, मेरी पोती की नौकरी लग जाए, मेरी फैक्ट्री चल जाए। भगवान् उसकी भी मनोकामना पूरी कर देते हैं लेकिन यह तो लेनदेन का व्यापार हुआ। इसमें भगवान् का क्या दोष है? जो मांगा वह दे दिया। भगवान् से प्यार तो मांगा नहीं था। भगवान् को चाहे तो भगवान् मिल जाएं। जब साधक भगवान् को चाहता है, तो भगवान् उसे सच्चे संत से मिला देते हैं। खुद नहीं आते, सच्चे संत से मिला देते हैं। सच्चा संत, उसे भगवान् मिलने का मार्ग बता देता है जिससे साधक का सुख का विधान बन जाता है। कलियुग में सच्चा संत मिलना बहुत मुश्किल है। फिर भी भगवान् अंतर्यामी हैं, सच्चा संत ढूंढ–ढूंढ कर भगवान् साधक को मिला देते हैं। भगवान् से क्या सुपीरियर (श्रेष्ठ) है। संसार में किसी वस्तु की कमी नहीं है। जो चाहो वह मिल ही जाती है, लालसा होनी चाहिए, चाह होनी चाहिए। भगवान् के पास क्या कमी है? भगवान् सर्व समर्थ हैं, सभी उन्हीं का है और सभी में वही विराजते हैं। यह सिर्फ साधक की कमजोरी है। अगर चाहे, तो सफलता उपलब्ध हो ही जाती है। उच्च कोटि के साधक, भगवान् को चिंतन द्वारा, हृदय में रखकर, हर क्षण मस्त रहते हैं तो भगवान् सदा के लिए उनके ऋणी बन जाते हैं। ऐसे संत विरले ही होते हैं जो गोपियों की तरह के स्वभाव से भगवान् के लिए तल्लीन रहते हैं, लेकिन इनका दर्शन, किसी सुकृतिवान को ही हुआ करता है। सतयुग, त्रेता, द्वापर में ऐसे संत अधिक थे। अब कलियुग में तो गिने चुने ही होते हैं। जिनको पहचानना बहुत मुश्किल है। भगवान् जब किसी पर कृपा करते हैं तो वही उनको पहचान सकता है। पास का भले ही नहीं पहचाने, लेकिन दूर का पहचान लेगा।

अरे! कौरवों के घर में भगवान् कृष्ण रहते थे, लेकिन कौरव उन्हें नहीं पहचान सके क्योंकि उन पर भगवान् की कृपा नहीं थी। वे भगवान् के भक्तों अर्थात् पांडवों के प्रति अपराधी थे। भीष्म पितामह ने कौरवों को बार–बार बोला था कि, "श्री कृष्ण स्वयं त्रिलोकीनाथ हैं।" लेकिन अपराध के कारण वे समझ नहीं सके।

भगवान् ने संसार को दो से ही बनाया है, वरना भगवान् की लीला हो ही नहीं सकती। राक्षस और देवता दोनों भाई–भाई हैं, पर भाई होने पर भी लड़ते रहते थे। शुभ और अशुभ, रात और दिन यानि यह संसार दो से ही बना है। धर्म और अधर्म, भक्त और अभक्त, इसी प्रकार, इस

जगत् को भगवान् ने, अच्छे–बुरे से ही रचा है, तभी तो भगवान् लीला करते हैं। यदि दो से संसार नहीं बनाते तो उनकी लीलाओं का प्रादुर्भाव हो ही नहीं सकता था।

यह सब भगवान् के खेल खिलौने ही हैं। जैसे शिशु मिट्टी का कुछ बनाता रहता है और उसी समय मिट्टी में ही मिला देता है। इसमें शिशु को आनंद आता है। यही हाल भगवान् का है। खुद ही जगत् को रचता है और खुद ही जगत् को मटियामेट कर देता है। 'जीवो जीवस्य भोजनम्' जीव ही जीव का भोजन है। दोनों में आत्मा रूप से भगवान् विराजमान हैं और दोनों को ही आपस में टकरा कर नष्ट कर देते हैं। यही तो भगवान् की दुष्कर माया है। सब जगह अंधेरा ही अंधेरा है। आंख होते हुए भी कुछ नहीं दिखता। मानव जानता है कि एक दिन यहाँ से मुझे सब कुछ छोड़कर, अकेला ही जाना है, यह जानते हुए भी अनजान बना हुआ है। यही तो भगवान् की माया है। यदि माया न हो तो भगवान् की रचना हो नहीं सकती। भगवान् को भी योगमाया का सहारा लेना पड़ता है, तभी भगवान् कर्म कर सकते हैं। यदि योगमाया का सहारा न लें तो भगवान् कुछ भी नहीं कर सकते। इसी कारण कहा है :

करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा।।

(मानस, अयोध्या. दो. 218 चौ. 2)

जैसा करोगे वैसा फल मिलेगा। कोई भी कर्म किए बिना एक क्षण भी रह नहीं सकता। उसके कर्म निरंतर होते ही रहते हैं। मरने के बाद भी जीव को कर्म करवाते रहते हैं। बिना कर्म तो भगवान् भी नहीं रह सकते। कर्म ही भगवान् का प्रतीक है। कोई बोले, "समाधि में कर्म नहीं होता।" तो समाधि में भी कर्म होता है। वहाँ, चिंतन द्वारा कर्म होता रहता है।

हमारे शरीर में चार कोष्ठ होते हैं। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। चित्त में चिंतन होता ही रहता है, चिंतन के बिना चित्त का अस्तित्व ही नहीं है। अहंकार, मैं और मेरा का प्रतीक है, तू और तेरा का प्रतीक है। जब अहंकार भगवान् के प्रति हो जाए, तब जन्म–मरण रूपी दारुण दुख से पिंडा ही छूट जाए, परंतु अधिकतर यह अहंकार, माया का साथी बन जाता है। दुख पर दुख भोगता रहता है, कभी इसे सुख की हवा भी नहीं मिलती। जीव जानते हुए भी अनजान बना रहता है। पूरा दिन जुए की ताश खेलते रहते हैं। ऐसा कहते हैं कि जो हारेगा, चाय पिलाएगा। यह समय की बर्बादी करना है। मनुष्य जन्म को मिट्टी में मिलाना है।

प्रत्येक प्राणी तीन धाराओं से प्रेरित रहता है। यह धारा, संग तथा खान–पान से प्रकट होती है। सात्विक धारा, राजसिक धारा और तामसिक धारा। जिस धारा में मन बहता है, मन वैसा ही तन, मन, वचन से कर्म करता है। यह धाराएं ही करवाती हैं। ध्यान से सुनिए! तामसिक धारा जब बहती है, तो प्राणी मूढ़ता में डूबा रहता है, भक्ष्य–अभक्ष्य खाता है, बेढंगा बोलता है, अज्ञानता में पड़ा रहता है, इसे पागलपन का आवेश रहता है। इस धारा में जो भी कर्म करेगा, उसी प्रकार का रिजल्ट (परिणाम) सामने आएगा। जब किसान बाजरा बोयेगा तब उसे चावल कैसे उपलब्ध होगा? अर्थात् जो बोएगा वही तो फल प्राप्त होगा। अरे! ताश पत्ती खेलकर समय को नष्ट क्यों कर रहे हो? फिर शिकायत करते हैं कि हमारा पुत्र कहना बिल्कुल नहीं मानता, हम तो बहुत दुखी हैं। अरे! पुत्र का इसमें क्या दोष है। दोष तो तुम्हारा है। धर्मशास्त्र आंखें खोल रहा है। आंखें बंद रखोगे तो सुख का रास्ता कैसे उपलब्ध होगा? यह तामस वृत्ति की ही पैदाइश है। बच्चे का क्या दोष है। अब सुनें कि राजसिक वृत्ति, कैसा प्रभाव डालती है? इसको बढ़िया–बढ़िया खाना चाहिए, खूब पैसे होने चाहिएँ। जो कुछ करेगा, पैसों के लिए करेगा। यह आराम के लिए बुरे से बुरा काम करने के लिए तैयार रहेगा, हिचकेगा नहीं। एकदम स्वार्थ में रत रहेगा। अपने माँ–बाप का ही कहना नहीं मानेगा अन्य की तो बात ही क्या है। इसके पास शर्म नाम की तो चीज ही नहीं होगी। लोभी तो इतना होगा कि पैसों के पीछे किसी को मारने में भी नहीं चूकेगा। क्रोध इसके ऊपर हमेशा सवार रहेगा। मीठा बोलना तो उसे आता ही नहीं। परिवार वालों से भी और आसपास वालों से भी सदा झगड़ा करता रहेगा। इससे कोई भी खुश नहीं रहेगा। सभी इसका अनिष्ट सोचते रहेंगे। यह एक तरह का राक्षस ही होगा। अंत में, मर कर नरक भोगेगा। उसके बाद 80 लाख योनियों को भोगेगा। पेड़–पौधों में, पक्षियों में, जलचर जानवरों में, थलचर जानवरों में, इसका जन्ममरण होता ही रहेगा। इसको मनुष्य जन्म, कल्पों तक नहीं मिलेगा।

अब सात्विक धारा का क्या प्रभाव होता है? इसे सुनिए। इसमें अधिकतर देवगुण होते हैं। देवताओं के गुण होते हैं। कम बोलेगा, जितना व्यवहार होगा उतने से ही जीवन बसर कर लेगा। बस, सबका भला चाहेगा। जितना होगा, उतना मन, कर्म, वचन से जीवमात्र की मदद भी करेगा। देवताओं को और धर्मशास्त्र को मानेगा, शुभ शिक्षा भी देगा, स्वयं भी भजन करेगा और अन्य को भी भजन में प्रेरित करता रहेगा। यह किसी प्राणी को

दुख नहीं देगा, दुखी प्राणी को देखकर स्वयं दुखी हो जाएगा। इसका स्वभाव निर्मल वृत्ति का होगा। इसका मन परोपकार भाव का होगा। सात्विक भोजन में इसकी रुचि होगी। गरम मसालों में इसकी रुचि कम होगी, संतोषी स्वभाव का होगा। इसमें सात्विकी वृत्ति के साथ निर्गुण वृत्ति भी होगी। झगड़े से बहुत डरेगा, शांत वातावरण चाहेगा। अपने से बड़ों का सम्मान करेगा और साधु–महात्माओं से मेलजोल रखेगा। मठ–मंदिरों में, तीर्थों में जाने की अभिलाषा भी इसमें रहेगी। इसमें ऐसे बहुत से गुण रहते हैं जो वर्णन में नहीं आ सकते। यह गुण इसमें कहाँ से आए? यह गुण इसमें अपने माँ–बाप से ही आए हैं। माँ–बाप ही बेटे के रूप में जन्म लेता है। जैसे जो बोऐंगे सो ही तो आएगा। चावल बोऐंगे तो बाजरा तो नहीं आएगा। जैसा माँ–बाप का स्वभाव होगा, बेटा भी वैसा ही होगा। परंतु हरिनाम से सभी स्वभाव, तामस, राजस तथा सात्विक बदल सकते हैं। एक ही अमर औषधि है जो स्वभाव को बदल देती है, वह है– हरिनाम।

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।।

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 1)

इस मृत्यु लोक में, पृथ्वी पर, भारतवर्ष, एक अलौकिक स्थान है। यह लौकिक नहीं है, अलौकिक है। इस कारण भगवान् यहाँ पर प्रत्येक मनु के कार्यकाल में एक बार अवतार लेते हैं। मनु के शासनकाल को मन्वंतर नाम से बोला जाता है। ब्रह्माजी के कार्यकाल में चौदह मनु होते हैं, एक इंद्र होता है और सात ऋषि होते हैं। जब ब्रह्माजी की आयु के सौ साल पूरे होते हैं तो ब्रह्माजी भी शांत हो जाते हैं। इतनी बड़ी ही ब्रह्माजी की रात होती है। इसे कल्प बोला जाता है।

राजा भरत पूरी पृथ्वी के सम्राट थे। भरत, सब कुछ छोड़कर भगवान् की भक्ति में अग्रसर हो गए, फिर भी एक मृग में आसक्ति होने से, भगवान् की भक्ति हृदय से दूर हो गई और अगले जन्म में मृग बन गए। अतः शास्त्र सतर्क कर रहा है कि मन का विश्वास कभी नहीं करना चाहिए। इस मन ने शिवजी तक को नीचे गिरा दिया था, जब भगवान् ने मोहिनी रूप धारण किया था। इस मन का एक क्षण भी विश्वास नहीं करना चाहिए।

धर्मलेख में पढ़ने को मिला है कि एक मानव ने एक ब्रह्मराक्षस को पाल लिया। ब्रह्मराक्षस इस मानव के आदेश का पालन करने लगा।

ब्रह्मराक्षस किसी भी काम को करने में एक क्षण लगाता था और फिर पूछता था कि कोई काम बताओ। तो मानव के पास कोई काम नहीं रहता था। वह परेशान हो गया, "इसे मैं क्या काम बताऊँ?" ब्रह्मराक्षस ने बोला, "तुमने मुझे पाला है और अगर तुमने मुझे काम नहीं बताया तो मैं तुम्हें खा जाऊँगा।" अब तो पालने वाले की नींद हराम हो गई, न भूख लगे, न एक क्षण भी चैन पड़े। "अब क्या करूँ? यह मुझे मारेगा। क्या करूँ? यह तो मुझे एक दिन मार कर ही रहेगा।" उसने सोचा कि इससे उसका पिंडा तो कोई साधु ही छुड़ा सकता है। साधु ही कोई उपाय बता सकता है। यह सोचकर वह एक सच्चे संत के पास गया और अपनी सारी चिंता का हाल उसे बताया, "यह ब्रह्मराक्षस तो मुझे एक न एक दिन खाकर ही रहेगा।" प्रार्थना करने लगा, "महात्मा! कृपा करके मुझे कोई उपाय बताइए।" महात्माजी बोले, "तुम ऐसा करो कि एक दस फुट का लंबा बांस, आंगन के बीचों बीच गाड़ दो, खड़ा कर दो। जब यह सामने आए तो इसे बोलो कि उस बांस के ऊपर चढ़ते रहो, उतरते रहो। तो ब्रह्मराक्षस थक कर हार मान जाएगा और तुम्हारे पैरों में गिर जाएगा और बोलेगा कि तुम जैसा चाहोगे, मैं वैसा ही करूँगा।" उसने महात्मा के कहे अनुसार, वही युक्ति की। तब उस ब्रह्मराक्षस से पिंडा छूटा। कहने का तात्पर्य है कि सच्चा संत ही मानव की परेशानियों से उसका पिंडा छुड़ा सकता है। यह ब्रह्मराक्षस कौन है? महात्माजी बोले, "यह तुम्हारा मन ही है। इसे खाली बिल्कुल मत छोड़ो। यह तुम्हें गड्ढे में डाल कर रहेगा। इसको किसी न किसी काम में लगा कर रखो। तब तुम इसे जीत सकते हो।"

भगवान् की याद के लिए ही हरिनाम है। तभी तो चैतन्य महाप्रभुजी ने प्रत्येक मानव को एक लाख हरिनाम नित्य करने हेतु आदेश दिया है अर्थात् 64 माला में एक लाख नाम हो जाता है। एक लाख नाम करने में पांच, छह घंटे तो लग ही जाएंगे। घर गृहस्थी के काम में पांच, सात घंटे लग जाते हैं। रात में छह, सात घंटे सोने में लग जाते हैं। कम से कम दो घंटे किसी मेहमान के आने पर, बात करने में लगेंगे और यदि कोई नौकरी करता है तो वहाँ भी आठ, दस घंटे लग जाते हैं, तो मन को फुर्सत ही नहीं मिली। यदि भागवत कथा करने का शौक लग गया है तो दो घंटे तो कथा करने में लग जाएंगे। कुछ शिकायत करते हैं कि उनके यह गर्मी के दिन निकलते ही नहीं हैं। बहुत लंबे होते हैं। क्या करें? मैंने बोला, "मेरा तो यह गर्मी का दिन इतना जल्दी भागता है कि सुबह से शाम होते देर नहीं लगती। मुझे समय मिलता ही नहीं है।" मैं इसलिए सबको बता रहा

हूँ कि काम बिना तो दस मिनट भी हैरान कर देते हैं। मैंने तो अपना समय बांट रखा है। रात में 8–9 बजे सोना एवं 12–1 बजे उठकर हरिनाम करना और उसके बाद श्रीमद्भागवत पुराण पढ़ना। फिर दोबारा हरिनाम करते रहना, इसी में 4 बज जाते हैं। शौच, स्नान करने में आधा घंटा लग जाता है, फिर कुछ समय तक व्यायाम भी करता हूँ। इसके बाद लगभग 5–6 बजे फिर हारमोनियम पर हरिनाम कीर्तन कर लेता हूँ। इसके बाद वृंदा माँ की सेवा करता हूँ, जल देना, परिक्रमा करना। हरिनाम में मन लगने हेतु वृंदा देवी से प्रार्थना करता हूँ, तो वृंदा माँ मेरी सुनती हैं और जब जप माला झोली हाथ में लेता हूँ तो वृंदा माँ मुझे अपने पति सुमेरु को मुझसे मिला देती हैं। सुमेरु स्वयं कृष्ण भगवान् हैं। मुझे सुमेरु ढूंढना नहीं पड़ता, जब भी माला झोली हाथ में लेता हूँ तो सुमेरु ही हाथ में आता है। अन्य भक्तों से भी सुना है कि यह तो प्रत्यक्ष ही प्रकट रूप में हो रहा है। प्रातः लगभग 10 बजे भगवद् प्रसाद पाता हूँ। हरिनाम करते हुए प्रसाद पाने में हरिनाम में मन लगा रहता है। दिन में हरिनाम तथा कथा पठन होता है तो बताओ कि मेरे मन को कहाँ फुरसत मिलेगी। भगवान् बोलते हैं :

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।

(मानस, उत्तर. दो. 40 चौ. 1)

"दूसरे का हित करना सबसे बड़ा धर्म है। यही साथ जाएगा और कुछ साथ नहीं जाएगा।" सबका हित करना ही सबसे बड़ा धर्म है। किसी को दुख देना ही सबसे बड़ा पाप है। मैंने अपनी दिनचर्या, इस कारण वर्णन की है कि तुम सब भी ऐसा करो। दिन–रात फटाफट निकल जाएगा। गपशप में क्या रखा है? बिना मतलब की बात क्यों करते रहते हो? समय क्यों बर्बाद करते हो?

देखिये! सभी 18 पुराण, 6 शास्त्र, 4 वेद और उपनिषदों का सार है कि भगवान् किस कर्म से खुश रहते हैं? इन में क्या लिखा है कि भगवान् किस कर्म से खुश होंगे? जो मानव इनके (शास्त्र) अनुसार कर्म करके भगवान् को खुश रखता है उसके लिए यहाँ पर ही पृथ्वी पर वैकुण्ठधाम हो जाता है या गोलोक धाम है। वैकुण्ठ धाम या गोलोक धाम कैसा स्थान है? वहाँ पर माया की छाया भी नहीं है। माया है जादूगर का खेल, जिसमें रत्ती भर भी सच्चाई नहीं है।

मेरे गुरुदेवजी बता रहे हैं कि सब जीवों का हित करो। किसी जीव को दुख मत दो। कौन से कर्म से भगवान् सबसे अधिक खुश हो जाते हैं? भगवान् का प्यारा साधु होता है जो सबको छोड़कर भगवान् की शरण में ही रहता है। अतः सबसे बड़ा पुण्य है, साधु की सेवा करना। शास्त्र कह रहे हैं।

पुण्य एक जग में नहीं दूजा, मन कर्म वचन साधु पद पूजा

(मानस, उत्तर. दो. 44 चौ. 4)

इसके करने से भगवान्, उस भक्त से अनन्य प्यार करते हैं। दूसरा है सांड की सेवा करने से। क्योंकि सांड, गाय की जनरेशन (संख्या) बढ़ाता है। 33 करोड़ देवता, गाय के रग–रग में बसे रहते हैं। गाय के मुख से ऑक्सीजन (प्राणवायु) ही निकलता है और अन्य पशुओं के मुख से कार्बनडाईऑक्साइड (विषैली गैस) ही निकलता है। गाय की सेवा से मानव के अनंत रोग दूर हो जाते हैं। गाय का हर कण आरोग्य प्रदान करता है। जब कोई मरता है तो गरूड़ पुराण पढ़ी जाती है, इसमें भगवान् कहते हैं कि जो मरने वाले पर सांड छोड़ता है, वह स्वयं वैकुण्ठ जाता है और मरने वाला भी वैकुण्ठ जाता है। तो मानव को जीते जी ही सांड की सेवा करनी चाहिए। वह सेवा क्या है? वह सेवा है, दलिया खिलाना, जिसमें चौथाई शक्कर मिला लो जैसे 11 किलो में 3 किलो गुड़िया शक्कर मिला दो। इसी अनुपात में, जितनी शक्ति हो खिलाओ। जितना दलिया हो उसके हिसाब से गुड़ या शक्कर मिलाओ। भगवान् बहुत खुश होंगे परंतु एक बार में, सवा किलो से ज्यादा, एक सांड को नहीं खिलाना वरना उसका पेट खराब हो जाएगा तो पाप लग जाएगा।

अब खिलाने का तरीका ध्यान से सुनें। जितना सूखा दलिया, किसी भी अनाज का हो, उसको परात में रख लो और ऊपर से एक चौथाई शक्कर, दलिया में मिला दो। दलिया में तुलसी दल छोड़ दो ताकि वह भगवान् को अर्पण हो जाए। जिसके लिए दलिया खिलाया जा रहा है, उससे इसकी चार परिक्रमा करवाओ। फिर दण्डवत् करें। फिर सवा किलो एक सांड को खिला दें। इसे खिलाने की अच्छी तिथियां हैं– अष्टमी, नवमी, पंचमी, द्वादशी, त्रयोदशी, अमावस्या, पूर्णमासी तथा प्रदोष। इन दिनों में करोड़ों गुना फल मिलता है। इससे भगवान् बहुत खुश होते हैं। खिलाने वाले को अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष तथा अपनी भक्ति भी देने को तैयार रहते हैं। इसके अलावा अन्य दिनों में भी खिला सकते हैं, जिनको जैसी

सुविधा उपलब्ध हो। इन तिथियों में खिलाने से अक्षय पुण्य होता है। गाय जाति का प्रत्येक अंग ही सुख विधान करता है। यशोदाजी, कन्हैया पर गाय की पूंछ का झाड़ा दिया करती थीं। शिशु जन्म पर गोमूत्र से स्नान कराना उत्तम रहता है, कभी चमड़ी रोग नहीं होगा, कभी ऊपर का राक्षसी प्रभाव नहीं होगा आदि–आदि लाभ होता है। सांड से गौओं की जनरेशन बढ़ती है अतः सांड को खिलाने से भगवान् प्रसन्न होते हैं। इससे नीचे गायों को चारा आदि देने से भी भगवान् प्रसन्न होते हैं। संत सेवा एवं गौ सेवा भगवान् को प्रसन्न रखती है।

संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : जो 64 माला करके वैकुण्ठ प्राप्ति करेगा, क्या उसे ठाकुरजी की सेवा वहाँ मिलेगी ?

उत्तर : वैकुण्ठ प्राप्ति का तात्पर्य क्या है कि भगवान् के सिवाय उसे कुछ याद ही नहीं रहेगा। यह संसार है न, यहाँ तो सब माया है। सब संसार ही संसार घुसा हुआ है अंदर। और वहाँ भगवान् ही भगवान् घुसेगा अंदर। वही सेवा हो गई उनकी। वैकुण्ठ का मतलब है– कोई कुंठा नहीं है वहाँ, कोई दुख नहीं, कोई कमी नहीं। वैकुंठ, वहाँ आनंद ही आनंद है । भगवान् ही भगवान् याद रहेगा। कुछ ऐसी बातें हैं जो बिना भगवद् की कृपा के समझ में नहीं आती। वह अकथनीय हैं। इन इंद्रियों से बताई भी नहीं जा सकती। बस मोटी सी बात बता सकते हैं, कि वहाँ कोई दुख नहीं है, वहाँ सुख ही सुख है।

हरिनाम : कलियुग का महामंत्र है

26 मई 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में इस दासानुदास अधमाधम अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा प्रार्थना है हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

भक्तगण ध्यान से सुनें! एकादशी को भूल कर भी कभी शादी का मुहूर्त न करें क्योंकि एकादशी के दिन अन्न में पाप का वास रहता है। जो ज्योतिषी, एकादशी के दिन का शादी का मुहूर्त निकालते हैं, वह अनेक युगों तक नरक में जाते हैं क्योंकि उसके द्वारा ही सभी ने उस एकादशी के दिन अन्न रूप में पाप भक्षण किया। इसका भार उस ज्योतिषी पर पड़ा क्योंकि एकादशी के दिन पाप अन्न में रहता है और शादी में सब अन्न खाते हैं इसलिए उसका पूरा दोष उस पर पड़ेगा। ज्योतिषी तो धर्मशास्त्र जानते नहीं हैं। अधिकतर एकादशी का मुहूर्त निकाल देते हैं। यह भार दूल्हा–दुल्हन पर भी पड़ेगा। पाप का भार, जिसकी शादी हो रही है, उस को भोगना पड़ता है। दोनों पूरी उम्र भर शरीर से, धन आदि से दुखी रहेंगे एवं उनकी संतान भी दुखी ही रहेगी क्योंकि शास्त्र के अनुसार कर्म नहीं किया। जो लोग शादी में आते हैं वह सब अन्न का भोजन करते हैं। उससे उनका मन एवं शरीर, तीन दिन तक स्वस्थ नहीं रहता, जब तक वह खाद्य पदार्थ उनके पेट से निकल नहीं जाता, उनका मन भी चंचल रहेगा क्योंकि उन्हें पाप का भोजन करना पड़ा। एकादशी के दिन शादी करना धर्मशास्त्र के विरुद्ध है। मेरे गुरुदेव जी ने पहले भी भक्तगणों को सतर्क किया था। मेरे गुरुदेव धर्म के अलावा सामाजिक कर्म का भी वर्णन करते रहते हैं ताकि मानव जाति जीवन में खुश रह सके। कई चर्चाएं बार–बार भी करते रहते हैं ताकि सभी के हृदय में बैठकर, गलत मार्ग पर न जाएं।

प्रत्यक्ष में देख भी सकते हो कि जिनकी शादी एकादशी के दिन हुई, वह अपना जीवन सुख से बसर नहीं कर सकता है।

भगवान् मानव से सबसे ज्यादा रुष्ट कब होते हैं? जब मानव साधु को दुख देता है, सताता है। तब भगवान् दुखी हो जाते हैं और उस पर क्रोध करते हैं। शास्त्र कह रहा है :

इंद्र कुलिस मम सूल बिसाला। कालदंड हरि चक्र कराला।।
जो इन्ह कर मारा नहिं मरई। साधु द्रोह पावक सो जरई।।

(मानस, उत्तर. दो. 108 घ चौ. 7)

इंद्र का वज्र, शिवजी का त्रिशूल, यमराज का काल दंड और भगवान् का सुदर्शन चक्र, इनसे भी जो नहीं मरता है वह साधु को दुख देने से पावक की तरह जल जाता है। पावक कैसी होती है? पावक वह अग्नि है, जो लोहे को पानी बना देती है। वह एकदम से नहीं मरेगा, धीरे–धीरे तड़प–तड़प कर मरेगा। बहुत दुख पाकर मरेगा। आगे कहते हैं :

जो अपराधु भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई।।

(मानस, अयोध्या. दो. 217 चौ. 3)

पावक ऐसी प्रचंड अग्नि होती है कि पावक से मानव तड़प–तड़प कर मरता है। आसानी से नहीं मरता है, बहुत दुख पाकर मरता है। फिर घोर नरक भोगकर, कई युगों तक दुख भोगता रहता है।

हनुमानजी भक्त की किस सेवा से खुश होते हैं? यह भी ध्यान से सुनिए!

हनुमानजी को रामायण सुनाएं और हनुमानजी को सिंदूर का चोला चढ़ाएं तो इस कर्म से हनुमानजी भक्त के आभारी हो जाते हैं। चोला चढ़ाने से हनुमानजी खुश क्यों होते हैं? इसकी चर्चा मेरे गुरुदेवजी बता रहे हैं।

एक दिन हनुमानजी माँ सीता के पास बैठकर अपने पिता रामजी का पाठ कर रहे थे। इतने में रामजी आ गए। रामजी ने पूछा, "माँ, बेटा मिलकर आज क्या क्या बातें कर रहे हो?" इतने में हनुमानजी ने माँ सीता से पूछा, "माँ! यह लाल–लाल सिर में क्या लगा रखा है?" सीता बोली, "बेटा! यह सिंदूर की माँग सिर में भरी जाती है।" हनुमानजी ने पूछा, "इस से क्या होगा?" तब सीताजी ने कहा, "इससे तुम्हारे पिता की उम्र बढ़

जाएगी।" तो हनुमानजी ने अचरज से पूछा, "क्या इससे मेरे पिता, श्रीराम की आयु बढ़ जाएगी?" सीताजी ने कहा, "हाँ बेटा! बढ़ जाएगी।" अब सीताजी अपने काम में लग गई। रामजी महल से बाहर निकल कर किसी काम से चले गए। अब हनुमानजी ने क्या किया? हनुमानजी ने सोचा कि सीता माता के सिंदूर का झारा कहीं अंदर ही रखा होगा। तुरंत अंदर जाकर ढूंढा तो देखा कि उसमें सिंदूर भरा पड़ा था। हनुमानजी तो मच्छर समान रूप भी हो जाते हैं। अब तो हनुमान जी, छोटा सा रूप बनाकर आनंद से उस में डुबकी लगाने लगे और विचार करने लगे कि, "जब मेरी माँ सीता, सिंदूर की एक रेखा सिर पर लगाती है जिससे रामजी की उम्र बढ़ जाती है तो जब मैं, अपने पूरे शरीर को ही इस सिंदूर से ओत–प्रोत कर लूँगा तो मेरे पिताजी की उम्र बहुत ज्यादा बढ़ जाएगी।"

फिर तुरंत माँ के पास जाकर बोले, "देखो माँ! देखो! अब तो मेरे पिता की उम्र कितनी बढ़ जाएगी।" सीताजी उनका रूप देखकर हंस हंस कर लोटपोट होने लगीं और बोलीं कि, "अरे बेटा! तूने यह क्या किया?" तो हनुमानजी बोले, "माँ! तुम तो सिर पर केवल एक ही रेखा लगाती थी। मैं तो पूरा ही सिंदूर में डूब कर आ गया हूँ। अब तो मेरे पिताजी की उम्र अमर हो जाएगी।" सीताजी की खुशी का कोई ओर–छोर नहीं रहा और नौकरानी से बोली कि, "जल्दी से जाकर इनके पिताजी को ले आओ।" इतना कहना था कि भगवान् राम प्रगट हो गए। सीताजी बोली, "अपने बेटे की करामात देखिए।" रामजी हनुमानजी को देखते ही रह गए और हंस हंस कर उनको हृदय से चिपका लिया और बोले, "बेटा! यह तूने क्या किया?" हनुमानजी बोले, "माँ की सिर की एक रेखा और मेरा पूरा शरीर सिंदूर में हो गया और अब तो आपकी उम्र अमर हो गई।" राम हंस हंस कर लोटपोट हो गए और बोले, "हाँ बेटा! ठीक है। ठीक है। ऐसा ही है।" हनुमानजी ने पूछा, "माँ! सिंदूर की वजह से आयु बढ़ती है, यह आपको किसने बताया?" तो सीताजी बोलीं कि, "जब मेरी शादी हुई थी और मेरी माँ सुनैना, मुझे विदा करने लगी तो मुझे उपदेश दिया था कि बेटी! यह सिंदूर का पात्र है, इसे ससुराल में ले जाओ और स्नान के बाद रोज ही इससे सिर में मांग भरना, इससे तुम्हारे पतिदेव की आयु चिरंजीव बनेगी, तो मैं अपनी माँ का आदेश मानकर ऐसा करती हूँ।"

सीताराम, हनुमानजी से बोले, "बेटा! जो भी तुम्हारे शरीर पर सिंदूर का चोला चढ़ाएगा, उस पर मैं और तुम्हारी माँ और स्वयं तुम, चोला

चढ़ाने वाले पर खुश हो जाओगे और उसकी मनोकामना पूरी कर दोगे।" तब से हनुमानजी को मानव मात्र सिंदूर का चोला चढ़ाते रहते हैं।

अब गुरुदेवजी बता रहे हैं कि शिवजी, हरिनाम जप करने वाले से सबसे अधिक खुश होते हैं। शिवजी स्वयं पार्वतीजी को पास में बिठाकर 'राम' नाम जपते हैं। जो हरिनाम जपता है तो शिवजी अपना भाई समझ कर उसे प्यार करते हैं क्योंकि वह भी उनके अनुसार ही जीवन धारण कर रहा है। हरिनाम नित्य करने वाले पर शिवजी की कृपा से ग्रह, गोचर, जो शिव जी की सेना है और रोग, दोष, मृत्यु जो शिवजी की ही शक्ति है, यह दारुण दुख नजदीक नहीं आते हैं। महामृत्युंजय मंत्र शिवजी का अमोघ हथियार है। हरिनाम और महामृत्युंजय मंत्र में कोई अंतर नहीं है। महामृत्युंजय मंत्र सतयुग, त्रेता और द्वापर का मंत्र है और हरिनाम महामंत्र कलियुग का मंत्र है। जो इस महामंत्र को नहीं अपनाता, उसे शिवजी के गण दुखी करते रहते हैं, भूत, प्रेत, ब्रह्मराक्षस आदि शिवजी के ही साथी हैं जो सभी को दुखी करते रहते हैं। दक्ष यज्ञ में, जब सती ने प्राण त्याग दिया था तब इन भूत–प्रेतों ने ही शिवजी के क्रोध करने से, तहलका मचा दिया था। कथा लंबी है इसलिए संक्षेप में वर्णन किया है।

यह सभी धर्म शास्त्रों की देन है। जो संतों से उपलब्ध हुई है। धर्मशास्त्र के अभाव में कोई भी कर्म संसार में प्रकट नहीं होता। भगवान् ने शिवजी को आदेश दे रखा है, "महादेवजी! आप ऐसे आगम शास्त्रों का निर्माण कर दो जिससे मानव भ्रमित ही होता रहे और मेरी भक्ति से दूर रहे। मैं सब कुछ देने को तैयार हूँ लेकिन भक्ति को छिपाकर रखता हूँ। किसी विरले भाग्यशाली को ही मेरी भक्ति उपलब्ध होती है क्योंकि मैं भक्त के अधीन हो जाता हूँ। जो कर्म मैं नहीं कर सकता, मेरा भक्त कर लेता है।

जैसे उदाहरण स्वरूप, इस कलियुग में गायों की बड़ी दुर्दशा हो रही है लेकिन मैं स्वयं, इसको मिटा नहीं सकता क्योंकि मैंने ही कलियुग में विधान गोचर किया है। मैं इस विधान को रद्द नहीं कर सकता परन्तु मेरा भक्त रद्द कर सकता है।" जैसेकि एक विरक्त, वैरागी महात्मा श्रीराजेंद्रदासजी, गायों की रक्षा हेतु अपने सभी श्रवणकारियों को कृपापूर्वक प्रार्थना करते रहते हैं कि 4–4 माला, भगवान् की गायों की रक्षा के लिए किया करें।" कई साल पहले उन्होंने श्रवणकारियों को बोला था और अब इसका प्रभाव प्रत्यक्ष सामने नजर आ रहा है कि सरकार कत्लखानों को धीरे–धीरे बंद करती जा रही है। अतः जो काम भगवान् करने में असमर्थ रहते हैं, उसे

भक्त करते रहते हैं। भगवान् ने अपने मुखारविंद से बोला है, "काल और महाकाल मुझ से थर–थर कांपता रहता है लेकिन मैं भक्त से कांपता रहता हूँ। मैं भक्त से क्यों डरता रहता हूँ कि भक्त ने मुझे प्रेम डोरी से बाँध रखा है। इस डोरी को मैं तोड़ नहीं सकता।"

इस कलिकाल की एक विशेष कल्याणकारी व्यवस्था है। इस युग में भगवान् जल्दी मिल जाते हैं, क्योंकि विरला ही कोई एक है, जो भगवान् को चाहता है। अधिकतर सभी इस कारण से भक्ति करते हैं कि हमें सब तरह की सुख सुविधाएं उपलब्ध होती रहें, भगवान् से हमको क्या लेना देना। लेकिन जब कोई भाग्यशाली, ज्ञानी जीव, भगवान् को ही चाहता है तो भगवान् उसे शीघ्र ही मिल जाते हैं। छह माह में ध्रुव को मिले। कुछ ही समय में प्रह्लाद को मिले और माधवेंद्रपुरी, ईश्वरपुरी, रूप, सनातन, रघुनाथ गोस्वामी, मीरा, नरसी सबको मिले हैं। लेकिन जो भगवान् को चाहेगा उसी को तो मिलेंगे। जो भगवान् को चाहेगा ही नहीं तो उसको क्यों मिलेंगे?

जिसका सात प्रकार का शुद्ध आचरण स्वभाव होगा उसे भगवान् गारंटी से मिल जाएंगे। मेरे गुरुदेवजी बता रहे हैं कि यह श्रीमद्भागवत पुराण में भगवान् घोषणा कर रहे हैं, "मैं तो सब जीवों से मिलना चाहता हूँ क्योंकि सभी जीव मात्र मेरी संतानें हैं। वात्सल्य भाव होने से कोई भी माँ–बाप अपनी संतान को दूर नहीं रख सकता लेकिन जीव मुझे चाहता ही नहीं।" यह तो विचार करने की बात है। अब भी भगवान् संतों को मिलते रहते हैं। लेकिन भाग्यशालियों को ही ऐसे संतों के दर्शन हो सकते हैं। कलिकाल में ऐसे संत गिने चुने ही हुआ करते हैं और असंतों की तो इस काल में भरमार रहती है। जीव, जीव को दुख देता है तो दुखी कौन होता है? आत्मा, परमात्मा का अंश है। कहावत है कि किसी की आत्मा को मत सताओ। ऐसा तो कोई नहीं बोलता कि किसी के शरीर को मत सताओ। किसी शरीर से राग–द्वेष करने से शरीर को कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। दुख होता है आत्मा को। तो भगवान् ऐसे प्राणी से कैसे मिल सकते हैं? अतः भगवान् से मिलने हेतु सात आचरण अपने अंतःकरण में लायें तो भगवान् मिलने में देर नहीं।

जीव भगवान् को नहीं चाहता। इस कारण ही दुखी है क्योंकि संसार तो दुखों का घर है। भगवान् की माया भगवान् को न चाहने वालों को दुख देती रहती है। यह संसार एक प्रकार का जेलखाना है। जैसे जेलखाने में

किसी की मनोकामना पूरी नहीं होती। अतः जेलखाना दुख का भंडार है। इस संसार में मनुष्यों के बनाये जेलखाने से तो कभी छुट्टी मिल भी जाती है, परंतु संसार रूपी जेलखाने में कुकर्म करने के कारण, फिर से जेलखाने की हवा खानी पड़ती है, जन्म–मरण, जन्म–मरण होता ही रहता है। यह आवागमन चलता ही रहता है। मरने वालों को रोज देखते ही रहते हैं लेकिन माया से आंखों में धूल जमी रहती है। यह सोचता है कि मुझे थोड़े ही मरना है, मैं तो अमर हूँ। यही तो भगवान् की दुष्कर माया का खेल है। ब्रह्मा, शिवजी को भी माया ने नहीं छोड़ा। साधारण जीव की तो बात ही क्या है?

इससे स्वतंत्रता पाने के लिए एक ही उपाय है कि संत मिलन। जिससे इससे छूटने का उपाय मिल जाता है। वह है कलिकाल में हरिनाम कीर्तन एवं स्मरण। भगवद् नाम मुख से निकलना चाहिए, कैसे भी निकले। गिरते–पड़ते, सोते–जागते, चलते–फिरते। तो एक दिन जीव का उद्धार होकर ही रहेगा। समय तो हर कर्म में लगता ही है लेकिन सफलता जरूर मिल जाती है। नाम लेने में कोई भी नियम नहीं है। जैसी अवस्था हो, लिया जा सकता है। सभी कर्म एकांत में ही सफल होते हैं। इधर उधर फिरने से कुछ हस्तगत नहीं होता। एक जगह बैठकर हरिनाम करो। विद्यार्थी भी जब एक जगह ही बैठकर पढ़ता है, तभी तो पास होता है।

मनुष्य मन, वाणी से, शरीर से पाप करता रहता है। मन से, शरीर से और वाणी से किसी को कड़वा न बोले। अगर इन पापों का प्रायश्चित्त नहीं करेंगे तो मरने के बाद भयंकर नरक यातनायें भोगनी पड़ेगीं। अतः प्रायश्चित्त के रूप में अपने जीवन में, हरिनाम जप कर पापों का क्षय कर लेना चाहिए। ऐसा भगवान्, उद्धव को बता रहे हैं कि, "हे उद्धव! कलियुग का मानव कमजोर होता है। अतः केवल हरिनाम ही पापों को क्षय करने हेतु सरलतम उपाय है। केवल हरिनाम ही प्रायश्चित्त है। कलियुग के मानव का मन भी काबू में नहीं रहता, अतः केवल मेरा नाम, कान से सुनकर करता रहे। हरिनाम ही जप कर इस मानव जीवन को सार्थक बना ले।"

मैंने जो बोला, उसे ध्यान से सुनिए!

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।।

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 1)

"सन्मुख होइ जीव, सन्मुख का मतलब है कि जीव मेरा नाम ले। मेरी तरफ मन लगाए। 'अघ' का अर्थ पाप है। करोड़ों जन्मों के पाप नाम लेते ही जलकर भस्म हो जाते हैं। मेरे नाम में मुझसे भी अधिक शक्ति है। मेरे नाम के लिए कोई नियम नहीं है। संसार सुगमता से पार हो जाता है। कलियुग में मेरे नाम लेने में कोई भी नियम नहीं है, जैसे बन सके वैसे नाम लेते रहो।"

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

पापी पुरुष की जैसी शुद्धि, भगवान् में आत्मसमर्पण करने से तथा भक्तों का संग करने से होती है, वैसी शुद्धि अन्य कर्म से नहीं हो सकती। तपस्या करने से नहीं होगी। तीर्थ सेवन से नहीं होती। जिसने कलियुग में हरिनाम अपना लिया, उसके लिए इससे बड़ा प्रायश्चित्त करना कोई रहा ही नहीं।

इस शरीर में जीव और परमात्मा दोनों सखा हैं। लेकिन जीव अपने सखा को भूल गया और मेरे–तेरे के चक्कर में, मायावश पड़ गया। यह अहंकार ही तो इसका दुश्मन है। यदि यह अहंकार भगवान् की ओर झुक गया तो जीव का मंगल हो गया। अहंकार का मतलब है तेरा–मेरा। यही जीव को संसार में फंसाता है। वैसे देखा जाए तो सभी भगवान् के हैं। जीव ने जब जन्म लिया था तब क्या कुछ लेकर आया है? जो पूर्व में किया है उसी को जन्म लेकर अब चुकाने के लिए आया है, तभी तो जब जन्म लेता है, तो मुट्ठी बांध कर आता है। बांधकर क्यों आता है? "क्योंकि मैं जो कुछ कर के आया हूँ, उसको मैं यहाँ भोगूँगा।" इसलिए मुट्ठी बांध कर आता है। जब मृत्यु होती है तो मुट्ठी खोल कर जाता है। "पीछे का किया यहाँ मैंने चुका दिया और जो वर्तमान में जो मैंने अच्छा–बुरा किया, अगले जन्म में चुका लूँगा।" इससे छुटकारा पाने हेतु ही हरिनाम है। जन्म–मरण छुड़ाने के लिए ही तो हरिनाम है। हरिनाम नित्य करो और जो कुछ कर्म करो भगवान् का ही समझ कर करो तो कर्म में बंधोगे नहीं क्योंकि जो कुछ अपने लिए किया जाता है वह बंधन का कारण होता है। जब अपने लिए करोगे ही नहीं, सब कुछ भगवान् के लिए किया जाएगा, तो तेरा–मेरा रहा ही नहीं। मैंने जो कुछ किया भगवान् के लिए किया और मेरा इसमें क्या लेना–देना। मैं स्वतंत्र बन गया, सिर का भार भगवान् को

सौंप दिया। यह ज्ञान जब जीव को हो जाता है तो जीव बिल्कुल हल्का हो जाता है, माया इससे कोसों दूर रहती है।

ध्यान से सुनो! यह इंद्रियां हमें लूट रही हैं। दूसरा कोई डाकू नहीं है। आंख है कि सुंदर–सुंदर लुभावने दृश्य की ओर जाना चाहती है। कान मनमोहक शब्द सुनने को कहता है कि चलो चलें! जहाँ मीठा गाना होता है। जिह्वा स्वादिष्ट मीठा, खट्टा, भक्ष्य, अभक्ष्य खाने की ओर खींच रहा है। नाक सुगंध की ओर खींच रही है। जैसे किसी पुरुष की बहुत सी पत्नियां हैं और सभी पत्नियां, उस पुरुष को अपनी ओर खींच रही हैं, तो पुरुष बेचारा क्या करे? किस तरफ जाए? दुखी होने के अलावा क्या करे?

अब इंद्रियां इतनी दुष्कर हैं कि जितना ही इनको, इनका विषय देते रहो, उतना ही और मांग करती रहेंगी, कभी तृप्त नहीं होंगी, कभी संतोष नहीं करेंगी। तो बेचारा जीव क्या करे? जीव कैसे सुखी रह सकता है? जीव किस–किस की मांग पूरी करता रहेगा? अंत में मांग पूरी करते–करते मर ही जाएगा। कुछ भी तो साथ ले जा नहीं सकते, अपना शरीर भी यहीं छोड़ जाएगा। जो किया है वही लेकर जाएगा और अगला जन्म पाएगा।

मानव अपने सात आचरणों को सुधार ले तो मानव को परम सुख उपलब्ध हो जाए। अपने 'मैं–पने' को जिसे अहंकार बोलते हैं, 'तू–पने' में बदल दे तो परम सुखी बन जाए अर्थात् भगवान् को सौंप दे।

प्रत्येक प्राणी के हृदय में चार कोष्ठ होते हैं। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। यह अहंकार ही मानव को जन्म मरण कराता रहता है। अहंकार माने "मैं–पना।" यह ही मानव को माया में फंसाता रहता है। इस अहंकार को संतों को और भगवान् को सौंप दे तो परम शांति से जीवन बसर करने लग जाए। यह अहंकार क्या बला है? अहंकार, तेरा–मेरा की अटूट सांकल है जो मानव को जकड़े रहती है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

कृष्णस्तु भगवान् स्वयं

2 जून 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण युगल में अधमाधम इस दासानुदास
अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा
अहैतुकी प्रेमा भक्ति की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

भक्तगण बड़े ध्यान से सुनें! ऐसा धर्मशास्त्र बोलते हैं कि ब्रह्माजी का एक दिन हजार चौकड़ी का होता है। सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग, जब यह हजार बार व्यतीत हो जाते हैं तब ब्रह्माजी का एक दिन होता है। इतनी ही बड़ी रात होती है। इस प्रकार से जब ब्रह्माजी की आयु सौ वर्ष की पूरी हो जाती है तो ब्रह्माजी भी शांत हो जाते हैं और सभी जीव उनके अंदर समा जाते हैं। ब्रह्माजी के सौ वर्षों के समय को कल्प के नाम से पुकारा जाता है, इतनी ही बड़ी कल्प की रात्रि होती है। उसके बाद दूसरा ब्रह्माजी नियुक्त किया जाता है। ऐसा भी है कि भगवान् स्वयं ही ब्रह्मा के पद पर आसीन हो जाते हैं अथवा जीव कोटि ब्रह्माजी को नियुक्त किया जाता है। जीव कोटि ब्रह्माजी कैसे नियुक्त होते हैं। जो जीव सौ वर्ष तक उत्तम गति से गृहस्थ जीवन पालन करता है उसे ही भगवान् ब्रह्माजी की पदवी दे देते हैं। यह तो हुई सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी की चर्चा।

इसी तरह भगवान् स्वयं शिवजी की पदवी पर आसीन हो जाते हैं एवं शिवजी का कर्म अपने हाथ में ले लेते हैं। कभी कभी जीव कोटि शिवजी भी पदासीन होते हैं। जब जीव हरिभक्ति में लीन हो जाता है, तब भगवान् उसे शिवजी की पदवी सौंपते हैं। अनंत ब्रह्माण्डों में अनंत ही ब्रह्मा, अनंत ही शिव होते हैं। लेकिन कृष्ण, राम एक ही होते हैं, नारायण एक ही होते हैं। नारायण में से ही अवतार प्रगट होते हैं, लेकिन नारायण में लीलाओं की कमी रहती है। कृष्ण, राम आदि अवतारों में लीलाओं का प्रादुर्भाव रहता है।

कृष्ण तो स्वयं भगवान् ही हैं। उन से बड़ा कोई भगवान् न तो है और न हो सकता है। जिन्होंने ऐसी लीला करके दिखाई जिनको देखकर मानव चक्कर खा जाता है। सात साल की उम्र में गिरिराज को सात दिन तक उठाए रखा। ऐसा करने पर किसी को विश्वास कैसे हो सकता है? ब्रह्माजी को भी माया हावी हो गई तो ग्वाल–बाल और गायों को उठाकर ले गए। तब कृष्ण स्वयं, उतने ही, वैसे के वैसे ग्वाल–बाल व गायें बन गए। यहाँ तक कि ग्वालों के छींके, बैत और छड़ी भी, एक साल तक बने रहे। किसी ने उन्हें पहचाना ही नहीं कि ये ग्वाल–बाल व गायें असली हैं या नकली हैं। ऐसी–ऐसी अजनबी आश्चर्यमय लीलाएँ, कृष्ण ने ब्रजवासियों को करके दिखाई हैं। सभी मायावश इन्हें पहचान नहीं सके। स्वयं यशोदा, नंद बाबा जिन्होंने इनको पाला है, भी इन्हें पहचान नहीं सके कि यह परमपिता परमेश्वर हैं, त्रिलोकीनाथ हैं। यहाँ तक कि उन्होंने कृष्ण की पिटाई भी की है एवं कृष्ण डर की वजह से रो भी देते थे, थर–थर कांपते थे। यहाँ तक कि मुंह खोलकर, मुख में सारी सृष्टि का, यशोदा को दर्शन करवा दिया, तब भी यशोदा, नंदबाबा इन्हें समझ नहीं सके, क्योंकि कृष्ण माया का पर्दा डाल देते थे। अतः सभी भूलभुलैया में पड़ जाते थे। कृष्ण कहते थे कि, "मैया! मुझे हव्वा से डर लगता है, यह मुझे खा जाएगा।" तब यशोदा, इन्हें समझा कर अपनी छाती से चिपका कर सो जाती थी और कहती थी कि, "कान्हा! मैंने हव्वा को मारकर भगा दिया है, तू मेरी छाती से लगकर निर्भय होकर सो जा।" कृष्ण कहते कि, "मैया! मुझे बलदाऊ भैया डराता रहता है कि तुझे हव्वा खा जाएगा। मैया! तू भैया को डांटना कि मुझे डराये नहीं।" मैया से चिपक कर कृष्ण गहरी नींद में सो जाते थे।

देखिये! मनुष्य जन्म सुदुर्लभ है। कई कल्पों के बाद भगवद् कृपा से भगवान्, जीव को मनुष्य जन्म देते हैं। कल्पों का मतलब है कि अनंत युगों के बाद मानव जन्म मिलता है। यदि बीच में किसी संत की सेवा उपलब्ध हो गई तो भगवान् उस जीव को जल्दी ही मनुष्य का जन्म दे देते हैं। भगवान् के लिए साधु से बड़ा कोई नहीं है क्योंकि साधु ने भगवान् की पूर्ण शरणागति ले रखी है।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

(श्रीगीता. 18.66)

गीता में 18वें अध्याय के 66वें श्लोक में शरणागत होने की बात बोली है, "तू सब कुछ छोड़ कर मेरी शरण में आ जा। मैं तेरा रक्षा पालन करूँगा। मेरे आश्रित हो जा।" जैसे शिशु माँ की शरण में रहता है, तो माँ उसका 24 घंटे ध्यान रखती है। इसी प्रकार ऐसे शरणागत जीव का भगवान् हरदम ध्यान रखते हैं।

हमारे धर्म शास्त्र भगवान् के मुखारविंद की साँस से निकले हैं। शास्त्र हमें चेतावनी दे रहा है, मानव को अपने कमाई में से कुछ धन, धर्म में भी लगाना चाहिए। यदि धर्म में पैसा नहीं लगाता है तो वह धन ही उसे गलत आदतों में डाल देगा अर्थात् उसकी आदत, शराब पीने में हो जाएगी, जुआ खेलने में हो जाएगी, वेश्यागमन में हो जाएगी, लड़ाई झगड़ों में, केस लड़ने में हो जाएगी अर्थात् वह धन, शास्त्र के विरुद्ध कर्मों में खर्च हो जाएगा और उसे नर्क में ले जाएगा, बाद में 84 लाख योनियों में ले जाकर, दुख सागर में डुबो देगा। इस धन का नाम होगा, राक्षसी लक्ष्मी। एक लक्ष्मी होती है, नारायण लक्ष्मी, जो मानव जन का उद्धार कर देगी।

धन कहाँ खर्च होना चाहिए? जहाँ सुपात्र को दिया जाता है। सुपात्र कौन है? सुपात्र वह है जो धर्मशास्त्र के अनुसार कर्म में लगे। यदि कुपात्र की धन से सेवा की जाएगी, तो देने वाले को भी, उस कुकर्म का भोग भोगना पड़ेगा। जैसे मानव ने किसी भिखारी को पैसे देकर सेवा की है और भिखारी जाकर उस पैसे की शराब पी ले अथवा वेश्यागमन कर लिया, या लड़ाई–झगड़े में लगा दिया तो दानदाता को उसका आधा भोग भोगना पड़ेगा। सुपात्र की सेवा करने से दानदाता को हजार गुना सुख का विधान हो जाएगा, उदाहरण स्वरूप जैसे किसान एक दाना बाजरा, चावल, गेहूँ या कोई भी अनाज, पृथ्वी माँ को दान करता है अर्थात् इनको बोता है, तो केवल एक दाने से, जो प्रत्यक्ष में देख भी रहे हैं कि एक दाने से हजार दाने, दानदाता को मिलते हैं। अतः दान से धन घटता नहीं है, दान से अक्षय पुण्य होता है। अक्षय पुण्य किसे कहते हैं? जैसे किसी ने किसी को हजार या एक लाख रुपए ब्याज पर दे दिया तो मूल रकम वैसी की वैसी रहेगी और ब्याज से ही जीवन निर्वाह होता रहेगा। इसे ही अक्षय पुण्य बोला जाता है।

तो सोच समझ कर सुपात्र को दान करना श्रेयस्कर होता है। जैसे कोई भिक्षुक, एकादशी को घर पर भिक्षा मांगने आ गया तो उसे कभी

अन्न भिक्षा नहीं देना चाहिए। वापस भी लौटाना धर्म के विरुद्ध है तो उसे अन्य वस्तु देना ठीक होगा जैसे कि कोई कपड़ा दे दिया, बर्तन आदि देना लाभप्रद होगा। अन्न देने से पाप लगेगा क्योंकि एकादशी को अन्न में पाप बसता है। न किसी को अन्न दें और न ही स्वयं अन्न भक्षण करें, तो एकादशी ही व्रत करने वाले का निश्चित उद्धार कर देगी। शादी तो एकादशी को भूलकर भी नहीं करनी चाहिए क्योंकि शादी में जो लोग बारात में आते हैं उनको अन्न भोजन कराना ही पड़ता है एवं स्वयं के रिश्तेदारों को भी अन्न भोजन कराना ही पड़ेगा तो यह पाप का भार दूल्हा–दुल्हन पर पड़ता है। जिससे दूल्हा–दुल्हन जीवन भर दुखी ही रहेंगे और उनकी संतानें भी दुखी ही रहेंगी क्योंकि भूतकाल की जैसी जहरीली बेल बोई गई है, वह भविष्य के लिए भी जहर फैला देगी। मुहूर्त निकालने वाले धर्मशास्त्र से अनभिज्ञ होते हैं अतः एकादशी तिथि को सर्वोत्तम मानकर मुहूर्त निकाल देते हैं। इसमें इनका भी क्या दोष है? दोष तो है जो इसको जानते हैं फिर भी अनदेखी करते रहते हैं, तो इसका दुख भोग करेंगे दूल्हा–दुल्हन। इन बेचारों को जबरदस्ती ही दुख सागर में पड़ जाना पड़ता है। यही तो संसारी माया का खेल है। बाजीगर का तमाशा है। बाजीगर का जमूरा, बाजीगर की करामात को जानता और समझता है। दर्शकगण को क्या मालूम है कि यह सब खेल तमाशा झूठा है। ऐसे ही भगवान् की माया को सच्चा भक्त ही समझता है। ब्रह्माजी तक भी भगवान् की माया को समझ नहीं सकते।

पिछला प्रसंग जो बीच में रह गया है उसे मेरे गुरुदेव खोल कर बता रहे हैं कि अपनी कमाई का धन सुपात्र को देना चाहिए। सुपात्र कौन है? जो धर्म शास्त्र के अनुसार अपना जीवन चलाता रहता है। उदाहरणस्वरूप वेद व्यास जी ने 18 पुराण, 4 वेद, 6 शास्त्र, उपनिषद आदि मानव के कल्याण हेतु लिखे जो कि हजारों साल पहले लिखे गए थे, आज भी मानव समाज का उद्धार कर रहे हैं। ऐसी जगह अपनी कमाई से पैसा देना उद्धार का कारण बन जाता है। आज भी श्रीगुरुदेव की कृपा स्वरूप भगवान् की कृपा से ही इस कलिकाल में, हरिभजन करने हेतु, श्रीहरिनाम प्रेस वृन्दावन से, "इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति" पुस्तकें कई भाषाओं में छापी जा रही हैं एवं जो छप चुकी हैं वह निशुल्क बांटी गई हैं। मानव समाज का कितना उद्धार कर रही हैं। आज सारा संसार इन पुस्तकों को पढ़ पढ़कर हरिनाम में जुट रहा है। जिससे मन, तन में सुख का विस्तार हो रहा है। सुख शांति प्रत्येक घर गृहस्थी में प्रकट हो रही है। यह पुस्तकें

भी कितने साल तक मानव समाज का उद्धार करती रहेंगी, जैसे व्यासजी की पुस्तकें आज तक मानव समाज का उद्धार कर रही हैं और भविष्य में भी करती रहेंगी, तो इस जगह, अपनी कमाई का पैसा देना श्रेयस्कर होगा। इन पुस्तकों के लिए दिया हुआ पैसा तुरंत भगवद् चरणों में जा पहुँचता है। भगवान् इस पैसे से जो दान में देता है, उससे असीम प्रसन्नता प्राप्त करते हैं। इसे भगवान् बहुत बड़ा अहसान मानते हैं और दानदाता को हर प्रकार की सुख सुविधा का विधान करते हैं क्योंकि भगवान् के नाम की पुस्तकें भगवान् से भी बड़ी होती हैं। भगवान् से, भगवान् का नाम बड़ा है। कहावत है :

'हरि से बड़ा हरि का नाम'

भगवान् ने तो केवल उसे ही तारा (उद्धार किया) है जो उनके संपर्क में आया, लेकिन नाम ने तो अनंत जीवों का उद्धार किया है और करते रहते हैं। यह जो पुस्तकें, आज, श्रीहरिनाम प्रेस से छप रही हैं वह केवल हरि के नाम के प्रचार हेतु ही छप रही हैं। इन्हें मानव समाज पढ़–पढ़ कर कई भाषाओं में छाप रहा है क्योंकि इन पुस्तकों से प्रत्क्षय में प्रैक्टिकल रिजल्ट (व्यावहारिक परिणाम) सामने आ रहे हैं, तो दुनिया भर से भक्त, इन पुस्तकों से प्रभावित होकर दान के रूप में अपना धन शुद्ध करते जा रहे हैं। पुस्तकों के अलावा एक पैसा भी दूसरे काम में नहीं लिया जा रहा है, केवल पुस्तक ही छपेगी। कोई भी दानदाता कुछ भी, अपनी सामर्थ्य के अनुसार दे सकता है। इससे अक्षय पुण्य होता है। मैं इसलिए आग्रह कर रहा हूँ कि प्रत्येक जीव का कल्याण हो। पैसा तो आता है और चला जाता है, इस से कुछ लाभ उठा लिया जाए तो स्वयं का भी उद्धार और अन्य का भी उद्धार होगा। जो भी पुस्तकें पढ़ेगा तो भगवद् चरणों में उसके मन की वृत्ति जायेगी। एक बात ध्यान दें कि जो भी दानदाता पैसा दे तो मेरे नॉलेज (जानकारी) में आना चाहिए ताकि पैसे के बैलेंस (बकाया) के अनुसार पुस्तकें अधिक या कम छप सकें। पैसा सीधा मुझे न देकर श्रीहरिनाम प्रेस, वृंदावन में ही दें। आप सभी जानते हैं कि मैं पैसे को दुश्मन समझता हूँ। यही पैसा सबसे बड़ी अचूक माया है जो अपने श्रम साधन से जीव को नीचे गड्ढे में डाल देगी। दस, बीस रुपये देने से भी लाभ होगा। अपनी शक्ति अनुसार दान देना है। आप सभी जानते हैं कि मुझे तीस हजार के लगभग हर माह पेंशन मिलती है, उसमें से मैं सुपात्र कर्म में खर्च करता रहता हूँ। ऐसा ध्रुव सिद्धांत है कि जो बोओगे, वही काटोगे। 90 साल का होते हुए भी शरीर में कोई रोग नहीं है। मैं अपनी

बड़ाई नहीं कर रहा हूँ। यह मैं हरिनाम की बड़ाई कर रहा हूँ। 40 साल से, रात में 12–1 बजे जगना, फिर प्रातः 6 बजे तक हरिनाम करना होता है। न कमर में दर्द, न ही घुटनों में दर्द है। यह क्यों नहीं हैं? इसका कारण, प्रत्यक्ष हरिनाम में अमृत बरसता है। जहाँ अमृत शरीर में भर जाएगा, वहाँ जहर कैसे रह सकता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, राग–द्वेष, अहंकार मूल सहित जलकर राख हो गया। मैं हरिनाम का प्रभाव वर्णन कर रहा हूँ ताकि सभी को इसका लाभ हो सके। जहाँ सूर्य उदय हो, वहाँ अंधेरा कैसे रह सकता है? असंभव।

अब ध्यान से सुनिए। भगवान् ब्राह्मण जाति को कितना मानते हैं। अतः हमें भी मानना बहुत जरूरी है।

मन क्रम बचन कपट तजि जो कर सन्तन सेव।
मोहि समेत बिरंचि सिव बस ताकें सब देव।।

(मानस, अरण्य. दो. 33)

"जो मानव ब्राह्मणों का आदर सत्कार व सेवा करता है, उससे मैं, ब्रह्मा, शिव एवं सब देवता खुश रहते हैं।" जहाँ यह सब खुश रहेंगे वहाँ दुख का तो नाम रहने का सवाल ही नहीं है। श्राप देता हुआ, मारता हुआ, गाली देता हुआ भी ब्राह्मण पूजनीय है क्योंकि मैं ब्राह्मणों को सबसे अधिक मानता हूँ। ब्राह्मण गुणों से हीन हो, दुर्गुणी हो तो भी ब्राह्मण पूजनीय ही है एवं शूद्र यदि गुणवान हो, सब तरह से श्रेष्ठ हो तो भी पूजनीय नहीं है।

सापत ताड़त परुष कहंता। बिप्र पूज्य अस गावहिं संता।
पूजिअ बिप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना।।

(मानस, अरण्य. दो. 33 चौ. 1)

सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा।
आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा।।

(मानस, अरण्य. दो. 35 चौ. 2)

जो मेरे गुरुदेवजी ने सात तरह के स्वभाव, आचरण बताए हैं वही शास्त्र में लिखे हुए हैं। श्रीमद्भागवत से लिये हुए हैं, "चर–अचर में मुझे ही देखे एवं मेरे से भी अधिक साधु को आदर दे। जितना भगवान् ने दिया है, उसी में संतोष रखे एवं किसी में भी गुण–दोष नहीं देखे, तो उसे मैं एक पल भी नहीं छोड़ सकता। यह मुझे ब्रह्मा, लक्ष्मी और बलराम से भी

ज्यादा प्यारा है।" भगवान् बोल रहे हैं, "जिनसे मुनि और तपस्वी दुख पाते हैं वह मानव बिना अग्नि के जल जाता है एवं इनके क्रोध करने से करोड़ों कुल भस्म हो जाते हैं।" भगवान् बोल रहे हैं, "सोच–विचार उस ब्राह्मण के बारे में करना चाहिए जो अपना धर्म छोड़ चुका है, जो विषय भोगों में फंसा हुआ है। परंतु फिर भी ब्राह्मण आदर का पात्र ही है। ब्राह्मण से तो हाथ ही जोड़ते रहना चाहिए।"

भगवान् बोलते हैं कि, "उद्धव! सब कवच तोड़े जा सकते हैं लेकिन गुरु कवच तोड़ने की किसी की शक्ति नहीं है।" शास्त्र बोलता है।

कवच अभेद गुरु पद पूजा, एहि सम बिजय उपाय न दूजा।

(मानस, लङ्का. दो. 79 चौ. 5)

वाल्मीकि आश्रम में, सीता सहित सीता के बेटे लव–कुश रहा करते थे, उन्होंने वाल्मीकिजी का गुरु कवच पहन रखा था। एक बार वे आश्रम के बाहर धनुष विद्या सीख रहे थे। सार में मेरे गुरुदेवजी बता रहे हैं। लव–कुश के पिता रामजी ने अश्वमेध यज्ञ करने के लिए, गुरु वशिष्ठजी से आज्ञा ली थी। इसमें घोड़ा छोड़ा जाता है। उस के सिर पर एक पत्र बांध दिया गया कि जो रामजी की अधीनता स्वीकार नहीं करेगा, उसे रामजी से युद्ध करना पड़ेगा। यह घोड़ा भारतवर्ष में चारों दिशाओं में चक्कर काटता रहा, जब घोड़ा वाल्मीकि आश्रम के पास गया तो लव–कुश, जो रामजी के पुत्र थे, घोड़े का पत्र पढ़कर आवेश में आ गए कि, "हम क्षत्रिय हैं, हम अश्वमेध यज्ञ करने वाले से लड़ेंगे" अतः उन्होंने घोड़े को पेड़ से बांध दिया। जब घोड़ा बहुत दिनों बाद तक भी अयोध्या नहीं पहुँचा तो रामजी बोले, "घोड़ा तो आया नहीं है। लगता है कि किसी ने घोड़े को बांध लिया है।"

तो गुरु वशिष्ठ बोले, "राम! हनुमानजी को घोड़ा ढूंढने के लिए भेजो कि घोड़ा कहाँ है? वे ही तलाश करके घोड़े को ला सकते हैं।" रामजी, हनुमानजी से बोले, "हनुमान! हमारे यज्ञ के घोड़े को किसी ने बांध रखा है। अतः जल्दी जाओ और घोड़ा लेकर आओ।" हनुमानजी ने कहा, "जो आज्ञा। मैं अभी घोड़े को लेकर आता हूँ।" जब हनुमानजी भारतवर्ष में प्रत्येक जगह घोड़े को ढूंढने के लिए निकले तो देखा कि वाल्मीकि के आश्रम के बाहर 10–10 साल के दो बच्चों ने, जो धनुष चलाना सीख रहे थे, घोड़े को पेड़ से बांध रखा है। हनुमानजी ने उन दोनों बालकों से पूछा,

"क्या तुम लव–कुश हो?" बालक बोले, "हाँ! हमारा नाम लव–कुश है। क्या बात है?" हनुमानजी बोले, "यह घोड़ा तुम्हारे पिता का है। वह अश्वमेध यज्ञ करेंगे। अतः शीघ्र ही इसे पेड़ से खोल दो।" लव–कुश बोले, "हम क्षत्रिय हैं। बिना युद्ध किए हम घोड़ा नहीं छोड़ेंगे।" हनुमानजी बोले, "यह तो तुम्हारे पिताजी का है।" तो दोनों बोले, "हम कुछ नहीं सुनना चाहते, चाहे पिता का हो, चाहे किसी का हो। हमसे जीत कर ही घोड़े को ले जा सकते हो।" हनुमानजी निरुत्तर हो गए और घोड़े को पेड़ से खोलने लगे तो दोनों भाइयों ने हनुमानजी को ही पेड़ से बांध दिया। हनुमानजी कुछ भी नहीं कर सके। बहुत देर तक घोड़ा नहीं पहुँचा तो गुरुदेव वशिष्ठ ने बोला, "हनुमान भी अभी तक नहीं आए हैं। मेरा अनुमान है कि किसी बलशाली ने घोड़े को बांध लिया है और हनुमान भी घोड़े को लाने में असमर्थ हो गए। अतः राम! लक्ष्मण को भेजो।" लेकिन लक्ष्मण भी हार गए। फिर भरत, शत्रुघ्न भी गए और हार गए और वापिस भी नहीं लौटे। अब रामजी बोले कि, 'हे गुरुदेव! जो भी जाता है वापस आता ही नहीं है। क्या बात है?" तो गुरुदेव वशिष्ठ बोले, "कोई बड़ा बलशाली है, जिसने घोड़े को बांध लिया है अतः अब आपको ही जाना होगा।" जब राम गए तो लव–कुश आश्रम के बाहर ही मिल गए। राम उनसे बोले, "बेटा! मैं तुम्हारा पिता हूँ। घोड़े को पेड़ से खोल दो। मुझे अश्वमेध यज्ञ करना है।" लव–कुश बोले, "पिताजी! आप हमारे पिताजी हो। परंतु क्षत्रियों का धर्म है कि चाहे कोई भी हो, क्षत्रिय, केवल हारकर ही अपना कर्म छोड़ सकता है। आप हमें मारकर घोड़ा ले जा सकते हैं।" रामजी बोले, "पिता का धर्म नहीं है कि अपनी संतान को मारे।" लव–कुश ने कहा, "आप हम पर बाण चलाओ तो सही और देखिये, क्या होता है?" राम ने झूठा बाण चला कर देखा तो बाण ने वापस आकर रामजी को ही घायल कर दिया तो राम समझ गए कि वाल्मीकिजी ने इन शिष्यों को गुरु कवच पहना रखा है अतः इन पर बाणों का असर नहीं हो सकता।

अतः वह वाल्मीकिजी से प्रार्थना करके ही घोड़े को ले जा सकेंगे। तब रामजी वाल्मीकि आश्रम में गए और वाल्मीकिजी के चरण छूकर प्रणाम किया और प्रार्थना की, "मुझे अश्वमेध यज्ञ करना है। आप के शिष्यों ने मेरा घोड़ा बांध रखा है। अतः कृपाकर घोड़े को खुलवा दीजिये ताकि मैं यज्ञ पूरा कर सकूँ।" तो वाल्मीकिजी ने लव–कुश के पास आकर आदेश दिया कि, "मेरे शिष्यो! तुम्हारी जीत हो गई। अब घोड़ा रामजी को दे दो।" जब गुरुजी बोले तो लव–कुश ने घोड़ा पेड़ से खोलकर रामजी को सौंप

दिया। यही है गुरु कवच का प्रभाव जिसे भगवान् भी नहीं तोड़ सके। गुरु भगवान् से भी शक्तिशाली होता है।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

(श्रीगुरुगीता, प्रथमोऽध्यायः श्लोक 58)

जो गुरुदेव को नहीं मानता उसे बड़ी भारी सजा मिलती है।

जे गुर चरन रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल बिभव बस करहीं।

(मानस, अयोध्या. दो. 2 चौ. 3)

राखइ गुर जौं कोप बिधाता। गुर बिरोध नहिं कोउ जग त्राता।।

(मानस, बाल. दो. 165 चौ. 3)

श्री गुर पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिब्य दृष्टि हियं होती।।

(मानस, बाल. गुरु वंदना, सो. 5 चौ. 3)

उघरहिं बिमल बिलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के।।
सूझहिं राम चरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहं जो जेहि खानिक।।

(मानस, बाल. गुरु वंदना, सो. 5 चौ. 4)

गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई। जौं बिरंचि संकर सम होई।

(मानस, उत्तर. सो. 92 (ख) चौ. 3)

शास्त्र वचन है कि जो गुरु से विरोध करता है उसकी क्या गति होती है?

जे सठ गुर सन इरिषा करहीं। रौरव नरक कोटि जुग परहीं।।
त्रिजग जोनि पुनि धरहिं सरीरा। अयुत जन्म भरि पावहिं पीरा।।

(मानस, उत्तर. दो. 106 (ख) चौ. 3)

भगवान् के लिए कैसी अवस्था होनी चाहिए? भगवान् स्वयं बता रहे हैं।

मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा।।

(मानस, अरण्य. दो. 15 चौ. 6)

जौं सभीत आवा सरनाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं।।

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 4)

जैसे शिशु माँ की शरण में ही रहता है तो माँ उसका कितना ध्यान रखती है, वैसे भगवान् तो सबसे बड़ी माँ हैं। वह भक्त का ध्यान कैसे नहीं रखेंगे। भगवान् को भक्त बहुत प्यारा है।

एक दृष्टांत सुनिए। एक धन्ना जाट हुए हैं। एक दिन, धन्ना जाट के पिता जी ने उसे बोला कि तू जाकर खेत में बीज बो आ। धन्ना जाट ने कहा, "मैं अभी जाता हूँ।" खेत जाते समय, उसे रास्ते में दो साधु मिल गए तो उसने दोनों साधुओं का चरण स्पर्श किया और बोला, "महात्माजी! आपको क्या चाहिए?" साधु बोले, "बेटा! हम भूखे हैं।" तो धन्ना जाट बोला, "आप मेरे साथ बाजार में चलिए। मैं आपको दुकान से कुछ खरीद कर खिला देता हूँ।" भक्त का आचरण ही ऐसा होता है। उसने दुकान वाले से कहा, "मेरे पास बीज का अनाज है। आप इस अनाज को लेकर इनको कुछ खाना खिला दो।" दुकानदार, जो हलवाई का काम करता था, उसने कहा, "अनाज की कीमत तो ज्यादा है।" धन्ना बोला, "कोई बात नहीं। आप इन्हें भरपेट खिला दीजिए।" गरम गरम जलेबी थी और नमकीन था। हलवाई ने साधुओं को खाना दे दिया। साधु ने तुलसी डाल कर भोग लगाया और प्रसाद पा लिया। दोनों तृप्त हो गए। जब धन्ना जाट शाम को घर पहुँचा तो पिताजी ने पूछा, "खेत में बीज डाल दिया? खेत में किसी चीज की कमी तो नहीं थी?" धन्ना जाट ने कहा, "मैं अच्छी तरह बीज डाल आया हूँ, खेत जैसा था, वैसा ही पड़ा हुआ है।" सच्ची बात बता दी पर पिता समझ नहीं पाया। भगवान् को चिंता हो गई कि धन्ना जाट उनकी पूर्ण शरणागति में है, खेत में कुछ फसल नहीं होगी तो धन्ना जाट का पिता उसकी पिटाई कर देगा। पास के खेत वाले इसके पिता को बता देंगे कि धन्ना जाट खेत पर आया ही नहीं था। अतः भगवान् ही जाकर खेत में अनाज बो कर आ गए। किसी ने कहा, "धन्ना के पिताजी! अबकी बार तो तुम्हारे खेत में ऐसी फसल उगी है कि आसपास में भी ऐसी फसल कहीं पर नजर नहीं आ रही है।" तो धन्ना जाट को उसके पिता बोले, "चलो खेत पर चलते हैं। देख कर आयें कि कैसी फसल है?" अब तो धन्ना डर गया कि खेत तो खाली पड़ा होगा, उसकी पिटाई जरूर होगी क्योंकि किसान तो फसल पर ही निर्भर करता है। साल भर क्या खाएगा? इतना डर गया कि पिताजी बोलेंगे कि, "तूने

बीज बोया ही नहीं।" अब तो धन्ना भगवान् से प्रार्थना करने लगा कि, "हे भगवान्! मेरा क्या होगा? आप ही मेरी रक्षा करो।" जब धन्ना अपने पिता के साथ खेत पर गया तो देखता है कि खेत में तो फसल लहलहा रही थी। धन्ना अंदर ही अंदर भगवान् की कृपा महसूस कर रहा है कि भगवान् के समान कोई दयालु है ही नहीं। बिना उसके फसल बोए ही, यह फसल कहाँ से हो गई? लेकिन उसने अपने पिता को कुछ नहीं बताया और घर पर आकर एकांत में खूब फूट–फूट कर रोने लगा। माँ ने उसका रोना सुना और पूछा, "धन्ना क्या हो गया? क्या तेरे पेट में दर्द हो रहा है?" देखा तो आंसुओं से उसकी कमीज भीग रही थी। माँ ने पूछा, "कहाँ दर्द है, जो तू इतना तड़प रहा है?" धन्ना बोला, "माँ! मेरे सिर में दर्द हो रहा है।" माँ ने पूछा, "तो कैसे मिटेगा? डॉक्टर के पास चलो।" धन्ना बोला, "अब तो कुछ फायदा है, बाद में देखा जाएगा।" धन्ना ने भाव को छुपा लिया।

कहने का अर्थ है कि जब भगवान् की पूर्ण शरणागति हो तो भगवान् भक्त से दूर नहीं होते। अपने भक्त की हमेशा चिंता करते रहते हैं।
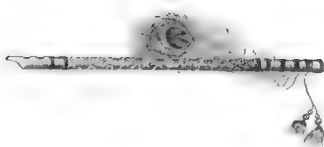
संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : एक माताजी कहती हैं कि शुरु–शुरु में हम नीम की माला पर जप करते थे, ताकि कोई अपराध न हो जाए तो क्या हमारा वह जप भगवान् तक पहुँचता है ?

उत्तर : भगवान् सब जानते हैं। भगवान् से कोई बात छिपी हुई नहीं है। अब महिलाएं हैं, चार दिन अशुद्ध रहती हैं तो उस समय नीम की माला पर ही जपना चाहिए और फिर स्नान के बाद ही तुलसी माला पर करें, ऐसा शास्त्र में भी लिखा है। नीम की माला या और किसी लकड़ी की माला से जप कर सकते हैं।

सच्चे साधु की सेवा का फल

9 जून 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद करें।

सभी मानवों की समस्या है कि गुरु किसको बनाया जाए? इस कलिकाल में गुरु मिलना बहुत मुश्किल है। मेरे गुरुदेव बोल रहे हैं कि गुरु के, प्रथम लक्षण में देखना चाहिए कि :

- यह गुरु हरिनाम कितना जपता है?
- दिन–रात में शिष्य की शंकाओं का समाधान करता है कि नहीं?
- गुरु लालची तो नहीं? जो मिला हुआ है उसमें संतोष है कि नहीं?
- सदाचारी, सत्यवान है कि नहीं?
- इसकी भावना परहित करने की है कि नहीं? दूसरों को दुख देकर दुखी होता है कि नहीं?
- अहंकारी स्वभाव का तो नहीं है?
- प्रसाद सेवन में इसकी कैसी रुचि है? सात्विक भोजन भगवान् के भोग लगाकर खाता है कि नहीं?
- दुश्मन का भला चाहता है कि नहीं?
- अन्य में दोष दर्शन करने का स्वभाव तो नहीं है?

इस प्रकार से कुछ समय तक गुरु के पास रहकर स्वभाव, आचरण की परख करना बहुत जरूरी है। यदि सभी गुण दिखाई देते हैं तो हरिनाम दीक्षा ले सकते हैं, मंत्र दीक्षा की अधिक जरूरत नहीं होती। वाल्मीकिजी ने नारदजी से केवल चलते–चलते हरिनाम ही लिया था

जिससे वे त्रिकालदर्शी हो गए। हजारों साल पहले ही वाल्मीकि रामायण रच दी जबकि राम अवतार बहुत साल बाद में हुआ है।

श्री चैतन्य चरितामृत में भी 15वें परिछेद में नाम के लिए निर्देश दिया गया है। श्रीचैतन्य महाप्रभुजी से किसी ने पूछा, "हम गृहस्थ हैं, हमारे लिए क्या कर्तव्य है? कृपा कर बताएं।" तो महाप्रभुजी ने बोला, "तुम्हारा कर्तव्य है कृष्ण सेवा, संत सेवा तथा हरिनाम कीर्तन करें।" उन्होंने पूछा, "हम संत को कैसे पहचानें?" तो महाप्रभुजी बोले, "जिसके मुख से कृष्ण नाम निकले, वही वैष्णव है, वही संत है।" नामापराध छोड़कर एकमात्र कृष्ण नाम करे तो वह सर्व पापों से छूट जाता है। केवल हरिनाम करने से ही नवधा भक्ति उपलब्ध हो जाती है। कृष्ण नाम, दीक्षा तथा पुरश्चरण करने की आवश्यकता नहीं समझता। जीभ से जपने मात्र से ही चांडाल पर्यंत सभी का उद्धार हो जाता है। मंत्र सिद्धि के लिए पुरश्चरण की आवश्यकता है, नाम में पुरश्चरण की कोई आवश्यकता नहीं है। हरिनाम करने से ही पुरश्चरण के द्वारा प्राप्त फल उपलब्ध हो जाता है। कृष्ण नाम अपने मुखारविंद से जरा भी निकल जाए तो संसार का नाश कर देता है तथा भविष्य में कृष्ण प्रेम प्रदान कर देता है एवं अनंत सुख का विस्तार कर देता है। श्री चैतन्य महाप्रभु सभी संगी–साथियों को बता रहे हैं कि दीक्षा तथा पुरश्चरण की लेशमात्र भी आवश्यकता नहीं है, आगे बोल रहे हैं, "मंत्र दीक्षित व्यक्ति वैष्णव प्रायः है किंतु जिसने निरपराध होकर एक बार कृष्ण नाम किया है, वह सबसे कनिष्ठ अर्थात् छोटा होने पर भी शुद्ध वैष्णव है। ऐसे नामनिष्ठ की सेवा गृहस्थ को करना उत्तम है।" यह चैतन्य चरितामृत ग्रंथ में लिखा है। हरिनाम से ही नवधा भक्ति पूर्ण हो जाती है।

पुरश्चरण किसे कहते हैं? इसका क्या विधान है? यह श्री चैतन्य महाप्रभु बता रहे हैं कि, "प्रातः काल से ही तीनों कालों में नित्य पूजा करें। नित्य जप, नित्य तर्पण, नित्य होम एवं नित्य ब्राह्मण भोजन करायें।" इन पांच अंगों को पुरश्चरण विधि बोला जाता है। इस कलिकाल में पुरश्चरण होना असंभव है। केवल हरिनाम करें। इसमें कोई विधि–विधान व नियम नहीं है, कहीं पर बैठकर, किसी भी समय, बिना स्नान के भी कर सकते हैं।

संसार में दो ही जबरदस्त शक्तिशाली माया हैं, एक तो है नारी, दूसरी है पैसा। जिनके पास यह दोनों माया नहीं हैं, वह भगवान् के चरण में हैं। भगवान् उसको एक क्षण छोड़ नहीं सकते। यह दोनों माया ही संसार को कुम्हार के चक्के की तरह घुमा रही हैं। झगड़े का उदय ही इन

दोनों से आरंभ होता है। जिन पर भगवत्कृपा है वही इन दोनों से दूर रह सकता है।

भगवान् को प्रसन्न करने के दो ही साधन हैं, एक है साधु सेवा, दूसरा साधन है सांड सेवा। शास्त्र बोल रहा है।

पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन साधु पद पूजा।।
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपटु करइ साधु सेवा।।

(मानस, उत्तर. दो. 44 चौ. 4)

फिर शास्त्र बोल रहा है :

मन क्रम बचन कपट तजि जो कर सन्तन सेव।
मोहि समेत बिरंचि सिव बस ताकें सब देव।।

(मानस, अरण्य. दो. 33)

जो जन निष्कपट होकर साधु सेवा करता रहता है, उसको भगवान् इसी जन्म में अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष उपलब्ध करा देते हैं, उसके घर पर कोई संकट नहीं आते, उसके घर पर कोई ग्रह चक्कर नहीं हावी होते, कलियुग का प्रकोप उस घर से दूर रहता है। कलि महाराज का काम ही है आपस में कलह करवाना। भाई–भाई की न बनने देना, पति–पत्नी में द्वेष कराना, बाप–बेटे में न बनने देना आदि–आदि दुख का विस्तार करवाना इस कलि महाराज का काम है, परंतु जो जन हरिनाम करता है वहाँ कलि महाराज की दाल नहीं गलती। कलि महाराज हिरण्यकश्यप का प्रतीक है और हरिनाम भक्त प्रह्लाद का प्रतीक है। अंततः भक्त की जीत होती है एवं कलि की हार होती है।

धर्मशास्त्र बोल रहा है कि अपनी कमाई में से कुछ धन धर्म में खर्च करते रहने से धन शुद्ध रहता है। यह धन, धन वालों को शुभ मार्ग में ले जाता है। जो धन, धर्म में नहीं लगता, वह धन गलत मार्ग में ले जाता है। शराब पिलाता है, जुआ खिलाता है, लड़ाई झगड़े में खर्च होता है, मन को अशांत रखता है, सदा बेचैन रखता है, नींद हराम करता है, पेट को खराब रखता है, रोगी बनाकर रोगों में खर्च करता है। अतः अपनी आय का कुछ अंश, धर्म में खर्च होना श्रेयस्कर होता है। धन भी ऐसी जगह खर्च होना चाहिए जहाँ सुपात्रता हो। कुपात्रता में धन खर्च होने से उसके कर्म का भोग देने वाले को भी भोगना पड़ता है, अतः सोच विचार से पुण्य करना

होगा। जो शुद्ध कमाई का पैसा होगा, वही धर्म करने योग्य होता है। दो नंबर का पैसा पुण्य में नहीं लगता। यदि लगता है तो जिसका पैसा हाथ में आया है, उसे ही लाभ होगा। पुण्य करने वालों को कुछ नहीं मिलेगा। भगवान् तो अंतर्यामी हैं। जिससे उसने पैसा ऐंठा है, उसे ही पुण्य होगा। दो नंबर वाले को कुछ भी नहीं मिलेगा, उल्टा नुकसान करके रहेगा। डॉक्टर, वैद्य आदि छीन लेंगे, अदालतों में वकील छीन लेंगे, दो नंबर से कुछ भी लाभ नहीं होगा। महल, मकान बना लेगा, कार खरीद लेगा, ऐश आराम कर लेगा, लेकिन गहराई से देखा जाए तो वह अंदर ही अंदर जहर फैला देगा। आपस में कलह बाजी करवा देगा, रोगी बना देगा, इससे सुख तो स्वप्न में भी नहीं होगा। थोड़ी देर के लिए चैन की बंसी बजेगी, फिर सौ गुना दुख–कष्ट आकर आक्रांत करेगा। कहीं अंधेरे में भी क्या सुख होता है? सच्चाई में, उजालों में ही सुख होता है। झूठ ही अंधेरा है और सच्चाई उजाला है। यह ध्रुव सत्य सिद्धांत है। लेकिन स्वार्थ अंधा होता है, तृष्णा अंधी होती है जो नरक का द्वार खोलती है, दुख सागर में डुबोती है। यही तो माया की फांसी है। सत्संग के बिना यह फांसी खुलती नहीं है। कलिकाल में हरिनाम का सत्संग ही सर्वोपरि है, अन्य सब गौण है।

पुराण में एक कथा आती है कि यदि किसी चर–अचर प्राणी से भी साधु सेवा बन जाती है, तो इनको भी भगवान् मानव–देह प्रदान कर देते हैं। कथा इस प्रकार से है। वैशाख, जेठ माह में, मई–जून के महीने में एक साधु रेगिस्तान से जा रहा था। साधु इतना विरक्त था कि सिर पर न कोई कपड़ा था, न पैरों में जूती थी। ऊपर से सूर्य तप रहा था, नीचे से रेत जल रही थी। साधु सोच रहा था कि कहीं पेड़ की छाया मिल जाए तो कुछ देर सुस्ता ले। जिस रास्ते से जा रहा था, उस रास्ते में सामने कोई पेड़ नजर नहीं आ रहा था। जब उसने एक तरफ नजर दौड़ाई तो उसे कुछ दूर एक पेड़ दिखाई दिया, तो साधु अपना रास्ता छोड़ कर, उस पेड़ की तरफ चल दिया ताकि उस पेड़ की छाया में कुछ देर विश्राम कर सके। वह पेड़ था बड़ का अर्थात् बरगद का। बड़ के पेड़ की छाया भी गहरी होती है। अतः वह उस पेड़ के नीचे बैठ गया। इस समय उसे प्यास भी लग रही थी एवं भूख भी लग रही थी। रेगिस्तान में गाँव भी दूर–दूर हुआ करते हैं, मकान कहीं पर भी दिखाई नहीं दे रहे थे। साधु भगवान् से प्रार्थना करने लगा कि, "भगवान् कोई मकान भी नहीं दिख रहा है, प्यास से बेचैन हो रहा हूँ।" जब उसने एक तरफ नजर दौड़ाई तो उसे बरगद के पेड़ से कुछ दूर ही में एक कुआं दिखाई दिया। वह सोचने लगा, "कुआं

तो है परंतु कुँए से पानी कैसे निकालूँगा?" साधु कुएं के पास में गया तो उसे कुएं की बगल में एक खेल दिखाई दी। खेल उसे कहते हैं जिसमें पशु पानी पीते हैं। उधर उसे खेल के पास एक बाल्टी नजर आई और बाल्टी में रस्सी दिखाई दी। अब तो उसकी खुशी का ठिकाना ही नहीं रहा। कहने लगा कि, "भगवान्! आपने मेरी जिंदगी बचा दी। अब तो मैं कुएं से पानी खींच कर पी लूँगा।" उसने कुएं से पानी खींचा और भरपेट पानी पिया और बड़ के नीचे चित्त होकर लेट गया। अब विचार करने लगा कि पास में कोई गाँव तो है नहीं जिससे कुछ टुकड़े मांग कर खा लेता। ऐसा विचार कर ही रहा था कि उसकी छाती पर एक मालपुआ आकर गिरा। अब तो उसकी खुशी का ठिकाना ही नहीं रहा कि भगवान्, कितने दयालु हैं। सब जगह सभी मनोकामनाएं पूरी कर देते हैं। वह उनको कैसे भूल सकता है। वह मालपुआ, एक चील कहीं से लेकर आई थी। वह उस पेड़ की चोटी पर आकर बैठ गई और उसे खाने के लिए तैयार हुई तो उसकी चोंच में से मालपुआ निकल कर नीचे साधु की छाती पर जा गिरा। अब तो साधु को सब कुछ मिल गया। भगवान्, जो भी साधु की सेवा करता है उसका बड़ा अहसान मानते हैं। अतः जिसने भी बड़ का पेड़ लगाया था, उसको और बड़ को, दोनों को मानव देह प्रदान कर दी। यह दोनों 84 लाख योनियों में भटक रहे थे, भगवान् ने तूफान भेजा और बड़ को उखाड़ दिया तो बड़ की योनि छूट गई और मानव देह उसे दे दी। अब कुआँ, जिसने खुदवाया था, वह भी किसी 84 लाख योनियों में भटक रहा था, उसे भी भगवान् ने मनुष्य की योनि दे दी। जिसने बाल्टी, रस्सी कुएँ पर रखी थी, उसे भी भगवान् ने मनुष्य योनि दे दी। चील भी जो योनियों में भटक रही थी, उसे भी भगवान् ने मानव योनि दे दी, यानि साधु की जिसने भी सेवा की, चाहे वह चर–अचर प्राणी हो उसका उद्धार भगवान् कर देते हैं।

ऐसे ही जो मानव, सांड की या गाय की रक्षा, पालन करता है, उसे भगवान् 84 लाख योनियों में नहीं गिराते, उसे मानव जन्म ही प्रदान करते हैं। अतः यदि मानव भगवान् को अपने अनुकूल करना चाहे अर्थात् खुश देखना चाहे तो साधु और गौजाति की सेवा व रक्षा करें, तो वह इस जन्म में भी खुश और अगले जन्म में भी खुश रहेगा। यह मैं नहीं कह रहा हूँ, यह भगवान् के शास्त्र बोल रहे हैं। धर्म शास्त्र भगवान् की साँस से निकले हैं, जिससे जीव मात्र दुखी न होकर सुख का विधान बना सके, लेकिन जो जीव शास्त्र को मानता ही नहीं है, वह नरक व 84 लाख योनियों में

भटकता रहता है। किसी सच्चे संत की कृपा बन जाए या संग बन जाए, तो मानव को सुख पाने का सच्चा मार्ग उपलब्ध हो जाए। संत का तो दर्शन ही सब कुछ सुख विधान कर देता है, अन्य सुख विधान होने में तो देर हो जाती है परंतु संत मिलन से देर नहीं होती। कहावत है कि भगवान् की कृपा बिना सन्त मिलता भी नहीं है।

बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता

(मानस, सुन्दर. दो. 6 चौ. 2)

जब किसी जीव की सुकृति बन जाती है तो उस पर भगवान् कृपा कर देते हैं। भगवान् से जीव को बिछुड़े हुए अनंत, अरबों–खरबों युग बीत गए हैं अतः यह जीव दुख सागर में गोते खा रहा है। सुख तो दिखता है, पर सुख है नहीं। पूरी सृष्टि का राज भी एक जीव को दे दिया जाए तो भी तृप्ति नहीं हो सकती। यही तो भगवान् की अलौकिक चमत्कारिता है। इसको भगवान् के भक्त के सिवाय कोई भी समझ नहीं सकता। ब्रह्मा व शिव भी इससे दूर ही रहते हैं। ब्रह्मा, शिव को भी माया मोहित करती रहती है। एक भक्त ही भगवान् का प्यारा है एवं बाकी सभी प्यारे (भगवान्) से दूर रहते हैं।

तबहिं होइ सब संसय भंगा। जब बहु काल करिअ सतसंगा।।

(मानस, उत्तर. दो. 60 चौ. 2)

काकभुशुंडीजी भगवान् के वाहन गरुड़ को कह रहे हैं, "गरुड़ जी! थोड़े समय का सत्संग प्रभाव नहीं करेगा क्योंकि मायाजाल का अंत नहीं है। कितना फैला रहता है कलियुग में यह मायाजाल, हरिनाम के बिना सुलझता नहीं है।"

कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिर सुमिर नर उतरहिं पारा।।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

(चै. च. आदि 17.21)

भगवान् को, कलिकाल में राजी (खुश) करने का सरल, सुगम रास्ता हरिनाम ही है। शेषनागजी हजारों मुखों से हरिनाम जपते रहते हैं। शिवजी अपनी धर्मपत्नी पार्वती के साथ हरिनाम जपते रहते हैं। हनुमानजी हर

वक्त 'श्रीराम! जै राम! जै जै राम! जपते रहते हैं। हमारे जितने गुरुवर्ग हुए हैं हरिनाम जप कर ही आनंद सागर में डूबे हैं।

श्री चैतन्य महाप्रभुजी का आदेश है कि ग्राम चर्चा से दूर रहो, लेकिन भक्तगण अखबार घर पर मंगा कर पढ़ते हैं। यह तो ग्राम चर्चा से भी अधिक नुकसान कारक है तथा टीवी से समाचार आदि सुनते हैं। टीवी देखते हैं, तो श्री चैतन्य महाप्रभु जी का आदेश कहाँ माना? फिर शिकायत करते हैं कि हमारा मन हरिनाम में लगता नहीं है। स्वप्न में भी मन लगने का प्रश्न ही नहीं उठता। यह सब ग्राम चर्चाएं हैं जो चिंतन में आएंगी तो भगवान् की चर्चाएं इनसे नीचे दब जाती हैं। कई जगह मानवों का जमघट लगा रहता है, जहाँ पर गपशप होती रहती है। वहाँ जाकर बैठना भक्त के अनुकूल नहीं है। इसी कारण से शास्त्र बोल रहा है कि करोड़ों में से कोई एक ही इन आदेशों को मानता है। सभी प्रकार से मनमानी करते रहते हैं। मानव भगवान् को नहीं चाहता। चाहता है तो केवल संसार को। महाप्रभुजी का आदेश है कि लकड़ी की स्त्री से भी दूर रहो। लेकिन भक्तगण इसको बिलकुल नहीं मानते, तो भजन कहाँ से होगा? केवल कपटमय आचरण है। मठ–मंदिर इसी में आकृष्ट हैं, सभी जगह कलियुग घुस गया है। वातावरण विपरीत बन गया है। सभी विपरीत गति से चल रहे हैं, फिर कहते हैं, हमें गोलोक चाहिए। कैसी मूर्खता है?

वेद मंत्रों का माइक से कीर्तन हो रहा है जबकि वेद मंत्र गुप्त रखे जाते हैं। ब्रह्मगायत्री आदि वेदमंत्र हैं जो मानसिक ही जपे जाते हैं। कीर्तन करने से अनाचार होता है। कलिकाल में सभी मर्यादाएं समाप्त होती जा रही हैं, जिनको बताना उचित नहीं है। वैसे सभी जानते भी हैं। जो कुछ हो रहा है, भगवान् के आदेश से ही हो रहा है। कोई, कौन क्या कर सकता है? यह युग का ही प्रभाव है। भगवान् की लीलाएँ शुभ तथा अशुभ दो तरह की हुआ करती हैं वरना लीलाओं का सामंजस्य ही क्या है?

भगवान् सूर्य 8 माह तक समुद्र से जल खींचते रहते हैं एवं 4 माह में जीवमात्र को बादलों द्वारा वर्षा कर जीवनदान देते रहते हैं। बादल सूर्य के द्वारा ही प्रकट होते हैं तथा इंद्रदेव को इसका चार्ज दिया है। जहाँ भगवान् का आदेश होता है, वर्षा कर सुख प्रदान करते रहते हैं। जिस प्रकार राजा कर के रूप में जनता से पैसा वसूल करता रहता है एवं जब जरूरत पड़ती है तो जनता को ही वितरण कर देता है। इस प्रकार से भगवद् आदेश से सूर्य भगवान् जीवमात्र की प्रसन्नता का कारण बनते रहते हैं।

वासुदेव सर्वं इति

16 जून 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास
अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा
अहैतुकी प्रेमा भक्ति की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

सभी भक्तगण ध्यानपूर्वक सुनें! मेरे गुरुदेव मानव के शरीर की रचना के बारे में जीवमात्र को संबोधन कर रहे हैं।

शरीर में चार कोष्ठ होते हैं, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। मन से मानव में संकल्प–विकल्प उठते रहते हैं, यह विचारों का पुंज है। मन रात–दिन एक क्षण भी कर्म किए बिना नहीं रह सकता। सोते रहने पर भी मन कहीं–कहीं जाता रहता है। ऐसी जगह मन चला जाता है जिसको मानव ने कभी देखा तक नहीं है, लेकिन पूर्व जन्मों में मन से ग्रहण किया है। जो ग्रहण नहीं होता वह मन में नहीं आ सकता। यह मन का शरीर में कर्म है।

बुद्धि का कर्म है निश्चय करना। कर्म शुभ है तथा अशुभ है। बुद्धि कहती है कि यह कर्म करना उचित नहीं है, फिर भी मन उससे कर्म करवा कर रहता है और फिर पछताता है कि यह काम मुझे नहीं करना चाहिए था। बुद्धि उसे कहती है कि :

अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत।

क्योंकि मन से सूक्ष्म है बुद्धि और बुद्धि से सूक्ष्म है चित्त एवं चित्त से सूक्ष्म है अहंकार। अहंकार इतना बारीक है, इतना हवा के समान है कि इसे पकड़ना बहुत ही मुश्किल है जैसे हवा को कोई पकड़ नहीं सकता। यह हरिनाम से पकड़ में आ जाता है क्योंकि हरिनाम अहंकार का झुकाव बदल देता है। अब तक इस का झुकाव संसार की ओर था, अब हरिनाम

इसे आध्यात्मिक ओर कर देता है। मानव का सबसे बड़ा दुश्मन है अहंकार। अहंकार, भगवान् को बिल्कुल सुहाता नहीं है। जिसको भी अहंकार हुआ है, उसे भगवान् ने पैरों नीचे कुचल दिया है। ब्रह्मा, शिव, हनुमान, अर्जुन आदि को इस दुश्मन ने आक्रमण करके नष्ट करना चाहा लेकिन :

जाको राखे साइयां मार सके न कोय।
बाल न बांका कर सके, जो जग बैरी होय।।

(संत कबीर जी)

भगवान् ने इन शरणागतों की अहंकार से रक्षा की है एवं भविष्य में भी करते रहते हैं। अब श्रीगुरुदेव चित्त का कर्म बता रहे हैं चित्त में चिंतन होता है। प्रथम में, चित्त में कोई भी संकल्प–विकल्प विचार की स्फुरणा उठती रहती है। स्फुरणा का मतलब है विचार की हरकत होती है। यदि शुभ स्फुरणा होती है तो तुरंत ही मन को बुद्धि द्वारा आदेश हो जाता है कि इस कर्म में देर न करो और यह आनंदवर्धन कर देगा, लेकिन अशुभ प्रेरणा अथवा स्फुरणा जगे तो उसी समय इस स्फुरणा को दबा देना उचित होगा। यदि दबा न सके तो यह प्रेरणा मन को हो जाएगी, मन को पकड़ लेगी एवं शक्तिशाली होने पर शरीर की किसी इंद्रिय पर चली जाएगी तो वह कर्म होकर ही रहेगा। इसको कोई हटा नहीं सकेगा। यही है चार कोष्ठ, जो मानव के शरीर में हरकत करते रहते हैं।

मानव के शरीर में तीन शरीर होते हैं, पहला है स्थूल शरीर, जो पंचतत्व से बना हुआ रहता है, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश। जब इनमें किसी की कमी हो जाती है तो मानव मर जाता है या रोगी हो जाता है। स्थूल शरीर इन पांच तत्वों से ही चलता–फिरता है, इसमें थोड़ी बहुत कमी हो जाती है तो मानव शरीर रोगी हो जाता है। शरीर में बारह नमक होते हैं। जिस नमक की कमी हो जाती है तो उसे बायोकेमिस्ट दवा द्वारा पूरा किया जाता है। इसका आविष्कार डॉ. सछलर (Dr- Schuessler) ने किया है। होमियोपैथी का आविष्कार डॉ. हैनेमन (Dr- Hahnemann) ने किया है। आयुर्वेद का आविष्कार धन्वन्तरि जी ने किया है। एलोपैथिक आविष्कार का पता बुद्धि में नहीं आ रहा है।

हरिनाम ही एक ऐसी रामबाण औषधि है जो इन रोगों को दूर बैठा देती है। रोग नाम जापक के पास आने में डरते हैं। रोग कौन हैं? यह एक

प्रकार के राक्षस हैं। राक्षस देवता से डरते हैं। हरिनाम सर्वशक्तिमान् है। यह तो राम, कृष्ण भगवान् से भी शक्तिशाली है। राम स्वयं अपने मुखारविंद से बोल रहे हैं :

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई।।

(मानस, बाल. दो. 25 चौ. 4)

रामजी अपने नाम का महत्व नहीं बता सकते। राधा का नाम लेने वाले के पीछे कृष्ण दौड़े आते हैं और कृष्ण का नाम लेने वाले के पीछे, राधा दौड़ी आती हैं। श्रीमद्‌भागवत पुराण में बोला है कि राधा कृष्ण की आत्मा है। आत्मा कृष्ण से अलग कैसे रह सकती है एवं कृष्ण आत्मा के बिना कैसे जीवित रह सकते हैं?

हरिनाम की महिमा तो कोई बता ही नहीं सकता। शेषनागजी पृथ्वी को धारण करते हुए भी हजार फनों के मुख से नाम उच्चारण करते रहते हैं। कृष्ण जब संध्या करने बैठते हैं तो भगवद् नाम जपते रहते हैं। शिवजी पार्वती के साथ बैठकर 'राम' नाम जपते रहते हैं। हनुमानजी सदा ही 'श्रीराम जैराम जैजैराम' जपते रहते हैं, कीर्तन करते रहते हैं। हनुमानजी सब को जगा रहे हैं और श्रीरामजी से कह रहे हैं :

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई।।

(मानस, सुन्दर. दो. 31 चौ. 2)

जब भगवान् को भूल जाते हैं तो विपत्ति आ जाती है। अतः हनुमानजी कह रहे हैं कि सभी, सदा हरिनाम जपते रहो। कलियुग के जीवों का, भगवान् ने कैसा, कितना सरल, सुगम उपाय बताया है। मन लगे चाहे न लगे। हरिनाम उच्चारण करते रहो और कान से सुनते रहो।

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

दसों दिशाओ में मंगल हो जाएगा चाहे आप मन से जपो चाहे बेमन से जपो, तब भी नाम मंगल कर देगा। नाम अपना प्रभाव दिखाए बिना नहीं रहता जैसे बिना जाने अमृत पी जाएं तो यह अमर बना देगा, बिना जाने जहर खा जाएं तो वह मार देगा। अपना प्रभाव जरूर दिखायेगा। बिना जाने आग में हाथ लगा देंगे तो आग जला देगी। अपना अपना प्रभाव करे

बिना नहीं रह सकते। इसी प्रकार भगवान् का नाम जाने में, अनजाने में लेने से सुखी कर देगा।

मानव के पांच कोश होते हैं। एक अन्नमय कोश, दूसरा प्राणमय कोश, तीसरा है मनोमय कोश, चौथा है विज्ञानमय कोश, पांचवां कोश है आनंदमय कोश। पहला अन्नमय कोश, खाद्य पदार्थों पर निर्भर है। खाद्य पदार्थ भी तीन प्रकार के होते हैं। तमोगुणी खाद्य पदार्थ, जो भक्ष्य–अभक्ष्य दो प्रकार के होते हैं। राजसिक एवं सात्विक खाद्य पदार्थ।

प्राणमय कोष, जो साँस पर निर्भर है। साँस का आना जाना होता रहता है। जब साँस रुक जाता है तो जीवमात्र मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। यही प्राण को धारण करता है। मनोमय कोश से कर्म का संचालन होता रहता है। मन के बिना कोई कर्म हो नहीं सकता। कर्म शुभ तथा अशुभ होते रहते हैं। इनके द्वारा जीवमात्र को शुभ–अशुभ योनियों में जाना पड़ता है, वहाँ सुख की हवा भी नहीं है, केवल सुख दिखता है पर वहाँ दुख का साम्राज्य है।

इसके आगे है विज्ञानमय कोश, यह अच्छा–बुरा कर्म का आभास करवाता है। इसे ज्ञानमय कोश भी बोला जाता है। ज्ञान सब को होता है, जैसे झूठ बोलना पाप है, चोरी करना बुरा है, दूसरे को दुखी करना अधर्म है, लेकिन जानते हुए भी झूठ बोलते हैं, जानते हुए भी चोरी करते हैं। इसे ज्ञान नहीं बोला जाता, इसे अज्ञान ही बोला जाता है क्योंकि इसके ज्ञान नेत्र अभी खुले नहीं है। जिसके ज्ञान नेत्र खुल जाते हैं उससे अशुभ कर्म होता ही नहीं है। ज्ञान नेत्र किसे बोला जाता है? जो नेत्र हर जगह, हर जीवमात्र में भगवान् को ही देखता है, इसे ज्ञान नेत्र कहते हैं जैसे उदाहरण देकर गुरुदेव बता रहे हैं कि नामदेवजी ने अपनी झोपड़ी में रोटी बना कर रखी थी और झोपड़ी के कोने में घी का डिब्बा रखा था। जब घी का डिब्बा उठकर लेने गए, इतने में एक कुत्ता आया और रोटियों को मुंह में दबाकर भागा। जब नामदेवजी ने देखा कि कुत्ता 'भगवान्' बिना चुपड़ी रोटी लेकर भाग रहा है तो नामदेवजी घी का बर्तन लेकर उसके पीछे दौड़े और जोर–जोर से पुकारने लगे कि, "भगवान्! रोटी चुपड़ी नहीं है। सूखी रोटी कैसे खाओगे? जरा ठहर जाओ। रोटियों को चुपड़ देता हूँ।" कुत्ता भूखा था, बैठकर खाने लगा। इतने में नामदेवजी कुत्ते के पास आकर बोलने लगे कि, "रोटी चुपड़वा लो, भगवान्! फिर खा लेना।" बस फिर क्या था? कुत्ते में भगवान् प्रकट हो गए और नामदेवजी को छाती से चिपका कर बोले, "नामदेव! तू तो सब में मुझे ही देखता है अतः मैं तुझसे

दूर नहीं और तू मुझसे दूर नहीं है।" ऐसा गीता में भगवान् ने बोला भी है जब यह दृष्टि किसी सुकृतिवान की बन जाती है तो उसके लिए वैकुण्ठ व गोलोक धाम दूर नहीं है।

इसी कारण से मेरे गुरुदेवजी ने तीन प्रार्थनाएं भक्तों को करने का आग्रह किया है। ये तीन प्रार्थनाएं ही भगवान् को मजबूर कर देती हैं। भगवान् कहते हैं, "ऐसे भक्त से मैं कैसे दूर रह सकता हूँ? इस भक्त ने तो मुझे खरीद लिया है। मैं उसका हूँ और वह मेरा है।" मेरे गुरुदेवजी ने सात स्वभाव, आचरण वाले जिस मानव की चर्चा की है, अनंत कोटि ब्रह्मांडों में ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो उसे भगवान् से अलग कर सके, दूर कर दे। वह निश्चित रूप से भगवान् की सन्निधि में चला जाता है। यह सात स्वाभाविक चर्चाएं, इस कारण बताई गई हैं कि मानव, जिस स्वभाव से दूर है, उसे सुधारने का प्रयास करे। बिना मालूम हुए अपना स्वभाव कैसे सुधरेगा? अतः मेरे गुरुदेवजी ने मानव के लिए कितनी कृपा की है। अंधों को आंखें दी हैं।

इस कलियुग में भगवान् को कौन चाहता है? जो भी भगवान् की साधना करते हैं, वे इसलिए करते हैं कि हमारा घर सुख–समृद्धि से पूर्ण हो जाए, कोई आफत न आ जाए, हमारा नाम संसार में मशहूर हो जाए। इसलिए अपना भला चाहते हैं, भगवान् को कोई नहीं चाहता है।

करोड़ों में कोई एक ही भगवान् को चाहता है कि भगवान् मुझे कुछ नहीं चाहिए। केवल, भगवान् आपके चरणों में मेरा मन लगा रहे, मुझे कुछ भी नहीं चाहिए, बस केवल आप चाहिएँ। ऐसा करोड़ों में कोई एक मानव होता है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

गोपियां भगवान् से कुछ नहीं चाहती थीं, केवल भगवान् को सुखी देखना चाहती थीं। प्रातः चक्की पीसतीं, तब भी भगवान् कृष्ण के सम्बन्धित गीत गाती रहती थीं, झाडू निकालते भी भगवान् में ही मन रखती थीं, भोजन बनाते समय भी कृष्ण का गुणगान करती रहती थीं। भगवान् के स्मरण का बहुत अधिक महत्व है। स्मरण तो भगवान् के दुश्मन राक्षस भी करते थे और उनकी मुक्ति हो जाती थी। किसी भाव से भी भगवद् स्मरण हो जाए तो जीव का कल्याण निश्चित है। श्री चैतन्य महाप्रभुजी ने इस

स्मरण हेतु ही हरिनाम करने का सर्वजनों को आदेश दिया है और स्वयं भी माला झोली से हरिनाम जपते। हरिनाम जपना महाप्रभु ने कभी छोड़ा ही नहीं।

यदि गृहिणी भोजन बनाते समय हरिनाम जपती हुई भोजन बनाए तो जो भी इस भोजन को खाएगा, उसका मन हरिनाम में स्थिर रहेगा। क्योंकि भोजन में नाम का प्रभाव घुस जाता है भोजन करते समय यदि नाम लेते हुए खाया जाए तो भोजन का रस निर्गुण या सात्विक बनेगा। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। कोई भी आजमा कर देख सकता है कि मन चंचलता छोड़कर स्थिर होने लगा है। भोजन करते समय मन संसार में भटकता है तो रस बनेगा तामसिक और राजसिक। इसमें मन चंचलता में भटकेगा। बहुतों ने करके देखा है तो कहते हैं कि सचमुच मन रुका है। कुछ साधन शास्त्रों में भी नहीं हैं लेकिन अनुभव से प्रत्यक्ष सामने आ रहे हैं। अपना अनुभव भी भगवद् कृपा से हृदय में प्रकट हो जाता है।

भगवान् तो सबका बाप है। बाप, बेटे से स्वाभाविक ही मिलना चाहता है। लेकिन बेटा बाप की तरफ देखता तक नहीं है तो बाप का क्या दोष है। बाप ने मिलने हेतु गीता, श्रीमद्भागवत, रामायण, 17 पुराण, महाभारत, उपनिषद्, वेद आदि शास्त्र अपने साँस से प्रकट किए हैं उनको पढ़कर भगवान् की गोदी में जाने का मार्ग बता रखा है। मानव पढ़ता ही नहीं है। पढ़ता भी है लेकिन उनके अनुसार चलता नहीं है और गलत रास्ता अपना लेता है तो निश्चित जगह पर कैसे पहुँचेगा? शास्त्र कहता है कि झूठ बोलना पाप है, लेकिन झूठ बोलता है। किसी की आत्मा को मत सताओ, लेकिन सताता है। अपनी कमाई में से कुछ धर्म में पैसा लगाओ, लेकिन धर्म में पैसा नहीं लगाता तो पैसा गलत रास्ते से खर्च होगा। धर्म में लगाने से पैसा शुद्ध हो जाता है। धर्म में न लगाने से पैसा शराब पिलाएगा, जुआ खिलाएगा, भक्ष्य–अभक्ष्य खिलाएगा, मुकदमा लगाएगा, चोरी करायेगा। वेश्यावृत्ति में घुमायेगा आदि दुर्गुणों में फँसाता रहेगा, तो ऐसा जीव कैसे कभी सुखी रह सकता है। हाय–हाय करता ही मर जाएगा और अगली योनियों में भी दुखी ही होता रहेगा। यही तो माया है। यह माया यशोदा मैया की कोख से प्रगट हुई है जो सबको फँसाती रहती है। कंस ने मारना चाहा परंतु उसके हाथ से छूटकर आकाश में चली गई। कंस देखता ही रह गया।

आज इस कलियुग में उपरोक्त लिखा काम ही हो रहा है। दुनिया की जनसंख्या देखते हुए केवल 001% पैसा ही धर्म में खर्च होता है। जो पैसा खर्च हो रहा है वह भी अपनी बड़ाई व ख्याति हेतु हो रहा है। गुप्तदान तो न के बराबर ही है। सारा संसार दुख के गर्त में जा रहा है। कोई ऐसा समय आएगा जब दुनिया खाली हो जाएगी। ऐसे–ऐसे विनाशकारी यंत्र बन गए हैं जो कभी न कभी विनाश के कारण बन जाएंगे।

अतः मेरे गुरुदेव सभी को सतर्क कर रहे हैं कि भगवान् का नाम ही बचाएगा, जैसे प्रह्लाद को बचाया है। वह भी बचेगा जिसको सुकृति बल से सच्चे संत का संग मिलेगा। सच्चा संत पैसा तथा नारी से बहुत दूर रहता है। चैतन्य महाप्रभुजी ने लकड़ी की नारी से भी दूर रहने की सलाह दी है।

हमारे सच्चे संगी–साथी हैं केवल धर्म ग्रंथ तथा साधु। अन्य सब गर्त में ले जाने वाले हैं।

श्रीमद्भागवत महापुराण कह रही है कि गिरते–पड़ते, खाते–पीते, किसी भी कारण विशेष से, यदि भगवद् नाम निकल जाए तो उसका शुभ का रास्ता खुल जाए। जो जन तुलसी माला पर हरिनाम करता है वह तो इस कलिकाल में उच्च कोटि का भाग्यशाली है। इस काल में इसका तो इसी जन्म में बेड़ा पार हो जाएगा। इसकी गारंटी चैतन्य महाप्रभुजी ले रहे हैं। नाम जब कहीं पर भी किसी भी समय मन से या बेमन से, कैसे भी किया जाए, वह सुख विधान करके ही रहेगा।

भगवान् राम बोल रहे हैं :

सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह कें द्विज पद प्रेम।।

(मानस, सुन्दर. दो. 48)

विभीषण! जो सगुण भगवान् के उपासक हैं एवं दूसरों के हित में लगे रहते हैं, नीति और हद में हैं, जिन्हें ब्राह्मण के चरणों में प्रेम है, ऐसे मानव मेरे प्राणों के समान हैं।

फिर भगवान् राम विभीषण को कह रहे हैं :

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।।

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 1)

"जो पाप में रत हैं, विभीषण! उसे मेरा भजन नहीं सुहाता है। यदि किसी ने करोड़ों ब्राह्मणों की हत्या भी की हो एवं मेरी शरण में आ गया तो मैं उसे भी कभी नहीं दूर करता। मैं उसे छाती से लगाकर रखता हूँ।"

फिर शिवजी बोल रहे हैं :

साधु अवग्या तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कै हानी।।

(मानस, सुन्दर. दो. 41 चौ. 1)

"उस मानव के कल्याण की तुरंत ही हानि हो जाती है अतः हे भवानी! साधु को स्वप्न में भी दुखी नहीं करना चाहिए।"

विभीषण रावण को बोल रहा है :

सुमति कुमति सब कें उर रहहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं।।
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना।।

(मानस, सुन्दर. दो. 39 (ख) चौ. 3)

"पुराण बोल रहा है कि अच्छा बुरा भाव सभी के हृदय में रहता है, जहाँ अच्छा भाव होता है, वहाँ सुख ही सुख है एवं जहाँ बुरा भाव है वहाँ दुख ही दुख है।"

रावण की पत्नी रावण को समझा रही है, "हे नाथ! शरण आए हुए को राम भगवान् कभी नहीं त्यागते हैं, चाहे उसे समस्त जगत से द्रोह का पाप लगा हो। जिनका नाम तीनों तापों का नाश करने वाला है वही राम मनुष्य रूप में प्रकट हैं। अतः सीता को उन्हें सौंप दीजिए।"

काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरहि भजहु भजहिं जेहि संत।।

(मानस, सुन्दर. दो. 38)

रावण की पत्नी रावण को कह रही है, "हे नाथ! परस्त्री को चौथ के चंद्रमा की तरह त्यागने में ही भलाई है।"

भगवान् राम बोल रहे हैं :

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 3)

"निष्कपट भक्त ही मुझे प्यारा लगता है, पंडिताई मुझे नहीं सुहाती।"

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।

(श्री शिक्षाष्टकम् श्लोक 3)

जो ऐसे अहंकारहीन स्वभाव का मानव होता है, वही मेरा नाम उच्चारण कर सकता है।

सीताजी कह रही हैं :

दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी।।

(मानस, सुन्दर. दो. 26 चौ. 2)

अशोक वृक्ष के नीचे ऐसा स्मरण करके दुखी हो रही हैं।

आचरणशील भक्त के पीछे भगवान् छायावत रहते हैं। कहते हैं :

राम–राम सब कोई कहे, दशरथ कहे न कोय।
एक बार दशरथ कहे, कोटि यज्ञ फल होय।।

यहाँ दशरथ का मतलब है दस इंद्रियां। दसों इंद्रियों को भगवान् की सेवा में लगाने से, उनमें केंद्रित करने से भगवान् सरलता से खिंचे चले आते हैं। यह बात निश्चित है, इसमें जरा भी संदेह नहीं।

जौं सभीत आवा सरनाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं।।

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 4)

भगवान् कह रहे हैं, "जो दुख पाकर मेरे चरणों में आ जाता है तो मैं उसे प्राणों के समान रखता हूँ।" जो साधक सुखी रहना चाहता है, वही इस संसार रूपी दुखालय से डरकर भगवान् को याद करता है और भगवान् उसे अपने हृदय से चिपकाए रहते हैं। भगवान् कहते हैं, "जीवात्मा मेरा शिशु है। जिस प्रकार माँ अपने शिशु को छाती से चिपकाए रहती है, उसी प्रकार मैं भी अपने भक्त को हृदय से चिपकाए रखता हूँ क्योंकि मेरे

भक्त ने केवल मेरा ही आसरा ले रखा है, मेरे सिवाय उसका इस संसार में और कोई नहीं है इसलिए उसकी चिंता मैं, स्वयं करता हूँ। जिसने अपना सर्वस्व मुझे सौंप दिया है, जो हर पल मेरा चिंतन कर रहा है, जिसके रोम–रोम में हरिनाम की दिव्य ध्वनि गूंज रही है, जिसके हर साँस में हरिनाम का उच्चारण होता हो, अपने शरणागत उस भक्त को मैं कैसे त्याग सकता हूँ?" भगवान् तो सब जीवों की माँ है और वात्सल्य भाव की असीम मूर्ति हैं, फिर अपने शरण में आये जीवों को कैसे त्याग सकते हैं? ऐसे भक्त को जिसने अपना मन सब ओर से हटाकर भगवान् के चरण कमलों में लगा दिया है, भगवान् अपने से दूर कैसे रख सकते हैं? इसलिए भगवान् की प्राप्ति का सबसे पहला साधन है मन का संयम। जब सब इंद्रियों का संयम हो जाता है तब भगवान् दूर नहीं रहते। भगवान् से नजदीक तो कोई है ही नहीं और जो असंयमी है, भगवान् उससे जितना दूर है, उतना कोई दूर नहीं। जो शरणागत रहता है, उसकी भगवान् स्वयं रक्षा करते रहते हैं।

धर्मग्रंथों में बिल्ली तथा बंदरिया का उदाहरण मिलता है। बिल्ली अपने बच्चे को अपने मुख से उठाकर कहीं भी इधर उधर ले जाती है। उसका बच्चा उसके मुंह से कभी भी गिरता नहीं है, क्योंकि माँ की शरण में है और उसकी माँ ने उसको कसकर अपने मुख में पकड़ रखा है। अतः वह सुरक्षित है क्योंकि वह उसकी माँ है तो उसके दांत नहीं गड़ते हैं। वह मुलायम से उसको पकड़ती है।

दूसरी और बंदरिया का बच्चा अपने बल से अपनी माँ को पकड़े रहता है और शरणागत नहीं होता और जब बंदरिया, एक स्थान से दूसरे स्थान पर छलांग लगाती है तो बच्चा छाती से अलग हो जाता है और नीचे गिर जाता है और उसकी मौत हो जाती है। यह फर्क है। यह इसलिए क्योंकि वह पूर्णरूप से शरणागत नहीं था और अपने बल से उसने माँ को पकड़ रखा था।

कहने का मतलब यह हुआ कि हम अपने बल से भगवान् को नहीं जान सकते। हां! भगवान् की शरण लेने पर वह स्वयं अपनी दया से, हमें अपना लेंगे, अपने चरणों में रख लेंगे और हमारी रक्षा करेंगे। शरणागत की रक्षा, पालन भगवान् स्वयं करते हैं। शरणागत किसी भी बात की चिंता नहीं करता, वह तो केवल भगवान् का चिंतन करता रहता है और उसकी सब चिंता भगवान् करते रहते हैं। अतः सबसे पहली बात है शरणागति।

जैसे शिशु माँ की शरणागति में रहता है तो उसे कोई चिंता नहीं रहती। इसी प्रकार जो शरणागत है तो भगवान् को उसकी चिंता रहती है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

दूसरी बात जो भगवान् को आकर्षित करती है, कि वह हर एक प्राणी में भगवान् को ही देखता है। जो जीवमात्र में उसका दर्शन करता है, भगवान् उससे दूर है ही नहीं। ऐसा साधक, किसी को दुखी नहीं देख सकता। किसी को कष्ट नहीं पहुँचा सकता। ऐसे साधक के लिए भगवान् खिंचे चले आते हैं, पर, यह स्थिति एक दिन में नहीं आएगी। भगवान् से हर रोज प्रार्थना करो, "हे भगवान्! आप मुझ पर ऐसी कृपा करो कि हर जीव में मैं आपका ही दर्शन करता रहूँ।" यह तीन प्रार्थनाएं जो मेरे गुरुदेव ने किताबों में लिखी हैं, उसे रोज करना चाहिए। उसको करने से भगवान् स्वयं, मरते समय, उनको लेने के लिए आते हैं। पार्षदों को नहीं भेजते हैं। नामनिष्ठ को स्वयं भगवान् लेने आते हैं। बार–बार प्रार्थना करने से, कुछ समय बाद, भगवत्कृपा से ऐसी स्थिति अपने आप आ जाएगी। जब भक्त को सबकुछ कृष्णमय दिखने लगेगा तो उसके इर्द–गिर्द का सारा वातावरण कृष्णमय हो जाएगा। उसका मन श्रीधाम वृंदावन बन जाएगा, उसमें वह मुरलीमनोहर श्यामसुंदर अपनी आह्लादिनी शक्ति, श्रीमती राधिकारानी के साथ विराजमान होकर आनंद से बंसी बजाएंगे।

तो भक्त को चाहिए कि वह जो कुछ भी करे, भगवान् का काम समझकर के करे। मन से, वचन से या फिर कर्म से किया हुआ हर काम, जब भगवान् के लिए होगा तो वह भक्ति बन जाएगा। और साधक बुरे कर्मों से बच जाएगा। पाप कर्म उससे होगा ही नहीं। जब उसका उठना–बैठना, खाना–पीना, सोना–जागना, पढ़ना–लिखना, पूजा करना, मंदिर जाना, जप करना, श्रीविग्रह सेवा करना, फूलमाला बनाना, भोग लगाना तथा श्रृंगार करना इत्यादि सभी काम भगवान् के लिए होने लगेंगे तो उसका 24 घंटे भगवान् का ही भजन हो जाएगा। जिसका हर काम भगवान् के निमित्त है, भगवान् की प्रशंसा के लिए है तो उनके लिए तो भगवान् को आना ही पड़ता है। भगवान् छाया की तरह उसके साथ में रहते हैं। एक क्षण भी उससे दूर नहीं होते हैं। जिस भक्त का मन पूर्ण रूप से भगवान् में लग गया। भगवान् की सेवा में रम गया, फिर संसार की आसक्ति उसका क्या बिगाड़ सकेगी? ऐसा भक्त साक्षात् वैराग्य की प्रतिमा बन

जाता है। जो शिष्य, अपने गुरुदेव के वचनों पर अमल करता है, उसकी आज्ञानुसार भजन करता है, उसका मन हर क्षण भगवान् में लगने लगेगा। जो मुख से उच्चारण करके तथा कान से सुनकर हरिनाम करता है, भगवान् उसकी ओर बहुत शीघ्र आकर्षित हो जाते हैं क्योंकि उसकी पुकार सुनकर, उसकी तड़प देखकर भगवान् रुक नहीं सकते। ऐसे भक्त के रोम–रोम से हरिनाम की ध्वनि निकलती रहती है तथा संसारी वासनाएं उसके हृदय से मूल सहित समाप्त ही हो जाती हैं और वह श्रीकृष्ण भगवान् की भावना से भावित रहने लगता है।

एकादशी व्रत सभी व्रतों का राजा है। एकादशी व्रत करने वाले को भगवान् का प्रेम बहुत जल्दी प्राप्त हो जाता है। विशेष रूप से जो भक्त नियम से एकादशी का व्रत करते हैं। एकादशी को कम से कम एक लाख हरिनाम, हरे कृष्ण महामंत्र की 64 माला करनी चाहिए। जो गुरुदेव द्वारा दी गई तुलसी की माला पर जप करता है, उसका भगवान् कभी त्याग नहीं करते। एकादशी व्रत का नियम है कि दशमी तिथि को एक बार प्रसाद का सेवन करें। एकादशी को निराहार रहें, न रह सकें तो फलाहार करें और द्वादशी को पारण करें और दूसरी बार शाम को प्रसाद नहीं पायें। त्रयोदशी को दो बार प्रसाद पा सकते हैं। यह कलिकाल है अगर इतना न हो सके, तो एकादशी को केवल फलाहार किया जा सकता है। आजकल भक्तों में इतनी शक्ति नहीं है कि नियम से एकादशी व्रत का पालन कर सकें, कर सकें तो बहुत अच्छी बात है। जो खाए बिना नहीं रह सकते तो कम से कम एकादशी के दिन फलाहार करके एक लाख हरिनाम अवश्य करें। जो एक लाख हरिनाम करता है उसे 100% निश्चित रूप से वैकुण्ठ की प्राप्ति होगी। भगवान् बहुत दयालु हैं, जानते हैं कि मेरा भक्त इतनी कठोर तपस्या नहीं कर सकता, अतः वह सामान्य रूप से रखे हुए व्रत को भी स्वीकार कर लेते हैं, पर एक लाख हरिनाम करने में छूट नहीं होगी। एक लाख हरिनाम तो करना ही पड़ेगा, चाहे कैसे भी हो। एकादशी को 64 माला करना तो बहुत जरूरी है, वह तो करना ही पड़ेगा।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

कहते हैं :

पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन साधु पद पूजा।।

(मानस, उत्तर. दो. 44 चौ. 4)

भगवान् कहते हैं कि, "जो बिना किसी कपट के, तन तथा मन से भगवान् के सच्चे सेवक, वैष्णव संत की सेवा करता है, मैं उसे कभी नहीं त्याग सकता और मैं सदा उसके पास ही रहता हूँ। ऐसे भक्त के बिना मैं कैसे रह सकता हूँ? क्योंकि सच्चे संत के रूप में वह मेरी ही सेवा कर रहा है और मैं उसकी सेवा से प्रसन्न होकर उसकी ओर आकर्षित हो जाता हूँ, उसके पीछे पीछे चलने लगता हूँ। मेरे अंदर शक्ति नहीं है कि मैं उससे हट जाऊँ। जो सभी जीवों पर दया करता है, किसी भी प्राणी से ईर्ष्या नहीं करता, सभी से प्रेम करता है, उसके हृदय कमल पर मैं सदा विराजमान रहता हूँ क्योंकि वह प्रत्येक जीव में मुझे ही देख रहा है। वह छोटी सी चींटी से लेकर हाथी तक में, मेरी उपस्थिति का ही अनुभव कर रहा है। ऐसे भक्त से किसी का बुरा नहीं हो सकता। बुरा कैसे होगा? यदि वह सब में भगवान् देखेगा। मेरा भक्त हरक्षण मुझे साथ में महसूस करता है, मेरे पास रहता है। वह हरपल मुझमें और मैं उसमें विराजित हूँ। ऐसे भक्त को मैं कैसे छोड़ सकता हूँ? वह तो मेरा प्राण बन जाता है।" जो भक्त इंद्रियों का संयम करता है उसके पास ही भगवान् विराजते हैं। इंद्रियों के संयम के अभाव में पंचम पुरुषार्थ प्रेम रस रुक जाता है और अंत में सूख जाता है।" मेरा भक्त संसार को दुख रूप अनुभव करते हुए वैराग्य को धारण करता है। मेरे से कभी अलग नहीं होता और मैं भी उससे कभी अलग नहीं हो सकता। ऐसे भक्त की संसारी आसक्ति मूल रूप से नष्ट ही हो जाती है। जो मेरे शरणागत हो जाता है वह किसी में दोष नहीं देखता। वह नाम अपराध से ऐसे डरता है, जैसे कोई विषधर सर्प, सामने फन फैलाए खड़ा हो या फिर बबरी शेर सामने आकर खड़ा हो। ऐसे वह डरता है अपराध से। ऐसे भक्त से किसी वैष्णव के चरणों में अनजाने में अपराध हो भी जाए तो वह उनके चरणों में लेट कर क्षमा याचना करता है। ऐसे भक्त को मैं कैसे छोड़ सकता हूँ? मैं तो उसका खरीदा हुआ गुलाम हूँ क्योंकि उसने मुझे प्रेम की रस्सी में बांध रखा है।" यह बात श्रीमद्भागवत पुराण के जय, विजय के प्रसंग में मिलती है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

उपरोक्त प्रवृत्तियां भक्त में तभी उदय हो सकती हैं जब उसे किसी सच्चे वैरागी संत का सानिध्य प्राप्त हो जाए। सत्संग के बिना, सतगुरु के बिना, किसी वैष्णव संत की कृपा के बिना कुछ भी नहीं मिलेगा। यह अकाट्य सिद्धांत है। सच्चे संत की कृपा होगी, उसका संग मिलेगा,

उसका दर्शन मिलेगा, तभी उक्त प्रवृत्तियां हृदय में प्रकट हो जाएंगी, अन्यथा नहीं होंगी। भक्तजन अक्सर कहा करते हैं कि हम भगवान् से बातें करते हैं, उन्हें बुलाते हैं। वह हमारी किसी भी बात का जवाब नहीं देते, वह हमसे नहीं बोलते। मैं कहता हूँ कि, "नहीं! आप झूठे हो, भगवान् बोलते हैं यदि बोलने वाले की योग्यता हो तो। देखो! जब तक मन, बुद्धि भगवान् में नहीं लग जाते तब तक कुछ नहीं होने वाला। मन, बुद्धि तथा कर्म भगवान् को दे दो, उन्हें अर्पित कर दो तो भगवान् आपसे बातें करेंगे। जब यह तीनों ही अनुकूल नहीं हैं तो भगवान् आपसे क्यों बातें करने लगे? देखो! भगवान् को जिस अनुपात में आप बुलाओगे, जिस अनुपात में भजन करोगे, उसी अनुपात में आपको उनका प्रेम प्राप्त होता रहेगा। भगवान् को जितना तुम चाहोगे, भगवान् भी आपको उतनी ही मात्रा में चाहेंगे।"

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण अर्जुन को बोलते हैं :

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।

(श्रीगीता. 4.11)

भगवान् कह रहे हैं कि, "हे अर्जुन! जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उन्हें उसी प्रकार भजता हूँ क्योंकि सभी मनुष्य हर प्रकार से मेरे ही मार्ग का अनुसरण करते हैं।"

इसमें भगवान् का क्या दोष है? दोष तो हमारा है। भगवान् कहते हैं कि, "मैं अंतर्यामी हूँ। मैं सबके हृदय की बात जानता हूँ। लोग मेरे साथ कपट करते हैं। मेरे मंदिर में आकर भक्त होने का ढोंग करते हैं। मेरे विग्रह के सामने लेट कर लंबे–लंबे हाथ जोड़ते हैं, परिक्रमा लगाते हैं, दण्डवत् करते हैं पर मेरे ही भक्तों से द्वेष करते हैं, वैर–विरोध करते हैं। मंदिर से बाहर निकलते ही अपने साथियों का गला घोटते हैं। फिर मैं उनसे कैसे मिलूँगा? यह सब कपटवाद है, वे कपट का खेल करते हैं। ऐसे साधक से मैं क्या बोलूँ? वह किसी और से नहीं, मुझ से ही द्वेष करते हैं क्योंकि शरीर तो आत्मा का कपड़ा है या घर समझो।" घर को कोई दुख थोड़ी होता है, अंदर में रहने वाले को दुख होता है। जैसे मेरे कमरे की कोई खिड़की तोड़े तो क्या कमरा रोएगा? इसमें रहने वाला रोएगा। तो आत्मा रोती है। गीता में कहते हैं कि, "यह मुझे कृश करते हैं। कृश अर्थात् मुझे दुख देते हैं। ऐसे साधक से मैं कैसे मिलूँगा? कैसे बोलूँगा? वह किसी और

से नहीं, मुझसे ही द्वेष करता है। मेरा ही विरोध करता है। मुझसे ही बैर करता है और फिर कहता है कि भगवान् दयालु नहीं हैं, उनके हृदय में दया नहीं है। मैंने जिंदगी भर भगवान् का भजन किया और उसने मेरा क्या किया और भगवान् को दोष देते हैं।" उन्हें अपना दोष तो नहीं दिखता है और भगवान् को दोष देते हैं। क्या तुम्हारी आंखें अपना चेहरा देख सकती हैं? दर्पण होगा तभी तो दिखेगा, तो तुम्हें अपना दोष तो मालूम नहीं पड़ता है और भगवान् को दोष लगाते हो और फिर तुम भगवान् से मिलना चाहते हो। भगवान् तुमसे बोलेगा? ऐसे अंधे हो तुम! तुम्हारा आचरण तो इस तरह का है कि भगवान् को दुख देते हो। कहते हैं न, किसी की आत्मा मत सताओ। यह तो नहीं कहते कि किसी का शरीर मत सताओ। तुम आत्मा को सताते रहते हो फिर भगवान् तुमको प्यार देगा? तुमको सुख देगा? देखो! ऐसा भक्त कभी भी भगवान् को प्राप्त नहीं कर सकता। भगवान् से द्वेष करने वाला व्यक्ति कैसा मूर्ख है। अपने दोषों को तो नहीं देखता, अपने अवगुणों को दूर नहीं करता और भगवान् को दोष देता है कि भगवान् निर्दयी हैं, उनका नाम बेकार है। दयानिधि बोलते हैं उनको। इनका दयानिधि नाम, किसी ने झूठा रखा है। अरे! अपना दोष नहीं देखते और भगवान् पर दोषारोपण करते हैं। लोगों को तो छोड़ो, भगवान् को भी दोषी बना दिया। ऐसा मूर्ख स्वयं ही गड्ढे में गिरेगा, नरक के गहरे गड्ढे में स्वयं तो गिरता ही है, दूसरों को भी साथ में ले डूबेगा। ऐसे मूर्खों से दूर रहने में ही भलाई है, उनके संग में नहीं रहना चाहिए वरना इनका रंग तुम पर भी चढ़ जाएगा।

श्री श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी ने अपने एक पद में भी कहा है, "ऐसे व्यक्ति से तुम बात भी मत करो।"

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

अरे मूर्ख! तुझे मालूम नहीं है कि मानव जीवन कितनी मुश्किल से मिलता है। मनुष्य का जन्म तभी देते हैं, जब भगवान् की अति कृपा होती है। भगवान् यह सुदुर्लभ अवसर इसलिए प्रदान करते हैं ताकि जीवात्मा, जो उनसे बिछुड़ कर असीम दुख सागर में गोता खाता रहता है, माया के विषय जाल में फंसकर सारी जिंदगी बेकार के कर्मों में खर्च कर देता है, इस भवसागर से बाहर निकल सके और उनकी गोद में आ सके। भगवान् ने बिना किसी कारण जीव पर कृपा की है और उसे अपने पास बुलाने का

शुभ अवसर दे भी दिया है परंतु इस दुर्भागे जीव ने इस अति दुर्लभ अवसर को भी गवाँ दिया और जब उसने सुदुर्लभ मनुष्य जीवन गवाँ दिया तो अपनी सूक्ष्म देह को लेकर वह करोड़ो युगों तक 28 प्रकार के नरकों का भोग भोगता रहेगा। ऐसे नरक जहाँ दुखों का कोई अंत नहीं है। करोड़ों युगों तक नरक भोगने के बाद, वह 84 लाख योनियों को भोगेगा। कितना मुश्किल है! मानव जन्म पाकर भी उसका उपयोग नहीं किया। कितना बड़ा नुकसान किया है इसने, अनंतकोटि युगों तक इन 84 लाख योनियों को भोग करता रहेगा। जरा विचार तो करो कि 28 प्रकार के नरक और 84 लाख योनियों को भोगने में कितना समय लगेगा? कल्पों लग जाएंगे।

कल्प किसे कहते हैं? कि हजार चौकड़ी का ब्रह्मा का एक दिन होता है। हजार चौकड़ी की ही रात होती है। इसी तरह, जब ब्रह्मा सौ वर्ष के हो जाते हैं तो ब्रह्मा भी शांत हो जाता है। उसे कहते हैं कल्प। एक कल्प नहीं, कितने कल्पों के बाद मनुष्य जन्म मिलेगा। अब भी थोड़ा विचार करो। अरबों–खरबों वर्ष बीत जाएंगे। इतने समय के बाद भी कोई गारंटी नहीं है कि मनुष्य जन्म मिल जाए।
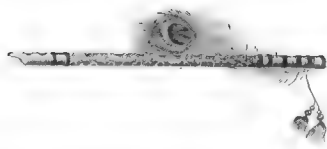
संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : अगर कोई आपको पूछे कि आपकी नाम संख्या क्या है तो हमें क्या जवाब देना चाहिए ?

श्रील गुरुदेव : जवाब यह देना चाहिए कि हमारे गौरहरि ने बोला है कि, "जो 64 माला करेगा उसके यहाँ ही मैं प्रसाद पाऊँगा, इसका मतलब है कि मैं उसके घर में रहूँगा।" इसलिए 64 माला करो और 4 माला और अधिक, अर्थात 68 माला करो तो आपका अपराध से बचाव हो जाएगा। 4 माला आपको अपराध से बचाती रहेंगी और आप का रास्ता साफ हो जाएगा।

केवल कृष्ण ही हैं अपने

(38)

23 जून 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तजनों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार करें और हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद करें।

भगवान् की अजनबी, आश्चर्यमयी माया की लीला सुनकर श्रवणकारियों को एक दुख का अनुभव होगा। माँ–बाप बच्चों के लिए क्या–क्या, कितनी–कितनी कुर्बानी करते हैं, फिर बुढ़ापे में माँ–बाप भार रूप हो जाते हैं। संसार स्वार्थी है। यही तो माया है। एक परिवार में माँ–बाप के दस बेटे हैं जो अपने रोजगार पर लगे हुए हैं। बाप की मृत्यु हो गई, अब केवल माँ बची है। माँ, भी साठ–सत्तर साल की उम्र में है। यह दस बेटे अपने परिवार का भरण पोषण कर रहे हैं लेकिन एक, केवल एक माँ की खाने पीने, पहनने की सेवा नहीं कर सकते। वह बेचारी आसपास वालों से मांग कर अपना जीवन बसर करती है। कैसा अचंभा है! कैसा आश्चर्य है! यही तो माया है। जिस माँ ने अपने शरीर की शक्ति दूध, अपने पुत्रों को पिला कर बड़ा किया, वही माँ, संतानों के लिए भार रूप हो गई। अंत में माँ को वृद्धाश्रम में भर्ती करवा दिया, बाद में कोई भी बेटा उसकी संभाल नहीं करता। जब कोई ज्ञानी, किसी बेटे को बोलता है, "तुम ही माँ की सेवा करो।" तो जवाब मिलता है, "क्या मेरा ही कोई ठेका है, जो मैं माँ की देखभाल करूँ?" भगवान् की माया है। इसीलिए संसार को दुखालय कहा गया है। अब भविष्य में इन संतानों का हाल भी श्रवणकारी सुनें! भगवान् आत्मा रूप से सभी संतानों के हृदय गुहा में बैठकर देख रहा है कि उन्होंने माँ की सेवा नहीं की है तो भगवान् इनकी संतानों को भी ऐसी प्रेरणा देंगे और इनकी संताने भी माँ–बाप की सेवा नहीं करेंगी। यह ध्रुव सत्य सिद्धांत है और संसार में प्रत्क्षय में देख भी रहे हो, क्या हाल हो रहा

है माँ–बाप का। इसी प्रकार से दूसरे परिवार में माँ की तो मौत हो गई तो बाप का भी संतान यही हाल करेंगे। बाप खटिया पर पड़ा है। 80 साल उम्र में कई रोग भी हो गए हैं, खस–खस करता रहता है। जब पोता या पड़पोता पास होकर गुजरता है तो बुड्ढा बोलता है, "अरे बेटा अशोक! मुझे प्यास लग रही है, मुझे पानी तो पिला दो।" इतना सुनते ही अशोक, जब भी उसकी ओर से गुजरता है, तो दौड़ लगाता है कि कहीं बाबा कुछ बोल न दे। जब भूख लगती है तो बोलता है तो कोई सुनता ही नहीं। यही तो भगवद् माया है।

अरे! कृष्ण ही अपना है। कोई किसी का नहीं है। केवल कृष्ण है अपना, अब भी समझ जाओ।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

संतान समझती है कि बुड्ढा परेशान करता रहता है। अगर इसे वृद्धाश्रम में भर्ती कर दें, तो आफत मिटे।

चिड़ा–चिड़ी प्रसव के समय या पहले घोंसला बनाते हैं और कुछ समय बाद अंडा दे देते हैं। उन अंडों को सेते रहते हैं, अंडे से बच्चे निकल आते हैं। अब दोनों इधर उधर जाकर, कुछ दाना आदि लाकर, उनकी चोंच में अपनी चोंच डालकर, उनका पेट भरते रहते हैं। कुछ समय बाद चिड़िया के बच्चों के पंख आ आए। अब वह फुदक फुदक कर इधर उधर चलते हैं। चिड़ा–चिड़ी इनकी हरकत देखकर आनंदमग्न होते रहते हैं। इनको मालूम नहीं है कि ये हम से बिछुड़ने वाले हैं। अब तो इनके पंख बड़े हो गए तो यह बच्चे अचानक से, बिना बोले ही उड़ जाते हैं। अब चिड़ा–चिड़ी इनको मोह के कारण आसपास में ढूंढते रहते हैं, कि कहाँ चले गए? कहाँ चले गए? परंतु इनका कुछ पता नहीं चलता तथा जिंदगी भर अपने माँ–बाप से मिलते ही नहीं है। बस यही है भगवान् की माया। मानव फिर भी नहीं समझता कि यही हमारा हाल है। हम किससे मोह करें? मोह करना निरर्थक है। मोह उससे करना चाहिए जो सदैव स्थिर रहे। वह है भगवान्। भगवान् जीव से कभी बिछुड़ता ही नहीं है। बस यही तो अज्ञान है। इस अज्ञान के पीछे जीव भटकता रहता है एवं दुख सागर में गोता खाता रहता है।

भगवान् श्रीमद्भागवत में उद्धव को कह रहे हैं, "अरे उद्धव! मैं केवल सत्संग से मिलता हूँ। न योग से मिलता हूँ, न दान से मिलता हूँ। किसी भी युक्ति से नहीं मिलता। मैं केवल सत्संग से मिलता हूँ।"

ठाकुरजी ने मुझे यह सत्संग करने की आज्ञा दी है और गुरुदेव करवाते हैं। मैं तो केवल एक माइक हूँ, माइक से वही आवाज बाहर आती है। यदि इसकी कोई सुकृति उदय हो जाए तो इसे भगवद् कृपा से साधु का सानिध्य हो जाए तो इसका अज्ञान का नेत्र, ज्ञान में परिणत हो जाए।

मानव, यदि साधु की सेवा करे तो उसका तो कहना ही क्या है क्योंकि साधु सभी तरह से भगवान् के आश्रित रहता है। आश्रित को भगवान् कैसे दुखी देख सकते हैं? कहावत है :

पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन साधु पद पूजा।।

(मानस, उत्तर. दो. 44 चौ. 4)

मन क्रम बचन कपट तजि जो कर सन्तन सेव।
मोहि समेत बिरंचि सिव बस ताकें सब देव।।

(मानस, अरण्य. दो. 33)

कृष्ण भगवान् क्या कह रहे हैं, "जो कपट छोड़ कर साधु की सेवा करता है तो मेरे समेत ब्रह्मा, शिवजी और सभी देवता उसके पीछे रहते हैं।"

'जो साधु संग ईर्ष्या करहिं' मतलब साधु का अपराध बहुत खतरनाक होता है। कैसा खतरनाक है?

इंद्र कुलिस मम सूल बिसाला। कालदंड हरि चक्र कराला।।
जो इन्ह कर मारा नहिं मरई। साधु द्रोह पावक सो जरई।।

(मानस, उत्तर. दो. 108 घ चौ. 7)

शिवजी बोल रहे हैं कि "इंद्र का वज्र, मेरा त्रिशूल, यमराज का काल दंड और भगवान् का सुदर्शन चक्र। उनसे भी जो नहीं मरे, वह पावक अग्नि से जल कर मरता है। जो साधु को दुख देता है वह पावक अग्नि से.... पावक अग्नि कैसी होती है? पावक वह होती है जो लोहे को पानी बना देती है। फिर वह तड़प–तड़प कर मरता है, बहुत धीरे–धीरे मरता है, तुरंत नहीं मरता, बहुत दुख पाकर उसका जीवन निकलता है।

सब कुछ कृष्ण ही हैं। ऐसी दृष्टि, निगाह किसी साधक की, भक्त की बन जाए तो कृष्ण उनसे दूर नहीं हैं और भक्त भी इनसे दूर नहीं, यदि ऐसी दृष्टि किसी की हो जाये। लेकिन यह कैसे होगी? यह हरिनाम से होगी। हरिनाम करते करते हो जाएगी। हरिनाम करो। यह मेरे गुरुदेवजी ने तीन प्रार्थनाएं दे कर सबको बोला है। यह तीन प्रार्थनाएं समस्त शास्त्रों का सार हैं। इन प्रार्थनाओं के अतिरिक्त धर्म शास्त्रों में कुछ नहीं है। इनको नित्य करने से मरने पर भगवान् स्वयं लेने आते हैं, पार्षदों को नहीं भेजते हैं। जो नामनिष्ठ नहीं हैं, उनको लेने को भगवान् अपने पार्षद ही भेजते हैं परन्तु नामनिष्ठ को स्वयं लेने आते हैं तथा वैकुण्ठ में ले जा कर भव्य स्वागत करवाते हैं।

अतः मेरे गुरुदेव सभी भक्तों को प्रेम से आग्रह कर रहे हैं कि कलियुग में केवल हरिनाम ही कृष्ण को प्रसन्न करने का एकमात्र साधन है। कहीं जाने की जरूरत नहीं है, एकांत में बैठ कर हरिनाम जप, कान से सुनकर, करते रहो तो इसी जन्म में वैकुण्ठ प्राप्ति निश्चित ही हो जाएगी। श्रीमद्भागवत में लिखा है कि सतयुग, त्रेता और द्वापर के सब लोग यह कहते हैं कि अगर उनका कलियुग में जन्म हो जाए तो उनका उद्धार हो जाये। कितना सरल रास्ता है, कहीं भी बैठ कर हरिनाम कर लो, आप बेमन से कर लो, फिर भी वैकुण्ठ मिल जाएगा। इससे ज्यादा क्या होगा? श्री चैतन्य महाप्रभुजी ने गारंटी ली है कि मन लगे चाहे न लगे, उद्धार होना निश्चित है।

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

जब दसों दिशाओं में मंगल हो गया तो पार होने में क्या कसर है? जाने अनजाने में अमृत या जहर पी जाओ तो वह अपना प्रभाव दिखाए बिना नहीं रह सकते। इसी प्रकार भगवद्नाम अपना प्रभाव दिखाए बिना कैसे रहेगा? अग्नि में जाने–अनजाने में हाथ छू जाए तो क्या अग्नि जलाए बिना छोड़ेगी? अर्थात् नहीं, वह तो जला देगी। इसी तरह आप हरिनाम, मन से लो, बेमन से लो तो वह अपना प्रभाव किये बिना नहीं रहेगा। वह मंगल कर देगा, कल्याण कर देगा, खुशी कर देगा।

कलियुग में सच्चा गुरु मिलना बड़ा मुश्किल है। गुरु का स्वभाव एवं आचरण कैसा होना चाहिए? यह श्रीमद्भागवत महापुराण में अंकित है।

जो मेरे गुरुदेव सभी श्रवणकारियों को बता रहे हैं कि गुरुदेव ऐसा होना चाहिए जो शिष्य के संशयों का अर्थात् प्रश्नों का समाधान कर सके अर्थात् उनको समझा सके। शिष्य के हृदय में अच्छी तरह बैठा सके जैसे परीक्षित के प्रश्नों का शुकदेवजी ने समाधान किया है।

- गुरुदेव ऐसे हों, जो धर्म शास्त्रों के ज्ञाता हों। अपने अनुभव के द्वारा प्रत्यक्ष कुछ साधन भी बता रहे हों और वे साधन प्रत्यक्ष में सामने प्रकट हो जायें। अपने अनुभव के अनुसार कुछ ऐसे साधन जो शास्त्र में नहीं हों, वे भी बता सकें।
- रसेन्द्रिय व उपस्थ इन्द्रिय के वश में न हों।
- अन्य का हित करने के भाव में रत हों।
- अष्टप्रहर हरिनाम में रत हों। ब्रह्म मुहूर्त में जागकर अपना साधन करने में जीवन का सार मानें।
- खानपान में अधिक रुचि वाले न हों।
- सब को मान देना चाहें और अपना मान न चाहें।
- संग्रह–परिग्रह अधिक न रखने का स्वभाव हो। जितने से जीवन यापन हो जाए उतना ही अपने पास वस्तुएं रखें।
- जिनके पास बैठने से स्वतः ही मन भगवान् की ओर खिंचे एवं वहाँ से उठने का मन न करे और जबरदस्ती उठना पड़े, तो समझो कि यह सच्चा संत है।
- साधारण स्थिति में रहे। बन ठनकर रहने का स्वभाव न हो।
- जिनमें छल–कपट न हो।
- मौन व्रत रखें, जहाँ बोलना जरूरी हो वहाँ भगवद् चर्चा ही बोलें।
- सत्य पर आरूढ़ रहें। ऐसे गुरु होने चाहिएँ। सरल स्वभाव के हों।
- किसी शिष्य से सेवा लेने का स्वभाव न हो। पैर न धुलवाएँ।
- फोटो न खिंचवाएँ और माला न पहनवाएँ, किसी प्रकार की भेंट न लें। ऐसे निर्लोभी, गुरु बनने योग्य होते हैं।

बलिष्ठ माया इस दुनिया में दो ही हैं। एक है पैसा दूसरा है नारी। इन दो से जो दूर है वही गुरु होने योग्य है। कहते हैं मठ–मंदिर, बिना

पैसे कैसे चल सकता है? तो भगवान्, जो मठ–मंदिर में विराजमान हैं, क्या उसके आँख नहीं है? बहरा है? उसको चिंता नहीं है? वह प्रेरणा करके मठ–मंदिर का काम निश्चित रूप से चलाएगा। मतलब है भगवान् पर पूर्ण शरणागति नहीं है। स्वयं अपनी शक्ति से भगवान् का पालन पोषण करना चाहता है। क्या ऐसा हो सकता है? फिर पूर्ण शरणागति कहाँ हुई? हमारे यहाँ गाँव में नारायणदास जी विराजित हैं। करीब 80–90 साल के होंगे। बहुत बड़ी गौशाला है, नारायणदास ने आजतक, कभी किसी से एक पैसा नहीं मांगा। गौओं के लिए चारा भी बहुतायत में आ रहा है, पैसों की भी कमी नहीं है, भंडारे होते ही रहते हैं। यह सब कौन करा रहा है? भगवान् ही प्रेरणा करके सारी व्यवस्था कर रहे हैं। आप मत करो, देखो भगवान् करते हैं कि नहीं? कोई किसी चीज की कमी ही नहीं है क्योंकि नारायणदास पूर्ण भगवद् शरणागत हैं।

हम देखते, सुनते हैं कि डेढ़ साल के अपने बच्चे को माँ–बाप छोड़ कर मर जाते हैं। फिर कौन उनकी रक्षा पालन करता है? ये तो सोचो। भगवान् ही किसी ह्रदय में प्रेरणा करके उनका जीवन यापन करते हैं एवं वे बूढ़े होकर मरते हैं। तो पूर्ण शरणागति होनी चाहिए। जहाँ शरणागति होती है वहाँ भगवान् को उसकी चिंता हो जाती है।

सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी।।
समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं।।

(मानस, सुन्दर. दो. 47 चौ. 3)

गृहस्थ की जितनी भी ममता है वह भगवान् के चरणों में बांध दो तुम्हारा कल्याण हो जाएगा। जितनी भी ममता की डोरी जो गृहस्थी में फंसी हुई है, उसे भगवान् के चरणों में बांध दो तो ठीक हो जाओगे।

समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं।।

"कुटुंब का, सबका, माया, मोह, लोभ मेरी ओर झुका दो तो मंगल ही मंगल है।"
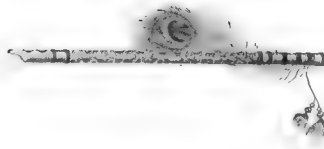
कलियुग का प्रकोप

39

30 जून 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण युगल में अधमाधम इस दासानुदास
अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो
एवं हरिनाम रुचि होने की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

अब तक तो, श्री गुरुदेवजी ने सब श्रवणकारियों को बताया था कि गुरु कैसा होना चाहिए? गुरु शास्त्रानुसार स्वभाव का होगा तो स्वयं भी तर जाएगा एवं शिष्यों को भी तार देगा। इस भवसागर से पार कर देगा। अब श्री गुरुदेव बता रहे हैं कि शिष्य कैसा होना चाहिए? यदि शास्त्रों के अनुसार स्वभाव का शिष्य नहीं होगा तो उसका दोष श्री गुरुदेव को भोगना पड़ता है। अतः समझ सोचकर शिष्य बनाना चाहिए वरना स्वयं शिष्य भी डूबेगा और श्री गुरुदेव को भी साथ में डुबा कर रहेगा। यह सब श्रीमद्भागवत पुराण में वर्णित है।

श्रीमद्भागवत के 11वें स्कन्ध में उद्धव ने भगवान् से पूछा, "हे भगवान्! मैं, भक्त के लक्षण जानना चाहता हूँ। कृपया बताने की कृपा करें।" भगवान् बोल रहे हैं, "उद्धव! मेरा भक्त कृपा की मूर्ति होता है, सबका हित चाहता है, दुश्मन का भी कभी बुरा नहीं चाहेगा, किसी भी प्राणी से वैरभाव नहीं रखता, अचर प्राणी अर्थात् पेड़ को भी दुख नहीं देता। घोर से घोर दुख भी सहन कर लेता है। उसके जीवन का सार है सत्य। उसके मन में किसी प्रकार की पाप वासना नहीं आती, समदर्शी स्वभाव का होता है, संग्रह–परिग्रह से बहुत दूर रहता है। जितना भगवान् ने दिया है उसी में संतोष रखता है, किसी वस्तु हेतु कोई चेष्टा नहीं करता, प्रसाद भोजन करता है एवं शांत रहता है, सदा सबसे मीठा बोलता है और मीठा व्यवहार करता है। इसे केवल मेरा ही भरोसा रहता है, यह आत्मचिंतन में सदा लगा रहता है। यह प्रमाद रहित, गंभीर स्वभाव का व

धैर्यवान होता है, किसी में गुण–दोष देखना बिलकुल इसके स्वभाव में नहीं होता, भूख, प्यास, शोक और जन्म–मरण, इसके वश में रहते हैं। यह कभी किसी से सम्मान नहीं चाहता एवं अन्य को सम्मान देता रहता है। पैसे का एवं नारी का निर्लोभी होता है, न किसी से पैसा मांगता है, न अधिक देर नारी से बातें करता है। अकेला तो नारी जाति से मिलता ही नहीं है।"

"मेरे सम्बन्धित बातें समझाने में कुशल रहता है, सभी से प्रेम भाव के नाते का भाव रहता है। इसके हृदय में करुणा भरी रहती है, मेरे तत्व का इसे यथार्थ ज्ञान रहता है। बहुत कम सोता है, रात भर जाग कर हरिनाम करता है या मेरा स्मरण करता रहता है। ग्राम चर्चा से बहुत दूर रहता है, मेरी कथा वार्ता सुनने में श्रद्धावान होता है। अपराधों से बचा रहता है। जो कुछ घर में लाता है उसे प्रथम में, मुझे अर्पण करता है। अपना स्वयं भोजन बनाकर मुझे अर्पण करता है। कोई भी, बिल्ली या कुत्ता आ जाए तो उसे भगवान् समझकर, अपना बनाया हुआ खाद्य पदार्थ उन्हें भी डालता है क्योंकि वह समझता है कि इनमें भी मेरे प्राणनाथ परमात्मा के रूप में विराजमान हैं। भूखे हैं, इस कारण मेरे पास आए हैं। उद्धव! ऐसे आचरण वाला भक्त मुझे प्राणों से भी प्यारा है। मैं इसे एक पल भी छोड़ नहीं सकता, न ही मुझ में छोड़ने की शक्ति है। ऐसे भक्त से ही मेरा मन लगता है, भक्त के बिना मेरा जीवन ही बेकार है। मैं, भक्त के कारण ही अवतार लेता हूँ, अन्य कर्म, तो मैं, भौहों के इशारे से ही कर सकता हूँ। प्रत्येक ब्रह्मांड में मेरा अवतार भक्त के कारण ही होता है।" भगवान् कह रहे हैं :

मन क्रम बचन कपट तजि जो कर सन्तन सेव।
मोहि समेत बिरंचि सिव बस ताकें सब देव।।

(मानस, अरण्य. दो. 33)

"संत का कितना महत्व है। जो संतों की सेवा करता है, तो मैं, ब्रह्माजी और देवता उसके वश में रहते हैं।"

"हे उद्धव! मैं, ब्राह्मण को, दिन में तीन बार नमस्कार करता हूँ। मैं किसी साधन से नहीं मिलता, केवल सत्संग ही मुझे खींच कर ले आता है। जगत् की जितनी आसक्तियां है, उन्हें सत्संग नष्ट कर देता है। इसका कारण है कि सत्संग जिस प्रकार मुझे वश में कर लेता है, वैसा साधन न

योग है, न सांख्य है, न धर्म पालन, न स्वाध्याय, न तपस्या, न त्याग है। इष्ट पूर्ति एवं दक्षिणा से भी मैं, वैसा प्रसन्न नहीं होता। उद्धव! कहाँ तक कहूँ? व्रत, यज्ञ, वेद, तीर्थ एवं यम नियम भी सत्संग के समान मुझे वश में करने में समर्थ नहीं हैं। उद्धव! यह एक युग की बात नहीं है, सभी युगों की बात है। गोपियों ने कौन सी तपस्या की थी, केवल सत्संग से मुझे प्राप्त हो गईं। कोई साधन मुझे वश में नहीं कर सकता, केवल सत्संग से तो मैं, सुगमता से वश में आ जाता हूँ।"

यह सब श्रीमद्भागवत कह रही है, मैं नहीं कह रहा हूँ। मेरे गुरुदेव कह रहे हैं। इसी कारण से, द्वारिकाधीश ने सत्संग की यह पाठशाला खोली है। इसमें जो भर्ती होगा, निश्चय ही वैकुण्ठ में पदार्पण कर सकेगा क्योंकि इसके संचालक स्वयं द्वारकाधीश अर्थात् चैतन्य महाप्रभुजी हैं। अतः सभी को इसमें भर्ती होना चाहिए। ऐसा अवसर भविष्य में मिलने वाला नहीं है। मौका छूटने से गहरा पछताना पड़ेगा। कोई खर्चा नहीं, सात दिन में केवल एक घंटे का सत्संग ही भगवान् से मिला देगा। सात दिन में मानव केवल एक घंटे भगवान् के लिए व अपने उद्धार होने के लिए, नहीं दे सकता? यदि नहीं दे सकता तो बहुत बड़ा नुकसान कर रहा है। यह पाठशाला केवल सत्संग हेतु ही खोली गई है, जिसके सुनने से हरिनाम में रुचि बनेगी, माया धीरे–धीरे दूर होती जाएगी, शांति का साम्राज्य फैलेगा। जहाँ–जहाँ भक्त भगवान् का नाम करता है, वहाँ वहाँ भगवान् को प्रगट होना पड़ता है। हरिनाम चुंबक है, वह भी शुद्ध चुंबक है, जो लोहे रूपी कृष्ण, राम को अपने पास आकर्षित कर लेता है। मुसलमान एक गाली निकालते हैं 'हरामी!' तूने ऐसा काम क्यों किया? ऐसा करना चाहिए था। हरामी...बस इसमें 'राम' आ गया तो इस शब्द से बोलने वालों का उद्धार हो गया। भगवान् का नाम आ गया।

कलियुग को सब युगों से सर्वोत्तम बताया गया है। इस युग में सरलता से जीव का उद्धार होना संभव है। इस युग में पवित्रता और अपवित्रता की आवश्यकता नहीं है, कहीं पर भी बैठकर, किसी भी समय, किसी भी हालत में, गिरते–पड़ते, खाते–पीते, चलते–सोते, जीव हरिनाम कर सकता है, कोई नियम का विधान नहीं है। यही शास्त्र घोषित कर रहा है।

कृत युग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग।।

(मानस, उत्तर. दो. 102 ख)

कलियुग में कुछ नहीं करना पड़ता, केवल हरिनाम करो। मन लगे चाहे न लगे, तब भी। नाम जापक प्रह्लाद का स्वरूप है और कलि महाराज हिरण्यकश्यप का स्वरूप है। कलियुग में नाम जापक, कलि महाराज से बच सकता है। कलि महाराज नाम जापक का बाल भी बांका नहीं कर सकता। जब कलि महाराज को भगवान् ने शासन करने हेतु आदेश दिया, "तुझे चार लाख, बत्तीस हजार वर्ष का राज्य करने का आदेश देता हूँ।" और पूछा, "तू कैसा राज करेगा? मुझे बता तो दे।" तब कलि महाराज बोला, "मैं तो स्वभाव से चांडाल हूँ। जब कोई भी जीव दुख पाता है, तो मैं नाचता हूँ, बड़ा खुश होता हूँ। मैं किसी जीव को सुखी नहीं देख सकता क्योंकि मेरा स्वभाव ही तामसी, राजसी प्रकृति का है।" स्वभावानुसार ही, कोई भी प्रेरित होकर कर्म करता है। इसमें जीव का क्या दोष है? क्या वश है? भगवान् ने पूछा, "यह बता, तू अपने कार्यकाल में संसार का कैसे संचालन करेगा?"

कलि महाराज बोला, "हे मेरे प्राणनाथ! जब आप मुझसे पूछ ही रहे हो तो मैं जैसा मेरा स्वभाव है उसी प्रकार संसार को चलाऊँगा।" कलि बोला, "प्रभु! कहीं पर इतनी बरसात करूँगा कि गाँव के गाँव बहा दूँगा। तो कहीं पर कई सालों तक बरसात को रोककर जीवों को प्यासा मारूंगा। गर्मी, इतनी करूँगा कि रोगों की भरमार मचा दूँगा, जिससे गरीब जनता इलाज करने वालों से इलाज नहीं करा सकेगी और वह बेमौत मारी जाएगी। खानपान इतना दूषित कर दूँगा कि अनगिनत रोगों की भरमार हो जाएगी। जीवों में इतनी कमजोरी हो जाएगी कि स्वयं का जीवन चलाना भी दूभर हो जाएगा। घर–घर में कलह का वातावरण बना दूँगा, बाप–बेटे की बनने नहीं दूँगा, पति–पत्नी में झगड़ा करा दूँगा, भाई–भाई में झगड़ा टंटा रहेगा। भाई, भाई की कोई नहीं मानेगा, ससुराल वाले सलाहकार होंगे। अपनी जाति वालों से मेल न होकर कुजाति से मेल होगा। मानव अभक्ष्य–भक्ष्य खाने लगेगा, प्रभुनाम का नाम निशान तक नहीं रहेगा। सब जगह स्वार्थ का संसार बन जाएगा। पत्नी, पति को मरवा देगी। बेटा, बाप को मार देगा। न्यायालय में सच्चा न्याय नहीं मिल सकेगा। सब ओर पैसा नाचेगा, पैसे वालों की जीत होगी। असली माया ही पैसा व नारी होगी। मेरे राज्य में नारी का स्वामित्व रहेगा, नर उसका गुलाम बन जाएगा। बहुत सारा वातावरण बदलेगा। कहाँ तक गिनाऊं, कोई अंत नहीं है। हर काम औजार मशीनें करेंगी। कोई भी आपका नाम, भक्ति नहीं कर सकेगा। जो करेगा उसको सख्त सजा दी जाएगी।" भगवान् बोले, "मैं

समझ गया और क्या–क्या दुष्टता करेगा?" कलि बोला, "अब और भी बता रहा हूँ, आप भी डर जाओगे।"

कलि बोला, "मैं कहीं पृथ्वी को हिला लूँगा तो गाँव के गाँव, शहर के शहर पृथ्वी के अंदर घुस जाएंगे। कहीं ऐसा तूफान लाऊँगा कि सभी बनी बनाई सृष्टि नष्ट–भ्रष्ट हो जाएगी। ऐसे ऐसे खतरनाक शस्त्र बम बनाऊँगा कि फूटने पर पृथ्वी भस्मीभूत हो जाएगी, जल जाएगी। वहाँ कुछ नहीं बचेगा, जलकर राख बन जाएगी। वहाँ पर कई युगों तक सुनसान का वातावरण बन जाएगा। पहाड़ों पर बर्फ बनाना बंद कर दूँगा तो बड़ी बड़ी नदियां सूख जाएंगी। इनका अस्तित्व पृथ्वी में घुस जाएगा। पहाड़ों का पहाड़पना नहीं रहने दूँगा। आपने मुझसे पूछा है तो मैंने संक्षेप में बता दिया है। कहने का मतलब है कि आप की शास्त्रीय मर्यादा का नाम निशान मिटा कर रहूँगा, आपका अस्तित्व ही मिटा दूँगा। आपको कोई नहीं मानेगा, मानव कहेगा कि जो कुछ होता है, वह मानव करता है। कहेगा कि भगवान्–वगवान कुछ नहीं होता, सब ढकोसला है। जो कुछ करता है मानव ही करता है। आप का अस्तित्व ही नहीं रहने दूँगा।" अब भगवान् बोले, "तू तो बड़ा दुष्ट, दुराचारी है। तो तू जीवमात्र का दुश्मन है।" अब कलि महाराज हाथ जोड़कर बोला, "भगवान्! मुझे किसने बनाया है? आप इसे दया कर बता दें।" अब भगवान् के पास कोई उत्तर नहीं था।

अंत में भगवान् बोले, "जो कुछ अनंतकोटि ब्रह्मांडों में बना हुआ है वह मेरे द्वारा ही बनाया गया है और जो कुछ भी ब्रह्मांडों में है, स्वयं मैं ही इस रूप में विराजित हूँ। तुम्हारा इसमें कोई दोष नहीं है। मेरी प्यारी से प्यारी गायें भी, मेरे अधिकार से बाहर हो गईं। संत, गाय और ब्राह्मण हेतु ही मेरा अवतार होता है। अन्य जो भी प्रभावशाली संसार में हैं वह तो मेरी भौहों के इशारे से ही नष्ट हो जाती हैं। जो कुछ भी मैं करता हूँ वह लीलाओं के प्रादुर्भाव हेतु ही करता हूँ। मुझे इसमें आनंद की अनुभूति होती है। मैं भक्तों से श्राप दिला देता हूँ और भक्तों से ही वरदान दिला देता हूँ। जो कुछ लीलाएँ रचनी होती हैं, वह मेरे प्यारे भक्तों द्वारा ही प्रकट हुआ करती हैं। मैंने सनकादिक को रोकने पर जय–विजय को श्राप दिला दिया था ताकि तीन बार लीलाएँ कर सकूँ। हिरण्यकश्यप–हिरण्याक्ष, रावण–कुंभकर्ण, शिशुपाल एवं दंतवक्र। इनके द्वारा तीन बार मेरी लीलाओं का प्रादुर्भाव हो सका। यह युग भी मैंने ही बनाए हैं, सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग। इनमें वास करने वालों के स्वभाव भी मेरे द्वारा ही रचे गए हैं।

इसी प्रकार कलि, तुम्हारा स्वभाव भी मैंने ही बनाया है, इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। जैसा राजा वैसी प्रजा का स्वभाव बन जाता है। कलि, अब पूरे इतिहास का निचोड़, मुझसे सुन लो।" कलि हाथ जोड़कर, घुटनों के बल बैठ कर बोला, "प्रभु! आदेश करो! मुझे आगे भविष्य में क्या करना है?" भगवान् बोले, "अब कान खोलकर, ध्यानपूर्वक मेरे आदेश को सुनो! जो भी मेरा नाम तेरे शासनकाल में लेगा, उसको तूने जरा भी दुख दे दिया तो मेरा सुदर्शन चक्र तुझे जलाकर भस्म कर देगा।" कलि बोला, "आपके आदेश का पालन मुझे करना होगा। और पूछने लगा कि, "जो मानव कपट से आपका नाम लेगा, क्या, उसका भी मैं कुछ नहीं कर सकता?" भगवान् बोले, "कैसा कपट? मुझे समझा कर बताओ।" तो कलि बोला, "जो आपका नाम लेगा और बाहर मेरी प्रजा को सताएगा तो क्या उसको भी मैं दुख नहीं दूँगा?" भगवान् बोले, "तुम्हें दुखी करने की आवश्यकता नहीं है। वह आपस में ही झगड़ा करके दुखी होते रहेंगे। भाई–भाई की नहीं बनेगी, पति–पत्नी में खटपट रहेगी, भाई–भाई लड़ता रहेगा, आपस में मार देगा, तो कोई रक्षक–पालक नहीं होगा। थोड़े दिन जेल काट लेगा, फिर पैसा देकर छूट कर वापिस घर आकर मौज करेगा। क्या फर्क पड़ता है? जेल में भी तो मुफ्त की रोटी खाने को मिल ही जाएगी।" भूतकाल में ऐसा शासन होता था कि दुष्ट को फांसी लगा दी जाती थी तो कोई दुष्टता नहीं करता था। अब कोई डर, भय है ही नहीं, चाहे जिस को मार देते हैं, कोई पूछने वाला तक नहीं रहता। कलि महाराज कहता है, "अभी तो मेरी छाया ही जगत् में आई है। मैं जब प्रेक्टिकल रूप में आऊँगा तो मेरा तमाशा देखकर दंग होना पड़ेगा। सबके सामने मानव को जला दिया जाएगा।" कलि महाराज भगवान् से हाथ जोड़ कर बोला, "हे प्रभुजी! जो कपट छोड़कर आपका सच्चा नाम लेगा तो उसकी तो मैं भी मदद करूँगा। किसी मार्ग में रोड़ा नहीं अटकाउंगा। जो भी काम करेगा, फौरन हो जाएगा क्योंकि माया भी उसकी मदद करेगी। इसलिए माया भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकेगी। आप ने शास्त्र में मोहर लगाकर मेरी आंखें खोल दी हैं। वह है, शास्त्र का आपका सत्य वचन।"

पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन साधु पद पूजा।।

(मानस, उत्तर. दो. 44 चौ. 4)

और है :

मन क्रम बचन कपट तजि जो कर सन्तन सेव।

(मानस, अरण्य. दो. 33)

"उपरोक्त आचरण वाले भक्त के, मैं स्वयं भी आश्रित रह कर हर प्रकार से सहायता करता रहूँगा। आपके आदेश का शत–प्रतिशत पालन करता रहूँगा।"

तभी तो शास्त्र बोल रहा है कि कलियुग में बचना हो तो हरिनाम का आसरा ले लो तो कलि महाराज आपका कुछ नहीं बिगाड़ेगा और उल्टा आपकी मदद करेगा। श्रील हरिदास ठाकुरजी ने हरिनाम चिंतामणि (श्री चैतन्य गौड़ीय मठ, चण्डीगढ़) में 210 पेज पर बोला है कि 16 माला से आरंभ कर के 3 लाख नाम जप करना अति उत्तम है तथा हरिभक्ति विलास में जो श्रीसनातन गोस्वामी और श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी की रचना है, जो गौड़ीय सम्प्रदाय का उच्चतम ग्रंथ है, उसमें बोला है कि हरिनाम होठों पर आना चाहिए तो एक दिन उसका जन्म–मरण का दारुण दुख मिट जाएगा। सतयुग, त्रेता, द्वापर की प्रजा तथा स्वर्ग के देवी देवताओं की कामना है कि उनका जन्म भारतवर्ष में कलियुग के समय में हो जाए तो वे अपना उद्धार हरिनाम के आश्रित होकर कर सकते हैं। जिन्होंने इस समय में हरिनाम का आसरा नहीं लिया, वह बहुत बड़ा नुकसान कर रहे हैं। वह आत्मघाती हैं। कलि भगवान् से बोला, "भगवान्! मैं भी तो आपका भक्त ही हूँ। आपके नाम लेने वाले की मदद नहीं करूँ तो आपके चरणों में मेरा घोर अपराध हो जाएगा। जो आपका भक्त नहीं होगा, उसके लिए मैं भरसक दुख का साम्राज्य पैदा कर दूँगा। मैं उसके लिए यमराज का रूप बन जाऊँगा। जो आपके नाम का विश्वभर में प्रचार करेगा, मैं उसका आभारी रहूँगा और उसकी कृपा चाहूँगा। उसकी हर प्रकार से, अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की व्यवस्था करता रहूँगा तथा उसका शरीर निरोग रखूंगा। आपकी माया भी उसकी हर प्रकार से मदद करती रहेगी क्योंकि ऐसा भक्त समस्त जीवों का कल्याण चाहता है, दया की मूर्ति होता है, अपने आप को तृण के समान समझता है। दुखियों का दुख उससे देखा नहीं जाता है। चाहता है कि सबका दुख मैं, कैसे दूर कर सकता हूँ? दुख को दूर करने में संलग्न हो जाता है, दुख दूर करने का उपाय बताता रहता है। जहाँ सूर्य उग रहा है वहाँ अंधेरा कैसे रह सकता है? ऐसा भक्त सुख का समुद्र होता है, सभी को सुखी देखना चाहता है। चर–अचर का भी मित्र होता

है तो उसे हिंसक जीव जंतु भी नहीं खाता। सांप, बिच्छू भी नहीं खाता क्योंकि उनमें भी परमात्मा रूप से भगवान् विराजमान है क्योंकि ऐसे भक्त की दृष्टि ही ऐसी होती है कि सभी में उसे अपने प्यारे की मूर्ति नजर आती है।" तीन प्रार्थनाएं इनका प्रत्क्षय उदाहरण हैं। जो इनको करेगा बहुत ही आसानी से भगवान् को पा लेगा।

हमारा धर्म शास्त्र घोषणा कर रहा है कि प्रत्येक मानव को अपनी कमाई का पैसा धर्म में लगाना चाहिए। धर्म में कहाँ लगाना चाहिए? जहाँ जिस समय सुपात्र मिल जाय। यदि वे धर्म में नहीं लगाते तो वह जहरीला बन जायेगा। धर्म में सत्पात्र को दी हुई आय अमृतमय बन जाती है, वह पैसा अमृतमय बन जाता है। यह रकम शुभ मार्ग में खर्च होगी, गरीबो में लगेगी, धर्मशाला आदि में खर्च होगी जिससे पुण्य इकट्ठा होगा। पुण्य सुख का प्रतीक है। जो पैसा, धर्म में नहीं लगता, वह शराबी बना देगा। जुआरी बना देगा, लड़ाई झगड़े में लगा देगा, बीमारियों में लग जाएगा, अदालत में खर्च होगा, चोरी हो जाएगा, अग्नि में जल जाएगा अर्थात् गलत मार्ग में ले जाएगा। मानव मात्र का एकमात्र धर्म है शुभ काम में पैसा खर्च करना। तब ही सुख का विस्तार हो सकेगा वरना तो दुख सामने दिख ही रहा है। मानव जन्म बहुत दुर्लभ से दुर्लभ होता है और कल्पों के बाद में मिलता है। इसे बेकार के कामों में लगाना कितनी बड़ी मूर्खता है। यह जन्म विफल होता है, कुसंग में बैठने से। सत्संग तो इन्हें स्वप्न में भी नहीं मिलाता, तो सही रास्ते कैसे चल सकते हैं?

जो मनुष्य अपने धन को पांच भागों में बांट कर रखता है। वह सदा सुखी रहता है। कुछ धर्म के लिए, कुछ यश के लिए, कुछ धन की वृद्धि हेतु, कुछ भोगों के लिए एवं कुछ अपने सज्जनों के लिए। वही इस लोक में तथा परलोक में सुखी रहता है।

वैसे तो सदा सत्य ही बोलना चाहिए। लेकिन कुछ समय झूठ बोलना भी बुरा नहीं है। यह भी ध्यानपूर्वक सुन लो! श्रीमद्भागवत कह रही है, मैं नहीं कह रहा हूँ। जैसे स्त्रियों से हंसी मजाक में, कन्याओं के विवाह में झूठ बोलना बुरा नहीं है। अपनी जीविका की रक्षा के लिए, प्राण संकट पर आ जाये तो झूठ बोलना बुरा नहीं है। गऊ और ब्राह्मण के हित के लिए भी, किसी को मृत्यु से बचाने के लिए झूठ बोलना बुरा नहीं है। इन सब में झूठ बोलना बुरा नहीं माना गया है।

श्रीमद्भागवत कह रही है। यह 11वें स्कन्ध में बोल रहे हैं, "हे उद्धव! ईश्वर के द्वारा नियंत्रित माया के गुणों ने सूक्ष्म एवम् स्थूल शरीर का निर्माण किया है। जीव को शरीर और शरीर को जीव समझने के कारण ही स्थूल शरीर में जन्म–मरण और सूक्ष्म शरीर में आवागमन का आत्मा पर आरोप किया जाता है। जीव को जन्म–मृत्यु रूप संसार इसी भ्रम अथवा अभ्यास के कारण प्राप्त होता है। आत्मा का ज्ञान होने से उसकी जड़ ही कट जाती है।

प्यारे उद्धव! इस जन्म–मृत्यु रूप संसार का और कोई दूसरा कारण नहीं, केवल अज्ञान ही मूल कारण है। अपने वास्तविक स्वरूप, आत्मा को जानने की इच्छा करनी चाहिए। धीरे–धीरे स्थूल शरीर एवं सूक्ष्म शरीर आदि में जो सत्य बुद्धि हो रही है, उसे क्रम से मिटा देना चाहिए।"

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।।

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 1)

जो भगवान् का नाम लेता है उसके अनंत कोटि जन्मों के पाप क्षण में भस्म हो जाते हैं। ये सब स्वभाव बदलेंगे, केवल हरिनाम करने से ही। हरिनाम अनेक जन्मों के संस्कारों को नष्ट करके भगवान् के चरणों में प्रीति करवा देगा। कलियुग में अन्य कोई रास्ता नहीं है। हरिनाम में मन लगे, चाहे न लगे नाम का उच्चारण करते हुए कान से सुनते रहो।

Chanting harinama sweetly and listen by ears.

प्रेम से हरिनाम जपो और कान से सुनो।

ऐसा करने से सब कुछ हस्तगत हो जाएगा। सुख ही सुख हो जाएगा। दुख का नामनिशान मिट जाएगा।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

भक्तिदायिनी
'वृन्दादेवी महापटरानी'

40

7 जुलाई 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में इस दासानुदास अधमाधम
अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा
हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

अब मेरे गुरुदेव बोल रहे हैं, भक्तगण ध्यान पूर्वक सुनें! मेरे गुरुदेव, श्रीमद्भागवत महापुराण से ही बोल रहे हैं। भगवान् उद्धव को कह रहे हैं, "उद्धव! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश यह पंचभूत ही ब्रह्मा से लेकर सभी प्राणियों के शरीरों के मूल कारण हैं। इस प्रकार सब, शरीर की दृष्टि से तो सामान्य हैं, सबकी आत्मा भी तो एक ही है, फिर राग–द्वेष किससे करोगे? यदि करोगे तो जन्म–मरण में फंस जाओगे और यदि करते हो तो स्वयं से ही राग–द्वेष हो रहा है। यही तो अज्ञान है। ज्ञानी पुरुष ऐसा कभी नहीं करते हैं। "उद्धव मेरी प्राप्ति के तीन ही मार्ग हैं – भक्ति योग, ज्ञान योग और कर्म योग। जो इनको छोड़कर मनमानी करते हैं, वह जन्म–मरण के चक्कर में दुखी होते ही रहते हैं। अपने–अपने अधिकार के अनुसार धर्म में निष्ठा रखनी गुण कहा गया है, इसके विपरीत चेष्टा करना दोष कहा गया है। गृहस्थी के लिए अपनी स्त्री का संग करना गुण है और संन्यासी के लिए जघन्य अपराध है। इससे यह लाभ भी है कि मनुष्य अपने सहज वासना मूलक स्वभाव के जाल में न फंस कर शास्त्र अनुसार अपने जीवन को काबू में कर, मन को वश में कर सके। प्रिय उद्धव! यद्यपि सबके शरीरों में पंचभूत समान हैं, फिर भी वेदों ने इनको वर्णाश्रम आदि अलग–अलग नाम और रूप दिए हैं ताकि यह अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति को वश में करके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, इन चारों पदार्थों की सिद्धि कर सके। कोई

भी मनमानी न कर सके, मर्यादाओं को भंग न कर सके। गुरु मुख से भलीभांति हृदयगम्य कर लेने से मंत्र की और मुझे स्मरण करने से कर्म की शुद्धि हो जाती है।"

इस प्रकार इनके देश, काल, पदार्थ, मंत्र और कर्म शुद्ध होने से धर्म तथा अशुद्ध होने से अधर्म हो जाता है। कहीं–कहीं शास्त्र विधि से गुण, दोष हो जाता है और दोष, गुण हो जाता है जैसे ब्राह्मण के लिए संध्या वंदन, गायत्री जप गुण है परंतु शूद्र जाति के लिए दोष है, लेकिन कलियुग में इसकी तरफ कोई ध्यान नहीं देता, अतः दोषी होने से नरक में जाते हैं। हमें शास्त्र के अनुसार चलना चाहिए। अपनी मनमानी क्यों करते हैं?

"प्रिय उद्धव! विषयों में कहीं भी गुणों का आरोप हो जाता है तो उसमें आसक्ति हो जाती है। आसक्ति होने से उसे पास में रखने का मन करता है, यदि मन को इस में अड़चन मालूम होती है तो लोगों में कलह उत्पन्न हो जाता है, कलह से न सहने योग्य क्रोध आ जाता है, क्रोध आने पर हित और अहित का बोध नहीं रहता, अज्ञान छा जाता है और अज्ञान से न करने योग्य कर्म कर बैठता है। फिर मानव में मनुष्यता नहीं रहती, पशुता आ जाती है तो मानव पागल के समान हो जाता है।"

भगवान् श्रीमद्भागवत पुराण के 11वें स्कन्ध के 23वें अध्याय में भगवान् उद्धव को जो बृहस्पति का शिष्य है, समझा रहे हैं कि, "प्रत्येक जीव में अलग–अलग सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण का प्रभाव रहता ही है। प्रत्येक प्राणी के स्वभाव में भी भिन्नता रहती है, अंतर रहता है। जो गुण जिसमें हावी रहता है उसी स्वभाव के अनुसार कर्म करता है।"

जिस समय सात्विक स्वभाव चल रहा हो तो जीव इंद्रियों पर संयम रखेगा, सहनशील रहेगा, विवेक से रहेगा। सत्य, दया, स्मृति, संतोष, त्याग, विषयों में वैराग्य, लज्जा और पाप करने में अरुचि होगी। यह सात्विक गुण का स्वभाव है। जब रजोगुण की वृत्ति चल रही होगी तब उसमें इच्छानुसार प्रयत्न, घमंड, तृष्णा, असंतोष, अहंकार, अकड़ आदि होगी। जब तामसी वृत्ति होगी तो क्रोध, लोभ, हिंसा, कपट, पाखंड, मद, कलह, शोक, मोह, विषाद, निद्रा, असत आदि का प्रभाव रहेगा।"

"यह मैं हूँ एवं यह मेरा है, इसमें तीनों गुण कार्य वृत्तियों का समावेश रहता है। सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण रहते हैं। जब मनुष्य धर्म, अर्थ और

काम में लगा रहता है तब वह सतोगुण से श्रद्धा, रजोगुण से रति और तमोगुण से धन की ओर अग्रसर होता है।"

वृंदा महारानी की अथवा तुलसी माँ की कृपा के बिना भगवान् नहीं मिलते। इसका एक प्रत्यक्ष प्रसंग, मेरे गुरुदेव, सब भक्तों को सुना रहे हैं। ध्यान पूर्वक सुनें! तुलसी के बिना भगवान् कभी नहीं मिलेंगे, स्वप्न में भी नहीं मिलेंगे। तुलसी भगवान् को सबसे प्यारी है।

एक बार नारदजी द्वारका धाम में कृष्ण से मिलने गए। वहाँ कृष्ण की बहुत सी रानियां आपस में बात कर रही थीं कि हमारे प्राणनाथ कृष्ण किस को अधिक प्यार करते हैं। कोई कहती, "रुक्मिणी को प्यार करते हैं।" कोई कहती, "सत्यभामा को प्यार करते हैं।" कोई कहती, "उस अमुक को प्यार करते हैं।" यह चर्चा नारदजी भी सुन रहे थे तो उन रानियों में से सत्यभामा बोल उठी, "नारदजी! आपने बहुत दिनों के बाद आकर दर्शन दिया है। आपका क्या आदेश है जिससे हम आपको खुश कर सकें।" नारदजी बोले, "तुम मुझे खुश करोगी?" सत्यभामा बोली, "हां! क्यों नहीं। आप बोलो।" नारदजी बोले, "जो मैं चाहूँगा, क्या तुम मुझे दे दोगी?" सत्यभामा बोली, "जो चाहोगे, अगर मैं दे सकी तो दे दूँगी। बताइये। आप को सोना, चांदी, इससे अधिक क्या चाहिए? हमारे यहाँ पर तो सोना, चांदी ढेरों के ढेर हैं। हमारे यहाँ इतने महल हैं। लाख–लाख महल हैं। हमारे यहाँ क्या कमी है, सोना–चांदी की? आप कितना ही मांग लो।" नारदजी ने बोला, "वचन भरो, प्रण करो।" सत्यभामा बोली, "हां! मैं वचन देती हूँ, जो मांगेंगे, मैं आपको दे दूँगी। रुक्मिणी बोली, "अरी बहन सत्यभामा! वचन मत भरो। यह संन्यासी न जाने क्या मांग लेगा और अगर तुम वह सब कुछ न दे सकोगी तो यह हमें, श्राप देकर चला जाएगा। संन्यासियों की गति कोई नहीं पहचान सकता। तुमने वचन भर लिया यह ठीक नहीं किया अब यह बाबा मालूम नहीं क्या मांगेगा।" सत्यभामा (हँसते हुए) बोली, "बहन! हमारे यहाँ पर किस चीज की कमी है? हम सब कुछ दे सकते हैं।"

"यह जो मांगेगा, हम दे देंगे। तुम चिंता क्यों कर रही हो? पूछो इससे। महात्माजी आपको क्या चाहिए?" नारदजी बोले, "तो तुमने वचन भर लिया है न, दोगी। तो जानती हो, मैं नारद हूँ। क्या से क्या कर दूँगा।" अब तो सारी रानियां डर गईं कि बाबा न जाने, क्या मांगेगा? थर थर कांपने लगीं। सभी कहने लगीं कि, "सत्यभामा! पूछो इस बाबा से, उसे क्या चाहिए?"

सत्यभामा ने पूछा, "महात्माजी! आपको क्या चाहिए? नारदजी बोले, "अरे! मुझे कृष्ण चाहिए।" बस अब क्या था। रानियों के पैरों के नीचे से जमीन खिसक गई और सत्यभामा को सब रानियां बुरा–भला कहने लगीं कि महात्मा की गति कौन जान सकता है? उसने यह ठीक नहीं किया। अब तो नारदजी उनके प्राणनाथ को लेकर चले जाएंगे, उन सब के तो प्राण ही निकल जाएंगे। सत्यभामा ने यह क्या मुसीबत मोल ले ली। सत्यभामा बोली, "मैं नारदजी से बात करती हूँ। आप चिंता मत करो। सब ठीक हो जाएगा।" तो सत्यभामा, नारदजी के चरणों में पड़ गई और प्रार्थना करने लगी, "आप मेरे प्राणनाथ के अलावा और कुछ मांग लो। मैं आपके चरणों की धूल हूँ। कृपा करो महात्माजी!" संत तो दयालु होते हैं। अतः नारदजी बोले, "ठीक है! मुझे कृष्ण के बराबर सोना तोल कर दे दो।" सत्यभामा बोली, "हां! हां! क्यों नहीं, यहाँ सोने की तो कोई कमी नहीं है। अभी तराजू मंगाती हूँ।" और सत्यभामा अपनी बहन रुक्मिणी को बोली, "काम बन गया है। तुम जल्दी से एक बड़ी तराजू मंगवाने का प्रबंध करो वरना यह महात्मा हमारे प्राणनाथ को लेकर चला जाएगा। जल्दी करो!" रुक्मिणी ने किसी को कहा, "अरे! जल्दी तराजू लेकर आना और तराजू बड़ी लेकर आना, जिसके पलड़े बहुत बड़े हों क्योंकि हमको सोना तोलना है।"

सत्यभामा बोली, "महात्माजी! आप इस कुर्सी पर विराजमान हो जाओ, मैं अभी तराजू मंगा रही हूँ।" महात्माजी एक तरफ बैठ गए, सब देखते रहे कि अब आगे जाने क्या होने वाला है? तराजू आ गई, नारदजी ने कृष्ण को आवाज दी, "कृष्ण! जल्दी आओ।" कृष्ण आ गए तो नारदजी बोले, "कृष्ण! इस पलड़े में विराजो।" कृष्ण को इस बात का पता नहीं था कि क्या समस्या हो रही है। रानियों ने क्या आफत कर दी है। अतः कृष्ण बोले, "मैं तराजू में क्यों बैठूं।" नारद बोले, "तुम्हारी प्यारी सत्यभामा ने तुम्हारे बराबर सोना देने को वायदा किया है। मैं तुम्हारे बराबर सोना लेकर, अपने आश्रम जाऊँगा।" कृष्ण का तो साधु आज्ञा पालन करने का स्वभाव ही है अतः कृष्ण पलड़े में बैठ गए। अब दूसरे पलड़े में रानियां सोना ला ला कर चढ़ाने लगीं। पलड़े में सोना भर गया। अब पलड़े में और सोना नहीं आ सकता था पर कृष्ण का पलड़ा जमीन पर ही टिका रहा, ऊपर उठा ही नहीं। रानियां घबरा गईं कि उनके प्राणनाथ में इतना बोझ कहाँ से आ गया जो इतना मनों सोना तोलने पर भी पलड़ा उठा ही नहीं है। भगवान् तो बहुत हल्के हैं, अब इतने भारी कैसे हो गए? अतः चिंता में डूब गईं। अब तो सब रानियां अपना शृंगार का सोना भी उतार–उतार कर चढ़ाने लगीं। सोचने

लगीं कि अब तो उनके श्रृंगार का सोना भी चढ़ा दें नहीं तो वह कृष्ण को ले जाएगा। परंतु अभी भी कृष्ण का पलड़ा उठा तक नहीं। नारदजी बोले, "और सोना है?" रानियां बोली, "सोना तो बहुत है, पर पलड़ा उठता ही नहीं है और अब तो पलड़ा भी छोटा पड़ गया है, हम कहाँ से उसमें डालें, कहाँ रखें।" कई मन सोने से भी कृष्ण नहीं तुल सके तो अब और सोने से कहाँ तोलेंगे? नारदजी बोले, "सत्यभामा! तुम्हारा देना बेकार हो गया, तुम्हारा वचन झूठा हो गया। अब तो मैं कृष्ण को साथ लेकर जा रहा हूँ।"

सब रानियां जोर–जोर से रोने लगीं, "हाय! हम क्या करें? हम प्राणनाथ के बिना जीवित नहीं रह सकेंगी। महात्माजी! कुछ और मांग लो।" नारदजी बोले, "अब तुम यह नहीं दे सकीं तो और क्या मांग सकता हूँ? कुछ नहीं, मैं कृष्ण को लेकर जा रहा हूँ।" रानियां बहुत ज्यादा रोने लगीं, पैरों में पड़ गईं, पैर पकड़ लिए, कहने लगीं, "हम नहीं जाने देंगे आपको। आप हम पर कृपा कर दो। हमारे प्यारे प्राणनाथ को मत ले जाओ।" संत तो दयालु होता ही है। नारदजी ने बोला, "सत्यभामा! ऐसा करो, एक तुलसीजी का पत्ता लेकर आओ।" सत्यभामा बोली, "तुलसी के पत्ते से क्या करना है?" तो रुक्मिणी बोली, "बहन! ज्यादा बहस मत करो। यह बाबा, हमें मार कर जाएगा। जैसा बोल रहा है, तुम जल्दी तुलसी पत्र मंगा लो।" अब तो सत्यभामा ने किसी को नहीं बोला और स्वयं ही लेने भागी। तुलसी का एक पत्ता लेकर आई और नारदजी को बोली, "महात्माजी! यह लो तुलसी का पत्ता।" नारदजी बोले, "सोने को पलड़े से उतारो और यह पत्ता इस पलड़े में रखो।" तो सत्यभामा बोली, "बाबा आप तो बड़े भोलेभाले हो, जब मनों सोने से प्राणनाथ नहीं तुल सके तो एक तुलसी के पत्ते से कैसे तुलेंगे?" फिर रुक्मिणी बोली, "अरे बहन! तू ज्यादा बहस मत कर, जिद मत कर। यह बाबा, मालूम नहीं, हमको क्या करके चला जाएगा, इससे पिंडा छुड़ा। जैसे बाबा बोलता है, वैसा करो।"

सत्यभामा ने तुलसी पत्र पलड़े में डाला और कृष्ण का पलड़ा ऊपर डंडी तक लगकर रुक गया और तुलसी के पत्ते वाला पलड़ा, धरती से स्पर्श हो गया। अब रानियां ताली बजा–बजाकर नाचने लगीं और बोलीं, "बाबा! अब तो आप जा सकते हो।" नारदजी बोले, "ठीक है! मुझे तो जाना ही है। कृष्ण को तुम रानियां इतनी प्यारी नहीं हो, जितनी प्यारी वृंदा महारानी है। वृंदा माई जन्म–जन्म की सब की माँ है। यही आपके पति कृष्ण को, भक्तों से मिलाती है।" तुलसी सेवा ही सर्वोत्तम है। तुलसी प्रसन्न तो भगवान् प्रसन्न, ऐसा मन में धार लो और तुलसी की सेवा करो।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

धर्मशास्त्र में प्रसंग आता है कि जालंधर नामक एक राक्षस था। यह तुलसी उसी की स्त्री थी, यह सती थी, इसी कारण जालंधर किसी से डरता नहीं था। भगवान् ने ऐसी लीला की थी जिससे वह मर गया। प्रसंग बहुत बड़ा है और रहस्यमय भी है अतः सूक्ष्म में ही गुरुदेव ने बता दिया है। सभी इस प्रसंग को सुनने के अधिकारी भी नहीं है अतः यहीं पर विश्राम कर दिया है। तुलसी जी ने भगवान् से बोला, "कि मेरी कृपा के बिना आपके भक्त नहीं बन सकते और मेरी कृपा के बिना आपका भक्त आपसे नहीं मिल सकता।" ऐसी ही घटना घटी तथा भगवान् को भी तुलसीजी का आदेश पालना पड़ा।

कहावत है :

धन्य तुलसी पूर्ण तप किये, श्री–शालग्राम–महा–पटराणी नमो नमः।

(तुलसी आरती)

तुलसी महापटरानी है। न सत्यभामा, न रुक्मिणी, और न कोई और रानी है। तुलसी की सेवा ही सबसे ऊपर है। भगवान् की सेवा तो इससे निम्न कोटि की है। मेरे गुरुदेव ने "इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति" पुस्तक में तुलसी की सेवा के बारे में लिखा है उसको पढ़ कर, आप देख सकते हो।

इसी प्रकार माँ–बाप की सेवा ही सर्वोपरि है। भगवान् की सेवा तथा साधु की सेवा तो निम्न कोटि की है। माँ–बाप चाहे अनुकूल नहीं हैं तो भी माँ–बाप की सेवा के बाद ही भक्ति पथ में जाना होगा, माँ–बाप की सेवा के बिना भक्ति पथ पर नहीं जा सकते। जो माँ–बाप की सेवा नहीं करता, वह भक्ति पथ में जा नहीं सकता, यदि जाता है तो उसे भक्ति में सफलता नहीं मिलेगी। एक अपवाद जरूर है कि जो माँ–बाप भगवद् पथ में रोड़ा अटकाते हैं तो फिर बेटा माँ–बाप को छोड़ सकता है।

कहावत हैः

जाके प्रिय न राम–बैदेही।
तजिये ताहि कोटि वैरी सम, यद्यपि परम सनेही।।

(गो. तुलसीदास कृत विनय–पत्रिका, विषय–विनयावली, पदाङ्क 174, दो. 1)

कितना भी प्यारा हो, अगर वह भगवान् की तरफ जाने में रोड़ा अटकाता है, तो उसको छोड़ देना चाहिए, उससे मुंह मोड़ लेना चाहिए, यह शास्त्र कहते हैं। हां! ठीक है, अगर माँ–बाप भजन नहीं करते हों तो न करे, लेकिन उनकी सेवा तुमको करनी है। अगर रोड़ा अटकाते हैं तो माँ–बाप को आप छोड़ सकते हो। कोई भी हो, माँ, बाप, भाई, कोई भी हो, उसको छोड़ सकते हो, पति को छोड़ सकते हो, स्त्री को छोड़ सकते हो जो भगवान् में रोड़ा अटकाता है। जितना भी प्यारा हो जो भगवान् की तरफ जाने में रोड़ा अटकाता है तो उससे मुंह मोड़ लो, इसमें कोई आपत्ति नहीं है, कोई दोष नहीं है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

मानव सोचता है कि भगवान् मिलना असंभव है। भगवान् मिलना उसके लिए मुश्किल है जिसका स्वभाव खराब है। गीता में भगवान्, अर्जुन को बोल रहे हैं, "हे अर्जुन! मुझे मनुष्य कृश करता रहता है। कृश का मतलब है, मुझे दुखी करता रहता है। यह स्वाभाविक ही है कि जिसके द्वारा प्राणी दुखी होता है उसे वह मिलना नहीं चाहेगा। वह तो उसके मन से ही उतर जाएगा। उदाहरण श्री गुरुदेव समझा रहे हैं जैसे अशोक को राजू दुखी करता रहता है। वास्तविकता तो यह है कि अशोक के शरीर से राजू घृणा करता है, शरीर को सताता रहता है, यह सताना अशोक के शरीर का नहीं है। अशोक के शरीर में जो आत्मा परमात्मा का अंश है, उसे ही राजू सता रहा है। शरीर को नहीं सताया जाता, आत्मा को सताया जाता है। शरीर तो आत्मा का मकान है, कपड़ा है। मकान और कपड़े को क्या दुख होगा? यह तो जड़ वस्तु है। दुख होगा सजीव वस्तु, आत्मा को, जो परमात्मा का अंश है, तो परमात्मा इस मानव को कैसे मिल सकता है? दुख देने वाले को कैसे मिल सकता है? कहावत है कि किसी की आत्मा मत सताओ, ऐसा तो नहीं कहते कि किसी के शरीर को मत सताओ। इसी कारण भगवान् मानव से मिलना नहीं चाहते हैं, नहीं तो भगवान् तो बहुत जल्दी मिल जाते हैं।

मेरे गुरुदेव ने बताया है कि जिसके 7 तरह के स्वभाव अच्छे हैं, तो भगवान्, उसके पीछे छाया की तरह चिपके रहते हैं। उन 7 स्वभावों को संभालो, जो खराब है उसे सुधार लो, फिर भगवान् आपके पास में हैं। बस फिर भगवान् दूर नहीं जाते। उदाहरण है कि जैसे कोई भी मेरे कमरे की

खिड़की को तोड़े तो कमरा रोएगा क्या? नहीं! जो इसमें रहता है वही रोएगा। इसी प्रकार मानव का शरीर नहीं रोएगा, शरीर में रहने वाला आत्मा रोएगा। बस निष्कर्ष यह निकलता है कि मानव भगवान् के अंश आत्मा को दुखी कर रहा है। यदि यह समस्या मन में हल हो जाए तो भगवान्, परमात्मा दूर नहीं है। देखो! सतयुग, त्रेता, द्वापर और देवता लोग कहते हैं कि अगर हमारा कलियुग में जन्म हो जाए तो हम भगवान् को बहुत सरलता से प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि इसमें कोई नियम नहीं है। केवल भगवान् का नाम लो, कोई नियम नहीं है और सतयुग में तो जंगलों में जाकर तपस्या करो, सर्दी गर्मी सब सहो। तब भी भगवान् कहेंगे कि दस हजार वर्ष के बाद मिलूँगा। त्रेता में बड़े–बड़े यज्ञ करो, सबको जीतो, बहुत पैसा लगाओ तब जाकर भगवान् मिले तो मिले। द्वापर में बहुत सच्चे दिल से निर्मल हृदय से पूजा करो, तब भगवान् मिलेगा और यहाँ कलियुग में तो भैया! कपट से भी भगवान् मिलेगा। कपट से ही हरिनाम करो, तब भी भगवान् मिल जाएगा। कोई नियम नहीं है, कैसे भी करो, कहीं बैठकर करो। कितना सरल रास्ता है, इसलिए सब देवता भी प्रार्थना करते हैं, "हे भगवान्! हमको कलियुग में, भारतवर्ष में जन्म दे दो। भारतवर्ष में जो नदियां हैं, वह वैकुण्ठ की देवियां हैं, जो नदी रूप में आई हैं, नदियों में स्नान करके हम पवित्र हो जाएंगे। पहाड़ हैं, वह देवता हैं, उनके गोद में बैठकर हम हरिनाम करेंगे"। तो ऐसा है कि हम को कलियुग में जन्म दे दो।

भगवान् उसके लिए मुश्किल है, जिसका स्वभाव खराब है।

अंदर ही आत्मारूप में परमात्मा विराजमान है। संसार की अन्य वस्तुएं दूरी पर हैं, परंतु परमात्मा से नजदीक कुछ भी नहीं है। जो सबसे नजदीक होगा, उसके आने में देर कैसे हो सकती है? यह मानव का वहम है। संसार में अन्य सामग्री, वस्तु पाने में देर हो सकती है, लेकिन परमात्मा को पाने में देर नहीं होगी। केवल मानव का स्वभाव बुरा होने की वजह से परमात्मा दूर रहता है अतः मानव दुख सागर में गोता खाता रहता है क्योंकि संसार तो दुखालय बताया ही गया है। सुख तो केवल भगवान् के चरणों में है। कृष्ण से अन्य कहीं सुख की हवा भी नहीं है। इस सुख को पाने का उपाय है कि कलिकाल में, 24 घंटे में केवल एक लाख हरिनाम अर्थात् 64 माला करना परम आवश्यक है। जो मानव 64 माला नित्य करता रहता है, उसको भगवान् स्वयं आकर वैकुण्ठ में ले जाते हैं। उसके लिए सुख का समुद्र उपलब्ध हो जाता है। हरिनाम में मन लगे चाहे न

लगे। वह तो वैकुण्ठवास करा ही देगा, लेकिन सच्चे संत का संग होने से ही ऐसा हो सकता है।

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

आप मन से करो चाहे बेमन से करो। बस भगवान् का नाम लो तो दसों दिशाओं में सुख का साम्राज्य उपलब्ध हो जाएगा। विचार करने की बात है कि दसों दिशाओं के अतिरिक्त ग्यारहवीं दिशा तो होती नहीं है, अतः दसों दिशाओं में वैकुण्ठ और गोलोक भी है। बेमन से हरिनाम होने से भी वैकुण्ठ वास हो जाएगा। जैसे बिना जाने अमृत पी लिया जाए तो अमर बनाए बिना नहीं रहेगा इसी प्रकार बिना जाने, अगर जहर पी लिया जाए तो वह मारे बिना नहीं रहेगा। इसी प्रकार बिना जाने आग में हाथ लग जाए तो वह जलाए बिना नहीं रहेगी। ऐसे ही भगवान् का नाम, आप बिना जाने, कैसे भी लो तो भगवान् की कृपा मिल जाएगी, भगवान् वैकुण्ठ ले जाएंगे। हमारा धर्म शास्त्र बोल रहा है कि गिरते–पड़ते, खाते–पीते, किसी भी अवस्था में हरिनाम मुख से निकल जाए, बस, तो सुख विधान हो जाएगा। अतः श्री चैतन्य महाप्रभु जो कृष्ण के अवतार हैं, उन्होंने 64 माला अर्थात् एक लाख हरिनाम करने के लिए जोर दिया है। प्रत्येक मानव को नित्य इतना हरिनाम करना परम आवश्यक है ताकि उसका जन्म मरण का दुख दूर हो जाए और भविष्य में सुख का साम्राज्य बन जाए। इसी कारण मेरे गुरुदेवजी सभी को बारंबार बोल रहे हैं कि इस दुष्ट कलि महाराज से हरिनाम करके बच जाओ। केवल हरिनाम करो। उसमें आपको क्या परिश्रम होगा? हरिनाम करो।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

हरिनाम करने वाला समझो कि प्रह्लाद का प्रतीक है और कलि महाराज हिरण्यकश्यप का प्रतीक है। अतः कलि महाराज जापक का बाल भी बांका नहीं कर सकेगा, स्वयं ही हार कर भाग जाएगा। यदि मानव केवल अहंकार को मन से दूर कर दे, तो भगवान् मिल जाएँगे। यह अहंकार ही माया का प्यारा दोस्त है और हथियार है। तभी तो चैतन्य महाप्रभुजी ने बोला है :

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।

(श्री शिक्षाष्टकम् 3)

तृणादपि...अपने आप को बहुत छोटा समझे, बहुत नीचा समझे, तभी अहंकार से दूर रह सकते हो। जब अहंकार होगा तो वह कीर्तन करने लायक नहीं है। वह कपट से कीर्तन कर रहा है। इस दुष्ट अहंकार को दूर रखे और अपना मान नहीं चाहे, दूसरों को इज्जत दे, वही कीर्तन कर सकता है। जो अहंकार को मारेगा, वह ही भगवद् नाम ले सकेगा, वरना भगवद् नाम कपटमय होगा और भगवान् को कपट नहीं सुहाता है।

भगवान् क्या कहते हैं :

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 3)

अहंकार में ही संसार बसा हुआ है। अहंकार मरा नहीं और भगवान् आया नहीं। भगवान् को आने में यह अहंकार ही रोड़ा अटकाता रहता है। यही माया का प्रबल हथियार है और यह अहंकार सब में भरा पड़ा है, इसलिए भगवान् नहीं मिलेगा। शिवजी मृत्यु के देवता हैं और जो भी दुख की सेना है वह शिवजी की ही है। नींद भी इन्ही की ही है, ग्रह–गोत्र भी शिवजी के ही हैं, रोग–दोष भी शिवजी के ही हैं। जो हरिनाम करता है, शिवजी उसे अपना भाई मानते हैं क्योंकि शिवजी, पार्वती को पास में बिठाकर 'राम' नाम जपते रहते हैं। हरिनाम करने वाले पर शिवजी प्रसन्न रहते हैं, अतः शिवजी दुख के गण, जापक के पास भेजते ही नहीं हैं, लेकिन जापक निस्वार्थ होना चाहिए। कपटी होने से दुख से नहीं बचेगा। कहते हैं कि हम तो बहुत हरिनाम करते हैं, फिर भी दुखी रहते हैं। तो प्रत्यक्ष है कि तुम हरिनाम दिखावटी करते रहते हो, सच्चाई से नहीं करते। अतः कपटी के पास तो दुख आएगा ही। मन में तो द्वेष भरा पड़ा है और बाहर से हरिनाम करना दिखा रहे हो। कैसे भगवान् आपके पास आएगा? कभी नहीं आएगा।

देखो! भगवान् तो अंतर्यामी हैं। किसी के मन का भाव, उनसे छिपा नहीं है। दिखावट से कुछ नहीं होने वाला। जहाँ सच्चाई है, वहाँ भगवान् है। वहाँ सुख विधान है। छिप–छिपकर कुछ भी करते रहो, दुख तो तुम्हारे

पीछे दौड़ रहा है। फिर कहते हो हम तो भगवान् को बहुत चाहते हैं, पर फिर भी दुखी रहते हैं। यह तुम्हारा छल कपट भगवान् से सहनीय नहीं है। ऐसे ही रोते रहोगे और एक दिन यहाँ से कूच कर जाओगे और साथ में अपना किया कराया, अच्छा–बुरा कर्म लेकर जाओगे। दुनिया से छिपा लोगे, लेकिन भगवान् से नहीं छिपा सकते। मानव जन्म बहुत दुर्लभ है। बेकार कर्म करके मानव जन्म को नष्ट कर दिया तो बाद में नर्क भोगोगे तथा 84 लाख योनियों को भोगते रहोगे। कई कल्पों के बाद मनुष्य जन्म मिल जाए तो गनीमत है। वह भी यदि किसी संत की कृपा से मिल जाए तो।

जीवमात्र में 3 धाराएं बहती रहती हैं सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण। जब यह धाराएं समाप्त हो जाती हैं, तो अंत में निर्गुण धारा बहती है जो भगवान् से सम्बन्धित है। धारा अनुसार ही भगवत्प्रेम की प्राप्ति होती है। जिसको जैसी धारा प्रभावित कर रही है, उसके अनुसार ही भगवान्, उसे प्रेरित करके कर्म में नियुक्त करते रहते हैं। भगवान् की प्रेरणा के बिना तो पेड़ का पत्ता तक नहीं हिलता। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है, जय–विजय। जो भगवान् के वैकुण्ठ के चौकीदार थे। इन्होंने सनकादि को अंदर जाने से रोका जिससे उनका श्राप लेना पड़ा। अतः तीन जन्म तक राक्षस योनि में जाना पड़ा। भगवान् की प्रेरणा से ही तो जय–विजय को सनकादिक को रोकना पड़ा। यह भगवान् की प्रेरणा से ही हुआ जैसाकि जब भगवान्, जय–विजय के पास आए और सनकादि ने बोला, "इस श्राप को हम वापस ले लेते हैं।" तब भगवान् ने कहा, "मैंने ही मेरी प्रेरणा से इन्हें श्राप दिलाया था क्योंकि मुझे लीला करनी थी।" तो निष्कर्ष यह निकलता है कि मानव का जैसा प्रभाव होता है, जैसा भाव होता है, स्वभाव होता है, तामसी, राजसी या सात्विक, वैसे ही प्रेरणा भगवान् के द्वारा होती है। भगवान् की प्रेरणा के बिना तो शेर, सर्प, बिच्छू भी नहीं खाता। भगवान् के प्यारे साधु को कोई जीव भी नहीं सताता है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

कलियुग का सुदर्शन चक्र : हरिनाम

14 जुलाई 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में इस दासानुदास अधमाधम
अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा
हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

भक्तगण ध्यान पूर्वक सुनें! भक्ति का अर्थ क्या है? भक्ति का अर्थ है कि भगवान् और भक्त में मन की फसावट अर्थात् भक्त और भगवान् में आसक्ति। अभी हमारी संसार में आसक्ति है। माया की तीन शक्तियां हैं, जो जीव मात्र को भगवान् से दूर रखती हैं। वह हैं– सतोगुण, रजोगुण एवं तमोगुण। यह गुण पूर्व जन्मों के संस्कारों के कारणवश जीवमात्र को प्रेरित करते रहते हैं। भगवान् की प्रेरणा से ही जीव अपने कर्म में आसक्त रहते हैं। जीवमात्र के अंतःकरण में, इन तीनों धाराओं में से जो भी धारा बहती है, उसी के अनुसार भगवान् के द्वारा प्रेरित कर्म होते रहते हैं। भगवान् की प्रेरणा के बिना तो पेड़ का पत्ता तक नहीं हिल सकता। जब तक जीवमात्र में परमात्मा रूपी आत्मा उसके अंतःकरण में विराजित है, तब तक वह प्रेरित होता रहता है। जब शरीर से आत्मा रूपी सैल निकल जाता है तो शरीर रूपी घड़ी बंद हो जाती है। भक्ति का प्राण क्या है? वह है शरणागति। गीता का सार, आदेश, उपदेश क्या है? वह है शरणागति।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।।

(श्रीगीता 18.66)

"सभी धर्मों को छोड़कर केवल मुझ में ही आसक्त हो जा, मुझ में ही मन को बसा ले, तो तेरा सारा दुख जड़ सहित खत्म हो जाएगा अर्थात् सुख ही सुख का साम्राज्य फैल जाएगा।" सूर्य जब उदय हो जाता है तो क्या अंधेरा रह सकता है? जब ज्ञानांजन आंखों में लग जाता है तो क्या

अज्ञान रह सकता है? कभी नहीं। अब गुरुदेव सभी भक्तगणों को स्पष्ट करके शरणागति का क्या रूप है, बता रहे हैं। जो भी गुरुदेव कह रहे हैं वह श्रीमद्भागवत पुराण से ही बोल रहे हैं कि शरणागति किसे बोला जाता है? यह कैसा साधन है? हमारे धर्म शास्त्र में बिल्ली के बच्चे, बंदरी के बच्चे का तथा मानव के शिशु का उदाहरण देकर समझाया गया है। बंदरी अपने बच्चे को छाती से चिपका कर रखती है लेकिन अपने हाथों से पकड़ती नहीं है। बंदरी का बच्चा अपनी माँ बंदरी को अपने हाथों से पकड़ कर रखता है। जब बंदरी दूसरी जगह जाने हेतु उछलती है तो अधिक हरकत होने से बच्चा नीचे जमीन पर गिर जाता है, और बच्चा कोमल होने से मर जाता है।

उदाहरण देने से अच्छी तरह समझ में आ जाता है। इसलिए शास्त्र में उदाहरण दिया है, बंदरी का बच्चा शरणागत न होकर अपनी शक्ति से ही अपनी माँ बंदरी को पकड़े रहता है। अपनी शक्ति से आज तक किसी को सफलता नहीं मिली है। जीवमात्र को किसी न किसी का सहारा लेना ही पड़ता है। पेड़ को पृथ्वी का सहारा लेना पड़ता है वरना पेड़ खड़ा नहीं रह सकता, शिशु को अपनी माँ का सहारा लेना पड़ता है वरना शिशु भविष्य में कुछ नहीं कर सकता, पाठक को मास्टर (अध्यापक) का सहारा लेना पड़ता है, शिष्य को गुरु का सहारा लेना पड़ता है। इसी प्रकार जीवमात्र को अपने जन्मदाता भगवान् का सहारा लेना पड़ता है। भगवान् के सभी बच्चे ही तो हैं। भगवान् ने ही तो सबको पैदा किया है। यदि भगवान् का सहारा नहीं लेता तो सारा जीवन दुख में ही कटेगा। बिना सहारा लिए कोई भी सुखी रह नहीं सकता। अतः सहारा लेना सभी को आवश्यक है। बंदरी के बच्चे ने अपनी माँ का सहारा न लेकर अपनी शक्ति का सहारा लिया, तो नतीजा यह निकला कि अपना जीवन बर्बाद कर लिया, मर गया। भगवान् की शक्ति का सहारा, भगवान् ने सबको दिया है तभी तो जीवमात्र हरकत करता रहता है। जब शक्ति निकल जाती है तो जीवमात्र जड़ हो जाता है, निष्क्रिय बन जाता है। अब बिल्ली की चर्चा को मेरे गुरुदेव बता रहे हैं। बिल्ली अपने बच्चे को स्वयं अपने मुख में पकड़े रहती है, क्योंकि बिल्ली का बच्चा कोमल होता है तो अपने बच्चे को इस प्रकार से पकड़ती है कि उसके दांत बच्चे को न चुभें, लेकिन हर प्रकार से मुख में पकड़े रहती है। अब बिल्ली भी उछलती रहती है तो बिल्ली का बच्चा गिरता नहीं है क्योंकि जिम्मेदारी बिल्ली की है। बच्चा निर्भय होकर माँ के मुख में पड़ा घूमता रहता है। इसी प्रकार यदि मानव भगवान् का

सहारा ले तो मानव को कोई चिंता नहीं रह सकती। मानव निर्भय होकर अपना जीवन यापन कर सकता है।

मानव शिशु को भी माँ का सहारा है। शिशु तो अनजान है, भोला भाला है। कुछ जानता नहीं है, तो पूरी जिम्मेदारी माँ की है। माँ इसका 24 घंटे ध्यान रखती है। शिशु जो हाथ में आए, चाहे कोई तिनका हो या कुछ भी हो, मुंह में डालेगा, वह अपने मल को भी खा सकता है, वह सांप को भी पकड़ सकता है तो समझना होगा कि माँ उसका हर क्षण ध्यान रखती है। शिशु का पिता तो घर के बाहर रहता है और घर में जरूरत की चीज को अपनी धर्मपत्नी को सौंपता रहता है। अतः शिशु केवल माँ को ही जानता है पिता को नहीं। कई बार माँ शिशु को थप्पड़ लगा देती है, डांटती है फिर भी शिशु माँ के कपड़ों में ही आकर चिपकता है। माँ चाहे मारे, चाहे प्यार करे शिशु माँ के अलावा कुछ जानता नहीं है। लेकिन पिता यदि उसको डांटता है या थप्पड़ मार देता है तो शिशु दौड़कर माँ के ही पास जाता है पिता के पास नहीं जाता। यह है शरणागति का असली रूप। इस तरह की शरणागति होनी चाहिए।

कितना ही कष्ट आये तो भगवान् की तरफ ही दौड़े, कितना भी कष्ट आये तो भगवान् को ही याद करें, यही असली शरणागति है। इसी तरह मानव मात्र को भगवान् की शरणागति परम आवश्यक है। यदि शरणागति है तो उस का यहीं पर वैकुण्ठ वास हो गया। फिर चिंता भगवान् को होगी, शरण्य को नहीं। इसीलिए कहा गया है कि भगवान् को पाने में कोई परिश्रम नहीं है, केवल भगवान् में मन होना चाहिए।

भगवान् कलियुग में बहुत जल्दी मिल जाते हैं। सारी करामात मन की है क्योंकि मन तो संसार में फंसा पड़ा है तो फिर भगवान् में कहाँ से होगा? मन को कैसे सुधारा जा सकता है? मात्र सत्संग से। श्रीमद्भागवत महापुराण में भगवान् ने बोला है कि "हे उद्धव! मैं सत्संग से ही मिलता हूँ, न योग से मिलता हूँ, न तपस्या से मिलता हूँ, न तीर्थयात्रा से मिलता हूँ, न ज्ञान से मिलता हूँ, मैं केवल सत्संग से मिलता हूँ।" इसी कारण से कहा गया है कि भगवान् को पाने में कोई अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता, केवल मन भगवान् में होना चाहिए। मन को भगवान् में फंसाने हेतु चैतन्य महाप्रभुजी ने एक ही सरल सुगम साधन बता रखा है। चैतन्य महाप्रभुजी ने इसे स्वयं करके सबको शिक्षा दी है कि नित्य ही हरिनाम का सहारा ले लो। एक लाख हरिनाम जपो तो धीरे-धीरे मन संसार से हटता

जाएगा और भगवान् और भक्त में आता रहेगा। हरिनाम जपने में शुद्धि–अशुद्धि का कोई विचार नहीं है। कैसे भी हो, हरिनाम जपते रहो, भगवान् पकड़ लेंगे। जापक को कुछ करना नहीं है लेकिन निस्वार्थता से नाम जपना जरूरी है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

यदि मानव का आचार–विचार सात्विक हो तो मानव कभी बीमार होगा ही नहीं। आचार का मतलब है कि जिह्वा को स्वाद लेने से दूर रखो। जिह्वा यदि वश में है तो सब इंद्रियां वश में हो जाती हैं। यह शास्त्र बोल रहा है जो विरक्त महात्मा होते हैं वह प्रसाद पाते समय साग, चटनी, दही, खीर, दाल को एक साथ मिलाकर खाते हैं कि जिह्वा कंट्रोल में रहे। इंद्रियों का स्वभाव है कि इनको इनका विषय अर्पण करोगे तो यह बेकाबू हो जाएंगी। मानव के मन को खींचकर अपने विषय पर ले जाएँगी। एक ही इन्द्रिय, मन को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है अतः जितना भोग इन्द्रिय को दोगे उतना ही अधिक वह मन को अपनी ओर खींच लेगी। जिस प्रकार आग में जितना घी डालोगे तो आग उतना ही प्रचंड रूप धारण कर लेगी। जब अग्नि को घी देना बंद कर दोगे तो आग अपने आप ही बुझ जाएगी। इसी प्रकार किसी इन्द्रिय को उसका खाना बंद कर दोगे तो इन्द्रिय सो जाएगी। इसका उदाहरण श्रीमद्भागवत महापुराण में है– ययाति महाराज जब बूढ़े हो गए तो उन्होंने अपने बेटे से जवानी ले ली और बेटा बूढ़ा हो गया। लेकिन हजारों वर्ष भोग भोगने के पश्चात् भी राजा को तसल्ली नहीं हुई, फिर भगवद् कृपा से उन्हें वैराग्य हो गया तथा ज्ञात हुआ, "मैं अज्ञानवश गलत मार्ग में चला गया था, अब मैं सचेत होकर अपना जीवन यापन करूँगा।" इसी मन ने ययाति को सुखकारक मार्ग पर चलने का अवसर प्रदान कर दिया। ययाति के वंश में ही कृष्ण का जन्म हुआ था। यदु इनका ही बेटा था। मन पर कंट्रोल (नियंत्रण) है तो सब ही कंट्रोल में हो जाता है। मन ही नर्क में ले जाता है तथा मन ही वैकुण्ठ में ले जाता है। मन वश में है तो दुनिया वश में है। मन वश में नहीं है तो कोई वश में नहीं हो सकता। मानव अन्य को वश में करने का प्रयास करता रहता है तो मानव का यह प्रयास निरर्थक है। जब स्वयं का मन वश में नहीं है तो अन्य को वश में करना असंभव है।

देखो! मन को वश में करने का एक ही साधन और रास्ता है – केवल सत्संग। जब भगवान् ही उद्धव को कह रहे हैं कि वे केवल सत्संग से मिलते हैं। अतः शुक्रवार को सप्ताह में एक दिन, केवल एक घंटा ही तो सत्संग होता है। जो 1 घंटा भी सत्संग नहीं सुनता तो उसके बराबर कोई नुकसान नहीं है। सबसे बड़ा नुकसान है। अरे! सच्चा सत्संग कहाँ मिलता है? यह मेरे गुरुदेव, सच्चा सत्संग करा रहे हैं और श्रीमद्भागवत महापुराण से ही करा रहे हैं। कहावत है :

तबहिं होइ सब संसय भंगा। जब बहु काल करिअ सतसंगा।।

(मानस, उत्तर. दो. 60 चौ. 2)

तभी संशय दूर होगा। संसार हट जाएगा और भगवान् मिल जाएगा, लेकिन सत्संग भी भगवत्कृपा के बिना नहीं मिलता है क्योंकि पिछले जन्मों के संस्कार खराब हैं। यदि किसी भगवान् के प्यारे साधु की सेवा का अवसर उपलब्ध हो गया फिर भगवत्कृपा उसके पीछे भाग कर आती है। भगवान् मानव को क्यों नहीं मिलते? भगवान् मानव को इस कारण नहीं मिलते क्योंकि मानव भगवान् को सताता रहता है। जितने भी चर–अचर प्राणी हैं, उनमें भगवान् का अंश आत्मा विराजमान रहता है। मानव तो सब जीवमात्र का रक्षक होता है लेकिन मानव रक्षक न होकर भक्षक बन गया है। तो भगवान् मानव को कैसे मिल सकते हैं? उदाहरण स्वरूप जैसे वृक्ष से फूल पत्ते ले सकते हो, सूखी लकड़ी ले सकते हो लेकिन मानव उसको जड़ से ही काट देता है तो पेड़ तो मर गया। भगवान् ने उसके कर्मानुसार, उसको पेड़ की योनि दी थी, उस योनि को मानव ने नष्ट कर दिया तो जिसने नष्ट किया है, उसको वही पेड़ बनना पड़ेगा। हां! भगवान् की योनि को नष्ट किया है, इसलिए उसको वही बनना पड़ेगा। इसलिए किसी जीव को मत मारो। अगर तुम बिच्छू को मारोगे तो तुम्हें बिच्छू बनना ही पड़ेगा। किसी को मत मारो। भगवान् ने तो उसके कर्मानुसार उसको पेड़ की योनि दी थी लेकिन मानव ने उसको नष्ट कर दिया। जब यह भगवान् को दुख देता रहता है तो जीवनभर कभी सुखी नहीं रह सकता। भगवान् की माया उसको दुखी करती रहेगी। ऐसे ही अनंत चर–अचर जीवों को भगवान् ने पृथ्वी पर, उनके कर्मानुसार योनियां दी हैं। उन योनियों को मानव दुख देता रहता है तो उसके सुखी होने का प्रश्न ही नहीं उठेगा। सुखी हो ही नहीं सकता क्योंकि उसने दुख बोया है तो दुख का ही फल मिलेगा। सुख बोता तो सुख मिलता। कलियुग में सबकी बुद्धि उल्टी हो

गई है। भगवान् की चर–अचर सब संतान हैं। यदि कोई किसी की संतान को दुखी करता है तो क्या उसका जन्म देने वाला उसका दुश्मन नहीं होगा? दुख का बीज बोयेगा तो दुख ही तो मिलेगा, सुख के फल कैसे मिलेंगे? दुख का पौधा, दुख का ही तो फल देगा। उसमें सुख का फल कैसे मिलेगा? तो जो बोओगे वही तो काटोगे।

As you sow, so shall you reap.

कोई किसी को दुख नहीं देता, अपना कर्म ही दुख देता है। यह 100% सिद्ध सिद्धांत है। अच्छा कर्म करो तो अच्छा फल मिलेगा।

भगवान् चर–अचर प्राणियों को मानव जन्म इसीलिए देते हैं कि इसका जन्म–मरण का दुख–कष्ट हट जाए, लेकिन मानव अंधा होकर चलता है, अतः मरने के बाद दुखदाई योनियों में फिर से जा गिरता है। इसके दुख का अंत कभी होता ही नहीं है। इस कलिकाल में धर्म तो मूलसहित नष्ट हो रहा है लेकिन इसमें सबसे बड़ा गुण यह भी है कि बेमन से भी हरिनाम करते रहो तो सुख का मार्ग हस्तगत हो जाएगा। यह ऐसी रामबाण औषधि है कि जड़ सहित दुख का नाश कर देगी। कहते हैं समय नहीं मिलता, समय तो मिलता है करना नहीं चाहते। काम तो हाथ–पैर से ही करते हो, जीभ से तो नहीं करते, जीभ तो 24 घंटे फुर्सत में रहती है। जीभ से हरिनाम जपने का अभ्यास करो, समय ही समय है। यह सब बहानेबाजी है और ऐसे ही धीरे–धीरे काल आकर तुमको निगल जाएगा। फिर क्या करोगे? फिर वहीं जाकर गिर जाओगे तो यह बहानेबाजी चलने वाली नहीं है। हमारा धर्मशास्त्र बोल रहा है कि जो मानव गाय का मांस खाता है, गुरु स्त्री गामी होता है, पाप करने में लगा ही रहता है, अनेक जन्मों के संस्कार अत्यंत खराब हैं, यदि वह भी हरिनाम की शरण में चला जाए तो वह शुद्ध हो सकता है। अतः जो रात–दिन भगवद् सत्संग करता रहता है, सत्संग का मतलब है कि हर समय भगवद् नाम उसकी जिह्वा पर नाचता रहता है तो उसका उद्धार होना निश्चित ही है।

कुछ कहते हैं कि हमने तो कुल में शादी नहीं की, हमारे तो वर्णसंकर पैदा होंगे, हमें तो नर्क में ले जाएंगे। तो शास्त्र कहता है कि तुम हरिनाम करो। हरिनाम कोई भी, कैसा भी पाप हो, अपराध हो, उसको जलाकर भस्म कर देगा। इसलिए चिंता की बात नहीं है। अनजान में ऐसा हो गया है। अब तुम हरिनाम की शरण में चले जाओ। एक तो हरिनाम और एक एकादशी, यह दो ऐसे बलिष्ठ हथियार हैं, जो माया को काट देते हैं।

संसार को काट देते हैं तथा रात–दिन भगवद् सत्संग करते रहो। सत्संग का मतलब है कि हर समय भगवद् नाम उसकी जिह्वा पर नाचता रहे तो उसका उद्धार होना निश्चित है। इसी वाक्य से यह निष्कर्ष निकलता है कि जिस मानव ने अपने कुल में शादी नहीं की है अतः उसकी संतान को श्रीमद्भगवद्गीताजी ने वर्णसंकर का शब्द दिया है। अतः वर्णसंकर संतान के धर्म के विरुद्ध होने से नरकगामी होना पड़ेगा, तो इसका इलाज और इसकी दवाई है कि केवल हरिनाम करो और एकादशी व्रत करो।

शुद्ध एकादशी व्रत ऐसे करना चाहिए कि दशमी को एक समय खाओ और एकादशी को निराहार रहो, शक्ति न हो तो फलाहार कर लो और द्वादशी को पारण कर लो और उसके बाद शाम का भोजन मत करो, शाम को फलाहार कर लो या दूध पीकर सो जाओ तो वह शुद्ध एकादशी हो गई। और ऐसे ही हरिनाम करो तो निश्चित ही उद्धार हो जाएगा। भगवद् नाम ऐसा अमोघ हथियार है कि अपने कुल में शादी न होने से भी, उसका उद्धार निश्चित रूप से होगा। यदि दंपति हरिनाम की शरण में हो जाए, हरिनाम से उनके गलत कर्म भी शुद्ध हो जाते हैं। उनके शुद्ध होने का अब हरिनाम के सिवाय और कोई साधन नहीं है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

हरिनाम ही एक ऐसा सरल, सुगम एवं बलिष्ठ साधन है। मानव ने यदि गलत मार्ग पकड़ रखा हो, हरिनाम उस गलती को देखता ही नहीं है। ऐसे मानव के उद्धार करने में कोई कसर ही नहीं छोड़ेगा। अतः मेरे गुरुदेव, ऐसे सब गलत मार्गियों को शांति प्रदान कर रहे हैं कि डरने की कोई बात नहीं है। डरो नहीं। हरिनाम तुम्हारा उद्धार करने में चूकेगा नहीं। बस हरिनाम करते रहो। पाप–अपराध, तुम्हारा बाल भी बांका नहीं कर सकेगा, निश्चिंत रहो। यह सब शास्त्र कह रहा है कि जो हरिनाम करोगे तो स्वयं भगवान् कृष्ण, तुम्हें अपने धाम में ले जाने के लिए आएंगे और वहाँ तुम्हारा भव्य स्वागत कराएंगे।

अक्सर नास्तिक मानव बोलते रहते हैं कि अरे! बड़े बड़े महात्मा वृद्धावस्था आने पर खटिया में पड़कर, दुख पाते हुए मरते हैं, भगवान् का भजन करने का क्या लाभ हुआ? और जो भगवान् की तरफ देखते भी नहीं हैं, वे बैठे–बैठे तुरंत मर जाते हैं। इसका कारण यह है कि उनकी भजन व भक्ति में थोड़ी कमी रहने पर भगवान् उन्हें खटिया में विश्राम दिलाते हैं

ताकि पूर्वाभ्यास होने से वह, वहाँ निश्चिंत होकर मेरा स्मरण कर सकें। मन, कर्म, वचन से उनका कोई अपराध होता नहीं है। सभी संसारी झंझटों से बचे रहते हैं। एक प्रकार से समाधि अवस्था में ही पड़े रहते हैं और गुरुदेव, अपने शिष्यों को सेवा का अवसर प्रदान करते हैं। वैसे तो उच्चतम गुरु अपने शिष्यों से कोई सेवा लेना नहीं चाहते हैं, क्योंकि उनका भाव बहुत ऊँचा रहता है, "मेरा शिष्य होने से क्या हो गया, मैं कौन सा बड़ा हो गया? अरे! मेरे शिष्य में भी तो मेरा प्यारा परमात्मा रूप में बैठा हुआ है। आत्मारूप से तो शिष्य भी मेरा पूजनीय है। उच्च कोटि के गुरु ऐसे होते हैं, जो मानते हैं कि शिष्य पूजनीय है, इसके हृदय में भी मेरे प्यारे भगवान् परमात्मा रूप से विराजते हैं। मैं इनसे सेवा कैसे ले सकता हूँ? मेरी आत्मा और मेरे शिष्यों की आत्मा एक ही तो है। कोई छोटी बड़ी नहीं है, अतः शिष्यों की सेवा लेने से मुझे अपराध लगेगा।" लेकिन खटिया में पड़ने पर, असमर्थता होने से, शिष्यों को सेवा लेनी ही पड़ जाती है। यह भगवान् ही प्रेरित करके सब करते रहते हैं। अंत में ऐसे महात्मा, भगवान् द्वारा ही गोलोक में पदार्पण करते हैं, भगवान् उनको स्वयं ले जाते हैं।

जो भगवान् का भजन नहीं करते हैं उन्हें भगवान् अपनी याद नहीं करवाते हैं अतः तुरंत ही मर जाते हैं। उनके हृदय से आत्मा रूप में निकल जाते हैं, उनको मरते समय भगवान् की कभी याद आ ही नहीं सकती। नास्तिक ने जैसा जीवन भर में कर्म किया है उस कर्मानुसार उसको योनियां प्रदान करते रहते हैं। जैसे जन्म भर किसी ने बकरियां चराई हैं और बकरों को बेच देते हैं या बकरे काटते हैं तो उसको बकरा ही बनना पड़ेगा और फिर नर्क में जाना पड़ेगा। जो कम पापी होते हैं उनको 80 लाख योनियों में यातनाएं भुगतनी पड़ती हैं।

शास्त्र बोलता है कि मानव जन्म बहुत ही दुर्लभ है। मानव जन्म हो गया तो भगवान् की भक्ति तो और भी दुर्लभ है और जन्म मरण हटना तो कितना ही दुर्लभ है, कोई बता नहीं सकता है।

देखो! हरिनाम के लिए, भक्ति चंद्रिका बोल रही है –

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

यह महामंत्र 32 अक्षरों से युक्त है, समस्त पापों का नाशक है, सभी प्रकार के दुख वासनाओं को जलाने के लिए प्रचंड अग्नि का स्वरूप है,

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को देने वाला है और हर दुख को हटाने वाला है, सभी का आराध्य, सेवनीय है। सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है, इस मंत्र को करने का सभी को अधिकार है। यह सभी का भाई है, बांधव है, दीक्षा विधि की अपेक्षा नहीं रखता है, दीक्षा लेने की कोई जरूरत नहीं है, बाहर की पूजा की भी कोई जरूरत नहीं है, केवल जीभ से हरिनाम स्पर्श होना चाहिए। देशकाल आदि से भी मुक्त है। इतना सरल, सुगम साधन होने पर भी मानव का दुर्भाग्य है कि इसको अपनाता नहीं है।

किसी मानव से जो भी बुरे से बुरा शास्त्र विरुद्ध कर्म हो गया हो तो उसको मिटाने के लिए यह भगवान् का सुदर्शन चक्र है। ऐसा कोई बुरा कर्म नहीं, जिसका फल हरिनाम नष्ट न कर सके। भगवान् ने हर मानव को ऐसी शक्ति प्रदान की है, हथियार दे रखा है फिर भी मानव क्यों घबराता है? निश्चिंत होकर अपना जीवन यापन करता रहे। कलियुग में इसके अलावा कोई भी सरल, सुगम साधन है ही नहीं। यह भक्ति चंद्रिका कह रही है। यदि जाने अनजाने में भी मरते वक्त मुंह से हरिनाम निकल जाए तो उसका उद्धार निश्चित है जैसे अजामिल का हो गया। उसने अपने बेटे को पुकारा था परंतु बेटे का नाम नारायण होने से अजामिल वैकुण्ठ पहुँच गया। अतः अपनी संतान का नाम भगवद् नाम पर ही रखना चाहिए क्योंकि बार–बार उसे माँ–बाप जब बोलेंगे, तो उनके पाप कटते रहेंगे। आजकल कैसे कैसे नाम रखते हैं जैसे चुन्नी, मुन्नी आदि, निरर्थक नाम निकालते रहते हैं। मूर्ख मानव पशुओं से भी गया बीता है। पशु भी मानव से उत्तम है जो मर्यादा में रहता है। मानव की कोई मर्यादा ही नहीं है। मानव उच्छृंखल गति का बन गया है, अतः दुखी है। दुख का कारण सामने दिखाई दे ही रहा है। इस मूर्ख मानव को कौन समझाए?

एक बार, एक 80 साल के वृद्ध संत को पानी के दस्त हो गए, 5–7 लंगोटी थीं जो खराब हो गईं। बेचारा नंग–धड़ंग अपनी कुटिया में बैठकर विचार करने लगा, "अब क्या करूँ?" भगवान् से प्रार्थना करने लगा कि, "भगवान्! अब मैं क्या करूँ?" भगवान् ने प्रेरणा की तो उसने सोचा कि यहाँ न तो पानी है और न ही लंगोटी है। "मैं अगर नदी के किनारे चला जाऊँ तो वहाँ शुद्ध हो सकता हूँ।" उसकी झोंपड़ी जंगल में थी, वहीं पर भजन करता था और वहाँ से दूर के एक गाँव से ही मधुकरी मांग कर अपने पेट की अग्नि बुझाता था। अब बेचारा जैसे–तैसे नदी के किनारे पहुँचा। दस्त होने पर वहीं शुद्ध करता रहता। एक दिन, 8–10 साल का एक लड़का आया और बोला, "बाबा! तुम्हें दस्त हो रहे हैं। तुम नंगे क्यों

बैठे हो?" संत बोला, "बेटा! मेरे पास जो लंगोटी थी सभी खराब हो गईं। अब लंगोटी है नहीं, तो नंगा ही बैठना पड़ रहा है।" लड़का बोला, "बाबा! मैं लंगोटी लेकर आता हूँ। मेरा गाँव पास में ही है।" बाबा ने कुछ नहीं बोला और लड़का वहाँ से चला गया और थोड़ी देर में 10 लंगोटी लेकर आ गया और दस्त की दवा भी लेकर आया और बाबा से बोला, "बाबा! मैं दस्त की दवाई लेकर आया हूँ। बाबा, पानी से इस दवा को निगल जाओ और यह लंगोटी भी बांध कर बैठ जाओ।" बाबा ने बोला, "बेटे! तुम क्या करते हो?" लड़का बोला, "बाबा! मैं यहाँ पर पशु चराता हूँ। अभी दवा दी है तो मैं इंतजार करूँगा कि दस्त मिटते हैं कि नहीं।" उसके बैठे रहने पर ही बाबा को 3–4 दस्त लग गए और लड़के ने बाबा को स्वयं शुद्ध किया।

बाबा बोला, "अरे बेटा! इस गंदगी से तुमको घृणा नहीं होती है?" लड़का बोला, "मुझे आदत है बाबा, मेरा छोटा भैया है, उसकी टट्टी मैं ही साफ करता रहता हूँ क्योंकि मेरी माँ बीमार रहती है और मेरे छोटे भैया की देखभाल भी मैं ही करता हूँ। अतः मुझे आदत है। टट्टी से मुझे घृणा नहीं होती।" बाबा संत को शक हो गया कि यह कोई साधारण बच्चा नहीं है। संत ने उसका हाथ पकड़ कर कहा, "सच बता, तू कौन है?" लड़का बोला, "मैं पशु चराने वाला ग्वाला हूँ।" संत ने कहा, "तू सुबह से मेरे पास बैठा है तो तेरे पशु कहाँ होंगे, शाम होने वाली है। तूने पशुओं को संभाला भी नहीं है। अब तक तेरे पशु न जाने कहाँ चले गए होंगे।" लड़के ने कहा, "हाँ बाबा! मैं तो भूल ही गया। पशुओं की तो याद ही नहीं रही।" संत ने हाथ पकड़कर कहा, "अरे! सच्ची बता। तू कौन है?" लड़का हाथ छुड़ाने लगा और बोला, "बाबा! मेरा हाथ छोड़, मेरे पशु पता नहीं कहाँ चले गए होंगे।" संत बोला, "नहीं छोडूंगा। अब मैं नहीं छोडूंगा। सच्ची बता। तू कौन है?" अंत में लड़के को बताना ही पड़ा कि, "बाबा! मैं वही हूँ जिसको तूने जिंदगी भर याद किया है।" संत बोला, "अरे! तू कन्हैया है? तू कान्हा है? गोपाल है?" लड़का बोला, "हाँ बाबा! मैं गोपाल हूँ।" संत ने पूछा, "तो तूने ऐसा घृणित काम क्यों किया? मेरी टट्टी क्यों साफ की?" गोपाल ने उत्तर दिया, "बाबा! मेरे भक्तों का सब कुछ करने में मैं अपना भाग्य समझता हूँ।" संत ने पूछा, "तू तो भगवान् है, तो तूने मेरी टट्टियाँ बन्द क्यों नहीं कीं?" लड़का बोला, "बाबा! क्योंकि नहीं तो तुमको दोबारा जन्म लेना पड़ेगा। मेरे को सेवा का मौका मिल गया, मुझे भक्त की सेवा मिलती ही नहीं है, बड़ी मुश्किल से उपलब्ध होती है। बाबा! अब तो तू जाने वाला है, थोड़ी देर में तू मर जाएगा। अतः इसी इंतजार में बैठा हूँ।" थोड़ी देर

में बाबा का शरीर छूट गया। अब तो भगवान् ने अपनी गोदी में लेकर, नदी के गहरे तेज बहाव में जाकर, बाबा को बहा दिया। भगवान् कहते हैं कि वे अपने भक्तों से कभी उऋण नहीं हो सकते क्योंकि वे भक्त की सेवा से वंचित रहते हैं। भक्त उन्हें सेवा करने का मौका देते ही नहीं है। अनजान में कभी–कभी सेवा का मौका उन्हें मिल जाता है।

संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : कभी–कभी स्कूल, कॉलेज की परीक्षा आ जाती है और जप करने के लिए समय नहीं मिलता तो इस समय हमें क्या करना चाहिए क्योंकि माला छूट जाती है ?

उत्तर : कर्म प्रधान विश्व रचि राखा। उसका प्रधान कर्म है परीक्षा देना, ऐसा नहीं है कि वह कहे कि मैं तो हरिनाम करूँगा, परीक्षा नहीं दूँगा। ऐसा करने से भगवान् बिल्कुल भी राजी (खुश) नहीं होगा। अपना कर्म करो। अर्जुन को कहा था कि, "तुम क्षत्रिय हो, तुम्हें लड़ना पड़ेगा और इस प्रकार तू अपना कर्म कर और मुझे याद भी कर।" तो वह परीक्षा भी देगा और हरिनाम भी, बाद में करेगा। उस समय नहीं करके बाद में कर ले, परंतु छोड़ेगा नहीं। परीक्षा जरूर देगा। परीक्षा देना उसका कर्म है, तो पहले कर्म करो। कर्म प्रधान विश्व रचि राखा... भगवान् कहते हैं अर्जुन को कि, "मेरे को भी कर्म करना पड़ता है। अगर मैं कर्म नहीं करूँ तो यह सृष्टि खत्म हो जाए।" इसलिए कर्म प्रधान विश्व रचि राखा... इसलिए कर्म करो। इसका कर्म क्या है ? परीक्षा देना, तो परीक्षा दे और पढ़े और उसको याद भी करे। अगर आपको समय कम मिलता है, तो कम माला फेरो। यह बात नहीं है कि वह तीन लाख ही करे।

हरिनाम कान से सुनो

21 जुलाई 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण युगल में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा अहैतुकी प्रेमा भक्ति की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

हमारे धर्म शास्त्र और संत बोलते हैं कि माया बड़ी बलिष्ठ है, यह सभी को लुभाती रहती है। जब तक्षक सर्प परीक्षित को डसने हेतु जाने लगा तो उसे मार्ग में कश्यप मुनि मिल गए। तक्षक ब्राह्मण का वेश लेकर जा रहा था तो तक्षक ब्राह्मण ने कश्यप मुनि से पूछा, "महात्माजी! आप कहाँ जा रहे हो?" कश्यप ने बोला, "आज तक्षक परीक्षित को डसेगा। अतः मैं तक्षक का विष उतार कर आऊँगा, जिससे परीक्षित मरेगा नहीं।" कश्यप को मालूम नहीं था कि यह ब्राह्मण ही तक्षक है। तो ब्राह्मण बना हुआ तक्षक बोला, "तुमको मैं धन दे देता हूँ, तुम वहाँ मत जाओ, वापस चले जाओ।" देखो! माया। कश्यपजी को लोभ आ गया। वह धन की वजह से वापिस चले गए। यह श्रीमद्भागवत में लिखा है। तब तक्षक ने जाकर परीक्षित को डस लिया और परीक्षित उसी जगह जलकर भस्म हो गया। यह है माया की करामत। माया ही जन्म और मरण का कारण होती है। सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण, इस माया के अमोघ हथियार हैं जो समस्त जीवमात्र को मार रहे हैं। इनसे बचना हो तो केवल मात्र हरिनाम से ही बचा जा सकता है।

कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिर सुमिर नर उतरहिं पारा।।

कलियुग में कोई दूसरा रास्ता नहीं है केवल भगवान् का नाम जपते रहो। माया, हरिनाम के नजदीक नहीं आ सकती, दूर ही रहती है। मानव मात्र में जैसा तामसी, राजसी और सात्विक गुण प्रवाहित हो रहा है वैसा

ही भगवान् प्रेरित करके कर्म करवाते रहते हैं। अब मानव बोलता है कि उनका बच्चा कहना ही नहीं मानता। इसमें बच्चे का दोष नहीं है, इसमें माँ–बाप का ही दोष है। बाजरा बोओगे तो बाजरा ही तो उपलब्ध होगा, चावल कैसे मिल सकता है? जिस भावना से कर्म किया है उसी भाव का प्राणी प्रगट होता है। सतयुग, त्रेता, द्वापर में 25 साल तक बच्चे, गुरु आश्रम में धर्म शिक्षा ग्रहण करते थे तो बच्चों का खून सात्विक बनता था। आज कलियुग में कोएजुकेशन (सहशिक्षा) हो गई है जिससे बच्चों का खून तामसी, राजसी बनता जा रहा है, अतः दुख का वातावरण बनता जा रहा है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।

भक्तगण ध्यान से सुनें कि पूर्ण शरणागत के लक्षण क्या हैं? शरणागत कैसे हुआ जाता है? शरणागत के चिह्न क्या हैं? बच्चे को माँ मारती है, दूर भगाती है फिर भी बच्चा पिता के पास न जाकर माँ के कपड़ों में ही चिपकता है। यह आप सब देख ही रहे हो। बच्चे की माँ के प्रति पूर्ण शरणागति है। यही है पूर्ण शरणागति का प्रतीक। इसी प्रकार भक्तों को कितने ही कष्ट आयें भक्त तो भगवान् को ही बोलेगा।

भगवान् की प्रेरणा के बिना तो संसार में किसी जीव की कोई हरकत नहीं होती। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण श्रीमद्भागवत पुराण में अंकित है। भगवान् कृष्ण ने सोचा कि उनके भगवद् धाम वापस जाने के बाद उनका ही परिवार संसार को दुख देगा, इस कारण इसे समाप्त करके ही जाऊँ, तो ठीक रहेगा। एक दिन भगवान् कृष्ण के परिवार के बच्चे खेल रहे थे, बच्चों की आदत होती है कि वह अजनबी खेल खेला करते हैं। भगवान् की प्रेरणा से बच्चों ने साम्ब के पेट पर कपड़ा लपेट कर पेट मोटा कर दिया जैसाकि गर्भवती माँ, बहनों का होता है। ऐसा मालूम होता है कि इस माता के गर्भ से बच्चा जन्म लेगा। भगवान् के परिवार के बच्चों को भगवद् प्रेरणा से यह सूझा कि वहाँ पर बहुत महात्मा भजन कर रहे हैं, उनकी परीक्षा करके देखें कि वे महात्मा क्या जवाब देते हैं? अतः उनसे पास जाकर हम पूछें कि इस महिला के गर्भ में जो बच्चा है, वह लड़का होगा या लड़की होगी? देखें तो, महात्माजी क्या बताएंगे? अतः चलो पूछते हैं। बच्चों ने खेल खेल में महात्माओं के पास जाकर दण्डवत् किया और पूछा, "यह महिला शर्म के मारे बताती नहीं है, बोलती नहीं है और हम

पूछने आए हैं कि इस का लड़का होगा या लड़की होगी? तो महात्माओं को इनकी छल विद्या का पता चल गया।

महात्मा पहचान गए कि यह हमको छलने आए हैं और भगवान् की प्रेरणा से उनको गुस्सा आ गया और बोले, "बच्चो! इसके पेट से लोहे का मूसल प्रकट होगा, जो तुम्हारे परिवार को नाश कर देगा।" इतना सुनते ही बच्चे घबरा गए, कि यह तो उन्होंने बहुत बुरा किया जो महात्माओं की परीक्षा ली। अब घर जाकर क्या कहेंगे? महात्माओं से अलग हटकर जहाँ खेल रहे थे, वहाँ पेट खोलकर देखा तो अंदर से लोहे का एक मूसल निकला। यह कथा श्रीमद्भागवत में है। बच्चे घबराए हुए घर गए और डर रहे थे कि उनको परिवार वाले डांटेंगे कि उन्होंने महात्माओं से छल क्यों किया? लेकिन इस मूसल को तो ले जाकर दिखाना ही पड़ेगा। बच्चों ने जाकर अपने परिवार वालों को मूसल दिखाया। वह भी डर गये कि अब क्या होगा? लेकिन कृष्ण से इस बारे में छिपा कर रखा, यह सोच कर कृष्ण को नहीं बताया कि कृष्ण को कहना उचित नहीं है। वह सीधा राजा उग्रसेन को दिखा दिया और उग्रसेन ने उस मूसल को घिसवाकर प्रभास क्षेत्र के समुद्र में फिकवा दिया और अंत में जो टुकड़ा बचा उसे भी वहीं पर समुद्र में फेंक दिया। उस टुकड़े को मच्छ निगल गया। एक बहेलिया ने मच्छ को काटकर, उस टुकड़े को अपने बाण में लगा लिया। तो इसी बाण से कृष्ण के पैर को जरा नाम के व्याध (शिकारी) ने मारकर घायल कर दिया। उसने सोचा कि यह लाल–लाल, किसी हिरण का मुख है। घबरा गया, पास में आया तो कृष्ण पीपल के पेड़ के नीचे जांघ पर हाथ रखकर बैठे थे और घायल थे, पैरों से खून निकल रहा था। वह कांपने लगा, तो कृष्ण बोले, "यह तो तूने मेरे मन की बात की है। अब तू स्वर्ग जा और आनंद कर। मुझे भी तो परिवार के साथ ही जाना है, मैं भी तो परिवार का ही हूँ।" भगवान् को अपने परम धाम जाना था अतः जब सुधर्मसभा चल रही थी, कृष्ण, द्वारिकावासियों को बोले, "अब 7 दिन में समुद्र द्वारिका को डुबो देगा। अतः सभी प्रभास क्षेत्र में चले जाओ, वहाँ ब्राह्मणों को भोजन कराएंगे, दान दक्षिणा देंगे।" भगवान् को तो अपने परिवार को नाश करना ही था। अतः द्वारिका के सब स्थान को खाली कर दिया, केवल कृष्ण का महल रहने दिया जिसको 'बेट द्वारिका' बोला जाता है। यहीं पर सुदामा ने भगवान् कृष्ण से भेंट की थी।

सभी द्वारिकावासी प्रभास क्षेत्र चले गए, उसी जगह पर समुद्र लहराता रहता है। किनारे पर बैठकर भगवान् कृष्ण की प्रेरणा से एक

वारुणी मदिरा थी, पीना शुरू कर दिया जो पीने में तो स्वादिष्ट होती है परंतु परिणाम इसका बहुत बुरा होता है। बुद्धि को नष्ट कर देती है, आपस का सुहृद–पना नहीं रहता। क्रोध का पारा चढ़ जाता है, भाई–भाई को मार देता है, बेटा–बाप को मार देता है, मामा–भांजे को मार देता है। इस प्रकार से कृष्ण के परिवार में मारकाट मच गई। वे कृष्ण, बलराम को भी मारने को दौड़े तो कृष्ण, बलराम ने भी मारना शुरू कर दिया। जब इन के हथियार समाप्त हो गए तो जो मूसल का चूरा समुद्र में फेंका हुआ था वह समुद्र के किनारे पर आकर जमा हो गया और उससे एरका नाम की घास खड़ी हो गई थी, उससे एक दूसरे को मारने काटने लगे। वह ऐसी घास थी जो तलवार का काम करती थी। इस प्रकार से कृष्ण का सारा परिवार समाप्त हो गया।

इसी कारण बोला जाता है कि जो शराब पीता है उसका घर निश्चित रूप से बरबाद हो जाता है। फिर भी मानव समझता नहीं है, शराब पीते हैं। अब बलरामजी वहीं पर आसन लगाकर मन को एकाग्र करके धाम पधार गए। भगवान् भी वहीं पर पीपल के नीचे आकाश से आए रथ में बैठकर अपने धाम गोलोक पधार गए। उद्धव ने बोला, "मैं आपके बिना जीवन कैसे धारण करूँगा।" तो कृष्ण बोले, "मैं श्रीमद्भागवत पुराण के रूप में शब्द ब्रह्म के रूप में पृथ्वी पर विराजमान रहूँगा। इसी के सहारे रह कर जीवन यापन करते रहना। मेरे चले जाने के बाद कोई तो मुझे प्राप्त करने का साधन होना चाहिए। सत्संग देने वाला होना चाहिए। कौन सत्संग करेगा? इसलिए उद्धव तुम यहीं रहो।" वृंदावन में कुसुम सरोवर के इर्द–गिर्द में ही उद्धव झाड़ियों के रूप में विराजते हैं कि इससे गोपियों की चरण धूलि उन पर पड़ती रहे जिससे वह शुद्ध होते रहेंगे।

तो कृष्ण के परिवार ने जिस प्रकार अपना शरीर छोड़ा था, उसी प्रकार कृष्ण को भी छोड़ना पड़ा था। कृष्ण की दो गतियां बताई जाती हैं। एक तो कि अंत में आकाश से रथ आया उस में बैठकर कृष्ण अपने धाम पधार गए, और दूसरा है कि अर्जुन ने कृष्ण का दाह संस्कार किया। अर्जुन ने तो वहाँ पर, सभी का दाह संस्कार किया था, इसलिए अर्जुन ने कृष्ण का भी दाह संस्कार समुद्र के किनारे पर किया। दाह संस्कार से शरीर तो जलकर राख हो गया पर कृष्ण का हृदय नहीं जला, तो अर्जुन ने उस हृदय को समुद्र में बहा दिया। वह हृदय, समुद्र में बहता बहता नीलांचल समुद्र पर पहुँच गया। इंद्रद्युम्न जो वहाँ के राजा थे, उनको स्वप्न हुआ कि मैं आत्मा रूपी ब्रह्म नीलांचल समुद्र के किनारे आ गया हूँ,

मुझे आकर संभालो और वही जगन्नाथजी हैं जो प्रेम के अवतार हैं, दारू ब्रह्म कहलाते हैं। समुद्र से बहकर पेड़ आया, उससे जगन्नाथजी प्रकट हुए। आज भी नए दारू ब्रह्म से नए जगन्नाथजी रूप धारण करते हैं। वही ब्रह्म जो कृष्ण की आत्मा है जिसे ब्रह्म नाम से बोला जाता है, नए जगन्नाथजी के हृदय में रखा जाता है। जो पंडा रखता है उसकी काले कपड़े से आंखें बांध दी जाती हैं, हाथों पर भी कपड़ा लपेट दिया जाता है और उस समय जगन्नाथ मंदिर में केवल दो ही पांडे रहते हैं। जब ब्रह्म रखा जाता है तो साथ ही अलौकिक चंदन तथा तुलसी का पत्ता भी रखा जाता है। नवकलेवर के समय, 18–20 साल बाद भी वह तुलसी पत्ता बिल्कुल नया और ताजा होता है जैसे आज ही पेड़ से तोड़ा गया हो। यह है जगन्नाथजी की अलौकिक रहस्यमयी गाथा। हर समय जगन्नाथजी नई–नई लीला प्रदर्शित करते रहते हैं जिससे भक्तगणों को पूर्ण श्रद्धा, विश्वास बना रहता है।

पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन साधु पद पूजा।।
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपटु करइ साधु सेवा।।

(मानस, उत्तर. दो. 44 चौ. 4)

भगवान् कृष्ण, उद्धव को अपने मुखारविंद से कह रहे हैं, "हे उद्धव! संत सेवा से बढ़कर कोई सर्वोत्तम पुण्य नहीं है।" बोला है :

मन क्रम बचन कपट तजि जो कर सन्तन सेव।
मोहि समेत बिरंचि सिव बस ताकें सब देव।।

(मानस, अरण्य. दो. 33)

"तो मैं, ब्रह्मा, शिव सब देवताओं के वश में रहते हैं।" कृष्ण बोल रहे हैं, "ऐसा प्राणी मुझे बहुत प्यारा लगता है।" फिर भगवान् बोल रहे हैं :

जौं सभीत आवा सरनाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं।।

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 4)

"जो डर कर के, दुख पा करके शरण में आता है ऐसे प्राणी को मैं प्राणों से भी प्यारा लगता हूँ।"

श्रीमद्भागवत पुराण जो कृष्ण का शब्द ब्रह्म है, जो बोल रहा है कि नारायण अनेक अवतारों का अक्षयकोष है। कृष्ण तो स्वयं ही अवतारी हैं।

जिस प्रकार बाजरा, गेहूँ आदि बोने से गेहूँ और बाजरा ही अधिक संख्या में उपलब्ध होता है इसी प्रकार बाप ही पुत्र रूप में जन्म लेता है। जैसे उसके भाव होंगे वैसा ही जन्म होगा। अब देखिए किसान के उदाहरण से हरिनाम जपने का स्पष्ट उदाहरण प्रदर्शित हो जाएगा। जैसे किसान अपनी जमीन को उर्वरा करता है अर्थात् जमीन को पानी दे कर हल द्वारा 2–4 बार जोत देता है ताकि खेत सुचारु रूप से नरम हो जाए तो बीज बोने में आसान हो जाएगा। इसके बाद झोली में कोई भी बीज भरता है और हल में नीचे की ओर लोहे की कुछ लगी रहती है जिससे जमीन को चीरा जाता है जिसको उमरा बोला जाता है, खाई होती है वह हल के पीछे पाइप लगा रहता है, उसमें थोड़ा थोड़ा बीज मुट्ठी से छोड़ा जाता है वह बीज उस खाई में गिरता रहता है, हल के हिलने से उस बीज पर मिट्टी पड़ जाती है। उमरे के अंदर पानी की नमी रहती है, अतः 5–6 दिन में वह बीज अंकुरित हो जाता है और 3–4 महीने में उस बीज से हजार गुना अन्न उपलब्ध हो जाता है। हल हिलने से कोई बीज खाई में न जाकर किनारे पर पड़ जाता है तो वह बीज अंकुरित नहीं होता क्योंकि न उस बीज को मिट्टी में ढका, न पानी की सिंचाई मिली। अतः उस बीज को चिड़िया एवं चीटियां खा जातीं हैं। अतः किसान को वह उपलब्ध नहीं हो सकेगा। इसी प्रकार से मानव हरिनाम करता है तो मन इधर उधर भागता रहता है।

यदि कान रूपी खाई में वह हरिनाम नहीं गिरा तो जापक को इसका पूरा लाभ नहीं मिलेगा, केवल सुकृति इकट्ठी होती रहेगी अर्थात् इस हरिनाम बीज से उसके संसारी काम तो होते रहेंगे। अतः माया में ही फंसा रहेगा, न संत सेवा होगी, न आध्यात्मिक सेवा होगी। अधिक सुकृति होने से वह उसे सच्चे संत से मिला देगी लेकिन इसमें उसे कई जन्म लग जाएंगे। उसका उद्धार होने में देरी होती रहेगी। अतः हरिनाम को कान से सुनना बहुत जरूरी है। कान से न सुनने से तो कोई संसारी काम भी नहीं हो सकते। उदाहरण स्वरूप अगर कोई व्यक्ति बाजार जा रहा है। उसे किसी ने कहा कि एक साबुन का पैकेट लेकर आना। उसका मन कहीं और उलझन में फंसा हुआ था, अतः उसने सुना नहीं। जब बाजार से लौट कर आने लगा तो याद आया कि उसके मित्र ने कुछ मंगाया था, परंतु उसने सुना ही नहीं और अब विचार करने लगा कि नील का पैकेट मंगाया होगा? घर पर आकर मित्र को नील का पैकेट सौंपा तो मित्र बोला, "इस से कपड़े धुलेंगे क्या? मैंने तो साबुन का पैकेट मंगाया था।" तो व्यक्ति

बोला, "उस समय, मैं डॉक्टर के पास जा रहा था और सोच रहा था कि कौन से डॉक्टर के पास जाऊँ, जिसे अपने बेटे को दिखा सकूँ। बेटे को बुखार आ रहा था। अतः मेरे मन का झुकाव डॉक्टर की तरफ था, इस कारण मैंने सुना नहीं।" मित्र बोला, "इसको वापस करके आओ और साबुन का पैकेट लेकर आ जाना।" उस व्यक्ति ने कहा, "वह दुकानदार ठीक नहीं है, वापिस नहीं लेगा।" मित्र ने बोला, "कपड़े गंदे पड़े हैं वह किससे धोऊंगा?" तो बिना ध्यान से सुने, कितनी असुविधा हो गई। दोनों ही परेशान हो गए। अतः हर बात सुनना परम आवश्यक है। इसी प्रकार हरिनाम को कान से सुनना बहुत जरूरी है। जब हरिनाम बीज कान द्वारा हृदय रूपी जमीन में गिरेगा तो अंकुरित होगा तो उसमें से कौन अंकुरित होगा? कृष्ण भगवान् अंकुरित हो जाएंगे।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

जैसे किसान लहलहाती खेती देखकर आनंद मग्न हो जाता है, इसी प्रकार भक्त हृदय में कृष्ण को देख कर आनंद मग्न होगा। हरिनाम को कान से न सुनने से नाम रूपी बीज चारों और बिखर जाएगा और जापक को कुछ भी उपलब्ध नहीं होगा। केवल संसारी कामना पूरी हो जाएगी। भक्ति की ओर से तो दूर ही रहेगा।

संसार में सभी को सहारा जरूरी होता ही है। पेड़ को पृथ्वी का, शिशु को माँ का, शिष्य को गुरु का, पढ़ने वाले को मास्टर का, इसी प्रकार मन को कान से सुनने का सहारा परम आवश्यक है वरना हरिनाम से जो लाभ होता है, वह लाभ बहुत समय बाद मिल सकेगा। किसान का बीज खाई में न पड़ कर खाई के किनारों पर पड़ गया तो वह अंकुरित नहीं होगा क्योंकि न तो उसको पानी की तराई मिली न उस पर मिट्टी पड़ी। अतः उसको चिड़िया और रेंगने वाले कीट खा जाएँगे। उसे सुकृति तो हो गई कि उसे किसी ने खाया। इसी प्रकार हरिनाम का बीज अगर कान रूपी खाई में नहीं पड़ा और इधर–उधर बिखर गया तो उससे सुकृति तो हो गई क्योंकि उसे किसी ने तो सुना होगा इसलिए सुकृति तो हो गई, परंतु भगवान् से प्यार नहीं होगा क्योंकि हरिनाम बीज हृदय रूपी जमीन में नहीं गया तो कृष्ण वहाँ अंकुरित नहीं हुआ, कैसे होगा? अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि हरिनाम उच्चारणपूर्वक होना चाहिए जो कान सुन सके।

जपने के 3 तरीके होते हैं – वाचिक, उपांशु तथा मानसिक।

Chanting Harinam Sweetly and listen by ears.

तो कान से सुने बिना तो कोई काम सफल होता ही नहीं। वाचिक जप, बहुत दिन करने के बाद उपांशु जप में उतर जाता है, उपांशु जप के बाद मानसिक जप में उतर जाता है। आरंभ में मानसिक जप निरर्थक होता है। आरंभ में कभी भी मानसिक जप नहीं हो सकता। शुरु–शुरु में एल.के.जी. में बैठना पड़ेगा, सीधा पी–एच.डी में कोई बैठ सकेगा क्या?

श्रीमद्भागवत पुराण में एक लेख है। एक चक्रवती सम्राट था उसका नाम था चित्रकेतु। उसकी एक करोड़ रानियां थी परंतु सभी रानियां बांझ थीं, किसी को एक भी संतान नहीं हुई। सम्राट चित्रकेतु सभी प्रकार से समृद्ध था परंतु संतान न होने से सदा उदास रहता था, "संतान के बिना मुझे नर्क में जाना पड़ेगा।" एक दिन श्राप और वरदान देने में समर्थ अंगिरा ऋषि चित्रकेतु के महल में जा पहुँचे। चित्रकेतु ने अंगिरा ऋषि का खूब आदर सत्कार किया। जब ऋषि आराम से बैठ गए तो ऋषि ने पूछा, "आप सब प्रकार से आनंद से तो हो? गुरु, मंत्री, राष्ट्र, सेना और मित्रों के साथ सह–कुशल तो हो? बात तो यह है कि जिसका मन वश में है, सभी उसके वश में रहते हैं। जिसका मन वश में नहीं है, उसके कोई भी वश में नहीं रहता। लेकिन मैं देख रहा हूँ कि आप किसी कमी के कारण उदास दिख रहे हो।" चित्रकेतु ने कहा, "महात्माजी! मैं सभी प्रकार से आनंद में हूँ लेकिन मेरे पुत्र नहीं है। शास्त्रानुसार, गृहस्थ में जिसको पुत्र नहीं होता, वह नरकगामी होता है। आप समर्थ हैं, तो मुझे पुत्र दे दीजिए।" अंगिराजी ने कहा, "तुम्हारे भाग्य में पुत्र है ही नहीं अतः शांति से राज करो।" चित्रकेतु ने कहा, "आप तो सर्वसमर्थ हो। मुझे पुत्र दे दीजिए, मुझे जरूर दीजिए।" अंगिराजी ने कहा, "ठीक है यह चरु (खीर) अपनी बड़ी रानी कृतदुति को खिला दीजिए तो पुत्र तो होगा परंतु वह पुत्र सुख–दुख दोनों देगा।" चित्रकेतु बोले, "मुझे तो पुत्र चाहिए, दुख–सुख होगा तो उसको बाद में देखा जाएगा। मुझे तो पुत्र चाहिए।" चित्रकेतु को पुत्र हो गया। अब तो राजा की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। खूब दान दक्षिणा दी, खूब गाना बजाना हुआ, खूब आनंद किया।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

जैसे किसी कंगाल को बड़ी कठिनाई से धन मिल जाए तो उसमें उसकी आसक्ति हो ही जाती है, इसी प्रकार चित्रकेतु की अपने पुत्र में गहरी आसक्ति हो गई। पुत्र को अपनी गोदी से उतारता ही नहीं था। बच्चे की हरकत से सब कुछ भूल गया। चित्रकेतु अपनी बड़ी रानी कृतदुति से प्यार करे और जो करोड़ रानियां थीं, उनकी तरफ देखे ही नहीं। अतः उन रानियों को ईर्ष्या हो गई कि हम तो दासियों से भी गई बीती हो गईं, इसका कारण केवल यह पुत्र ही है। अतः आपस में सलाह करके बच्चे को जहर दे दिया। यह कथा श्रीमद्भागवत में है। कृतदुति ने देखा कि बच्चा बहुत देर से सो रहा है, भूख लगी होगी तो दासी को बोला, "जाओ! बच्चे को मेरे पास ले आओ। मैं उसको स्तनपान करा दूँगी।" जब दासी बच्चे के पास गई तो देखती है कि बच्चे की जीभ बाहर निकली पड़ी है। दासी चिल्लाई और वहीं धरती पर गिर गई। अब कृतदुति दौड़ कर गई और देखती है कि बच्चा मरा पड़ा है। यह देख कर कृतदुति बेहोश हो गई। इतने में चित्रकेतु आ गया और वह भी बच्चे को देख कर बेहोश हो गया। फिर सभी रानियां भी आकर झूठ–मूठ में हाय–हाय करने लगीं कि यह ब्रह्मा भी कैसा दुष्ट है। बुढ़ापे में तो बच्चा हुआ और उसको भी ले लिया। भगवान् तो बड़ा निर्दयी है। बुढ़ापे में तो पुत्र हुआ, उसको भी ले लिया। इतने में अंगिरा ऋषि भी आ गए और चित्रकेतु उनके चरणों में पड़कर चिल्लाने लगा, "महात्माजी! मेरे पुत्र को जिन्दा कर दो।" तो अंगिरा बोला, "तुम बहुत दुखी हो, जिन्दा कर देता हूँ।" तो मंत्र से छीटा दिया और बच्चा जी गया। अंगिरा ने बोला, "बेटे! तू पूरे साम्राज्य को भोगेगा इसलिए जाओ मत।" तो बच्चा बोला, "अरे! कौन किसका बाप है और कौन किसका बेटा? जहाँ से आया था वहीं मुझे जाना है, मुझे सम्राट नहीं बनना।" अंगिरा ने बोला, "मैंने पहले ही कहा था कि बेटा सुख–दुख दोनों देगा।" जब चित्रकेतु ने बेटे की निर्मोही बात सुनी तो उसके ज्ञान नेत्र खुल गए कि वास्तव में कोई किसी का नहीं है। केवल भगवान् ही अपने हैं। यह चर्चा बहुत बड़ी है लेकिन सूक्ष्म रूप में बताई गई है।
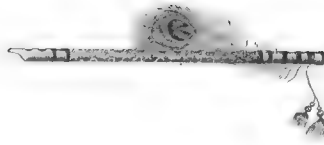
कृष्ण ही बनने वाले एवं बनाने वाले हैं

43

28 जुलाई 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद करें।

मेरे गुरुदेव जी असंभव को भी संभव कर के दिखाते हैं। लोग कहते हैं भगवान् के दर्शन नहीं हो सकते, लेकिन मेरे गुरुदेव कहते हैं कि भगवान् के दर्शन बहुत सुलभ हैं, बहुत सरल हैं। इसके लिए अपने स्वभाव को सुधारो। स्वभाव बिगड़ा हुआ है। अगर स्वभाव सुधर गया तो भगवान् एक क्षण उसको नहीं छोड़ेंगे। दुनिया कहती है कि भगवान् का दर्शन अति दुर्लभ है, मेरे गुरुदेव बोलते हैं कि भगवान् का दर्शन अति सुलभ और सरल है। भगवान् के तो सभी चर–अचर पुत्र हैं। सभी महसूस करते हैं कि बाप पुत्र को स्वाभाविक ही चाहता है। पुत्र बुरा हो सकता है लेकिन बाप कभी बुरा नहीं हो सकता। न तो हमने कभी सुना है न हमने कभी देखा है। भगवान् मानव को क्यों नहीं मिलते हैं? इसका खास कारण है कि अपने बाप भगवान् को, भगवान् की संतान को मानव दुखी करता रहता है। इसलिए भगवान् अंदर बैठे आत्मा रूपी आँखों से व मन से अनुभव करते रहते हैं कि अमुक मानव ने उनकी संतान को कभी सुख से नहीं रहने दिया, हर समय दुखी करता रहता है।

इसलिए किसी से राग–द्वेष मत करो। जो राग–द्वेष करेगा, उससे भगवान् बहुत दूर रहेंगे। अरे! राग–द्वेष में क्या रखा है? सबकी जितनी हो

सके, सेवा करनी चाहिए। जो भी आपको ज्ञान मिला है उस ज्ञान से सब की सेवा करनी चाहिए। किसी को सताएँ नहीं।

मानव का स्वभाव पिछले जन्मों से बिगड़ा हुआ है। इसका खास कारण है सत, रज, तम की धाराएं जो क्षण–क्षण बदलती रहती हैं एवं क्षण–क्षण में प्रवाहित होती रहती हैं। अतः मानव विवश होकर इनके वश में रहता है। ये धाराएं कैसे कमजोर हों? इसलिए खास प्रसंग की जरूरत है। श्रीमद्भागवत पुराण में कृष्ण भगवान्, उद्धव को बोल रहे हैं, "हे उद्धव! मैं केवल सत्संग से ही मिलता हूँ और किसी दूसरे साधन से नहीं मिलता। पिछले जन्मों में मानव को सत्संग तो मिला नहीं, कुसंग का रंग चढ़ता गया। इसी में ओतप्रोत होता रहा तो अच्छा स्वभाव कैसे हो सकता है?" इसी स्वभाव से, वह भगवान् की संतान को दुखी करता रहता है। सतयुग, त्रेता, द्वापर युगों के मानव अपनी संतान को जो पांच साल की उम्र का हो जाता था, उसे धार्मिक शिक्षा लेने हेतु, अच्छा स्वभाव बनाने हेतु, पच्चीस साल तक के लिए गुरुकुल में भेजा करते थे। वहाँ पर सभी बच्चे प्रातः से लेकर रात तक, गुरुदेव द्वारा शुभ आचरणशील मार्ग पर जीवन यापन किया करते थे। वहाँ पर कुसंग का तो नाम निशान ही नहीं था। क्षण–क्षण में केवल सत्संग ही सत्संग का ज्ञान दीपक जला करता था।

संग ही मानव के मन को सुधारता है व संग ही मानव के मन को बिगाड़ता है। जब भगवान् कृष्ण अपने धाम, वैकुण्ठ जाने लगे तो इस मृत्युलोक में कलियुग महाराज का पदार्पण हो गया। कलि महाराज तामस वृत्ति के सिरमौर हैं। तामस व राजस वृत्ति ही इस युग में धड़ाधड़ बहती रहती है। सात्विक वृत्ति का तो नाम निशान ही नहीं रहता। राजसिक व तामसिक वृत्ति ही दुख सागर का प्रतीक है। पिछले युगों में गुरु आश्रम हुआ करते थे। अब इस युग में लड़की व लड़के के लिए को–एजुकेशन (सहशिक्षा) पाठशालाएं स्थापित कर दी गई हैं। जवान लड़के, जवान लड़की एक साथ बैठ कर पढ़ते रहते हैं। एक ओर अग्नि, दूसरी ओर घी पात्र रखा हुआ है तो अग्नि के ताप से घी तो पिघलेगा ही। यह तो स्वाभाविक ही है तो सुख का साम्राज्य कैसे बन सकता है? यह सब प्रत्यक्ष देख रहे हो। आप सब जानते हो। मानव इतना पैसे का दास हो चुका है कि हर खाद्य पदार्थ में जहर मिला–मिला कर जहरीला पैसा कमा रहा है। जहरीला पैसा है और इंसान में जहर फैला रहा है। केवल स्वार्थ का

साम्राज्य सभी ओर फैल रहा है। बाप–बेटे में भी मतलब का व्यवहार रहता है। पति–पत्नी में भी मतलब का व्यवहार बनता है, एक दिन ऐसा आता है कि तलाक की नौबत आ ही जाती है और उनसे जो संतान होती है वर्णसंकर होती है। वर्णसंकर का मतलब है कि राक्षस, नास्तिक वृत्ति की, मर्यादाहीन। मनमानी करना उनका कर्म होता है तो सुख कहाँ से आएगा? अनन्त रोगों से ग्रसित रहते हैं, स्वभाव में लूट–पाट, निष्क्रियता रहती है अर्थात् बिना कमाए धन मिल जाए, कुछ करना नहीं पड़े। पैसों से खान–पान दूषित हो जाता है। ऐसे स्वभाव के मानव प्रकट होते हैं। पैसे के पीछे बुरा से बुरा व्यापार (कर्म) करते हैं जो शर्मनाक है। अतः नर्क इतना भर जाता है कि जगह ही नहीं मिलती। यमराज को नए नर्क बनाने पड़ते हैं।

सभी जगह ईर्ष्या–द्वेष का साम्राज्य फैला रहता है, अपने परिवार को कोई नहीं भाता है और नीच परिवार से दोस्ती हो जाती है। अपना भाई दुश्मन बन जाता है और ससुराल वाले प्यारे हो जाते हैं। यह है कलियुग का तमाशा। जैसा अन्न वैसा मन। जहरीला खाना और जहरीला मन बन जाता है। जाहिर ही है 99% राक्षस वृत्ति के ही होंगे, केवल 1% देवता वृत्ति के होंगे। अतः देवता वृत्ति वालों को असुविधा तो होगी ही। लेकिन उनका अंत बहुत अच्छा रहेगा अर्थात् शुभ होगा एवं राक्षस वृत्ति वालों का अंत इतना खराब होगा कि हाय–हाय करके जीव निकलेगा। जीव भी धीरे धीरे नहीं निकलेगा, बड़ी मुश्किल से निकलेगा। तड़प–तड़प के जीव निकलेगा। शरीर में जगह जगह पर ऑपरेशन होते रहेंगे। शरीर ऑपरेशनों से पिंजरा बन जाएगा। अभी प्रत्यक्ष में देख रहे हैं कि जो मानव गलत काम कर रहा है उसके जगह–जगह ऑपरेशन होते रहते हैं। पैसा कभी सुखी नहीं कर सकता क्योंकि किसी की आत्मा को दुखी करके कमाया गया है। वह सुखी कैसे कर सकता है? दूसरे का हक छीन कर कमाया गया है तो कैसे सुखी रह सकता है? अपनी कमाई का पैसा ही सुख का साधन बनता है। जहाँ दीपक जल गया वहाँ अंधेरा कैसे रह सकता है? कलियुग अज्ञान का ही काल है। अज्ञान में उजाला कैसे हो सकता है? अज्ञान तो ठोकरों का ही मार्ग है। ठोकर खाते रहो और दुख पाते रहो क्योंकि दूषित खान–पान से बुद्धि बिगड़ जाती है, दूषित हो जाती है, बुरा सोचती रहती है। अच्छा तो कभी सोचती ही नहीं। अच्छे की तो कुछ छाया ही नहीं आती, अच्छा तो कभी सूझता ही नहीं है क्योंकि उसके हृदय में तो जहर भरा पड़ा है। इन दुखों से अगर बचना हो तो हरिनाम की शरण में चले जाओ।

भगवद् नाम से शक्तिशाली अनंत कोटि ब्रह्मांडों में कोई नहीं है। यह सुख का साम्राज्य फैला देगा। कलिकाल की छाया भी नहीं आएगी। भगवान् किस को मिलते हैं और किसको मिले हैं? जो भक्त, चर–अचर प्राणियों में भगवान् को देखता है। कोई भी जो इन ब्रह्मांडों में अपने भगवान् को देखता है उससे भगवान् दूर कैसे रह सकते हैं और वह भी भगवान् से दूर कैसे रह सकता है? ये बिलकुल सत्य सिद्धांत है। जब सब में भगवान् को देखेगा तो किससे बैर करेगा? भगवान् उसको छोड़ कर कहीं नहीं जा सकते, भगवान् वहीं उसके पास थम जाते हैं। भगवान् कहते हैं, "अगर मैं चाहूँ भी कि इससे दूर हो जाऊँ तो मेरे अंदर इतनी शक्ति नहीं है कि मैं ऐसे भक्त से दूर हो जाऊँ।" जिसकी दृष्टि व निगाह इस प्रकार की होगी तो वह किससे वैर करेगा, राग–द्वेष सपने में भी नहीं कर सकता। इसमें स्वतः ही अहंकार का नाश हो जाएगा। इनके स्वभाव में ही ऐसा परिवर्तन आ जाएगा कि वह तो कुछ भी नहीं है, वह तो तुच्छ, अज्ञानी, मूर्ख प्राणी है।

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।

(श्री शिक्षाष्टकम् श्लोक 3)

तृणादपि सुनीचेन... यानि अहंकार, मूल से ही खत्म होना चाहिए कि, "मैं तो कुछ भी नहीं हूँ। मैं तो सबसे नीचा हूँ, गया बीता हूँ, मेरे पास कोई गुण नहीं है।" तो उसको अहंकार नहीं आएगा। यह भाव उसमें आ जाएंगे तो अहंकार तो बहुत दूर की बात है।

ऐसा स्वभाव वाला संसार में आसक्तिहीन होगा, कहीं आसक्ति नहीं रहेगी। जो भगवान् ने दिया है, उसमें संतोष रखेगा। अधिक झंझटों से दूर रहेगा, मान–अपमान तो इसमें होगा ही नहीं, सब से प्रेम का व्यवहार करेगा, सब को अपना ही समझेगा। इसके लिए कोई दूसरा है ही नहीं। आत्मा सबकी एक ही बराबर तो होती है। यह सब गुण उसमें स्वतः ही आकर बस जाएंगे।

संसार दुखों का घर है, इसमें कोई भी सुखी नहीं है क्योंकि प्राणी सुख की ओर जाता ही नहीं है। यह माया का संसार है, माया दुख की देवी है। माया से छूटने का केवल एक ही उपाय है कि भगवान् से नाता जुड़ जाए, क्योंकि सुख है तो केवल भगवान् के चरणों में है। भगवान् तो

सुख के सागर हैं। जहाँ सूर्य होगा वहाँ अंधेरा कैसे रह सकता है? लेकिन यह नाता भगवान् से कैसे जुड़े? किसी सच्चे संत की कृपा उपलब्ध हो जाए तो जुड़ जाएगा क्योंकि सच्चा संत सुख का डॉक्टर होता है। डॉक्टर उस प्राणी को सुख का इंजेक्शन (सुई) लगा देगा तो दुख का रोग नष्ट हो जाएगा क्योंकि सच्चा संत भगवान् का गहरा नाती है। वह भगवान् से मिला देगा। भगवान् तो बहुत जल्दी मिल जाते हैं। कौन कहता है भगवान् नहीं मिलते? भगवान् उद्धव को कह रहे हैं, "उद्धव! मैं न योग से मिलता हूँ, न तप से मिलता हूँ, न दान देने से मिलता हूँ। मैं केवल सत्संग से मिलता हूँ। सत्संग किसे बोलते हैं? सत भगवान् है। भगवान् वर्तमान में, भूतकाल में, भविष्यकाल में सदा अटल रहता है। भगवान् का अभाव कभी होता ही नहीं। काल सबको खा जाता है, लेकिन भक्त का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। काल और महाकाल भगवान् से थर थर कांपता है, लेकिन भगवान् कहते हैं, "मैं भक्त से थर थर कांपता हूँ। भक्त मेरे को ऐसा वश में कर लेता है कि मैं गतिहीन बन जाता हूँ, क्योंकि भक्त ही रक्षक, पालक, सर्वसमर्थ है।"

अरे! भगवान् है वो। भगवान् से बड़ा तो अनंतकोटि ब्राह्मांडों में कोई है ही नहीं। भगवान् ही सभी प्राणियों के जन्मदाता हैं। भगवान् ही स्वयं प्राणी बन जाते हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण श्रीमद्भागवत महापुराण में अंकित है। ब्रह्माजी पर भी माया हावी हो गई जब भगवान् कृष्ण अपने ग्वाल–बालों के साथ वन भोजन कर रहे थे। तब ब्रह्मा जी ने देखा कि कृष्ण ने अपने ग्वाल के मुख से जूठा अचार निकाल कर अपने मुख में रख लिया। ब्रह्मा सोचने लगा कि, "अरे! यह कौन सा भगवान् है जो ऐसे किसी का जूठा खाता है।" ब्रह्माजी ने सोचा कि, "जो ऐसा निकृष्ट काम करता है, तो वह भगवान् कैसे हो सकता है?" जब वन भोजन हो रहा था तो बहुत समय हो गया। ग्वालों को बछड़ों का ध्यान आया कि, "ओ हो! बहुत समय हो गया। हमारे बछड़े न जाने कहाँ चले गए होंगे। उनको ढूंढ़ना बड़ा मुश्किल हो जाएगा।" तब कृष्ण ने कहा, "अरे! तुम बेफिक्र हो कर भोजन करते रहो, मैं बछड़ों को ढूंढ के लाता हूँ।" जब भगवान् कृष्ण ढूंढने जा रहे थे तो उसके पहले ही ब्रह्मा बछड़ों को अपने धाम ले गए। जब कृष्ण ने वन में बछड़ों को नहीं देखा तो कृष्ण अचम्भा करने लगे कि, "अरे! बछड़े कहाँ चले गए?" अंत में वापिस भोजन के स्थान पर पहुँचे तो देखा कि ग्वाल–बाल भी नहीं हैं। कृष्ण ने विचार किया कि, "ग्वाल–बाल भी कहाँ चले गए? मैं तो यहीं पर छोड़ कर गया था। कहाँ चले गए?" अब

कृष्ण, अनमने हो कर पत्थर पर बैठ गए और सोचने लगा, "अरे! न तो बछड़े मिल रहे हैं, न हमारे ग्वाल–बाल मिल रहे हैं। क्या करूँ?" चिन्तन में मालूम हुआ कि यह करतूत ब्रह्मा की है। उसने मेरी परीक्षा ली है कि कृष्ण भगवान् नहीं हो सकता। जो ऐसा कर्म करता है, वह कैसे भगवान् होगा? भगवान् नहीं है यह। यह तो ग्वाला है ग्वाला।"

अब घर जाने से पहले, भगवान् कृष्ण ही सब ग्वाल–बाल बन गए और सभी तरह के बछड़े भी बन गए। बिल्कुल वैसे ही ग्वाल और बछड़े बने कि जिससे कोई पहचान न सके कि यह उनके बच्चे और बछड़े नहीं हैं। बिलकुल वैसे के वैसे बन गये। प्रत्यक्ष में कोई अंतर नहीं रहा। कृष्ण 1 साल तक सब कुछ बने रहे। ग्वाल बाल, छीके, जो हाँकने की लकड़ी, जिस कपड़े से खाना पीना बाँध कर लाते थे, वह सब कुछ खुद ही बन गये। कोई पहचान नहीं सका कि यह कौन है? कृष्ण है या और कोई है। जब फिर ब्रह्माजी ने देखा कि ग्वाल–बाल व बछड़े, अब भी वन में कृष्ण के संग में हैं, तो उसे अचंभा हुआ कि, "यह यहाँ कैसे आ गए? यह सब तो मेरे यहाँ रखे हुए हैं।" तो फिर से देखने गए तो वहाँ भी बछड़े और ग्वाल–बाल और यहाँ भी बछड़े और ग्वाल–बाल। अब तो ब्रह्मा हैरान हो गया। पैरों के नीचे से धरती खिसक गई कि उससे बहुत बड़ा अपराध हो गया है। अब कृष्ण को क्या जवाब देगा? थर–थर कांपने लगा और जाकर कृष्ण के चरणों में पड़ गया कि, "मुझ से गलती हो गई। मुझे क्षमा करो।" भगवान् का तो स्वभाव ही ऐसा होता है कि जो शरण में आ जाता है वह कितना ही अपराधी हो, दयानिधि क्षमा कर ही देते हैं। ब्रह्मा बोला, "मैं क्या करूँ? आपकी माया ही ऐसी है कि मुझे अंधा बना दिया, मैं भी मजबूर हो गया, मुझे क्षमा करो। मैं आपका जन्म–जन्म का किंकर हूँ।" भगवान् ने क्षमा कर दिया और बोले, "यह भी मेरी लीला ही थी कि प्राणी समझ सके कि कृष्ण ही सब कुछ है। कृष्ण के अलावा संसार में कुछ भी नहीं है।" संसार का पत्थर भी भगवान् ही है। पत्थर में जो सॉलिडपना (ठोसता) है, वह भगवान् का ही है। भगवान् कण–कण में समाया हुआ है। भगवान् के बिना तो कुछ है ही नहीं। जिसकी ऐसी दृष्टि हो जाती है उसका उद्धार तो निश्चित ही है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

एक बार भगवान् सो रहे थे और नींद में मुख से हा गोपी! हा राधा! बोल रहे थे। जब गोपी नाम निकला, तो भगवान् की पटरानियों, रुक्मिणी, सत्यभामा आदि को ऐसा लगा कि भगवान् को हमसे अधिक गोपियां प्यारी हैं। इसका क्या कारण हो सकता है? इसका खास कारण है कि गोपियां अपना सुख न चाहकर केवल कृष्ण का सुख चाहती हैं और हम सब अपना सुख चाहते हैं। इसी कारण से राधा और गोपियों से कृष्ण का अटूट प्यार हो गया, अतः हम को भी ऐसा ही करना चाहिए। बस जो कुछ करें, भगवान् के सुख के लिए करें। कृष्ण के लिए करें। अतः रुक्मिणी, सत्यभामा ने रोहिणी जी से, जो भगवान् की मैया है, प्रार्थना की, "क्या आप हमें गोपियों के प्रेम की बात बताओगी?" और मैया ने हामी भर दी और कहा, "हां! बता दूँगी।" लेकिन बोली, "मैं एकांत में बैठ कर बताऊँगी। जहाँ कृष्ण, बलराम न सुन सकें।" इसके लिए सुभद्रा को गेट पर खड़ा कर दिया कि कृष्ण, बलराम को अंदर मत आने देना। लेकिन जहाँ भगवान् का कीर्तन, गुणगान होता है, वहाँ भगवान् आए बिना कैसे रह सकते हैं? तो कृष्ण, बलराम आ गए और अंदर जाने लगे तो सुभद्रा बोली, "नहीं! मैया की आज्ञा है कि आप अंदर नहीं जा सकते।" वे दोनों बोले, "यहाँ तो खड़ा रहने दे।" सुभद्रा बोली, "हां! यहाँ खड़े रह सकते हो।" थोड़ी देर में रोहिणी ने कथा कहना शुरू कर दिया। अब दोनों बाहर खड़े होकर ही कथा सुनने लगे। कथा सुनते–सुनते कृष्ण और बलराम व सुभद्रा का ब्रज के प्रति अति अद्भुत प्रेम प्रकट हो गया। उस प्रेम भाव से उनके हाथ पैर सिकुड़ने लगे और मुख भी विकराल हो गया, आंखें भी निकल गईं और बड़ी हो गईं। इतने में नारदजी आ गए। ऐसा रूप देखकर नारदजी चकित रह गए, बोले, "अरे! क्या बात हो गई।" वह देखते ही रह गए। नारदजी ने भगवान् से प्रार्थना की, "हे प्रभु! मैंने जो रूप आज देखा है, आप को सब भक्तजनों को पृथ्वी पर ऐसा ही रूप दिखाना होगा।" तो भगवान् ने कहा, "ऐसा ही होगा। कलिकाल में मैं नीलांचल क्षेत्र में अपना यही रूप प्रकट करूँगा।" कलियुग के आने पर प्रभु की प्रेरणा से मालवा के महाराजा इन्द्रद्युम्न ने जगन्नाथ मंदिर में ऐसी ही प्रतिमाएं स्थापित कराईं।

शिल्पी को बुलाया गया और प्रतिमा बनाने के लिए बोला। शिल्पी खुश हो कर बोला, "मैं प्रतिमा बना दूँगा।" फिर राजा इन्द्रद्युम्न ने शिल्पी से पूछा कि प्रतिमा बनाने के लिए उसकी क्या शर्त है? शिल्पी ने कहा, "मैं

मूर्तियों का काम अंदर एकांत में 21 दिन में करूँगा और जब तक मैं यह काम करूँ, तब तक कोई भी दरवाजा नहीं खोले। जितने दिन तक काम पूरा नहीं होता, तब तक मैं कुछ भी नहीं खाऊँगा, पियूंगा।" अतः उसको 21 दिन के लिए बंद कर दिया और उसने काम शुरू कर दिया और भीतर से खट–खट की आवाज आती रहती। राजा की रानी जो गुंडिचा थी, वह दरवाजे के बाहर कान लगाकर खट–खट की आवाज सुनती रहती थी। अब 15 दिन के बाद खट–खट की आवाज बंद हो गई तो गुंडिचा महारानी अपने पति से बोली, "लगता है कि बुड्ढा तो मर गया। अब खट–खट की आवाज ही नहीं हो रही है तो अब दरवाजा खोल दें?" तो राजा बोला, "हाँ भाई! खट–खट की आवाज तो आ नहीं रही है, बुड्ढा मर ही गया लगता है। दरवाजा खोल दो।" तो चिंता होने से दरवाजा खोल दिया तो शिल्पी वहाँ से अदृश्य हो गया। शिल्पी अंदर नहीं मिला। अरे! कहाँ चला गया? और देखा कि मूर्ति का काम अधूरा ही रह गया, हाथ–पैर पूरे नहीं हुए थे, अधूरे ही रह गए। शिल्पी कहाँ चला गया? वह शिल्पी, विश्वकर्मा था। देवताओं ने विश्वकर्मा को ही मूर्ति बनाने के लिए भेजा था, वो दैत्यपति कहलाते हैं। इनके वंशज ही आज तक पूजा करते आए हैं। जगन्नाथ ऐसे प्रेम के अवतार हैं कि इनके यहाँ कोई छुआछूत नहीं है। अंदर जाकर कोई भी इनके चरण छू सकता है और जगन्नाथजी तो बीमार भी हो जाते हैं, इनको बुखार भी चढ़ता है और दवाई भी दी जाती है। ऐसी–ऐसी इनकी लीलाएँ हैं। अब तो समय से कुछ नियम बदल गये हैं। मंदिर में हिंदू जाति ही केवल दर्शन करने जा सकती है। मुसलमान और अंग्रेज अंदर नहीं जा सकते। यह लोग जगन्नाथ जी के ध्वज के दर्शन से ही प्रसन्न हो जाते हैं। इनको विराजमान जगन्नाथजी के दर्शन बाहर से ही हो जाते हैं। जगन्नाथजी बहुत शीघ्र प्रार्थना सुन लेते हैं।

रोग कौन है? रोग हैं राक्षसों के प्रतीक और दवाई कौन है? यह देवताओं की प्रतीक है। जो भगवान् के आश्रित हैं उनको रोग बहुत कम परेशान करते हैं और जो माया के आश्रित हैं उनको शरीर में कई प्रकार के रोग हो जाते हैं और कई ऑपरेशन भी किए जाते हैं और सब इंद्रियां शिथिल हो जाती हैं। जो भी काम करते हैं, उनको असफलता ही मिलती है क्योंकि माया का प्रकोप तथा सभी चर–अचर प्राणियों में आत्मारूप से भगवान् विराजमान हैं। भगवान् की प्रेरणा बिना तो चर–अचर प्राणियों में कोई हरकत हो ही नहीं सकती। माया की प्रेरणा से हर तरफ सत, रज, तम की धाराएं बहती रहती हैं। उन से प्रेरित होकर चर–अचर प्राणी कर्म

में प्रवृत्त होते रहते हैं। अतः भगवान् का भक्त जो भगवान् में पूर्ण आश्रित है उसका काल भी कुछ बिगाड़ नहीं सकता। काल भी भगवान् का ही प्रतीक है। संसार में सब कुछ ही भगवान् हैं। पत्थर में ठोसपना भगवान् का ही है, जल में तरलपना भगवान् का ही है। जो भी किसी में गुण है, वह भगवान् के अंश से है। ऐसी जिसकी निगाह बन जाती है तो भगवान् उससे दूर कैसे रह सकते हैं? वह तो हर क्षण सुख की लहरों में तैरता रहेगा, दुख तो उसके पास आ ही नहीं सकते। जब ज्ञान रूपी दीपक हृदय में जल जाता है तो अज्ञान रूपी अंधेरा कैसे रह सकता है? यह तो पक्का सिद्धांत है।

संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : एक माताजी पूछ रही हैं कि मैं सोलह माला करने का प्रयत्न करती हूँ, लेकिन कभी दस, कभी बारह, कभी चौदह माला ही हो पाती हैं। वैसे मैं सारा दिन हरिनाम मुख से लेती रहती हूँ, पर माला पर नहीं कर पाती। आप कृपया मार्गदर्शन करें।

उत्तर : देखो! माला पर करना जरूरी है। चैतन्य महाप्रभु भी माला पर, संख्या पूर्वक नाम जप करते थे। और हमको आदेश दिया है कि माला पर नाम जप करो और उसकी संख्या रखो। साक्षी रखो। केवल मन-मन में नहीं कर सकते। वैसे करते रहो, पर जप को माला पर करना जरूरी है। चैतन्य महाप्रभुजी का यही आदेश है। चैतन्य महाप्रभु साक्षात् कृष्ण भगवान् थे।

एक नया उपाय

1 अगस्त, 2017 की रात
छींड़ की ढाणी

साधक कहता है कि मैंने भगवान् को तो देखा नहीं है, पर मैंने तो परम भक्त को देखा है। शास्त्र लिखता है कि अंत में मरते समय, मानव भगवान् का ध्यान करके मरे, भगवान् की याद करते हुए प्राण त्यागे। मैंने मेरे बाबा (ठाकुर जी) से पूछा कि आपको तो किसी ने देखा नहीं, आपके परम भक्त को ही देखा है, तो इसलिए मरते हुए उसी भक्त की ही याद आएगी।

ठाकुर जी उत्तर में जो बोल रहे हैं, यह बात शास्त्र में नहीं लिखी है लेकिन जो ठाकुर बोलते है, वो भी तो शास्त्र ही है। ठाकुर जी बोलते हैं, "ठीक बात है कि साधक ने मुझे तो देखा नहीं है। उसने तो हमेशा अपने दीक्षा या शिक्षा गुरु के रूप में मेरे भक्त का संग किया है। तो अगर मरते हुए उस भक्त की याद भी आ गयी तो उसका निश्चित रूप से उद्धार हो जायेगा। जैसे किसी ने सारी उम्र बकरी चराई है तो अंत समय उसको बकरी ही याद आएगी।

भगवान् की वाणी है कि :

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

अगर आप बेमन से भी बिना अपराध किए, एक लाख नाम करो, तब भी आपको वैकुण्ठ प्राप्ति होगी। क्यों होगी ? क्योंकि भगवान् ने बोला है कि दसों दिशाओं में मंगल होगा। तो दसों दिशाओं में वैकुण्ठ और गोलोक धाम नहीं है क्या ? ग्यारह दिशा तो होती नहीं है। इससे यह निश्चित हो गया और मोहर लग गयी कि उसका तो उद्धार हो ही गया। अब आप ने (भगवान् ने) (1 अगस्त की रात को) और भी कह दिया, "अगर मेरा भी चिंतन न हो और मेरे प्यारे भक्त का चिंतन हो जाए

तो उसका (साधक का) उद्धार तो निश्चित है ही क्योंकि भक्त तो मुझ से भी श्रेष्ठ है। भक्त मेरे सिर का मुकटमणि है। मेरा चिंतन हो या मेरे परम भक्त का चिंतन हो। क्योंकि मेरा भक्त मेरे से बड़ा है तो मेरे भक्त का चिंतन करने वाले को मैं कैसे नीचे गिराऊंगा? कैसे नीचे की योनि दूंगा? भक्त मेरा मुकटमणि है। मेरे भक्त का चिंतन मेरे से भी उच्च कोटि का है।

महत्वपूर्ण :- लेकिन भक्त भी सच्चा होना चाहिए, भक्त हृदय से होना चाहिए, वेश भूषा से नहीं। सच्चा महापुरुष भगवान् की खुशी के लिए ही सब कुछ करता है, स्त्री और पैसा उसके लिए मिट्टी होता है। वह मुक्ति भी नहीं चाहता है, ऐसे महापुरुष का चिंतन अगर हो जाए तो वैकुण्ठ वास तो हो जायेगा, परन्तु गोलोक धाम नहीं मिलेगा, गोलोक धाम उसको मिलता है, जो भगवान् के लिए तड़पता है।

इसमें एक अपवाद है कि अगर साधक का भक्त अपराध होता है (दुर्वासा ऋषि की तरह) तो मेरे भक्त के चिंतन से भी सद्गति नहीं मिलेगी और उस साधक को दूसरा जन्म, मनुष्य का जन्म मिलेगा और फिर वह दुबारा एक दम स्वच्छ हो जायेगा।

शंका व संदेह का समाधान :- बाबा (भगवान् कृष्ण) ने बोला है, "1 अगस्त को मैंने तुम्हें बताया था कि अंत समय में यदि साधक को तुम्हारा चिंतन या मेरे सच्चे भक्त का चिंतन हो जाएगा तो उसका उद्धार निश्चित है, फिर वह मेरा नाम उच्चारण करे या न करे।" उन्होंने कहा कि "पूतना ने केवल मेरा चिन्तन ही किया था, नाम उच्चारण नहीं किया, फिर भी उसको धात्री (माँ) की गति मिल गई। शिशुपाल ने भी मेरा नाम उच्चारण नहीं किया था और मुझे गालियाँ निकाली थीं, उसका भी उद्धार हुआ था।" जितने भी राक्षस थे उन्होंने भगवान् को दुश्मनी से याद किया था। दुश्मनी और प्यार भगवान् के लिए एक ही है, याद या चिंतन मुख्य है। राक्षसों ने मरते वक्त नाम कभी नहीं लिया, केवल चिंतन ही किया।

यह बहुत महत्वपूर्ण बात है : बाबा ने बोला है, "जो तुम पर पूर्ण श्रद्धा रखते हैं उनको तो विश्वास होता है और वे समझते हैं कि यह बाबा ने ही बोला है, परन्तु जिनको तुम पर अधूरा विश्वास है, वे कहते हैं कि अनिरुद्ध दास तो अपने मन से बोलता है इसलिए बाबा (मैंने) ने रात को यह लेख लिखवाया है, जिस का शीर्षक है "शंका" और यह लेख सबको बांटना भी है।"

किसी को शंका हो सकती है कि मृत्यु के समय शिक्षा गुरु और दीक्षा गुरु में से किसी का भी चिंतन हो जाये तो वैकुण्ठ या गोलोक की प्राप्ति हो जाएगी, इसको हम कैसे मानें कि यह भगवान् ने बोला है ?

इसका उत्तर या समाधान नीचे लिखा जा रहा है, ध्यानपूर्वक भक्तगण पढ़ें :

श्रीमद्भागवत महापुराण में लेख है, जो सभी भक्त समुदाय को मालूम भी है कि अजामिल, जो महा-पापी और अपराधी था, उसको मरते समय अपने बेटे का चिंतन हुआ पर उसका बेटा तो भक्त नहीं था। लेकिन बेटे के निमित्त 'नारायण नाम' निकल गया तो उसका उद्धार हो गया और भगवद् पार्षद आ गये और उसे वैकुण्ठ ले गए।

अब खास बात है कि राक्षसगण भी तो भगवद् चिंतन ही करते हैं पर वे दुश्मनी भाव से करते हैं तो उनका उद्धार होता है कि नहीं ? वे कभी नाम तो नहीं लेते, केवल चिंतन करते हैं। चिंतन ही मुख्य है, चिंतन में नाम शामिल है, नाम चिंतन के अन्दर घुसा हुआ है। भगवान् के नाम उच्चारण की जरूरत नहीं है। इसी प्रकार मरते समय यदि भक्त को, अपने शिक्षा गुरु या दीक्षा गुरु का चिंतन हो जाए तो क्या उसके उद्धार होने में रत्ती भर भी शक होगा ? चाहे भगवद् नाम उसके मुख से निकले या न निकले क्योंकि चिंतन में ही नाम का समावेश है। भगवान् तो अंतर्यामी है तो वह जान लेगा कि मेरे प्यारे भक्त का चिंतन इस जीव ने किया है जो कि मेरा सिरमौर है। मैं इसका उद्धार कैसे नहीं करूँगा ? इसको अधोगति में कैसे पहुँचा सकता हूँ ? इससे यह स्पष्ट हो गया कि चिंतन ही मुख्य है। नाम ज्यादा मुख्य नहीं है, हरिनाम उच्चारण हो चाहे न हो। इसलिए कहते हैं:

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

अगर हमारा भाव निरंतर चिंतन का हो जाए, तो सब कुछ मिल गया, इसका उदाहरण स्पष्ट है कि राक्षसों ने कभी नाम उच्चारण नहीं किया केवल दुश्मनी का भाव रख कर ही चिंतन किया और उनका उद्धार हो गया, पर भक्त तो गुरु का चिंतन भी करता है और भगवान् का भी। इसलिए भक्त के तो दोनों हाथों में लड्डू है, एक गुरु की कृपा का लड्डू और दूसरा भगवान् की कृपा का लड्डू। परन्तु राक्षस सिर्फ भगवान् का ही चिन्तन करते हैं और वह भी दुश्मनी से। तो उनके

केवल एक ही हाथ में लड्डू है इसलिए भक्त की ही जीत होगी, दो लड्डू से ज्यादा पेट भरेगा। मरते मरते भक्त का गला रुंध जाता है क्योंकि गले में कफ अटक जाता है तो नाम उच्चारण नहीं कर सकता लेकिन मन का चिंतन तो कर सकता है, उस चिंतन में ही नाम घुसा हुआ है, इसलिए कहते हैं:

सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें।।

(मानस, बाल. दो. 20 चौ. 3)

"सुमिरिअ" का मतलब है "चिंतन" और ऐसा करने से हृदय में भगवान् बड़े प्यार से प्रकट हो जाता है। "रूप बिनु" का मतलब है कि भगवान् को देखा नहीं है, लेकिन फिर भी सुमरिन से भगवान् हृदय में प्रकट हो जायेगा (आवत हृदय सनेह विशेषे)। चिंतन में भगवान् की लीला, धाम, नाम सब कुछ आ जाता है।

भक्त के चिंतन में भगवान् का चिंतन भी है क्योंकि भगवान् भक्त के हृदय में बैठा है, भगवान् अंतर्यामी है और जानता है कि यह मेरे प्यारे का चिंतन कर रहा है। भक्त जब मरेगा तो उच्चारण तो होगा नहीं उससे, पर गुरु का चिंतन तो करेगा ही क्योंकि मन तो चिंतन के बिना एक क्षण भी रुकता नहीं है, सोने के बाद भी चिंतन चलता रहता है, चिंतन तो निरंतर रहता ही है और जब मरेगा तो उसको अपने गुरु का चिंतन होगा और उसका उद्धार निश्चित रूप से भगवान् करेंगे।

गुरु भी ऐसा होना चाहिए जो पैसे और स्त्री से घृणा करता है, जो इन दोनों चीजों से दूर है वही भगवान् का प्यारा है पर ऐसा गुरु विरला ही मिलता है। साधारण गुरु, जो पैसे का दास हो, स्त्री का दास हो, उससे कोई उद्धार नहीं होगा क्योंकि वह भगवान् को तो चाहता ही नहीं है, केवल पैसे को चाहता है। 99% ऐसे ही संत हैं, कोई 1% ही ऐसा होगा जो पैसे को और स्त्री को नहीं चाहता।

भगवान् जानते है कि मेरे चिंतन से श्रेष्ठ, मेरे प्यारे भक्त का चिंतन है इसलिए भगवान् ने आज रात (11 सितम्बर, 2017) को यह लेख लिखवाया है। इसको पढ़ने से उसकी भी शंका खत्म हो जाएगी जो बिलकुल नास्तिक होगा।
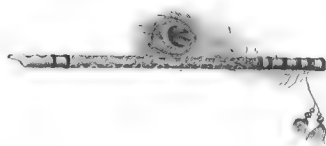
माया का प्रभाव

4 अगस्त 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास
अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो
तथा अहैतुकी प्रेमा भक्ति की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

मेरे गुरुदेव श्रीमद्भागवत महापुराण से ही अधिकतर बोला करते हैं। कहते हैं सृष्टि के पहले कुछ भी नहीं था, केवल भगवान् ही थे। क्षीरसागर में "नारायण" नाम से शेष–शैय्या पर भगवान् लेट रहे थे, जब भगवान् को खेल रचने की स्फुरणा हुई तो नारायण की नाभि से कमल नाल प्रकट हुआ। उस पर ब्रह्माजी प्रकट हुए। नारायण ही सारे अवतारों का कोश है। जब ब्रह्माजी को मालूम हुआ कि वह कहाँ से आये हैं तो उन्होंने चारों ओर मुस्कराकर देखा तो ब्रह्माजी के चार मुख प्रकट हो गये। सोचने लगे कि अब उन्हें क्या करना है? तो आकाशवाणी से आवाज सुनाई दी कि, "तुम सृष्टि रचो।"

ब्रह्माजी को विचार हुआ कि इस नाल में वह कहाँ से आये हैं? तो ब्रह्माजी नाल में यह जानने के लिए घुसे कि नाल का अंत कहाँ तक है? ब्रह्माजी को नाल का अंत नहीं मिला तो वापिस आकर कमल पर बैठ गये और सोचने लगे कि यह आकाशवाणी तो सृष्टि रचने हेतु बोल रही है तो वह सृष्टि रचें। पहले मानसिक रूप से ही सृष्टि होती थी। नर–नारी के संग से तो मनुजी के अवतार के बाद ही होने लगी। अब ब्रह्माजी ने सृष्टि रचना शुरू की, तो सृष्टि से प्रकट हुए जीव, ब्रह्माजी को ही खाने को दौड़े। ब्रह्माजी ने अदृश्य से प्रार्थना की, "ये सृष्टि तो मुझे ही परेशान कर रही है। मैं ऐसी सृष्टि नहीं रच सकता।" तो फिर आकाशवाणी सुनाई दी कि, "तप करो.. तप करो.. तप–तप" शब्द सुनाई दिए। ब्रह्माजी ने मन में सोचा कि अदृश्य द्वारा जो आवाज आई है उसका मतलब है, "तू मुझको

याद कर, मेरा स्मरण कर अर्थात् भजन कर।" ब्रह्माजी ने तपस्या करने के बाद में फिर सृष्टि रचना शुरू की तो भजन के फलस्वरूप, प्रथम में, सनक, सनातन, सनत, सनंदन, यह चारों भाई प्रकट हो गये। ब्रह्माजी ने इनको आदेश दिए कि तुम सृष्टि रचना करो, लेकिन चारों ने सृष्टि रचना उचित नहीं समझा।

तो ये चारों भाई भजन में लग गये। पहले ज्ञान मार्ग द्वारा भजन करने लगे। चारों भाई केवल पांच साल की उम्र के ही रहते हैं। ये अग्रज संतान के रूप में हैं। सबसे पहले, इन्होंने जन्म लिया, नारद जी ब्रह्माजी के मन से प्रकट हुए। इसके बाद में ब्रह्माजी ने सप्त ऋषियों को जन्म दिया, उनको सृष्टि रचने का आदेश दिया तो वे कुछ अनमने से हो गए तो ब्रह्माजी को क्रोध आ गया तो इनकी भौहों से रुद्र भगवान् प्रकट हुए, वह जन्म से ही रोने लगे तो इनका नाम रुद्र हो गया। अब ऋषियों ने भी सृष्टि रचना आरम्भ कर दिया, परन्तु सृष्टि बढ़ नहीं रही थी तो ब्रह्माजी के शरीर से दो टुकड़े प्रकट हुए। ये थे मनु तथा शतरूपा। मनु–शतरूपा से दो पुत्र हुए उत्तानपाद और प्रियव्रत एवं तीन कन्याएँ प्रकट हुईं– देवहूति, प्रसूति और आकूति। इनसे सृष्टि बढ़ने लगी। लेकिन फिर भी मन माफिक सृष्टि बढ़ी नहीं तो मनु के काल से नर–नारी के संग से सृष्टि बढ़ना आरम्भ हो गया एवं कामदेव को आदेश दिया कि सृष्टि बढ़ाना उसका काम है। सभी को प्रेरित कर के सृष्टि बनाने में सहायक बनो। जब भगवान् ने कामदेव को आदेश दिया तो कामदेव ने सृष्टि बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। चर–अचर प्राणियों को काम ने मोहित कर दिया। हमारे धर्म–शास्त्र में काम को अँधा बताया है और बोला है कि कोई भी माँ, बहन और बेटी के साथ एकांत में मत रहो वरना गलत कर्म बन जाएगा।

कश्यपजी बहुत बड़े उच्च कोटि के संत थे। उनकी दो पत्नियां थीं, एक का नाम दिति तथा दूसरी पत्नी का नाम अदिति। दिति राक्षसों की माँ थी और अदिति देवताओं की माँ थी। यह काम इतना शक्तिशाली व बलवान है कि उसने राक्षसों की माता दिति को परेशान कर दिया। संध्या का समय था। कश्यपजी भजन में लीन थे। दिति ने प्रार्थना की, "मुझे यह काम सता रहा है, मैं बेबस हो गयी हूँ अतः आप कृपा करो।" कश्यपजी बोले, "दिति! यह समय काम के अनुकूल नहीं है। थोड़ी देर ठहर जाओ।" लेकिन दिति ने जबरन उनके कपड़े पकड़ लिए। शास्त्र कहता है कि नर से नारी को कामदेव उन्नीस गुना अधिक सताता है। इसका प्रत्यक्ष

उदाहरण सामने आ गया, जो शास्त्र बोल रहा है। प्रत्यक्ष देखते भी हैं कि जब गाय का काम उग्र हो जाता है तो गाय गले की रस्सी को तोड़कर सांड को ढूंढ़ने के लिए भाग जाती है, फिर वापिस अपनी जगह आ जाती है।

यह सब भगवान् की ही माया है। इसको जीतना किसी के भी बस में नहीं है। ब्रह्मा, शिवजी को भी इस माया ने नहीं छोड़ा तो साधारण जीव की तो बात ही क्या है। गरुड़ तो भगवान् के वाहन हैं। जहाँ भी भगवान् जाते हैं, गरुड़ पर चढ़ कर जाया करते हैं। एक बार भगवान् ने समुद्र मंथन का आयोजन, इसलिए करवाया कि समुद्र से अमृत निकलेगा जिसको पीने से जीव अमर हो जाएगा। लेकिन समुद्र को मथना बड़ी टेढ़ी खीर थी। अकेले देवता समुद्र मंथन नहीं कर सकते थे। देवताओं का सिरमौर (राजा) इंद्र होता है। अतः भगवान् ने कहा, "इंद्र! तुम अकेले देवताओं के साथ समुद्र मंथन नहीं कर सकते, अतः राक्षसों को साथ में लेना उचित होगा। तब देवता और राक्षस मिलकर समुद्र मंथन सुगमता से कर सकते हैं।" भगवान्, इंद्र को बोले, "तुम राक्षसों के राजा बलि के पास चले जाओ और ये प्रस्ताव रखो कि समुद्र में से 14 रत्न निकलेंगे तो उसमें से, तुम्हारा भी हिस्सा होगा और फिर सभी अमर हो जाएंगे, अमृत आपको भी मिलेगा।" तो इंद्र ने भगवान् के कहने पर बलि महाराज को समझा दिया तो बलि महाराज राजी हो गये और बोले, "यह प्रस्ताव तो सोने पर सुगंध कर देगा और हम राक्षस समुद्र मंथन के लिए तैयार हैं, आप योजना तैयार करो।"

भगवान् ने देवताओं को समझा दिया कि जो भी राक्षस कहें तो उसमें वे हाँ कर दें। भूलकर भी न मत करें, वरना काम बिगड़ जाएगा। देवता बोले, "ठीक है, जैसा आप कहोगे, वैसा ही हम करेंगे।" भगवान् बोले, "देखो! मथनी बनाने हेतु मंदराचल पर्वत को समुद्र पर लाना होगा।" राक्षस व देवता दोनों लाने हेतु तैयार हो गये। दोनों दलों ने हाँ कर दी। अब दोनों दलों ने मंदराचल पर्वत को उखाड़ लिया, लेकिन मंदराचल पर्वत तो बहुत भारी है, उसे कैसे ले जाएंगे? दोनों दल हिम्मत करके बोले, "उठाओ, ले जाने में क्या मुश्किल है? उठाओ!" अब तो राक्षस और देवता दोनों ही दल जुट गए और उठा कर लाने लगे परंतु थोड़ी दूर में ही हांफने लगे, पसीना–पसीना हो गये और ले जाने हेतु हार गए। बोले, "भई! हम नहीं ले जा सकते, इतनी दूर ले जाना मुश्किल है।" मंदराचल

को नीचे धरती पर उतारने लगे तो दोनों दल के अनेक राक्षस और देवता दब कर चकनाचूर हो गये। जो शेष बचे थे, वे एक जगह बैठ कर सोचने लगे कि काम तो बिगड़ गया। इसको ले जाना तो असंभव ही है। सोचने लगे कि क्या किया जाए? तो उनमें जो वृद्ध थे, बूढ़े थे, उन्होंने कहा, "भई! इसका इलाज तो भगवान् ही कर सकते हैं। भगवान् को याद करो, वे ही इसका उपाय बता सकते हैं।" भगवान् को याद किया तो भगवान् गरुड़ पर सवार होकर आ पहुँचे और बोले, "क्या बात है? पहाड़ को धरती पर क्यों रख दिया?" दोनों दल बोले, "इसने तो बहुत से राक्षस और देवताओं को चकनाचूर कर दिया है, मार डाला है। हम इसे समुद्र तक नहीं ले जा सकते।" भगवान् गरुड़ से उतरे, जो देवता दब के मर गए थे, उन्हें अपनी दृष्टि से ही जिला (जीवित करना) दिया, राक्षस मरे पड़े रहे।

भगवान् बोले, "अरे! तुम सब दूर हो जाओ, मैं इस पर्वत को ले जाता हूँ।" दोनों दल वाले बोले, "हम लाखों से नहीं उठा तो आपसे कैसे जा सकता है?" भगवान् बोले, "शांति रखो। अभी उठा लेता हूँ।" भगवान् ने हाथ लगाया और पर्वत को गरुड़जी की पीठ पर रख दिया और स्वयं सवार हो गये और ले जाकर समुद्र के किनारे रख दिया। अब देखिये! गरुड़ कितने शक्तिशाली हैं, पूरा भार सहन करके ले गये लेकिन उसी गरुड़ को भी माया व्याप गयी। गरुड़ भी अछूता नहीं रहा। अब भक्त ध्यान से सुनिये! जो गरुड़, भगवान् का वाहन है, इतने भारी भार को आकाश मार्ग से ले गया। जिस मंदराचल पर्वत को राक्षस और देवता दोनों मिलकर भी नहीं ले जा सके, उसे गरुड़ ने कुछ नहीं समझा और उठा कर समुद्र के किनारे रख दिया। भगवान् की माया बड़ी प्रबल है। गरुड़जी को भी माया व्याप गयी। गरुड़ ने देखा, "ओ! हो! राम, नागपाश में बन्ध गए। यह भगवान् नहीं हो सकते, यह तो राजा दशरथ के पुत्र हैं, जो रावण से युद्ध करने, इस कारण से आए हैं, कि रावण ने इनकी पत्नी सीता को चुरा कर अपनी लंका में रख लिया है। अतः सीता को छुड़ाने आए हैं।"

बस क्या था, माया से अज्ञान का पर्दा, मंद बुद्धि पर पड़ गया और मन में चिंता की बाढ़ आ गयी। मन अशांत हो गया। सोचने लगा, "अब यह माया कैसे दूर हो? किसी सच्चे संत के पास जाने से ही मेरा दुख दूर हो सकता है।" तो शिवजी की प्रेरणा से गरुड़जी, काकभुशुण्डिजी के यहाँ गए। काकभुशुण्डि पर्वत पर एक वट वृक्ष के नीचे बैठ कर राम की कथा सुनाया करते थे जिसको सब पक्षी बैठ कर सुना करते थे। गरुड़ के जाने

से काकभुशुण्डि को बड़ा हर्ष हुआ और बहुत आदर–सत्कार करके उन्हें उच्च्य आसन पर बिठा दिया। गरुड़ ने प्रार्थना की, "मैं मायावश नीचे गिर चुका हूँ। अब आप ही मुझे उठा सकते हो।" काकभुशुण्डि बोले, "आपकी सेवा करना मेरा उच्च्य कोटि का धर्म है, आदेश करो, मैं क्या सेवा करूँ?" प्रसंग में तो काकभुशुण्डिजी ने, गरुड़ को अपनी जीवन बीती बातें सुनाई जो बहुत लम्बी हैं, यहाँ वर्णन करना असम्भव है, परन्तु संक्षेप में है कि काकभुशुण्डिजी अंत में लोमस ऋषि के पास गए।

तो लोमस ऋषि ने, गरुड़जी को, ज्ञान मार्ग की, निर्गुण उपासना बताई, जो गरुड़जी को अच्छी नहीं लगी क्योंकि गरुड़जी को 'अस्ति' अच्छी लगती थी। लोमस ऋषि बोले, "समुद्र व समुद्र तरंग में क्या फर्क है?" अर्थात् जीव और परमात्मा में कोई अंतर नहीं है। "अहम् ब्रह्मास्मि, अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूँ।" ऐसी बात सुनकर गरुड़जी को क्रोध आ गया, कथा बहुत लम्बी है अतः संक्षेप में ही गुरुजी बता रहे हैं। अंत में लोमस ऋषि ने गरुड़जी को वरदान दे दिया, "प्रलय होने पर भी वह मरेगा नहीं, सदा अमर रहेगा और सगुण उपासना में तेरा मन सदा रमण करता रहेगा।"

काकभुशुण्डि को 27 कल्प व्यतीत हो चुके थे। कल्प किसे कहते हैं वह भी गुरुजी बता रहे हैं कि हजार चौकड़ी का ब्रह्मा का एक दिन होता है अर्थात् सतयुग, त्रेता, द्वापर व कलियुग हजार बार निकल जायें, तब ब्रह्मा का एक दिन होता है, इतनी ही लम्बी रात होती है। जब ब्रह्मा की आयु के 100 वर्ष बीत जाते हैं, तब ब्रह्मा शांत हो जाते हैं और समस्त सृष्टि ब्रह्मा में समा जाती है। इसको ही एक कल्प बोला जाता है।

इस प्रकार काकभुशुण्डि को 27 कल्प हो गए। वह इस कारण गरुड़जी को बताने लगे कि भगवान् की सगुण उपासना से मृत्यु भी इसका (भक्त का) कुछ बिगाड़ नहीं सकती। काल और महाकाल भगवान् से थर–थर काँपता है लेकिन भगवान् बोलते हैं, "मैं भक्त से थर–थर काँपता हूँ।" जब भगवान् ही भक्त से कांपते रहते हैं तो मौत का क्या ठिकाना, मौत तो उसके आदेश की बाट देखती रहती है कि जब मुझे बुलाएगा तभी मैं जा कर उस पर हावी होउंगी।

काकभुशुण्डि गरुड़जी से बोल रहे हैं, "गरुड़जी! जब जब राम अवतार होता है, तब तब मैं वहाँ जाकर रामजी की बाल लीलाओं का दर्शन करता रहता हूँ।" ये सब रामायण में अंकित है जो मेरे गुरुजी भक्त समुदाय को बता रहे हैं। काकभुशुण्डि अब कलियुग के समय का

वातावरण बताने जा रहे हैं। काकभुशुण्डिजी बोल रहे हैं, "कलियुग तामसिक और दुष्ट स्वभाव का समय होता है, 'जैसे राजा वैसी प्रजा' हुआ करती है।" यह ध्रुव सत्य सब जानते हैं कि इस समय दुष्ट स्वभाव की संतानें हुआ करती हैं। न माँ–बाप की बात को मानती हैं न कुलगुरु को मानती हैं। मर्यादाहीन हुआ करती हैं। उग्रवाद का साम्राज्य चारों ओर फैला रहता है, इसको कोई हटा नहीं सकता है। यह सब समस्याएं भगवान् की फैलाई हुई हैं। ऐसी–ऐसी दुर्घटनाएं देखनी पड़ेंगी कि सज्जनगण बेहोश हो जाएँगे। दूसरों का मन, हृदय पत्थर जैसा बन जाएगा। कोई किसी को मानेगा नहीं, हर जगह स्वार्थ की बीन बजेगी। प्रेमनाम की जड़ ही उखड़ जाएगी। यह ऐसा कलियुग का समय होता है।

विभीषण, जो रावण का भाई था, उसे भाई ने ठोकर मार कर भगा दिया। अतः विभीषण रामजी के पास आ गया और रामजी को बोला, "हे नाथ! पुराण और वेद ऐसा कहते हैं कि अच्छी बुद्धि या बुरी बुद्धि सबके हृदय में रहती है। जहाँ सुबुद्धि होती है, वहाँ सब प्रकार की संपदाओं और सुख का विस्तार रहता है और जहाँ बुरी बुद्धि है वहाँ परिणाम में दुख ही दुख आ जाता है। रावण के हृदय में बुरी बुद्धि बस गयी है अतः यह मेरा भाई होते हुए भी मेरा दुश्मन बन गया, यह भविष्य में हमारे कुल का नाश कर देगा।" विभीषण रामजी को ऐसे बोल रहे हैं। भगवान् रामजी बोले, "विभीषण! तुम्हारे ऊपर लात मारी है तो रावण का नाश ही समझो।" शिवजी पार्वती को बोल रहे हैं कि जो साधु का अपमान करता है, वह नष्ट हो जाता है क्योंकि साधु भगवान् का प्यारा पुत्र होता है। भगवान् राम बोले, "जो मानव मन से निर्मल होता है, कपटहीन होता है वह मुझे प्राणों से भी प्यारा होता है।

विभीषण बोले, "हे राम! जीव की कुशल तब तक नहीं होगी, न मन में शांति हो सकती है, जब तक वह विषय वासना को छोड़कर, आपका भजन नहीं करता। भजन आप का नाम ही है।" जो नाम की शरण में है, साकार भगवान् को भजता है, दूसरे के हित में लगा रहता है और नीति और नियम में रहता है, जिनको ब्राह्मण के चरणों में प्रेम है। भगवान् कहते हैं, "ऐसा मानव उन्हें प्राणों से भी प्यारा लगता है।" फिर रामजी बोले, "विभीषण! जो शिवजी को नहीं मानता और मेरा भक्त है वह मुझे स्वप्न में भी अच्छा नहीं लगता। जो मेरे स्थापित किए हुए शिवजी का दर्शन करेगा तथा शिवजी पर गंगा जल चढ़ाएगा, वह मेरे वैकुण्ठ लोक में जाएगा।"

भगवान् राम नागपाश में बंध गये तो भगवान् के वाहन गरुड़जी को भी माया व्याप्त हो गयी कि वे भगवान् नहीं हो सकते, जो साधारण जीव की तरह बंधे पड़े हैं। भगवान् की कृपा के बिना माया किसी को भी नहीं छोड़ती। गरुड़ को एक बार अहंकार हो गया था कि भगवान् को वही लेकर जा सकता है और अन्य कोई पक्षी नहीं। अतः गरुड़ पर माया हावी हो गयी।

शिवजी बोल रहे हैं, "हे उमा! अनेक प्रकार के योग, जप, दान, तप, यज्ञ, व्रत और नियम करने पर भगवान् नहीं मिलते, जिस प्रकार भगवद् नाम जप से सरलता से मिल जाते हैं। कलिकाल में यह कितना सरल–सुगम उपाय बताया गया है। चाहे मन से जपो, चाहे बेमन से जपो। शास्त्र कह रहे हैं कि दसों दिशाओं में जीव का कल्याण निश्चित रूप से हो जाता है अर्थात् अन्त में वैकुण्ठ वास हो जाता है, लेकिन शर्त यह है कि नित्य 64 माला होनी चाहिएँ। चाहे बेमन से हों, चाहे मन से हों।"

भरत, रामजी के भाई हैं, वह कैसे हरिनाम जपा करते थे?

बैठि देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात।।

(मानस, उत्तर. दो. 1 (ख))

आंखों से आंसू बह रहे हैं और भगवान् का नाम जप रहे हैं। भरतजी कुशासन पर बैठ कर राम नाम जपते थे और हृदय में रामजी की छवि के दर्शन करते हुए, आँखों से आँसू बहाते रहते थे। इसी प्रकार से भक्त को नाम जप करना चाहिए।

राम बोले ,"विभीषण! जो दूसरों से द्रोह करते हैं, दुख देते हैं, परायी स्त्री व पराये धन पर दृष्टि रखते हैं, पराये लोगों की निंदा करते रहते हैं, ये पामर और पापमय मनुष्य नर शरीर धारण किए हुए साक्षात् राक्षस ही होते हैं। ऐसे अधम, अनुज, अल्प राक्षस कलियुग में बहुत सारे होते हैं।" फिर राम बोलते हैं :

ऐसे अधम मनुज खल कृतजुग त्रेता नाहिं।
द्वापर कछुक बृंद बहु होइहहिं कलिजुग माहिं।।

(मानस, उत्तर. दो. 40)

बड़े भाग मानुष तन पावा। सुर दुर्लभ सद् ग्रन्थन्हि गावा।।
ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुँ टेका।।

(मानस, उत्तर. दो. 42 चौ. 4)

करत कष्ट बहु पावइ कोऊ। भक्ति हीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ।।

(मानस, उत्तर. दो. 44 चौ. 2)

पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन साधु पद पूजा।।
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपटु करइ साधु सेवा।।

(मानस, उत्तर. दो. 44 चौ. 4)

अब विभीषण कहते हैं : "हे रामजी! सब साधनों का अंतिम फल यह है कि आपमें प्रेम बन जाए, जो केवल आपके नाम जपने पर ही हो सकता है।

गरुड़जी बोल रहे हैं :

भव बंधन ते छूटहिं नर जपि जा कर नाम।
खर्ब निसाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम।।

(मानस, उत्तर. दो. 58)

जिसका नाम लेने से जीव जन्म–मृत्यु से छूट जाता है, वह रामजी एक तुच्छ राक्षस से बंध गए? यह क्या बात है? यह भगवान् कैसे हो सकते हैं?" यह माया गरुड़जी को व्याप्त हो गयी। नागपाश में बंधना भगवान् की लीला थी। मर्यादा को रखने हेतु रामजी, नागपाश में बंध गये थे। गरुड़ पर माया हावी होने से उनका मन अशांत हो गया। सोचने लगे कि मन कहीं लगता नहीं, अब क्या किया जाए? यह माया, गरुड़ को इसलिए लगी क्योंकि गरुड़ को घमंड था। यह पीछे लिखा जा चुका है अतः अब गरुड़जी नारदजी के पास गये और नारदजी को बोले, "मुझे माया व्याप्त हो गयी है।" नारदजी बोले, "गरुड़! माया बड़ी बलवान है, ये किसी को नहीं छोड़ती। केवल शरणागत भक्त पर इसका जोर नहीं चलता। तुम ब्रह्माजी के पास चले जाओ। ब्रह्माजी के पास जाकर अपना सारा दुख उनको कहो।" गरुड़ ब्रह्माजी के पास पहुँचे तो ब्रह्माजी बोले, "इस माया ने तो मुझे भी बहुत नचाया है। तुम शिवजी के पास जाओ, वही कुछ उपाय बता सकते हैं।" गरुड़ को शिवजी रास्ते में ही मिल गए।

शिवजी सत्संग सुनने के लिए जा रहे थे तो शिवजी बोले, "रास्ते में तो कुछ उपाय नहीं बता सकता, तुम काकभुशुण्डिजी के पास चले जाओ। वहाँ रोज भगवान् की कथा हुआ करती है, वहीं पर तुम्हारा संदेह दूर हो जाएगा।"

तबहिं होइ सब संसय भंगा। जब बहु काल करिअ सतसंगा।।

(मानस, उत्तर. दो. 60 चौ 2)

"बहुत काल तक सत्संग करते हैं तभी संशय का नाश होता है। पक्षी, पक्षी की बोली समझता है, अतः काकभुशुण्डिजी के यहाँ पशु, पक्षी रोज कथा सुनने आते रहते हैं, आप भी वहीं पर कथा सुनो।" अब तो गरुड़जी ने काकभुशुण्डि के पास जाकर दण्डवत किया, तो काकभुशुण्डि ने उन्हें छाती से लगा लिया।

काकभुशुण्डिजी बोले, "मैं निहाल हो गया। आप आये, अत्यन्त आनन्द हो गया।" गरुड़जी ने विस्तार से अपनी व्यथा सुनाई। बहुत समय तक गरुड़जी काकभुशुण्डिजी की कथा सुनते रहे, जो संशय था, वह दूर हो गया, परन्तु कथा में आनंद होने से बहुत समय तक काकभुशुण्डिजी के पास ही रहे, वापिस नहीं गये। काकभुशुण्डिजी राम के जन्म से लेकर और राम ने वन से आकर अयोध्या पर 13000 वर्ष तक राज किया, तब तक की सारी कथा सुनाते रहे।

भगवान् ने आगे कहा, "शिक्षा गुरु कैसा होना चाहिए?" अतः बता देता हूँ। "ऐसा महापुरुष, जिसका स्वाभाव ऐसा बन गया हो कि वह प्रत्येक जीव मात्र में व कण–कण में मुझे ही देखता हो। वह फिर किससे बैर करेगा? उसको सब ही प्यारे लगेंगे। उसे सब जगह अपना प्यारा भगवान् अर्थात् मैं ही तो दिखूँगा। इसलिए वह सबको प्यार करता है। प्रत्येक जीव मात्र में और कण–कण में मुझे ही देखता है। जो भी कर्म करता है, वह समझता है कि इस कर्म से मेरे भगवान् सुखी होंगे। इस तरह वह मुझको ही सुखी देखना चाहता है। उसके पीछे मैं छाया की तरह चिपका रहता हूँ। मैं चाहूँ तो भी, मैं उससे दूर नहीं रह सकता। यदि ऐसे (भक्त) शिक्षा गुरु का मरते समय चिंतन हो गया तो वह चिंतन मेरे चिंतन से भी ज्यादा उत्तम होगा। जैसे अगर किसी ने अपने पूरे जीवन में बकरी चराई हो तो उसे मरते समय बकरी का ही चिंतन होगा। यह ध्रुव सत्य सिद्धान्त है। जिसका मन पूरी उम्र भर जिस काम में फंसा हुआ है, मरते

समय वही काम जरूर उसके दिमाग में आएगा और उसका ही चिंतन होगा। जो जिन्दगी भर जो करता है उसका ही चिंतन होता है।"

इसलिए शास्त्र बोलता है कि हर क्षण भगवान् को याद रखो। शास्त्र भगवान् की साँसों से ही निकले हैं, उनका पठन–पाठन करते रहो और संतों से मेल–मिलाप करते रहो तो संतों की कृपा से संसार का वैराग्य हो जाएगा और भगवान् में मन लगता रहेगा। इसलिए सदा सत्संग में रहो। श्रीमद्भागवत में भगवान् कह रहे हैं कि, "हे उद्धव! मैं केवल सत्संग से मिलता हूँ। दूसरा मेरा कोई रास्ता नहीं है।" इसलिए, हम कितने भाग्यशाली हैं अगर हमें ऐसा कोई शिक्षा गुरु मिल जाए, उत्तम पुरुष मिल जाए और उनकी शरण में हम चले जाएं तो हमारे दोनों हाथों में लड्डू होंगे। या तो भगवान् का चिंतन होगा या हमारे गुरु महाराज का हो जाएगा। इसलिए हमारे दोनों हाथों में लड्डू आ गये।

संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : नाम जप करते हुए विरह नहीं हो पाता है, तो क्या किया जाए कि विरह भाव आ जाए ?

उत्तर : विरह क्यों नहीं आता है। वह इसलिए नहीं आता है क्योंकि 80 प्रतिशत मन, संसार में घूम रहा है। अगर 80 प्रतिशत मन भगवान् में हो तो अपने आप, न चाहते हुए भी विरह हो जाएगा। अभी तो मन संसार में फंसा हुआ है। पहले तुम सात आचरण सीखो। जो सात आचरण, मेरे गुरुदेव ने बताए हैं। ऐसा स्वभाव बना लो तो अपने आप भगवान् में मन लगेगा, हरिनाम में मन लगेगा। हमारा स्वभाव गंदा है, इसलिए आपको विरह कैसे हो सकता है। विरह नहीं होगा।

जो बोओगे सो पाओगे

11 अगस्त 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तजनों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार करें और हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद करें।

भक्तगण सुनिये! कोई किसी को दुख–सुख नहीं देता। जैसा मानव कर्म करता है वैसा ही उसे दुख–सुख उपलब्ध होता है। तभी तो हमारा धर्मशास्त्र यह घोषणा कर रहा है कि :

कर्म प्रधान विश्व रचि राखा.... कर्म प्रधान है।

विश्व की रचना ही कर्म से होती है। यदि कर्म का जन्म न हो तो जगत् की सृष्टि हो ही नहीं सकती। संन्यासी तो खुलकर कुछ कह नहीं सकता, मैं तो गृहस्थी हूँ। मैं खुलकर सब बात बता सकता हूँ, कह सकता हूँ। जैसे किसान खेत में बाजरा बोता है, तो जो बीज बोएगा, वही तो हस्तगत होगा, वही तो मिलेगा, अर्थात् बाजरा ही उपलब्ध होगा। किसान चाहे कि मुझे बाजरे की जगह चावल मिल जाए तो यह असंभव है। जो बोयेगा, वही मिलेगा। ऐसे ही मानव गृहस्थी भी किसान का प्रतीक ही है। यह भी सृष्टि को बढ़ाने हेतु सत, रज, तम बीज बोता है। सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण ये तीन बीज हैं, इसमें से कोई सा भी बीज बो सकता है। जो सतोगुण स्वभाव से बीज बोयेगा तो अच्छे स्वभाव का बच्चा होगा, स्वयं ही बच्चे के रूप में जन्म लेता है। जैसा बीज बोयेगा उसी का तो जन्म होगा। जैसे मानव नीम या आम का बीज, पृथ्वी माँ में बोता है तो जिस पेड़ का बीज बोया है, वही पेड़, पृथ्वी माँ के उदर से तथा वही फल, पेड़ से पैदा होगा। ऐसा तो नहीं हो सकता कि बीज बोये आम व नीम का और पृथ्वी माँ के गर्भ, पेट से निकले बरगद या पीपल। यह तो नियम के

विरुद्ध बात हो गयी। जो बोएगा, वही हस्तगत होगा, वही पा सकेगा। भक्त सदा चाहता है कि साधारण रूप से ही हमें भगवान् का दर्शन हो जाए। ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि भौतिक आँखों से भगवान् का दर्शन होना बिलकुल असंभव बात है। चिन्मय नेत्र होने चाहिएँ, भगवान् का दर्शन तभी होगा। दिव्य चक्षुओं से दर्शन हो सकता है। यह दर्शन केवल उन भाग्यशालियों को ही उपलब्ध होता है जिनका मन केवल भगवान् को ही चाहेगा और कुछ नहीं चाहेगा। वह जो भी कर्म करेगा, भगवान् के सुख के लिए करेगा। जैसे गोपियाँ करती थीं।

जिसे मायामयी विषयों से वैराग्य हो और वह केवल भगवान् को ही चाहे। जिस प्रकार गोपियाँ घर–गृहस्थी को छोड़कर केवल भगवान् के सुख के लिए ही कर्म करती थीं। उनका मन भगवान् में रम गया था। ऐसे भक्तों को भगवान् दिव्य चक्षु प्रदान करते हैं, जैसे अर्जुन को भगवान् ने दिव्य चक्षु देकर अपना विराट रूप दिखाया था। ये पक्का ध्रुव सत्य सिद्धांत है कि जो भी उम्र भर जिस काम को करता है, उसे मृत्यु के समय वही विषय याद आता है। जैसे जिसने उम्र भर बकरियां चराई हैं, उनमें ही घुल मिल गया है, तो उसे मरते समय बकरियाँ ही याद आयेंगी और वह बकरी के पेट से ही जन्म लेगा।

तो धर्मशास्त्र की घोषणा है कि :

पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन साधु पद पूजा।।
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपटु करइ साधु सेवा।।

(मानस, उत्तर. दो. 44 चौ. 4)

फिर भगवान् कृष्ण, स्वयं अपने मुखारविंद से बोल रहे हैं कि :

मन क्रम बचन कपट तजि जो कर सन्तन सेव।
मोहि समेत बिरंचि सिव बस ताकें सब देव।।

(मानस, अरण्य. दो. 33)

अर्थात् जो सच्चे दिल से संत की सेवा करता है तो मैं, शिव और सब देवता उसके अनुकूल रहते हैं, ऐसे भक्त से प्यार करते हैं। भक्त पर जहाँ भी दुख कष्ट आया, भगवान् ने उसको हर प्रकार से बचाने की कोशिश की है। अर्जुन को कई बार बचाया है। नरसी भक्त के उलाहना देने पर, उसका अलौकिक भात भरा था। मीरा को कई बार जहर देकर, जहरीला

सांप भेज कर मारने की कोशिश की, तब भगवान् ने मीरा को बचाया। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं, प्रह्लाद को मारने में कोई कसर नहीं छोड़ी परंतु प्रह्लाद का बाल भी बांका नहीं हो सका। जिसने भी भक्तों को सताया है, वही मारा गया है। यही तो भगवान् की लीला है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

देखिए मानव जन्म अत्यंत ही दुर्लभ है, सुदुर्लभ है। इसको बेकार के काम में लगाकर मानव अपना नाश कर रहा है। दुख सागर में गोते खा रहा है। धर्मशास्त्र व संत मानव के पीछे पड़ कर, उसकी आंखें खोलते ही रहते हैं, लेकिन दुर्भागा मानव अचेत होकर सोता रहता है। कितने दुख की बात है। अरे मानव! तुझको भारतवर्ष में जन्म मिला है, जहाँ देवियाँ पवित्र नदियों के रूप में तुम्हारा उद्धार करने आ रही हैं, जिनमें स्नान करने से पापों का नाश हो जाता है। भगवान् यहाँ हर मनु के मन्वंतर में जन्म लेकर मानव की आँखें खोलते रहते हैं परंतु दुर्भागा मानव सुख की ओर देखता भी नहीं है। कितने आश्चर्य की बात है। अनंत कल्पों से मानव दुख सागर में डूबा हुआ है, सुख का तो नामोनिशान नहीं है। यही तो भगवान् की माया है जो सदा मानव को अंधा रखती है। यह भी आदेश भगवान् का ही है कि जिस आदेश का पालन बेचारी माया को करना ही पड़ रहा है। माया भी बेचारी क्या कर सकती है? लेकिन कलियुग में जन्म होना भी बड़े भाग्य की बात है। देवता और सतयुग, त्रेता, द्वापर के मानव भी कलियुग में जन्म लेने के लिए तरसते रहते हैं कि हमारा जन्म कलियुग में हो जावे तो सदा के लिए हमारा भी उद्धार हो जाये।

कृत युग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पाबहिं लोग।।

(मानस, उत्तर. दो. 102 ख)

हरिनाम में कुछ करना ही नहीं पड़ता। शुद्धि–अशुद्धि की भी कोई आवश्यकता नहीं, चाहे मन से, चाहे बेमन से हरिनाम करो तो भी जीव का उद्धार होना निश्चित है। इसलिए सब चाहते हैं कि हमारा कलियुग में जन्म हो जाए और भारतवर्ष में हो जाए तो सोने में सुगंध हो जाए। भगवान् बोल रहे हैं :

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

यदि मानव बेमन से भी 64 माला करेगा, तो उसे वैकुण्ठ की प्राप्ति निश्चित रूप से होगी। क्यों हो जाएगी? इसका कारण है कि 10 दिशाओं के अलावा ग्यारहवीं दिशा तो है ही नहीं। इन दिशाओं में वैकुण्ठ और गोलोक भी आते हैं। अतः कलियुग में मानव को कुछ नहीं करना पड़ता, जब चाहो तभी हरिनाम जपते रहो। 24 घंटे में 64 माला तो बड़ी आसानी से हो जाती हैं। इसमें क्या मुश्किल है? क्या परेशानी है? जो बिल्कुल ही कर्मफूटा होगा उसके मुख से एक हरिनाम भी नहीं निकल सकता। अतः उसके लिए नर्क व 84 लाख योनियां तैयार हैं। एक उदाहरण है कि जैसे किसी ने पूरी उम्र बकरियां चराई हैं, तो उसको अंत समय, जब मौत आएगी तो उसको बकरी की ही याद आएगी और बकरी से ही उसको जन्म लेना पड़ेगा। इसी प्रकार भक्त, शिक्षा गुरु के पास नाम महिमा सुनता रहा है। पूरी उम्र भर शिक्षा गुरु के पास आता रहा है तो उसे अंत समय में जब मौत आएगी तो उसे शिक्षा गुरु की याद अवश्य आएगी क्योंकि सदा ही उसका, शिक्षा गुरु से संपर्क रहा है। भगवान् को उसने न देखा है, न वह भगवान् के पास में रहा है। अतः महापुरुष की याद से ही उसका उद्धार निश्चित है।

लेकिन महापुरुष कैसा होता है? उसका उल्लेख, धर्मशास्त्रों में अंकित है। महापुरुष को कैसा होना चाहिए?

महापुरुष को कंचन, कामिनी, प्रतिष्ठा से तो कोई मतलब ही नहीं है। धन, मकान, दुकान, खेत, जो भी वैभव है, वह कंचन में आ जाता है। उससे जो भी कर्म होगा, वह भगवान् की खुशी हेतु ही होगा। निस्वार्थ कर्म होगा। वह सब का भला चाहेगा, किसी से भी द्वेष नहीं करेगा। जो भगवान् ने उसे दिया है, उसी में संतोष रखेगा। सब प्राणियों में, उसे अपना प्यारा भगवान् ही नजर आएगा। किसी में गुण–दोष नहीं देखेगा, उसको बुरे स्वभाव में भी गुण ही नजर आएगा। जिसका बुरा स्वभाव है, उसमें भी गुण ही दिखता है क्योंकि उसका चश्मा ही ऐसा हरा–हरा है कि सब चीज उसको हरी–हरी ही दिखेगी। एकांत में रहना पसंद करेगा, ग्राम चर्चा से दूर रहेगा, सबसे मीठा बोलेगा, दूसरे को दुखी देखकर स्वयं दुखी हो जाएगा। ऐसा शिक्षागुरु होना चाहिए। ऐसे बहुत से गुण महापुरुष में

होते हैं। ऐसे स्वभाव का भक्त, भगवान् को, हृदय से भी अधिक प्यारा होता है। न भगवान् उसे छोड़ेंगे, न वह भगवान् को छोड़ेगा। रात–दिन, उसका ही स्मरण, उसके मन में चलता ही रहेगा। मौत के समय, ऐसे भक्त का स्मरण, उसे वैकुण्ठ पहुँचा देगा।

इस कलिकाल में ऐसा भक्त मिलना बहुत मुश्किल है। जो भगवान् का प्यारा होगा, उसे ही भगवान् ऐसे महापुरुष से मिला देंगे, वैसे तो ढूंढने से भी नहीं मिलेगा। सुकृतिशाली ही महापुरुष को पा सकेगा। कलियुग में कपटी संतों की कोई कमी नहीं है, बहुत से होंगे। ऐसा हमारे धर्मशास्त्र भी बोल रहा है।

यदि मानव के केवल 2 स्वभाव बन जायें, तो भगवान् उसे एक क्षण भी नहीं छोड़ते। सिर्फ 2 स्वभाव बस। पहला है कि जो भी कर्म करें, भगवान् के सुख के लिए करें। भगवान् की खुशी हेतु करें। दूसरा है कि मानव कण–कण में तथा जीव मात्र में भगवान् को ही देखे। ऐसा करेगा तो वह किस से दुश्मनी करेगा? किसे दुख देगा? बस यह 2 स्वभाव हो जाएँ तो सब गुण स्वतः ही उसमें आ जाएंगे, उसके हृदय में बस जाएंगे। प्रयास करने की बिल्कुल भी आवश्यकता नहीं होगी। गोपियों का ऐसा ही भाव था।

संसार में देखा जाता है कि कई साधक मंजरी भाव में रत है, लेकिन मंजरी भाव बहुत खतरनाक है। इसमें कामवासना की गंध भी नहीं होनी चाहिए, नहीं तो नरक की तैयारी हो जाएगी। ब्रह्माजी, शिवजी भी इस दुष्कर काम से नहीं बच सके। मायामय जीव इससे कैसे बच सकेगा? मेरे गुरुदेवजी ने मुझे बोला था कि तुम श्रीमद्भागवत पुराण में जो रासपंचाध्यायी है, उसे कभी मत पढ़ना। दूसरा, न कभी रासमंडल में जाकर रास देखना। केवल रामलीला, जहाँ हो रही हो वहाँ जरूर जाना। हरिनाम जपते–जपते हरिनाम से ही जीव को, भाव का रंग चढ़ आता है। क्योंकि हरिनाम भगवान् जानते हैं कि अमुक जीव किस भाव का ग्राहक है। अपने मन से स्वयं भाव लेना केवल कपट है। मैंने देखा है कि एक लड़की, मंजरी भाव में रंगी हुई थी तो मेरे पास आकर रोती रहती थी, "मैं तो राधेजी की गोद में रहती हूँ, इसलिए रोती रहती हूँ।" फिर पता चला कि एक पुजारी के साथ भाग गई। ऐसा भाव था उसका। वह पुजारी भी मंदिर में, भगवान् का गहना–वहना, सब लेकर भाग गया। सब जगह कपट ही कपट फैला हुआ है, सच्चाई तो ढूंढने से भी नहीं मिलेगी।

अभी तो जीव एल.के.जी. का विद्यार्थी भी नहीं है और पी–एच.डी. में जाकर बैठ गया। कितनी मूर्खता है! भेड़ चाल की तरह सभी राधा भाव में भावित हो गए, सभी राधा की मंजरी बन गई हैं। श्रीमद्भागवत महापुराण में लिखा है कि राधा कृष्ण की आत्मा है। क्या कृष्ण के बिना राधा (आत्मा) रह सकती है? कैसी मूर्खता है। पहले अपने मन को टटोलो, मन तो राग–द्वेष में रंगा हुआ है। कितने अवगुण इसमें भरे पड़े हैं। मंजरी, गोपियों जैसा क्या तुम्हारा स्वभाव है? क्या तुम भगवान् के लिए रात–दिन रोते हो? क्या, तुम्हें रात को सोने पर आध्यात्मिक स्वप्न आते हैं? नहीं आ सकते, केवल कपट की ही भक्ति है। यह अधिकतर नारी जाति में है।

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 3)

मैं स्पष्ट कहने वाला हूँ, कोई नाराज हो तो हो जाओ, मुझे कोई परवाह नहीं है। सच्ची बात कहने में क्या बुराई है? नारी जाति करती कम है और दिखाती ज्यादा है क्योंकि उनका स्वभाव ही ऐसा होता है। ब्रह्माजी कह रहे हैं कि नारी को मैं भी नहीं समझ सकता। मेरे लिए 16 साल की लड़की से लेकर 20 साल की नारी तथा 60 साल की नारी को, माँ का दर्जा ही भगवान् की कृपा से प्रेरित है। सभी मेरी माँ हैं।

'इसी जन्म में भगवद् प्राप्ति' में पढ़ कर देखें कि एक ही विषय पर कितने अधिक और विस्तार में भगवान् ने पुस्तक लिखवाई हैं? मेरे बाबा ने प्रेरणा करके लिखाई हैं और अब भी शुक्रवार को हर हफ्ते में ही लिखाते रहते हैं। मैं तो एक माइक (ध्वनि विस्तारक–माइक्रोफोन) का काम ही करता रहता हूँ। टेक्निकल (तकनीकी) राजकीय सेवा करने वाला लेखन कार्य कैसे कर सकता है? मैं तो टेक्निकल सर्विस (तकनीकी नौकरी) में था। ये तो विचार करने की बात है।

माँ अपने बेटे को ही थप्पड़ मार सकती है अन्य को नहीं। फिर भी शिशु, माँ के पास जाकर उसके ही कपड़ों में चिपकता है, पिता के पास नहीं जाता। पिता रोज उसे डाँटता है वह फिर माँ के पास जाएगा और माँ अगर डाँटती है फिर भी माँ के कपड़ों में ही चिपकेगा। तो शिशु माँ से नाराज होता है? कदापि नहीं। यदि नाराज होता है तो सच्चा प्यार नहीं है, सच्ची शरणागति नहीं है। यह ध्रुव सत्य सिद्धांत है। इसी प्रकार अपने प्यारे भक्तों को भगवान् दुख कष्ट में डाल देते हैं, तो वह भगवान् से नाराज नहीं

होता है और कितना भी कष्ट दे, वह भगवान् से ही चिपकेगा। भगवान् से कभी दूर नहीं होगा। सच्चा प्यार उसी का है जो मरने पर भी उसी की शरण में जाये। यदि ऐसा नहीं है तो कपट का प्यार है इसलिए मैं परीक्षा करता रहता हूँ कि कौन कैसा है? मैं नाराजगी से नहीं डरता। उसके नीचे गिरने से, उसका अमंगल होने से मैं बोल देता हूँ। मानव की थोड़ी सी भी योग्यता नहीं है और चाहता है कि मैं गोलोक धाम चला जाऊँ।

कर्म कैमेडी और मन राजा

सब झूठी कामना है। गोलोक धाम कैसे स्वभाव वाला जाता है? धर्मशास्त्र घोषणा कर रहा है। अब ध्यान से सुनें, कृष्ण बोल रहे हैं कि ऐसा स्वभाव है किसी का? एल.के.जी. में पड़ा है और बैठना चाहता है पी–एच.डी. में। कैसी मूर्खता है? सुनने से भी हंसी आती है। उससे पूछना चाहिए कि तेरे को स्वप्न कैसे आते हैं? क्या तू रोता है स्वप्न में? झूठा! शिवजी बोल रहे हैं :

गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान।।

(मानस, उत्तर. दो. 125 ख)

ज्यादातर प्राणियों का जन्म दाता तो भगवान् ही है। पशु–पक्षी तो खाना, पीना और मैथुन करना ही जानते हैं। इनको अपने उद्धार करने का मालूम नहीं है। इन्हीं पर कृपा करके ही भगवान्, मानव जन्म देते हैं। मानव अपना बुरा भला जानता है, लेकिन माया के वशीभूत होकर उसे अपने उद्धार होने का सच्चा मार्ग मालूम नहीं है। जो अपने माँ–बाप से बिछुड़ जाता है, उसे जीवन भर ठोकरें खानी पड़ती हैं। अतः सदा दुखी रहता है।

अब किसी विरले को संत की सेवा का मौका मिल जाए तो भगवान् ऐसे मानव को सच्चे संत से मिला देते हैं। यह संत बिछुड़े हुए मानव को इसके बाप से मिला देते हैं, लेकिन यह मौका मिलना बहुत कठिन है। भगवान् बोलते हैं :

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।।

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 1)

जब सुकृति वश, भगवान् का नाम, संत द्वारा प्राप्त कर लेता है, उसे जप कर वह अपना उद्धार कर लेता है। इसके बीच में बहुत से रोड़े भी आ जाते हैं, जिनसे पार होना बहुत मुश्किल है। जो संत में अवगुण देख लेता है तो अपराध बन जाता है, भगवान् रुष्ट हो जाते हैं तो इसका हरिनाम जपना रुक जाता है। कलिकाल में सच्चा संत मिलना बहुत मुश्किल है और मिल भी गया तो उसमें भी साधक दोष देख लेता है क्योंकि साधक का मन निर्मल नहीं होता। इसका कारण, इसके पिछले जन्मों के बुरे संस्कार, इसे शुद्ध मार्ग पर जाने नहीं देते हैं। भगवद् माया इसे सताती रहती है। यह माया ब्रह्मा, शिव को ही नहीं छोड़ती तो साधारण मानव की तो बात ही क्या है। अतः शास्त्र कहता है कि करोड़ों प्राणियों में कोई ही भगवान् की शरण में पहुँचता है। केवल हरिनाम ही कलियुग का नाश करता है, ऐसे भी हरिनाम करता रहे तो उसका उद्धार निश्चित है। यदि यह किसी में दोषारोपण करेगा तो दोष देखना सबसे खतरनाक है। हरिनाम करने में यह बहुत बड़ा रोड़ा है। पूर्ण निष्ठा और विश्वास का होना बहुत जरूरी है। कोई किसी को दुख–सुख नहीं देता, अपना शुभ–अशुभ कर्म ही प्राणी को दुख–सुख देता है।

कर्म प्रधान विस्व रचि राखा ..

तो भगवान् को भी कर्म करना पड़ता है। बिना कर्म किये भगवान् भी नहीं रह सकते। एक प्रकार से कर्म भगवान् का ही प्रतीक है। जैसा प्राणी करता है, शुभ–अशुभ, उसका ही प्रत्यक्ष फल भोगता है। सभी प्राणी सुख चाहते हैं, दुख किसी को अच्छा नहीं लगता। फिर भी शास्त्र विरुद्ध कर्म करते रहते हैं। इसका खास कारण है, माया के हथियार। सतोगुण, तमोगुण तथा रजोगुण। इनसे ही सृष्टि का विस्तार होता रहता है। जिस धारा में जो गुण हावी होता है, उसी धारा का प्राणी का स्वभाव बन जाता है। दुख कोई नहीं चाहता, लेकिन तामसिक गुणों में कर्म करता है तो दुख का बीज उसका स्वतः ही बोया जाता है। इसमें प्राणी मजबूर है। इस धारा में स्वभाव उग्र तथा क्रोधवृत्ति में हो जाता है। अच्छा कर्म करने का इसका मन करता ही नहीं है, बुरे से बुरे कर्म करने में मन को खुशी होती है। कोई इसे समझा दे तो उस पर क्रोध होता है। इसी प्रकार सतोगुण के मन में गंगा बहती है तो उसे अच्छा कर्म करने में आनंद अनुभव होता है। मीठा बोलेगा, सबका भला चाहेगा, मन दान–पुण्य करने में होगा। भगवान् की तरफ वाले कर्मों में इसकी रुचि होगी। जब रजोगुण की मन में धारा बहेगी तो प्राणी की यह वृत्ति होगी कि यह कर लूँ, वह कर लूँ, इतना कमा लूँ, अमुक काम कर लूँ।

पैसा किसी भी प्रकार से आ जाए, गलत–सलत करने में भी नहीं सोचेगा। तीनों धाराओं में ही प्राणी संतान उत्पन्न करता है, फिर शिकायत करता है कि उसका पुत्र उसका कहना नहीं मानता। भक्ष–अभक्ष खाता है, गुंडा गर्दी करता रहता है। इसमें पुत्र का कोई दोष नहीं है। दोष है दंपत्ति का। इन्होंने न समय देखा, न शास्त्र की बात मानी। अब क्रियाकर्म भोगो, इसमें दूसरा क्या करेगा? कलियुग में ऐसी ही संतानों की भरमार है जो माँ–बाप को तथा आसपास वालों को सताते रहते हैं। अब दुष्टों को तो कोई फर्क नहीं पड़ता, सज्जन हैरान हो जाते हैं। यह सब पिछले कुल का ही प्रभाव है। माँ–बाप का पिछला कुल ही बदमाश था।

जैसे पिछली बेल होगी, वैसा ही फल लगेगा। श्रीमद्भागवत महापुराण में आता है कि राजा वेन बहुत बुरा शासक था। अपनी मनमानी से राज करता रहता था। संतों ने बहुत समझाया, परंतु उसने किसी की एक नहीं मानी, अतः संतों को गुस्सा आ गया, श्राप दे दिया तो वह मर गया। संसार में राजा के बिना अराजकता फैल गई। डाकू सब को परेशान करने लगे। संतों ने सोचा कि अब क्या किया जाए? तो सभी संत बोले, "यह वेन तो दूषित प्रकृति का है लेकिन इसके पुरखे, अच्छे स्वभाव वाले थे। अतः इसमें उनका जरूर प्रभाव होगा, उनका असर है। अतः इसकी जांघ को मथो।" जब जांघ को मथा तो पृथु महाराज प्रकट हुए, जो भगवान् के ही अंश अवतार थे। इसका निष्कर्ष यह निकलता है कि पिछली पीढ़ी जैसी होती है तो अगली पीढ़ी में उसका प्रभाव रहता है। पिछली पीढ़ी दुराचारी थी तो अगली पीढ़ी इससे भी अधिक दुराचारी प्रकृति की होगी। यदि पिछली पीढ़ी सत्य पर आरूढ़ हो तो अगली पीढ़ी उससे भी अधिक सत्यवान होगी। इसका खास कारण है खून। जैसा खून होगा वही प्राणी का स्वभाव होगा। सभी देखते हैं कि हॉस्पिटल में मरीज को जब खून की जरूरत होती है तो मरीज के खून से खून मिलाकर ही उसको खून चढ़ाया जाता है। यदि विपरीत खून चढ़ गया तो मरीज मर जाता है। किंतु प्रत्यक्ष आप सभी देख ही रहे हैं कि खून का कितना प्रभाव है। कबूतरी की शादी कौवे से कर दी जाए तो उनमें कैसे बनेगी? क्योंकि खून ही अलग अलग गुण वाला है।

भक्ति का मतलब है भगवान् में आसक्ति

18 अगस्त 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण युगल में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो एवं हरिनाम में रुचि होने की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

देखो! हमारे, पिछले जन्मों के ऋण होते हैं। मानव पर 5–6 ऋण होते हैं। यदि नहीं चुकाया तो उसको चुकाने हेतु भले ही अगला जन्म लेना पड़े परंतु चुकाना ही पड़ेगा। मेरे गुरुदेव बता रहे हैं कि वह ऋण कौन–कौन से हैं। पहला है माता–पिता का ऋण। आरंभ में ही माता–पिता कारण हैं। माता–पिता ने, हम पर 20–25 साल तक तन, मन, धन, वचन, सब तरह से, सब कुछ न्योछावर किया और हमने माता–पिता का ऋण नहीं चुकाया तो वापिस हमको जन्म लेना ही पड़ेगा। माता–पिता के आदेश का पालन करना चाहिए। माँ–बाप की सेवा से ही भक्ति मार्ग आरंभ होता है। यदि माँ–बाप की सेवा से मानव वंचित रहता है तो भक्ति मार्ग उसके लिए सदा के लिए बंद हो जाता है। चाहे करो लेकिन वह कपट ही होगा, उसमें कोई रस नहीं आएगा, आनंद नहीं आएगा। करते रहो, देखा–देखी करते रहो, कुछ नहीं मिलेगा। यदि माँ–बाप भक्ति के लिए अनुकूल नहीं तो भी पुत्र का कर्तव्य है कि माँ–बाप की सेवा करता रहे, तो उसको सुख का मार्ग स्वतः ही उपलब्ध हो जाएगा। फिर है पितृ ऋण। यह हमारे बड़ों का ऋण है, बड़ों का ऋण चुकाना पड़ता है। हम कहीं भी तीर्थ पर जाते हैं तो तर्पण वगैरह करते हैं। उनका (अपने पितरों का) श्राद्ध समय पर करता रहे। श्राद्ध आते हैं, तो उनका श्राद्ध जरूर करना चाहिए। हमारे श्रीचैतन्य महाप्रभुजी भी श्राद्ध किया करते थे।

फिर तीसरा ऋण है भूत ऋण। भूत अर्थात्, जितने जानवर वगैरह हैं हम पर उनका ऋण है। जिसको भूत समुदाय कहा जाता है। जो हमें स्वस्थ रखने में सहायता करते रहते हैं। गंदी चीजों का भक्षण करके जल, वायु को शुद्ध बना देते हैं। सभी प्राणी मानव के लिए पुत्र समान होते हैं, उनका भरण–पोषण करना जैसे कबूतरों को दाना डाल दें, ऐसे ही चीटियों को तिल और आटा, उनके बिलों में डाल दें और जो दोपाये या चौपाये जानवर हैं, उनको घास आदि भोजन डाल दें, मछलियों को गीला आटा करके गोलियां बनाकर कर डालें तो मछलियों का खाना मिल जाएगा। यह भूत ऋण है क्योंकि ये मरे हुए जीवों को खा कर सफाई करते हैं। यह वातावरण शुद्ध करके हमको बहुत सहायता करते हैं तो इनका ऋण हो जाता है। गंदगी को खा जाते हैं, हमको स्वस्थ रखना चाहते हैं आदि आदि। फिर देव ऋण, देवताओं का ऋण होता है। जो हमको सभी तरह के सुख–साधन जुटाते हैं। सूर्य भगवान् धूप देते हैं, हमारी पृथ्वी माँ अन्न देती है, हवा देते हैं, अग्नि देते हैं, आकाश देते हैं, पानी आदि–आदि देते हैं। यह उनका कर्जा है। हमें उतारना है। यानि देवताओं को मनाना पड़ेगा। हमें उन्हें त्योहारों पर मनाना चाहिए। उनको भोग लगाना चाहिए। भोग कैसे लगेगा? तुलसीदल डाल के पहले भगवान् को भोग लगाओ तो उसके बाद देवताओं को भोग लगाओ। भगवान् का प्रसाद पाकर देवता बहुत प्रसन्न होते हैं। हमारे पर्व आते हैं, त्योहार आते हैं। अगर हम उनको नहीं मनाते हैं तो हम पर ऋण चढ़ जाता है फिर हमको दोबारा जन्म लेना पड़ता है। ऋषि ऋण, ऋषियों का ऋण है। आचार्य हमारे गुरुजी हैं, कुल परंपरा है। सत्संग का रास्ता दिखाकर अच्छे अवसर प्रदान करते हैं। एक कर्जा है आचार्यगण का। जो हमें भवसागर से पार लगाते रहते हैं। दीक्षा और शिक्षा देकर हमें माया शक्ति से छुड़ाते रहते हैं। गुरु दो तरह के होते हैं। एक होता है दीक्षा गुरु, दूसरा होता है शिक्षा गुरु। लेकिन दोनों समान होते हैं। दीक्षा गुरु तो दीक्षा देकर चले जाते हैं, तो शिक्षा गुरु, उस हरिनाम रूपी पौधे को बढ़ाते हैं। इसलिए समान हैं। यह ऋण हमको चुकाना बहुत जरूरी है। संत महात्माओं का समागम करता रहे। उनके लिए वस्तु की आवश्यकता हो, उनको अर्पण करता रहे। अगर हम नहीं चुकाएंगे तो हम कितनी भी भक्ति करें, हमें ऋण चुकाने के लिए आना ही पड़ेगा चाहे बार–बार भक्त बनकर ही आना पड़ेगा लेकिन हमें चुकाना जरूर पड़ेगा। जो कर्म किया है उसका भुगतान करना ही पड़ता है। यदि मानव इन ऋणों को नहीं चुकाता तो यह भक्ति मार्ग

पर कभी नहीं जा सकता। पहले यह ऋण चुकाना पड़ेगा तभी आपको भक्ति मार्ग मिलेगा, नहीं तो भक्ति मार्ग में आपको रुचि नहीं होगी। भगवान् के चरणों में रुचि नहीं होगी। आप कितनी भी भक्ति करो, फिर भी तुम्हारी संसार में आसक्ति बनी रहेगी। भक्ति मार्ग क्या है? भक्ति वह मार्ग है, जहाँ दुख–कष्ट की छाया भी नहीं है। सुख का वातावरण, सुख का साम्राज्य फैला रहता है। भक्ति का मतलब है भगवान् में आसक्ति। जैसे हमारी संसार में आसक्ति है, उसी तरह मानव की भगवान् में आसक्ति हो और मानव की संतों में आसक्ति हो। इस तरह से संत–समागम से ऋषि ऋण चुक जाता है।

आप बड़े ध्यान से सुन लो! अगर यह ऋण नहीं उतारे तो तुम्हारा जन्म, चाहे कितनी भी भक्ति करो, दुबारा होगा और वापिस आना ही पड़ेगा।

कर्म प्रधान विस्व रचि राखा...

कर्म प्रधान है, जैसा कर्म किया है उसका भोग तो लेना ही पड़ेगा लेकिन संत और आचार्य, संसार से उसकी फसावट को दूर करते हैं। भगवान् को पाने का मार्ग बताते रहते हैं। जिनको तन, मन से तथा धन से सेवा करनी चाहिए। तब सब ऋण चुकाने से तुम्हें दोबारा जन्म नहीं होगा। ऋण चुकाने के बाद मानव स्वतंत्र हो जाता है। इसको सुगमता से, बहुत ही सरलता से सुख का विधान बन जाता है। इसका मानव जीवन सफल हो जाता है, इसको भगवान् की माया परेशान नहीं करती क्योंकि यह धर्मशास्त्र अनुसार सभी कर्म कर चुका है, ऋण उतार चुका है। जो इनको नहीं करता उसे माया सताती रहती है क्योंकि उसने धर्म को नहीं माना। इसलिए माया उसको सताती रहती है। घर में कलह होता रहता है, रोगों की भरमार हो जाती है, आसपास में झगड़े शुरू हो जाते हैं, हर प्रकार की असुविधाएं बनी रहती हैं, सदा दुख का साम्राज्य फैला रहता है, नास्तिकता का भाव बना रहता है, प्रेम नाम का कोई भाव नहीं रहता, हर जगह स्वार्थ का वातावरण बना रहता है।

एक बहुत रोचक कथा है। इसको ध्यान से सुनिये। वह है एक जैमिनी महात्मा की, जो बहुत उच्च कोटि के महात्मा थे। यह कथा पुराणों में आती है कि जैमिनी ऋषि एकदम एकांत में, जंगल में, पहाड़ों के बीच में झोंपड़ी बनाकर, अपने भजन में लीन रहते थे। जहाँ वह रहते थे, वहाँ से शहर कोई 20–25 किलोमीटर दूर था। महात्मा इतनी दूर इस कारण

रहते थे कि उन्हें नारी जाति का कभी दर्शन नहीं हो। वह जीवन–भर नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहेंगे। उनको घमंड हो गया था कि वह तो पूर्ण ब्रह्मचारी हैं, ब्रह्माजी, शिवजी भी काम को जीत नहीं सके लेकिन उन्होंने काम को अपने पैरों के नीचे कुचल रखा है। यह घमंड बहुत बुरा होता है। अहंकार करना अच्छा नहीं है। अहंकार भगवान् को बहुत बुरा लगता है। जिस किसी का अहंकार हुआ उसी का नाश हुआ है। यह घमंड जिसको आ जाता है उसे माया आकर दबा लेती है।

गाँव व शहर इनकी कुटिया से काफी दूर पड़ते थे। अतः जैमिनी ऋषि के पास कोई नहीं आता था। न ही इनके पास कोई शिष्य था, अकेले रहते थे और वहाँ जंगली जानवर, पक्षी इनके साथी थे। उनको यह प्यार से देखा करते थे अतः इनका मन वहाँ पर खूब लगा रहता था। एक दिन, शाम का समय था। सूर्य देव अस्त होने वाले थे और अंधेरा थोड़ा–थोड़ा होने लगा था। ध्यान से सुनिए! तो लगभग 20 साल की एक लड़की इनकी कुटिया पर आई और कुटिया के बाहर बैठ गयी और इंतजार करने लगी कि कब महात्मा जी कुटिया के बाहर आएं तो वह उनसे प्रार्थना करे कि अब रात हो गई है, अब वह यहाँ से दूर नहीं जा सकती क्योंकि इस वीरान जंगल में हिंसक जानवर इधर–उधर फिरते रहते हैं, वह उसे खा जाएंगे, तो क्या आज रात वह उनके पास ही, कुटिया के बाहर में सो जाए? उनको कोई परेशान नहीं करेगी। ऐसा सोचकर वह लड़की कुटिया के बाहर बैठी रही। एक घंटा हो गया फिर भी महात्माजी बाहर नहीं निकले। उसने सोचा कि कुटिया में महात्माजी हैं कि नहीं। अतः वह कुटिया के दरवाजे के पास गयी तो देखती है कि महात्माजी आसन लगाए माला जप रहे हैं। जब आहट हुई तो महात्माजी का ध्यान टूटा तो दरवाजे की ओर नजर गई तो उन्होंने देखा कि एक 20 साल की जवान लड़की हाथ जोड़े खड़ी हुई है। महात्माजी उठे और कुटिया के बाहर आकर एक पत्थर की शिला पर बैठ गए और लड़की से बोले, "तुम यहाँ क्यों आई हो? मैं किसी को यहाँ पर रहने की आज्ञा नहीं दूँगा।" लड़की बोली, "महात्माजी! मैं तो आपकी बेटी के बराबर हूँ। रात हो गई है, कहीं ठहरने को स्थान नहीं है तो मैं आपकी कुटिया देख कर आ गई हूँ।" जैमिनी महाराज बोले, "तुम इस समय क्यों आई। तेरा आने का क्या कारण है?" तो लड़की बोली, "मैं गरीब घराने की हूँ और जंगल से सूखी लकड़ी ले जा कर बेचा करती हूँ। मेरे माँ–बाप बूढ़े हैं। कोई कमाने वाला नहीं है अतः मैं लकड़ी बेच कर अपना गुजारा चलाती हूँ।

मुझ पर कृपा करें, यहीं पर रहने का स्थान दें।" महात्मा जी बोले, "नहीं! नहीं! तुम यहाँ नहीं रह सकती। कहीं पर भी जाओ। मुझे कुछ नहीं मालूम।" लड़की बोली, "अब मैं कहाँ जाऊँ? मेरा घर यहाँ से 20 मील दूर है। रास्ता पहाड़ी है। रास्ते में हिंसक जानवर शेर, चीते, बाघ मुझे खा जाएंगे।" महात्मा बोले, "मैं कुछ नहीं सुनना चाहता, तुम कहीं भी जाओ, भागो यहाँ से। तुमको कोई हिंसक जानवर खाये, इससे मुझे कोई मतलब नहीं है।"

अब तो लड़की महात्मा जी के पैरों मैं लिपट कर जोर–जोर से रोने लगी। तब महात्माजी बोले, "ठीक है! मेरा उस सामने वाले पर्वत पर, तुलसी माँ का बगीचा है। जो यहाँ से 2 मील दूर है। तुम वहाँ जाकर रह सकती हो। वहाँ भी मेरी छप्पर की कुटिया है। उस कुटिया में जाकर सो सकती हो।" लड़की बोली, "रात हो गई है, मैं अकेले कैसे जाऊँ? मुझे डर लगता है। आप ही कृपा करके मुझे वहाँ छोड़ आओ।" महात्माजी बोले, "ठीक है! मेरे साथ चलो। मैं वहाँ तक पहुँचा कर अपनी कुटिया में वापिस आ जाऊँगा।" अब जैमिनी महाराज, उस लड़की को वहाँ तक ले गए और कहा, "इसका दरवाजा बंद रखना। यहाँ पर पानी पीने हेतु शेर, बाघ आते रहते हैं। भालू वगैरह भी बहुत आते हैं। बहुत खूंखार होते हैं तुम्हें खा जाएंगे। अतः दरवाजा बिल्कुल मत खोलना।" लड़की बोली, "मैं सुबह तक दरवाजा नहीं खोलूँगी आप आओगे, तभी दरवाजा खोलूँगी।" जैमिनी ऋषि बोले, "मैं तो इस कुटिया पर बहुत देर से आऊँगा क्योंकि सुबह मेरा भजन का समय होता है।" लड़की बोली, "जब तक आप नहीं आओगे, मैं बाहर ही नहीं आऊँगी। दरवाजा खोलूँगी ही नहीं, क्योंकि मुझे डर लगता है।" महात्माजी ने कहा, "ठीक है! मैं अपनी कुटिया पर जा रहा हूँ।" लड़की बोली, "हाँ बाबा! आप जा सकते हो।" महात्मा बोले, "लेकिन एक बात, मैं और कह देता हूँ कि यदि मैं भी रात में यहाँ पर आऊँ तो दरवाजा कभी भी नहीं खोलना।" लड़की बोली, "रात में आप क्यों आने लगे यहाँ पर?" महात्मा बोले, "हाँ! मैंने वैसे ही बोल दिया है। वैसे तो मैं आऊँगा नहीं।" अब जैमिनी ऋषि अपनी कुटिया पर आ गए। काफी रात हो गई थी। 10:00 बज गए थे, सोचने लगे कि अब सोना चाहिए, बहुत समय हो गया क्योंकि लड़की को ले जाने में बहुत टाइम लग गया। सुबह कैसे उठेंगे? इसलिए जल्दी सोना चाहिए। सोने लगे तो नींद ही नहीं आ रही और आंखों के सामने वह लड़की ही लड़की दिखाई दे रही है। बड़ी मुश्किल बात हो गई।

भगवान् से बहुत प्रार्थना की कि भगवन्! यह क्या मुसीबत आई। वह लड़की उनके पास से दूर होती ही नहीं थी। ऐसे बहुत प्रार्थना करता रहा। लगभग 2 घंटे प्रार्थना करता रहा, लेकिन अब लड़की उसे बिना कपड़ों के दिखाई देने लगी। अब तो महात्मा का मन काबू से बाहर हो गया। काम ने महात्मा को अंधा बना दिया, सोचने लगे कि अब लड़की के पास जाना ही पड़ेगा लेकिन तुलसी का बगीचा तो 2 मील दूर है। रास्ता खतरनाक है, यदि शेर मिल गया तो खाए बिना नहीं रहेगा। फिर सोचने लगा कि नहीं जाऊँगा। लेकिन लड़की आंखों से ओझल होती ही नहीं थी, अब तो विकल हो कर जाने को मजबूर हो गया, सोचने लगा कि अब शेर खाये चाहे कुछ करे वह तो जाएगा। बड़ी मुश्किल से डरते–डरते, वहाँ तक डेढ़ घंटे में जाकर पहुँचा और कुटिया का दरवाजा खटखटाया। लेकिन कुछ नहीं हुआ। फिर जोर–जोर से खटकाने लगा, परंतु लड़की का कोई जवाब नहीं मिला। अब सोचने लगा कि क्या करना चाहिए? फिर याद आया इस छप्पर को छत से काटकर अंदर घुस जाऊँगा। लेकिन छप्पर काटना बहुत मुश्किल है, यदि गिर गया तो पैर टूटे बिना नहीं रहेगा। अब हैरान हो गया और कुटिया के बाहर बैठकर सोचने लगा कि अब क्या करूँ? सोचा कि अपनी कुटिया पर एक सीढ़ी रखी है, उसे दीवार पर लगाकर छप्पर पर चढ़ सकता हूँ। लेकिन जाऊँगा कैसे? अभी तो बहुत रात हो गयी है। अंधेरी रात है और कोई जानवर उसे खा जाएगा। क्या करे? वापिस जाकर, सीढ़ी लाने में डेढ़ घंटा लग जाएगा। लेकिन लाना तो जरूर पड़ेगा। काम अँधा होता है, कुछ नहीं दिखता उसको। वापिस गया और सीढ़ी लाकर जैसे–तैसे छप्पर पर चढ़ा तो सोचने लगा, "अरे! मैं तो इसको काटने के लिए, छेद करने के लिए कुछ लाया ही नहीं। अरे! वहाँ पर दराँत पड़ा हुआ था, लेकिन मुझे याद नहीं रहा। दराँती के बिना छप्पर नहीं कटेगा। अब क्या करूँ?" हाथ से लकड़ियों से तोड़ने की बहुत कोशिश की, लेकिन छप्पर बहुत मजबूत था। कुछ नहीं हुआ। फिर नीचे उतरा और सोचने लगा कि जाकर दराँती लाना ही पड़ेगा। ओह हो! समय भी बहुत ज्यादा हो गया। रात को हिंसक जानवर पानी पीने आते हैं, जरूर खाएंगे। फिर भी नहीं रहा गया। फिर वापिस गया और दरांती लेकर आया। इतने में सुबह 4:00 बज गए। सारी रात हाय–धाय करता रहा, सारी रात उधेड़ बुन में ही लगा रहा। अब ऊपर चढ़ कर छेद किया। बड़ी मुश्किल से कुटिया से नीचे उतरा तो क्या देखता है कि अंदर उसके गुरुदेव बैठे हैं।

अब तो महात्माजी, अपने गुरुदेव, व्यासजी के चरणों में पड़ गया। महात्माजी पानी–पानी हो गया और गुरुदेव के चरणों को पकड़कर हा गुरुदेव! हा गुरुदेव! करके दहाड़े मार कर रोने लगा। गुरु व्यासजी ने बोला, "कभी भी किसी चीज का घमंड नहीं करना चाहिए। मैं ब्रह्मनिष्ठ हूँ। मैंने काम पर विजय प्राप्त कर ली है। इसी अहंकार के कारण माया तुम पर हावी हो गई। यह मैंने ही तुम्हारी परीक्षा ली है। भविष्य में ऐसा घमंड कभी नहीं करना। ऐसा समझना चाहिए कि जो कुछ भी जीत हो रही है, यह भगवान् की कृपा से ही हो रही है। अपने मन से कुछ नहीं होता है, भगवान् की कृपा से ही होता है। अपना बल करोगे, तो घमंड आये बिना नहीं रहेगा।" निष्कर्ष यह निकलता है कि काम कैसा अंधा होता है। अतः हमारा शास्त्र बोल रहा है कि अकेले में तो अपनी माँ के पास, बेटी के पास और बहन के पास भी नहीं रहना चाहिए। महात्मा को देखो, काम ने कैसा अंधा बनाया कि सारी रात उधेड़बुन में ही चली गई और प्रातः हो गई।

जो कंचन, कामिनी, प्रतिष्ठा से दूर रहता है, उसको भगवान् अपना लेते हैं। जो प्राणी मात्र में मुझे ही देखता है, वह मेरा प्यारा है और उच्च कोटि का भक्त है। भगवान् बता रहे हैं कि देखो! इन्द्रियाँ बड़ी बलवान हैं। बड़ी प्रबल होती हैं। इनको जितना भोग अर्पण करोगे, उतना ही यह बेकाबू हो जाती हैं। इनका भोग अर्पण बंद कर दो तो यह सो जाती हैं, कमजोर पड़ जाती हैं। अगर जीभ, वश में हो गई तो सभी इंद्रियां वश में हो जाती हैं। यह बात हमारा धर्म शास्त्र बोल रहा है। जीभ को वश में करना बहुत ही मुश्किल, खण्डे की धार है। तभी तो चैतन्य महाप्रभुजी सभी भक्तों को बोल रहे हैं :

रूखा सूखा खावो तो काम को भगाओ,
बढ़िया बढ़िया खावो तो काम को बुलाओ।

चैतन्य महाप्रभु बोल रहे हैं कि लकड़ी की नारी से भी दूर रहो वरना कामवासना पकड़ लेगी।

भगवान् कह रहे हैं कि, "जिसका चित्त मेरे में ही लग गया है ऐसे मानव की वेद विहित कर्मों में लगी हुई कर्म इन्द्रिय तथा विषय का ज्ञान कराने वाली ज्ञान इन्द्रिय, दोनों प्रकार की इन्द्रियों की जो मेरे प्रति स्वाभाविक रुचि है, यही मेरी अहैतुकी भक्ति है। कामना रहित भक्ति है। यह मुक्ति से भी बढ़कर है। यह कर्म संस्कारों के भंडार को, अर्थात् लिंग

शरीर को तत्काल भस्म कर देती है। जब तक लिंग शरीर रहता है, चिन्मय शरीर की उपलब्धि नहीं हो सकती है। चिन्मय शरीर ही ऊपर के दिव्य लोकों में जाता है। मेरे ही चरण सेवा में रुचि रखने वाले, मेरे ही प्रसन्नता के लिए कर्म करने वाले, कितने ही बड़भागी भक्त, जो एक दूसरे से मेरे ही पराक्रम की चर्चा किया करते हैं, वह मेरे ही आश्रय में रहने वाले भक्तजन शांति से वैकुण्ठ पहुँच जाते हैं व सभी प्रकार के दिव्य भोग उनको प्राप्त हो जाते हैं। न उन्हें मेरा कालचक्र ही ग्रसता है। मृत्यु भी वहाँ तक पहुँच नहीं सकती है। वे अपनी मर्जी से ही अपना शरीर छोड़ते हैं।"

ऐसा भगवान् कृष्ण, उद्धव को बोल रहे हैं, "मेरे अलावा यदि दूसरे का आश्रय लोगे तो मृत्युरूप महाभय से छुटकारा नहीं मिल सकता। मेरे भय से वायु चलती है, मेरे भय से सूर्य तप्त है, मेरे भय से इंद्र वर्षा करता है और मेरे भय से अग्नि जलाती है, मेरे भय से ही मृत्यु अपना काम करती है। संसार में मनुष्य के लिए सबसे बड़ी कल्याण प्राप्ति यही है कि उस का चित्त, भक्ति योग द्वारा मुझमें लग कर, स्थिर हो जाए। यह सारा जगत् जिस प्रकाश से प्रकाशित हो रहा है वह आत्मा स्वयं मैं हूँ।

इस मानव ने वैष्णवी माया को स्वेच्छा से स्वीकार कर लिया। इसके गुण भौतिक सृष्टि करने लगे यह देख मानव आत्मज्ञान को आच्छादित करने वाली उसकी आवरण शक्ति से मोहित हो गया एवं अपने स्वरूप को भूल गया और माया में फंस गया। अपने को ही करने धरने वाला मानने लगा। कर्ताधर्ता बन गया, अतः उसका भोग स्वयं को भोगना ही पड़ेगा। जो कुछ करता हूँ, मैं ही करता हूँ जैसे जिसका स्वभाव होता है उसी प्रकार की प्रेरणा देकर कर्म में प्रवृत्त कराता रहता हूँ। परंतु वह तो स्वयं कर्म का मालिक बन गया अतः कर्म का भोग, इसे भोगना ही पड़ेगा।

जब सूर्य, इंद्र, अग्नि, हवा, भगवान् के भय से अपने काम में लगे रहते हैं तो मानव अपने मन से सब कुछ करता रहता है। भगवान् को कुछ नहीं समझता तो इसका यही हाल होगा, 84 लाख योनियों में यातनाएं भुगतनी पड़ेंगी तथा निर्दयी काम करने से नर्क की भी भीषण यातना को कई कल्पों तक भोगना पड़ेगा। यही अज्ञान है। यही माया का प्रकोप है। ऐसे मन का यह चक्कर चलता ही रहता है। इसका कभी अंत नहीं होता। किसी बड़ी सुकृति से अर्थात् सौभाग्य से, किसी संत, महात्मा की सेवा का अवसर हस्तगत हो गया तो भगवान् की कृपा से इसे मानव जन्म मिल जाता है। फिर भी यह माया में फंस जाता है तथा यही चक्कर इसके पीछे

पड़ा रहता है। बार–बार गर्भाशय का कष्ट इसे भोगना पड़ता है, फिर भी इसे वैराग्य नहीं होता। संसार सागर में गोते खाता रहता है। करोड़ों में से कोई एक मानव ही इससे छुटकारा पाता है और वैकुण्ठ जा पाता है।

मेरे गुरुदेवजी ने भक्तों को सात स्वभाव सुधारने हेतु बोला है। यदि यह स्वभाव सुधर जाये तो इसी जन्म में दिव्य लोकों में जाने का अवसर उपलब्ध हो जाये। दुख–कष्ट से पिण्डा छूट जाये। इतना सरल, सुगम साधन बता रहे हैं, फिर भी भक्तगण कोई ध्यान नहीं देते। ऐसा अवसर फिर हाथ आने वाला नहीं है।

अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गईं खेत

यदि मानव का ठीक स्वभाव बन जाए तो भगवान् उसके परिवार का सदस्य ही बन जाए लेकिन मानव, भगवान् को सताता रहता है। यदि किसी को दुख दिया तो वह दुख आत्मा को ही होता है चाहे वह हाथी हो या चींटी हो। एक समान ही दुख देना होता है क्योंकि सभी प्राणियों की आत्माएं समान हैं, बराबर हैं। एक सच्चा संत ही ऐसा स्वभाव का होता है कि जिसकी दृष्टि सब पर समान होती है। भगवान् ऐसे संतों से खेला करते हैं।

ज्यादातर प्राणियों में कोई भी दुख नहीं चाहता, फिर भी दुख क्यों आता है? दुख इस कारण आता है कि इसका कर्म ही दुख बोता है। जो बोओगे वही तो सामने आएगा। सुख बोओगे तो सुख सामने आयेगा। धर्म बोल रहा है :

कर्म प्रधान विस्व रचि राखा...

कर्म ही भगवान् है यदि वह ज्ञान उन्हें हो जाए तो दुख आने का प्रश्न ही नहीं उठता। 'बोओगे पेड़ बबूल के तो आम कहाँ से खाए?' असंभव! यह संभव कैसे हो सकता है? कोई किसी को दुख नहीं देता। केवल अपना कर्म ही दुख देता है। मानव की कलियुग में ऐसी दृष्टि हो गई है कि यह खुश नहीं रहता है? इसको दुख आना चाहिए। दूसरों के रास्ते में काँटे बिखेर कर राजी (खुश) होता है। लेकिन यह खुशी थोड़ी देर के लिए होती है और अंत में ऐसा दुख आएगा कि रात–दिन की भूख और नींद उड़ जाएगी। जैसा कि प्रत्यक्ष में देख भी रहे हैं। जहरीला खाद्य पदार्थ का भक्षण हो रहा है तो मन भी जहरीला ही होगा, दया नाम की कोई बात ही नहीं है, थोड़े से लोभ के लिए मानव की हत्या की जा रही है। अरे! मारने वाले को पता नहीं है कि अगले जन्म में यह तुझे मार कर ही छोड़ेगा। तू बच नहीं सकता।

हरे पेड़ को जो काटता है, उसे फिर पेड़ की योनि में ही आना पड़ेगा। जो सांप को मारता है, उसे अगले जन्म में सांप की योनि ही मिलेगी।

जैसा करोगे वैसा भरोगे।

As you sow, so shall you reap.

सत्संग के बिना मानव सुधर नहीं सकता। सत्संग भी भगवान् की कृपा से मिलता नहीं। मिल भी जाए तो उसमें भी बहुत सी अड़चनें आएंगी। सब जगह माया का साम्राज्य है। मानव तो पशु से भी गया बीता है। मानव किसी को भी सुखी देखना ही नहीं चाहता। पशुओं में ये भाव नहीं है। मानव तो पागल राक्षस वृत्ति का हो गया, बुरा काम करने में उत्साहित रहता है, अच्छे काम को कोसता है। अतः दुखी रहना स्वाभाविक ही है। भगवान् ने मानव के लिए सुखी रहने हेतु धर्मशास्त्र रचे हैं लेकिन इनको देखने में ही घबराता रहता है। शास्त्र को देखना ही नहीं चाहता। जहाँ शास्त्र चर्चा होती है वहाँ से उठ कर चला जाता है। उसका दुर्भाग्य है कि जीव के बंधन और मोक्ष का कारण क्या है ? केवल मन ही है। मन ही विषयों में फंसावट हो जाने पर बंधन का कारण बन जाता है पर परमात्मा में अनुरक्त होने से मोक्ष का कारण बन जाता है। लेकिन परमात्मा में अनुरक्त होना, सच्चे संत के बिना नहीं हो सकता। संत ही इसे भगवान् में फंसाएगा। तभी तो बोला है :

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।।

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 1)

भक्त संत के बिना, जीव भगवान् की तरफ आ ही नहीं सकता। यह भी भगवान् की कृपा से ही ऐसा संयोग बनता है। संसार में कुसंग तो है 95% और सत्संग है 5% अतः इस जीव का दोष भी कैसे कह सकते हैं। जहाँ दसों दिशाओं में गर्मी पड़ रही हो तो जीव को सर्दी कैसे व्याप्त हो सकती है? बेचारा जीव सब प्रकार से असमर्थ है। जिस समय यह मन और 'मेरे–पन' के कारण होने वाले काम, क्रोध आदि विकारों से मुक्त व शुद्ध हो जाता है, उस समय, यह सुख–दुख से छुटकारा पाकर शरण में आ जाता है, तब जीव को ज्ञान व वैराग्य भाव होने से संत और परमात्मा में अनुराग हो जाता है। भगवान् कहते हैं, "जो मुझे अनन्य भाव से प्रेम करने लगते हैं, मेरे लिए सभी कर्म तथा सगे–सम्बन्धियों का त्याग कर देते हैं और मेरे परायण होकर, संत द्वारा मेरी कथा आदि का सत्संग करते

रहते हैं, उन भक्तों को संसार की असुविधा व्याप नहीं सकती। और वह इसी देह से मुझे प्राप्त कर लेते हैं।"

जा पर कृपा राम की होई। ता पर कृपा करहिं सब कोई।।

जौं सभीत आवा सरनाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं।।

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 4)

"जो जीव दुखी होकर, मेरी शरण में आ जाता है, उसे मैं अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करता हूँ। जैसे शिशु की माँ, हर समय शिशु की देखभाल करती है, उसी प्रकार मैं भी उसकी देखभाल करता रहता हूँ।"

भगवान् कह रहे हैं, "आत्मा निर्विकार, अकर्ता और निर्गुण है। किंतु जब आत्मा सत, रज, तम के गुणों से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेता है तो अहंकार से मोहित होकर, मैं करता हूँ, ऐसा मान लेता है और इसी अभिमान के कारण कि मैं करता हूँ व देह से किए हुए पुण्य–पाप रूप कर्मों के दोष से अपनी स्वाधीनता और शान्ति को खो बैठता है।" ध्यान से सुनने से समझ में आएगा। "तब जीव, उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ योनियों में उत्पन्न होकर संसार के चक्कर में घूमता रहता है। जैसे स्वप्न में दुख–सुख के न होने पर भी स्वप्न में दुख–सुख होने के कारण, दुख–सुख अनुभव होता ही है, जाग जाने पर कुछ नहीं रहता। इसलिए बुद्धिमान पुरुष को उचित है कि विषयों में फंसे हुए चित्त को तीव्र भक्तियोग और वैराग्य द्वारा धीरे–धीरे अपने वश में लाये तो कुछ ही दिनों में सच्चा ज्ञान और नेत्र खुल जाते हैं। चित्त को बारंबार एकाग्र करते हुए, मुझ में सच्चा भाव रखने, मेरी कथा–वार्ता में सत्संग करने, सभी जीव मात्र में मेरा ही दर्शन करने, किसी से द्वेष न करने, आसक्ति का त्याग करने, मौन व्रत रखने, प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ भी उपलब्ध हो जाए उसी में संतोष रखने, परिमित भोजन करने, सदा एकांत में रहने आदि से स्वतः ही संसार की आसक्ति छूट जाती है। ऐसा भाव रखने से अन्ततः मेरे तथा संत में चित्त रम जाता है।" यह ध्रुव सत्य सिद्धांत है। प्रत्यक्ष में प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं है। जो बोओगे, वही काटोगे।

मैं 90 साल में चल रहा हूँ। मेरी नजर 5 साल के शिशु की जैसी है और मेरे शरीर में कोई रोग नहीं है और ताकत भी 20 साल के युवक जैसी है। यह हरिनाम करने का प्रभाव है। हरिनाम की ही कृपा मुझ पर बरस रही है।

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।

(मानस, उत्तर. दो. 40 चौ. 1)

दूसरे को दुख देना ही सबसे बड़ा पाप है और दूसरे की भलाई करना ही सबसे बड़ा धर्म है। इसलिए मैं जो बो रहा हूँ, वही पा रहा हूँ। आपको प्रत्यक्ष दिखा रहा हूँ। आपके सामने ही तो हूँ, देख लो, लोग तो 90 साल में खटिया पर पड़ जाते हैं।

रोग क्या हैं? रोग हैं राक्षस और दवाइयां क्या हैं? ये हैं देवता। ये दोनों आपस में लड़ते ही रहते हैं और रोग और दवाइयां भी लड़ते ही रहते हैं। ऐसा स्वाभाविक ही है। हरिनाम करने से दोनों ही शांत हो जाते हैं। क्योंकि हरिनाम से अमृत पूरे शरीर में सरक्यूलेट (घूमता) होता रहता है तो राक्षस भी तथा देवता भी संतुष्ट हो जाते हैं। दोनों को अमृत मिल जाता है। दोनों को हरिनाम से अमृत उपलब्ध हो जाता है। तो हरिनाम ही अनंत कोटि ब्रह्मांडों में एक शुद्ध रामबाण अमृत है जो सृष्टि के रचयिता भगवान् को भी खुश कर देती है। केवल हरिनाम! अन्य कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है।

संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्नः अगर कोई कोमा में हो और इस स्थिति में यदि वह अपनी देह छोड़ देता है, तो क्या कोई संभावना है कि कृष्ण नाम लेकर उसका देहांत हो ?

उत्तर : अगर देहांत हो रहा है और हम जानते हैं कि वह मरने वाला है, तो उसको जोर-जोर से कृष्ण नाम सुनाओ। उस समय कुछ और तो वह सुनेगा नहीं, कृष्ण नाम कान से अंदर जाएगा तो उसका उद्धार हो जाएगा। चाहे वह खुद कुछ भी न बोले लेकिन कान से सुनने पर उसका उद्धार हो जाएगा।

केवल भगवान् ही भोक्ता हैं

48

25 अगस्त 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में इस दासानुदास अधमाधम
अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा
हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

मेरे गुरुदेव शुरू से बता रहे हैं कि एक तो लक्ष्मी–नारायण क्षीर–सागर में शेष–शैय्या पर सोते हैं और दूसरा कि भगवान् एक बड़ के पत्ते पर लेटे रहते हैं और अपना पैर का अंगूठा मुख में चूसते रहते हैं। यह दोनों शास्त्रों में अंकित है। जब इन्हें खेलने की स्फुरणा हुई, लीला रचने की मन में इच्छा हुई तो अपने नाभि से एक कमल प्रकट किया, उस पर ब्रह्माजी का प्रागट्य किया।

नारायण ही सब अवतारों का कोश है। इसी से सब अवतार प्रकट होते हैं। गुरुदेव बता रहे हैं कि एक गंधमादन पर्वत है। इसके बीच में ही बद्रीनाथ धाम है। इस धाम में नर–नारायण संसार के कल्याण हेतु तपस्या करते रहते हैं। नर है अर्जुन और नारायण हैं कृष्ण। अर्जुन है जीव और कृष्ण हैं परमात्मा। दोनों ही आपस में सखा हैं, मित्र हैं। कृष्ण तो है भोक्ता एवं जीव है भोग्य, लेकिन जीव भोक्ता बन गया और भगवान् को भोग्य निर्णय कर दिया, अतः जीव इस कारण दुख में पड़ गया। माया भगवान् की बलवती शक्ति है। योगमाया से ही सत, रज, तम गुण अंगीकार करके संसार की लीला हेतु रचना करके, जीव से खेलते रहते हैं। इसमें भगवान् का आनंदवर्धन होता है। भगवान् को भी खाली रहना पसंद नहीं है, अतः कुछ न कुछ करते ही रहते हैं। सब जीवों को इनके कर्म के अनुसार संसार की रचना में लगा देते हैं। ये जीव अन्धकार में फंसे रहते हैं अर्थात् माया में फंसे रहते हैं। माया का मतलब है जो नहीं है। उसे नहीं मानने के कारण जीव भटकता रहता है।

वृन्दावन में तो अपराध होने का डर रहता है, परंतु बद्रीधाम में यह नहीं है। इसी से बद्रीधाम बोला जाता है कि यह नर और नारायण का तपस्या का स्थान है। यहाँ पर अपराध नहीं होता क्योंकि यहाँ अपराध होने का अवसर ही उपलब्ध नहीं है। तभी तो पाण्डव अंत में, जब कृष्ण अपने धाम में पधार गये तो पाण्डव वृन्दावन में नहीं गए, बद्रीधाम में ही गये हैं। वहाँ निश्चिन्तता से भगवद् चिंतन रूपी तपस्या हो सकती है। ऐसे जो सारी पृथ्वी के सम्राट थे, अंत में अपनी संतान को पृथ्वी का हिस्सा बाँट कर, अपनी पत्नी के संग में वृन्दावन नहीं जाते, और न अयोध्या गए, अंत में बद्रीनाथ धाम में ही जाकर शरीर छोड़ते थे। यहाँ पर पाप, अपराध होने का अवसर ही नहीं है। अतः मैं भी (चिंतन में) गुरुजी को साथ लेकर बद्रीधाम में ही जाकर कुंड स्नान करवाता हूँ और मन्दिर में जाकर परिक्रमा आदि कर नर–नारायण के चरणों में बैठकर हरिनाम करता रहता हूँ।

पाप–अपराध दोनों राक्षस हैं और उस तपो भूमि में नहीं जाते कि तप इनको जलाकर भस्म न कर दे और राख में परिणत न होना पड़े। वृन्दावन व अयोध्या धामो में जाने से या वहाँ पर रहने से अपराध से बच नहीं सकते क्योंकि कृष्ण के जमाने में ही बड़े–बड़े राक्षस वहाँ मौजूद थे। लेकिन नर–नारायण आश्रम में ऐसा कुछ नहीं है। अब विचार करने की बात है कि पाण्डव वृन्दावन क्यों नहीं गए तथा राजा, महाराजा वृन्दावन क्यों नहीं गए? इस कारण नहीं गए कि भजन में बाधा डालने हेतु, पाप–अपराध राक्षस वहाँ विराजमान हैं। नर–नारायण आश्रम में ये पाप–अपराध जा नहीं सकते। केवल भगवान् कृष्ण ने गोपियों की वजह से अपने सखा उद्धव को वृन्दावन में रहने का आदेश दिया है ताकि कोई तो रास्ता बताने वाला हो और किसी को वृन्दावन रहने का आदेश नहीं दिया क्योंकि कृष्ण के जाने के बाद वहाँ राक्षस रूपी पाप–अपराध विराजमान हो जाएँगे तो भजन नहीं हो सकेगा। अतः चाहे कोई घर में रहे या वन में रहे, भजन सर्वोत्तम वहीं पर ही होगा। आप सभी देख भी रहे हैं जो बाहर से आकर वहाँ (वृन्दावन इत्यादि में) भजन करते हैं, उनका भजन बिलकुल नहीं हो रहा है। जिसने वहाँ जन्म लिया है उनकी बात तो अलग है। उनका भजन हो न हो वे कृष्ण से जुड़े ही हुए हैं। कृष्ण ने उनको वहाँ जन्म दिया है, जैसे अयोध्या में जिसने जन्म लिया था, उनको मर्यादा पुरुषोत्तम राम अपने धाम में ले गए हैं। क्या वे सभी भजन करते थे? नहीं। धाम के प्रभाव से ही उनका उद्धार हो गया। कहीं पर भी जन्म लेना अपने हाथ की बात नहीं है। जन्म भगवान् ही देते हैं अतः जो वृन्दावन में जन्म लेकर रहते हैं,

उनका उद्धार धाम की वजह से हो जाता है। यह धाम की ही करामात है कि उनका उद्धार निश्चित हो जाता है। बद्रीनाथ में संसार की हवा तक नहीं जाती, एकदम एकांत धाम है। वहाँ पर वेदव्यास जी ने श्रीमद्भागवत लिखी थी क्योंकि वहाँ अपराध नहीं होता।

जीव परमात्मा का अंश है। पेड़ पर दो पक्षी बैठे हैं एक है जीव पक्षी और दूसरा है परमात्मा पक्षी। जीव भोग्य है और परमात्मा भोक्ता है लेकिन जीव भोक्ता बन गया। अतः नियम विरुद्ध होने से जीव, परमात्मा का दोस्त होते हुए भी उसने परमात्मा का अधिकार छीन लिया और स्वयं ने ले लिया। साधारण सी बात है कि दूसरे का अधिकार लेना उचित बात नहीं है। इसकी सजा मिलना उचित ही है अतः दुखसागर में डूब गया। फिर भगवान् ने माया को आदेश दिया कि जो भी मेरा हक छीनता है अर्थात् मैं ही केवल भोक्ता हूँ व अन्य भोग्य हैं, तो माया द्वारा सजा पाने का हकदार बन गया।

उदाहरण द्वारा भी गुरुदेव सभी मानव को खुलासा में समझा रहे हैं। जैसे अशोक नाम के व्यक्ति ने अपने खेत में मूली बो दी। अब मूली का भोक्ता अशोक है न कि अन्य कोई? लेकिन राजेश चोरी से बिना पूछे खेत से मूली लाकर खा रहा है तो अनधिकारी भोक्ता बन गया। अतः नियम विरुद्ध होने से सजा का जिम्मेदार होगा ही। इसी प्रकार से जीव परमात्मा का हक छीनकर स्वयं भोक्ता बन गया अतः सजा का जिम्मेदार होगा। जो भी संसार में जीव व अन्य जीव मात्र हैं, सभी भगवान् के हैं। अब भगवान् के कहे बिना, जो भी इस पर अधिकार जमाएगा अथवा भोग्य होते हुए भोक्ता बन बैठेगा, सजा का हकदार होगा ही।

मानव को पृथ्वी माँ द्वारा अन्न उपलब्ध होता है। पृथ्वी माँ भगवान् की पत्नी है। इस पत्नी द्वारा मानव को स्तन रूपी जमीन से अन्न रूपी दूध उपलब्ध हो रहा है तो यह भगवान् के ही हक की वस्तु है एवं भगवान् के आदेश से ही मानव अपने काम में ले सकता है। बिना आदेश के लेता है तो सजा का हकदार होगा। माया तो भगवान् की शक्ति है अर्थात् पत्नी है तो माया कैसे सहन करेगी? ऐसे जीव को सजा देगी ही, रोगी बना देगी, कोई संकट पैदा कर देगी, किसी तरह का दुख लाकर रखेगी। कहने का मतलब है संसार भर में जो भी पदार्थ हैं वह सब भगवान् के ही हैं। उनको भगवान् के बिना कोई भी न भोगे। इनको अर्पण करके ही अपने काम में ले। जैसे अन्न भोजन से ही प्राणी का जीवन चलता है तो भगवान् को भोग अर्पण करके ही जीव भक्षण करे और जो जीव भगवान्

को भोग लगाए बिना खाएगा, वह पाप का ही भक्षण करेगा। जब पाप से जीवन यापन करेगा तो जीवन सुखमय कैसे बन सकता है?

बोये बीज बबूल का, आम कहाँ से होए।।

(संत कबीर जी)

बिना हक का कोई भी पदार्थ जीव अपने काम में लेगा तो वह पाप अर्थात् जहर को ही अपनाएगा। तो मानव को यदि कोई भी पदार्थ चाहिए तो भगवान् को अर्पण करके ही अपने काम में लेना चाहिए जैसे कि तन को ढकने हेतु कपड़ा चाहिए तो कपड़े को भगवान् को अर्पण करो, फिर अपने तन को ढको क्योंकि कपड़ा बाजार में दुकान से आया। दुकान में कहाँ से आया? दुकान में कपड़ा कारखाने से आया और कारखाने से कपड़ा किसने पैदा किया? वहाँ के कामदारों ने कपड़ा मशीनों से पैदा किया। कामदारों के हृदय में किसने प्रेरणा की? अब ध्यान से सुनें कि कामदारों के हृदय में भगवान् बैठा हुआ है और वही प्रेरणा करता है तो आत्मा रूपी परमात्मा ने प्रेरणा दी। अतः निष्कर्ष यह निकला कि मूल पदार्थ भगवान् का ही है। भगवान् की प्रेरणा बिना जगत् का काम चल ही नहीं सकता। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं ब्रह्माजी। जब ब्रह्माजी ने वृन्दावन से, भगवान् के बछड़ों और ग्वालों को चुरा कर अपने धाम में छिपा लिये तो क्या देखते हैं कि वही बछड़े और ग्वाल–बाल वृन्दावन में हैं। ब्रह्मा जी ने सोचा कि यह तो मेरे धाम में थे, यहाँ कैसे आ गए? फिर जाकर देखा कि वहाँ पर भी बछड़े और ग्वाल–बाल मौजूद हैं। ब्रह्माजी चकरा गए। वास्तव में कृष्ण, उतने ही बछड़े, वह जिस–जिस रंग के थे, स्वयं ही बन गए और ग्वाल–बाल भी जैसे–जैसे थे, वे स्वयं बन गए। यहाँ तक कि बछड़ों को हांकने की छड़ी अर्थात् लकड़ी भी स्वयं ही बन गए। छीके भी बन गए और बजाने की बांसुरी भी बन गए, सब कुछ बन गए। निष्कर्ष यह निकला कि भगवान् ही सब कुछ है। भगवान् के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। यह सिद्ध हो गया। अतः भगवान् की सभी सामग्री पदार्थ होने से, उनको अर्पण किए बिना जो भोगता है, वह सजा का हकदार होता है। घर में कोई भी पदार्थ लाओ, तुलसीदल डालकर भगवान् को अर्पण करो। तुलसीदल क्यों डालें इसका भी गूढ़ अर्थ है। वृंदा माँ भगवान् की प्यारी पत्नी हैं। तभी कहा गया है :

धन्य तुलसी पूर्ण तप किये, श्रीशालग्राम–महापटराणी नमो नमः

(तुलसी आरती)

रुक्मिणी, सत्यभामा आदि भगवान् की इतनी प्यारी नहीं हैं, जितनी प्यारी वृंदा माँ है। वृंदा देवी के प्रसन्नता बिना भगवान् किसी से भी मिलते नहीं हैं। अतः तुलसी की सेवा ही सर्वोपरि है।

श्रीगुरुदेव एक रोचक वार्ता सभी भक्तों को समझने हेतु बता रहे हैं, ध्यान से सुनने की कृपा करें। किसी पहाड़ की जगह में एक वैरागी महात्मा भजन में रत थे। उनके यहाँ पर 15–20 ब्रह्मचारी भी थे और बहुत सी गायों की सेवा भी थी। उन ब्रह्मचारियों में एक भोला नाम का ब्रह्मचारी, निष्कपट, पागल जैसा, बाहर पड़ा रहता था। उसकी तरफ न गुरुजी का ध्यान था और न ब्रह्मचारियों का ध्यान था। वह अकेला ही आश्रम के बाहर पड़ा रहता था। 10–15 दिनों में तो वह नहाता था। कभी गुरुजी कह देते, तो स्नान कर लेता था वरना बिना स्नान के ही पड़ा रहता था। जब ब्रह्मचारी प्रसाद पाकर उसके नजदीक ही पत्तलें फेंक देते थे तो वह सरल ब्रह्मचारी, उन पत्तलें को चाट कर अपना पेट भर लिया करता था। 15–20 पत्तलों को चाटने से उसका पेट भर जाता। ऐसे ही वहाँ पर गायों के पानी की खेल भरी रहती थी, वह उसी में से पानी पी लेता था। अतः गायों का झूठा पानी पी कर, रात दिन वहीं पड़ा रहता था।

एक दिन रात में गुरुजी ने सभी ब्रह्मचारियों को बुलाया तो सभी ब्रह्मचारी गुरुजी के चरणों में इकट्ठे हो गए। जब सब ब्रह्मचारी बैठ गए तो गुरुदेव ने उनको बोला, "मेरे मन में उत्तराखंड के बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, यमुनोत्री की यात्रा करने की इच्छा है लेकिन एक बड़ी समस्या है कि भगवान् की सेवा, पूजा कौन करेगा? तुम में से किसी एक को यहाँ पर रहना जरूरी है। बोलो! कौन यहाँ पर रहेगा?" तो सभी ब्रह्मचारी चुप साध गए। कोई भी रहना नहीं चाहता था। तब गुरुदेव को कहना पड़ा, "भाई! अमुक ब्रह्मचारी यहाँ पर रहकर भगवान् और गायों की सेवा करे। मैं और सभी ब्रह्मचारी एक माह में लौट के आ जाएंगे।" तो जिसको बोला, वह ब्रह्मचारी गुरुजी के चरणो में पड़ कर रोने लगा और बोला, "मुझे यहाँ पर मत छोड़ो, मैं भी चलूँगा" तो संत तो दयालु होते ही हैं। गुरुजी बोले कि ठीक है, वह भी चले। तो अब गुरुजी ने पूछा, "तुम में से यहाँ पर कौन रुक सकता है?" जब किसी ब्रह्मचारी ने कोई उत्तर नहीं दिया, तो गुरुजी बोले, "मैं चार धाम यात्रा को स्थगित करता हूँ। अब नहीं जायेंगे, बाद में देखा जाएगा।" तो सब ब्रह्मचारियों के सिर पर जैसे पत्थर पड़ गया हो। सुन्नता छा गयी।

उनमें से एक ब्रह्मचारी खड़े होकर बोला, "जो ब्रह्मचारी बाहर है, गुरुदेव! उसे बुलाकर पूछें कि क्या वह सेवा कर लेगा?" श्रीगुरुदेव बोले, "तुम भी पागल हो क्या? एक तो पागल बाहर पड़ा है और दूसरा पागल यहाँ खड़ा होकर बोल रहा है। सब जानते ही हो कि वहाँ बाहर पड़ा हुआ ब्रह्मचारी कैसा है। 15–20 दिन में तो नहाता है। वह गायों की तथा भगवान् की सेवा कैसे कर लेगा?" तो सभी ब्रह्मचारी बोलने लगे, "गुरुदेव! उसको बुलाकर पूछने में क्या हर्ज है।" तो गुरुदेव बोले, "मैं नहीं समझता कि वह सेवा करने हेतु हाँ करेगा, फिर भी जाओ! उसे यहाँ बुला कर ले आओ। उससे पूछते हैं, वह क्या जवाब देता है?" गुरुजी ने एक ब्रह्मचारी को बोला, "जाओ! उसे बुलाकर ले आओ।" ब्रह्मचारी बाहर गया और पागल को बोला, "ओ भोलाराम! तुझे गुरुजी बुला रहे हैं, जल्दी चलो।" उसने कहा, "चलता हूँ, क्या मैं पेशाब कर सकता हूँ?" ब्रह्मचारी बोला, "हां! कर लो।" वह वहीं पर पेशाब करने लगा। पागल तो था ही। पेशाब करने के बाद बोला, "मुझे छींक आ रही है, मुझे छींकने दो। छींक आना शुभ होता है।" ब्रह्मचारी बोला, "जल्दी छींक लो।" तो भोला बोला, "तुम जल्दी क्यों करते हो? "थोड़ी देर बैठ जाओ। छींक आने दो, फिर चलूँगा।" अब तो ब्रह्मचारी परेशान हो गया और इस डर से कि, यह चलने से मना न कर दे वरना हमारी यात्रा बंद हो जाएगी, वहाँ बैठ गया और उसकी छींक का इंतजार करने लगा। एक साथ दो छींक आ गईं। फिर भोला बोला, गुरुदेव ने क्यों बुलाया है? गुरुदेव ने अभी तक तो कभी मुझे नहीं बुलाया। कभी मुझ से बात ही नहीं की। अब क्या जरूरी काम आ गया?" ब्रह्मचारी बोला, "जरूरी काम ही है अतः जल्दी चलो।" भोला बोला, "क्या काम है मुझे बताओ?" तब ब्रह्मचारी बोला, "गुरुदेव ही बताएंगे, तुम जल्दी चलो। एक घंटा हो गया है, गुरुदेव इंतजार कर रहे होंगे।" भोला बोला, "अभी चलता हूँ, अभी चलता हूँ।" अब तो भोलाराम ने दौड़ लगाई और ब्रह्मचारी को बहुत पीछे छोड़ दिया।

गुरुजी के पास पहुँचा और बोला, "गुरुदेव! क्या काम है?" गुरुदेव बोले, "अरे! वह ब्रह्मचारी कहाँ रह गया?" तब भोला बोला, "मैं तो देर होने की वजह से दौड़कर आ गया और वह पीछे ही आ रहा होगा। अब गुरुदेव! बताओ, मुझसे क्या काम है?" इतने में वह ब्रह्मचारी भी आ गया। गुरुदेव ने पूछा, "तुमने एक घंटा क्यों लगाया?" ब्रह्मचारी बोला, "मेरा क्या दोष है, पहले तो इसने कहा कि मुझे पेशाब लग रहा है, फिर कहता है कि मुझे छींक आ रही है, बैठ जाओ, जब दो छींक आएगी, तभी चलूँगा।

मैंने पूछा, "क्यों?" तो यह बोला कि मैं छींक कर ही गुरुदेव के पास जाऊँगा। दो छींक शुभकारक होती हैं तो मैं इसकी छींक की बाट देखता रहा। इसने एक साथ में दो छींक मारीं, तब इसने ऐसी दौड़ लगाई कि मैं तो बहुत पीछे रह गया। अतः मुझे आने में देर हो गयी।" गुरुदेव बोले, "ठीक है। ठीक है। बैठ जाओ।" भोलाराम बोला, "गुरुदेव! क्या काम है? मेरे को जल्दी बताओ।" गुरुदेव बोले, "इतनी जल्दी क्यों मचाते हो?" भोला बोला, "गुरुदेव! मुझे बहुत जल्दी–जल्दी पेशाब आता रहता है। तो यदि पेशाब आ गया तो मैं यहाँ रुक नहीं सकूँगा। जब आएगा तो मैं भाग जाऊँगा। आप बताओ, क्या काम है?" गुरुजी बोले, "भोला! काम यह है कि हम सब तीर्थ यात्रा करने जा रहे हैं तो क्या तुम भगवान् की व गायों की सेवा और देखभाल करोगे?" भोला बोला, "यह भी कोई काम है?" गुरुजी बोले, "हां! यही तो काम है।"

भोले ने पूछा," तो बताओ, मुझे कैसे–कैसे सेवा करनी है? गुरुजी बोले, "तो ध्यान से सुनो। तुझे सुबह 3:00 बजे उठना है और गायों को चारा डालना है।" भोला ने पूछा, "चारा कैसे डालते हैं?" तो गुरुदेव बोले, "पहले तो चारे को छलनी से छानना है फिर बांट (कांकड़ा, मेथी, दलिया आदि) मिलाना है और फिर नाँद में डाल देना है।" भोला बोला, "तो छलनी क्या होती है?" गुरुदेव ने समझाया, "देख! छलनी लोहे की तारों की बनी होती है, उसमें चारा डाल कर हिलाना होगा, मिट्टी निकल जाएगी और चारा साफ हो जाएगा।" भोला बोला, "चारा कितना लेना होगा।" गुरुजी बोले, "वहाँ एक छाबड़ी है। 8 छाबड़ी छान कर डालनी है।" भोला बोला, "कहाँ डालनी है।" गुरुजी ने उत्तर दिया, "जहाँ गायों की नाँद है वहाँ डालनी है। उनके सामने नाँद बनी है, उसमें डालनी हैं।" भोला बोला," गुरुदेव! बड़ी मुसीबत है।" गुरुजी ने कहा, "तो मना कर दो।" अब तो सब ब्रह्मचारी डर गए कि यदि भोला ने मना कर दिया तो तीर्थयात्रा बंद हो जाएगी। भोला बोला, "गुरुदेवजी! पूरी उम्र भर आपने एक भी काम नहीं बताया, मैं कैसे मना करूँ? जैसा आपने बोला वैसे ही करूँगा और अब यह भी बताओ कि गायों को पानी पिलाना है, गोबर डालना है। तो गुरुदेव! मुझे सब बता दो, मैं सब कर लूँगा।" गुरुजी बोले, "दोनों समय गायों की सेवा करनी है।" भोला ने उत्तर दिया, "हां! कर लूँगा।" गुरुदेव बोले, "यह तो हुई गायों की सेवा। अब भगवान् की सेवा बता रहा हूँ।" भोला बोला, "भगवान् कहाँ रहते हैं?" गुरुजी बोले, "अरे! भगवान् आश्रम में रहते हैं।

मैं चलकर तुम्हें बता दूँगा। क्या भगवान् की सेवा कर लोगे?" भोला बोला, "हां! क्यों नहीं करूँगा। करूँगा!"

गुरुजी बोले, "यह गायों की सेवा और देखभाल में तुझे एक घंटा लग जाएगा। तो 4:30 बजे स्नान करना और आश्रम में जाकर भगवान् को जगाना।" भोला बोला, "भगवान् कब उठते हैं? कब जागते हैं?" गुरुदेव बोले, "तुम वहाँ जाकर, जो घंटी रखी है, उसे जोर–जोर से बजाना।" भोला बोला, "हां! समझ गया, बजाने से नींद खुल जाएगी, फिर क्या करना है?" गुरुजी बोले, "फिर शैया से भगवान् को उठाकर आसन पर बिठाना और पर्दा बंद कर देना।" भोला बोला, "क्या भगवान् नहाएंगे नहीं?" गुरुदेव बोले, "पर्दे के बाहर से बोलना कि भगवान्! आप नहा लो। मैं आपके लिए मक्खन–मिश्री बना कर लाता हूँ, तो भगवान् स्वयं ही नहा लेंगे, तुम तो बोल देना उनको।" गुरुजी ने बोला, "उन्हें जल्दी भूख लग जाती है अतः सूर्य उदय होने के पहले तुम्हें भगवान् को मक्खन–मिश्री खिलानी पड़ेगी। भगवान् को बोलना, "इतने में आप स्नान करके धुले कपड़े पहन कर तैयार रहना, मैं माखन मिश्री खाने हेतु लाऊँगा। आपको अपने आप तिलक वगैरा करना तो मुश्किल होगा इसलिए मैं ही खाने के बाद, तिलक और आरती कर दूँगा।" इतने में 5–6 बज जाएंगे।" भोला सोचने लगा कि 4:30 बजे स्नान करना बड़ी मुश्किल है, बड़ी मुसीबत है, वह तो 15–15 दिन में कभी–कभी नहाता था, अब तो रोज ही नहाना पड़ेगा।" भोला बोला, "अब गुरुदेव! आगे का काम बता दो।" गुरुदेव बोले, "मैं भूल गया था, भगवान् को जगाने से पहले मंदिर में झाडू–पोछा करना, फिर ही भगवान् को जगाना।" भोला बोला, "हाँ गुरुजी! ठीक है, तो भगवान् को जगाने के पहले अगरबत्ती जलाना होता है क्या?" गुरुजी बोले, "हां! भगवान् को अच्छी तरह सुगंध आये। हां! हां! ऐसा ही करना और इसके बाद भोग लगाना।"

भोला बोला, "गुरुदेव! भोग क्या होता है?" गुरुजी बोले, "अरे! पागल! रोटी बनाकर, सब्जी बनाकर, दही तैयार करके भगवान् को खिलाने को ही भोग बोला जाता है।" भोला ने पूछा, "तो गुरुदेव! भगवान् कितनी रोटियों में थक जाते हैं?" गुरुजी बोले, "देखो! दो रोटी तो कान्हा की और दो रोटी राधा की और दो रोटी सखा की, सखा भी कभी–कभी आ जाता है, और दो रोटी तेरी। कभी कभी कान्हा का सखा भी आ जाता है तो भगवान् भूखे रह जाते हैं।" भोला बोला, "तो हो गयी, 6 रोटी

भगवान् की और दो रोटी मेरी अपनी। तो बनाकर उनके पास रख दूँगा। ठीक है तो रोटियाँ अकेली कैसे खाएंगे तो लगान भी तो होना चाहिए।" गुरुजी बोले, "हाँ भोला! लगान के बिना तो रोटी अच्छी नहीं लगती तो कभी कभी कढ़ी बना लेना, कभी सब्जी बना लेना, कभी दही रख देना।" भोला बोला, "गुरुदेव! अभी याद आया कि रात में तो दही भगवान् के पेट को खराब कर देगा तो रात में खाने को क्या देना है?" गुरुजी बोले, "अरे भोला! रात में तो गाय का दूध देना है, सब्जी रोटी तो देना ही है। ठीक है।" भोला बोला, "मैं समझ गया। अब गुरुदेव! भगवान् को भोजन करने में कितनी देर लगती है?" गुरुजी ने कहा, "भोला! पर्दा करना जरूरी है क्योंकि सबके सामने भगवान् खाने में शर्माते हैं। अतः पर्दा कर के पास बैठकर खिलाना। लगभग आधा घंटा तो खाने में लग ही जाता है।" भोला ने कहा, "हां! लग जाता होगा।" "गुरुदेवजी! पानी भी देना पड़ेगा? गुरुजी बोले, "हां! पानी भी रखो। पानी तो जरूरी है ही, कभी–कभी रोटी का टुकड़ा गले में अटक जाए तो पानी की घूट लेने से टुकड़ा नीचे उतर जाता है।" भोला ने पूछा, "हां! गुरुदेव! पानी कितना रखना है? तो गुरुजी ने समझाया, "अरे! यहाँ झारी रखी है, उसे भर कर रख देना। झारी तो भारी है उसके पास गिलास भी रखना।" भोला ने उत्तर दिया, "हां! हां! रखूंगा! अब गुरुदेव तीर्थ यात्रा पर जा सकते हो। मैं सब सेवा व देखभाल कर लूँगा।"

सुबह उठते ही गुरुदेव व सारे ब्रह्मचारी आश्रम से चले गए और आश्रम में गाय, भोला और भगवान् ही रह गए। ब्रह्मचारियों की पत्तलें चाटने से तथा गायों का झूठा पीने से भोले का मन स्वच्छ और निर्मल हो गया था। भोला सोचने लगा कि अब तो गुरुदेव तथा सब ब्रह्मचारी यात्रा पर चले गए हैं, अतः सब उसे ही करना है। ऐसे रात में सोचता रहा कि सुबह उसे जल्दी जागना है, वरना भगवान् भूखे मर जाएंगे। उठते ही सुबह तो गायों की देखभाल करनी है, चारा, पानी, दूध निकालने में देर न हो जाए और फिर दही बिलोना, उसमें बहुत समय लगेगा। भगवान् तो भूखे मर जाएंगे। ऐसे ही उधेड़बुन में सोचते सोचते ही रात में 2:00 बज गए।

घड़ी की तरफ देखा कि अब तो सोना बेकार है। यदि सो जाऊँगा और जाग नहीं पाया तो बहुत बुरा हाल हो जाएगा। अतः अभी गायों के गुवाड़े (गौशाला) में चलकर गोबर उठा लूँ, झाडू निकाल लूँ, चारा छान लूँ, नाँद को साफ कर लूँ तो इतने में 3:00 बज ही जायेंगे। ऐसा सोचकर गायों के गुवाड़े में गया और काम में लग गया। जब काम कर चुका तो

घड़ी की तरफ नजर दौड़ाई तो देखा कि सुबह के 4:30 बज गए, अतः घबराया। अब तो मुश्किल हो गयी, भगवान् को समय पर कैसे खिलाऊँगा? शीघ्र ही नहाया फिर मंदिर का झाडू–पोछा लगाया और घड़ी पर नजर गयी तो देखा कि 6:00 बज गये। माखन मिश्री खिलानी थी। अब तो तैयारी करने में 7:00 बजेंगे। जल्दी–जल्दी माखन दही से निकाला और मिश्री ढूंढने लगा तो मिश्री मिली नहीं। फिर घबराया और गुरुजी को याद किया तो गुरुकृपा से याद आया कि अमुक जगह पर कुल्हड़ में मिश्री है। जल्दी से गया, मिश्री को कूटा और मक्खन में रखा और जल्दी से मंदिर के पास जाकर और ताली बजाई, "भगवान् आज तो देर हो गई, आप जल्दी से हाथ मुंह धो लो, जल्दी से माखन–मिश्री लाकर देता हूँ।" घड़ी की तरफ देखा तो 7:00 बज गए। सोच रहा था कि भगवान् उसे क्या कहेंगे कि उसने तो उन्हें भूखा मार दिया। जल्दी से पर्दा हटाया और मक्खन मिश्री रख दी और बोला, "नाराज मत होना, पहला दिन था सो देर हो गई।" पर्दा बंद किया और पास में बैठकर सोचने लगा कि चप–चप की आवाज तो आ नहीं रही है, भगवान् खा नहीं रहे हैं। आधे घंटे बाद पर्दा खोला तो देखा, जैसी कटोरी रखी थी, वैसी ही भरी पड़ी है। सोचने लगा कि जल्दी–जल्दी में स्नान ठीक नहीं हुआ होगा, अतः गंदे तन से भगवान् कैसे खा सकते हैं? और नाराज भी हो गए होंगे। अतः बोला, "भगवान्! मैं अभी अच्छी तरह से स्नान करके आता हूँ तब तक आप दूध पी लेना।"

चने का बेसन, हल्दी, गाय के दूध में मिला कर, मल–मल के नहाने लगा। मलमल के नहाने लगा कि वह गंदा था इसलिए भगवान् ने नहीं खाया होगा। उसने रगड़–रगड़ के दूध का स्नान किया जैसे शादी में दूल्हा–दुल्हन को नहलाते हैं। ऐसे उसने स्नान किया। जल्दी से कपड़े पहने और भगवान् के पास जाकर बोला, "आपने दूध तो पी लिया होगा? अब दही में माखन–मिश्री मिलाकर खा लो। 10:00 बजे तक रोटी बनाकर खिला दूँगा।" दही, माखन–मिश्री पर्दे के अंदर रखकर, पर्दे के बाहर बैठ कर इंतजार करने लगा कि अब तो भगवान् खा लेंगे। आधे घंटे बाद पर्दा खोला तो कटोरी से कुछ नहीं खाया। अब सोचने लगा, लगता है कि भगवान् नाराज हो गए हैं। अब भी खाया नहीं क्योंकि गलती उसकी ही है, उसने समय पर कुछ किया नहीं। लेकिन भगवान् भूखे हैं अतः जल्दी से रोटी बनाकर खिलाये। सब्जी बनाने में तो देर लगेगी अतः मीठा दही ही रोटी के साथ खा लेंगे। दो रोटी कान्हा की, दो रोटी राधा की, दो रोटी

सखा की और दो रोटी उसकी, अतः 8 रोटी बनाकर रखना है। फिर भी 9:00 बज गए, पर्दा खोला तो याद आया कि आज आरती तो की ही नहीं। यह तो बहुत गलती हो गई, न जाने आरती किए बिना रोटी खाएंगे कि नहीं। अब तो रोटी रख देता हूँ, भूख में किवाड़ भी पापड़ होते हैं। वह भी भूखा मर रहा है और यह भी भूखे मर रहे हैं। भूख के मारे खा लेंगे। पर्दे के बाहर बैठ कर इंतजार करने लगा और बोलने लगा, "भगवान्! जल्दी खालो। मैं भी भूख के मारे मर रहा हूँ और कल से तुम भी भूखे हो।" पर्दा खोला तो रोटी वैसी की वैसी रखी हैं। क्या किया जाए? गलती तो बहुत बड़ी हो गई, अब वह भी कैसे खाये? जब भगवान् भूखे हैं तो वह कैसे खाये? इन रोटियों को गाय को दे आया।

अब तो दिनभर सोचता रहा और शाम हो गयी। शाम की आरती उतारी और दूध–चावल का भोग रखा और परदे के बाहर बैठ गया। बोला, "भगवान्! खा लो, मैं भी भूखा, तुम भी भूखे हो, 3 दिन हो गये।" और पर्दा खोला तो दूध–चावल में से एक तिनका भी नहीं खाया था तो विचार किया कि भगवान् तो खाए बिना मर जाएंगे तो गुरुदेव और सब ब्रह्मचारी उसकी खाल उधेड़ देंगे। बोला, "अरे! मर जाओगे। खाओ, खाओ, खाओ नहीं तो मर जाओगे। अरे भगवान्! आप गुरुदेव के हाथ से तो खा लेते थे, मेरे हाथ से नहीं खाते तो मुझे बताओ, मेरी क्या गलती हो गई? क्या कमी रह गई? रात–दिन चिंता में हैरान हो रहा हूँ। अब तो भगवान् बताओ क्या करूँ?" अब सोचने लगा कि मार के आगे तो भूत भी कांपता है। अब तो भगवान् की डंडी से खबर लेनी पड़ेगी। क्योंकि राजी–बाजी से कोई मानता नहीं है। भूख के मारे वह और भगवान् भी मर जाएंगे। उसने सुना था कि मार के आगे भूत भी सीधा हो जाता है। अतः कल बहुत बढ़िया–बढ़िया भोजन बनाकर भगवान् से बोलेगा कि 3 दिन से वह भी भूखा और भगवान् भी भूखे हैं, अतः कढ़ी, खीर, मालपुआ कई तरह की चटनी खा लेना वरना भगवान् की अच्छी तरह से बैंत से खबर ली जाएगी। नहीं खाएंगे तो उनकी चमड़ी–चमड़ी उधेड़ देगा। ऐसा सोचते हुए सो गया।

अगले दिन सब भोग भगवान् के सामने रख कर, पर्दे के पीछे बैठ गया। क्या देखता है कि चप–चप खाने की आवाज सुनाई दे रही है। तो सोचने लगा कि राजी–बाजी कौन मानता है, अब डर के मारे खा रहे हैं। बोला, "3 दिन से भूखे हो। सब मत खा लेना। मैं भी 3 दिन से भूखा हूँ। मेरे लिए भी छोड़ देना।" पर्दा खोला, तो भोजन का एक कण भी नहीं

छोड़ा था। बोला, "कोई बात नहीं। भूख में किवाड़ भी पापड़ हो जाते हैं। अब सो जाओ। मैं जाकर दोबारा भोजन बनाकर खा लेता हूँ।" अब उसे शांति आई कि सब काम ठीक हो गया।

एक माह बाद गुरुदेव और ब्रह्मचारी आए और भोला से पूछा कि क्या उसने अच्छी तरह गायों और भगवान् की सेवा की? भोला बोला, "गुरुदेव! गायें तो बेचारियों ने कोई परेशानी नहीं करी परंतु तुम्हारे भगवान् तो 3 दिन तक खुद भी भूखे रहे और मुझे भी भूखा मारा। फिर मैंने सोचा कि राजी–बाजी कौन मानता है? अब तो गुस्से से ही काम करना पड़ेगा। अतः मैंने आपके भगवान् से बोला कि 3 दिन मुझे बहुत परेशान किया है। अतः अब लकड़ी से तुम्हारी खबर लूँगा, मार–मार के कचूमर बना दूँगा। अतः खा लेना।" तबसे डर कर, गुरुदेवजी! भगवान् समय–समय पर खा लेते हैं। बाद में कोई परेशानी नहीं हुई।" सभी सोचने लगे कि अरे! इतने साल तक में, वे भगवान् को नहीं खिला पाए और भोला ने 3 दिन में ही भगवान् को खिला दिया। गुरुदेव बोले, "हमारे सामने खिला कर दिखाओ।" भोला बोला, "क्यों नहीं! आज ही खिला कर दिखा देता हूँ। आओ, सब बैठो, भोग लाओ, अंदर रखो।" सब बाहर बैठ गए। तब भोला बोला, "भगवान्! आज मेरे गुरुदेव आपको भोजन खाता हुआ देखना चाहते हैं तो खा लेना वरना जानते हो न, मैं कैसा आदमी हूँ?" पर्दा खोला तो भोजन का एक तिनका मात्र भी नहीं छोड़ा, सारा का सारा खा गए। गुरु जी बोले, "भोला! तू मेरा गुरु।" लेकिन भोला को गुरुजी यह नहीं बोले कि वह 70 साल से नहीं खिला सके, क्योंकि भोले का भाव टूट जाएगा, हट जायेगा। गुरुजी बोले, "कभी–कभी मेरे से भी रूठ जाते थे, नाराज हो जाते थे।" कहते हैं :

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 3)

भोला बोला, "गुरुदेव! इसमें भगवान् का कोई दोष नहीं था। मैं ही ठीक समय पर भगवान् को खिला नहीं सका। क्योंकि मैं अकेला क्या–क्या काम करता? गायों का बहुत काम था, फिर सफाई करना, मल–मल कर नहाना। इसमें आधा घंटा हो जाता था, फिर भोजन बनाने में बहुत देर हो जाती थी। बरसात का मौसम था, लकड़ी गीली थी, चूल्हा जलता नहीं था, धुंआ–धूल हो जाता था, मेरी आंख लाल हो जाती थी। तो गुरुदेव! बताओ मैं भगवान् को समय पर कैसे खिला सकता था? तो भगवान् तो

नाराज होंगे ही। रोज काम करने वाले को तो जल्दी–जल्दी काम करने की आदत हो जाती है। मैंने कभी काम किया नहीं अतः शुरु–शुरु में काम करने में बहुत मुश्किल होती ही है। जब मैं 3 दिन से भूखा मरने लगा तो मुझे क्रोध आ गया, आना ही था। तो मैंने भगवान् को डराया, तो भगवान् ने डर के मारे भोजन खाना शुरु कर दिया। 3 दिन के बाद तो कोई परेशानी ही नहीं हुई। ठीक समय भोजन नहीं खिलाने पर भी भगवान् ने कुछ भी क्रोध नहीं किया और भोजन आराम से करने लग गए। पानी की झारी भी रोज रख देता था। भगवान् को प्यास लगेगी, तब शाम को झारी खाली होने से, मैं रात को फिर भर देता था। अतः मेरी सेवा सुचारु रूप से खूब चल गई थी।"

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।
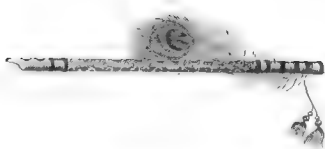
संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : हरिनाम जप करने में आसन की क्या महत्ता है ?

उत्तर : आसन के बिना बैठेंगे तो पृथ्वी का आकर्षण जप को ले लेता है। बिना आसन के देवता भी जप को चोरी कर लेते हैं। इंद्र भी चोरी कर लेता है। कुशासन सबसे बढ़िया है, क्योंकि यह वराह भगवान् के बाल हैं। कुश आसन पर बैठकर किया जप, कोई चोरी नहीं कर सकता। भजन के सब चोर होते हैं। उनसे खुद तो भजन होता नहीं, तो दूसरे का भजन चोरी कर लेते हैं। इसके लिए आसन जरूरी है।

लवमात्र साधुसंग

1 सितम्बर 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में इस दासानुदास अधमाधम
अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा
प्रार्थना है हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

"हे मेरे प्राणनाथ! हे मेरे जीवनधन! आप कहाँ हो? आप कहाँ हो? कहाँ जाऊँ? कहाँ पाऊँ? हे, मुरलीवदन! हे यशोदानंदन! हे कंसनिकन्दन! कोई ठिकाना है नहीं, हे मेरे जीवनधन! सब कुछ किया चरण-अर्पण, हे मेरे प्राण जीवन!"

"हे मेरे प्राणनाथ! आप कहाँ हो? हे मेरे प्राणनाथ! आप कहाँ हो? कहाँ जाऊँ? कहाँ पाऊँ आपको? कहाँ जाऊँ? कहाँ पाऊँ आपकी गोद।"

"रो–रो कर भई आंखें लाल
रो–रो कर भई आंखें लाल
ये मन हुआ बड़ा बेहाल
आपके बिना सूना बन गया है यह त्रिभुवन
अब रहेगा नहीं मेरा जीवन"

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा।।

(मानस, अयोध्या. दो. 218 चौ. 2)

यह संसार ऐसा ही बना हुआ है। जैसा करोगे, वैसा भरोगे। कर्म किए बिना तो संसार का काम हो ही नहीं सकता। मन तो एक क्षण भी कर्म किए बिना नहीं रहता है। सोने के बाद भी मन जागता ही रहता है। भगवान् को भी योगमाया का सहारा लेकर सत, रज, तम का भाव लेकर, कर्म में प्रवृत्त होना पड़ता है। तो मानव का क्या वश है? कर्म भी तीन प्रकार के होते हैं। एक, जो शास्त्र के अनुसार कर्म किया जाए। दूसरा अकर्म यानि निषेध कर्म, जो शास्त्र के विरुद्ध है। तीसरा है विकर्म, जो मनमाने ढंग से कर्म करते हैं, जिनकी इंद्रियां वश में नहीं हैं, वह मनमाने ढंग से वेदों का परित्याग कर देता है। शास्त्र के अनुसार कर्म न करके विकर्म रूप अधर्म ही करता रहता है। इस कारण वह मृत्यु के बाद मृत्यु को प्राप्त होता ही रहता है। सत्संग के बिना इंद्रियों के वश में न होने से जीव कर्म करता रहता है। सत्संग बहुत जरूरी है, इसीलिए द्वारकाधीश ने यह सत्संग के लिए ही बोला है और आदेश दिया है कि प्रत्येक शुक्रवार सत्संग करो। शास्त्र बोल रहा है :

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग।।

(मानस, सुन्दर. दो. 4)

लव मात्र का सत्संग, यानि एक पल के 100वें हिस्से का सत्संग भी बहुत बड़ा लाभ दे सकता है। एक पल, एक क्षण का सत्संग, जैसे सुखांचल होता है और स्वर्ग एवं ऊपर के लोकों के सुख भी उसकी बराबरी नहीं कर सकते। अतः श्रीमद्भागवत महापुराण में भगवान् बोलते हैं कि, "उद्धव! मैं केवल सत्संग से ही प्राप्त होता हूँ।" सच्चा सत्संग संसार में मिलना बहुत मुश्किल है क्योंकि यह कलियुग का समय है। किसी भाग्यशाली को ही सच्चे संत का संग उपलब्ध हो सकता है। कलियुग में, सब ओर कपट साधु विस्तृत रूप से होते हैं। साधु के बिना, केवल शास्त्र पढ़ने से इतना प्रभाव नहीं पड़ सकता, जितना प्रभाव सच्चे साधु के पास बैठने से मिल सकता है। गुरु की कृपा होगी, तभी सच्चा सत्संग मिल सकेगा।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

(श्रीगुरुगीता प्रथमोऽध्यायः श्लोक 58)

गुरु ब्रह्मा है, यानि सृष्टि रचैया। भगवान् को देने वाले गुरु हैं। गुरु विष्णु हैं, गुरु रक्षा करता है एवं बुरे रास्ते पर जाने से रोकता है। गुरुदेव महेश्वर हैं, सच्चा ज्ञान देता है। शिवजी के बराबर कोई भक्त नहीं है। शिवजी उसको भगवान् को प्राप्त करने का सच्चा ज्ञान देते रहते हैं। इसलिए तीनों ही गुरु के रूप में आसीन हैं। गुरु तीनों का रूप ही है।

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः ...हरिनाम करना चाहिए। गुरु के चरणों का ध्यान करते हुए उनके चरणों में बैठकर भजन करना चाहिए। अतः गुरु जी की कृपा मिलेगी। उनकी वाइब्रेशन (तरंगें) आपके ऊपर गिरेंगी तो आपका मन लगेगा।

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम्... गुरुदेव के चरणों की पूजा करो और मंत्र मूलं गुरोर्वाक्यं... जो गुरु बोलता है, वह एक तरह का मंत्र होता है उसको अपनाओ।

मोक्षमूलं गुरोः कृपा...जब गुरु की कृपा हो जाएगी तो मोक्ष होने में कोई देर नहीं लगेगी। गुरु की कृपा को कोई नहीं रोक सकता, भगवान् भी नहीं।

गुरुकृपा ही केवलं, गुरुकृपा ही केवलं, गुरुकृपा ही केवलं।

गुरु की कृपा के बिना, कोई भी आज तक भक्ति नहीं कर सका। गुरु होना बहुत जरूरी है। लेकिन गुरु सच्चा होना चाहिए।

राखइ गुरु जौं कोप विधाता...ब्रह्मा जी, विधाता भी यदि नाराज हो जाए तो गुरु रक्षा कर सकता है।

राखइ गुर जौं कोप बिधाता। गुर बिरोध नहिं कोउ जग त्राता।।

(मानस, बाल. दो. 165 चौ. 3)

यदि गुरु नाराज हो जाए तो उसको संभालना किसी के हाथ में नहीं। शुक्राचार्य जी, जब राक्षसों से नाराज हो गए, तो राक्षस, देवताओं से हार गए। ऐसे ही जब बृहस्पति जी, जो देवताओं के गुरु थे, वो नाराज हो गए तो देवताओं को राक्षसों ने हरा दिया। गुरु की कृपा बहुत जरूरी है। गुरु की कृपा हो गई तो कल्याण हो गया। ब्रह्माजी अगर नष्ट करने पर उतारू हो जाएं तो गुरुदेव रक्षा कर लेंगे, बचा लेंगे, लेकिन यदि गुरु से ही विरोध हो जाए तो अनंत कोटि ब्रह्मांडों में जीव को कोई बचाने वाला नहीं है, उसको भगवान् भी नहीं बचा सकते।

गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई...गुरु के बिना संसार रूपी दुख, नहीं हट सकेगा।

गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई। जौं बिरंचि संकर सम होई।

(मानस, उत्तर. सो. 92 (ख) चौ. 3)

चाहे कैसा भी हो, लेकिन गुरु के बिना कोई भी संसार सागर से, दुख सागर से पार नहीं पा सकता।

जे सठ गुर सन इरिषा करहीं। रौरव नरक कोटि जुग परहीं।।
त्रिजग जोनि पुनि धरहिं सरीरा। अयुत जन्म भरि पावहिं पीरा।।

(मानस, उत्तर. दो. 106 (ख) चौ. 3)

जो मूर्ख गुरु से ईर्ष्या, द्रोह करता है वह करोड़ों युगों तक रौरव नरक, जो इतना खतरनाक है, उसमें पड़ा रहेगा। गुरु अगर नाराज हो जाएगा, तो फिर क्या होगा?

अयुत जन्म भरि पावहिं पीरा

अनंत जन्म तक दुख भोगता रहेगा, बार–बार शरीर धारण करेगा और दुख भोगता रहेगा। जो गुरु से लड़ता है, करोड़ों युगों तक रौरव नरक में पड़ा रहेगा। फिर पशु–पक्षी होकर जन्म लेता है, लाखों जन्म तक दुख आता ही रहता है। इसलिए गुरु को नाराज करना बहुत खतरनाक है। गुरु को कभी भी नाराज मत करो। गुरु अगर तुम्हें पीट भी डाले तो भी हाथ जोड़ दो और गुरु के चरणों में लिपट कर रोओ। लेकिन गुरु से कभी भी लड़ाई मत करो। क्या कहते हैं कि :

गुर के बचन प्रतीति न जेही। सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही।।

(मानस, उत्तर. दो. 79 चौ. 4)

पार्वतीजी, शिवजी को कह रही हैं कि पतिदेव! गुरु से जिसकी प्रीति नहीं है, वह सपने में भी कभी सुखी नहीं रह सकता।

नानकजी बोल रहे हैं :

कोई तन दुखी, कोई मन दुखी, और कोई धन बिन फिरे उदास।
अरे! थोड़े थोड़े सभी दुखी एक सुखी राम का दास।।

सुखी कौन है? जो भगवान् का प्यारा है, जो राम का दास है, जो कृष्ण का प्यारा है, वही सुखी है और बाकी सब दुखी हैं। नानकजी फिर कह रहे हैं :

पोस्त डोडा भांग धतूरा उतर जाए प्रभात...

ये खाने के कुछ देर बाद इसका नशा उतर जाएगा।

अरे! नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात

जिसको नाम का प्यार बन गया, उसे रात–दिन नशा चढ़ा ही रहेगा, उतरेगा नहीं। रात दिन उसको बस नाम में ही आनंद मिलता रहेगा। उसको नींद भी नहीं आएगी, भूख भी नहीं लगेगी।

ऐसा आनंद आएगा जो सुपरनैचुरल (अलौकिक) है, जिसको मिलता है, वही जानता है। वह उस आनंद को बता नहीं सकता।

नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात, 24 घंटे चढ़ी रहती है।

भक्त समुदाय को अपना हरिनाम कैसे जपना चाहिए? जैसे सीता जपती थी।

जेहि बिधि कपट कुरंग सँग धाइ चले श्रीराम।
सो छबि सीता राखि उर रटति रहति हरिनाम।।

(मानस, अरण्य. दो. 29 ख)

वह छवि, जब भगवान्, मारीच के पीछे भागे थे। मारीच, कपट से सोने की चमक वाले हिरण का रूप धर कर आया था। ऐसा रूप देख कर सीता बोली कि, "राम! देखो कितना सुंदर हिरण है। इस मृगछाल पर हम बैठकर भजन किया करेंगे तो उसको मार कर मृगछाल ले आओ।"

जेहि बिधि कपट कुरंग संग धाय चले श्री राम...वह ध्यान कर रही है, चिंतन कर रही है। सो छबि सीता राखी उर रटति रहति हरिनाम। वह चिंतन ह्रदय में धारण करके और भगवान् का नाम ले रही है। ऐसे हरिनाम करना चाहिए। फिर भरत जी कैसे करते थे?

पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू।।

(मानस, अयोध्या. दो. 325 चौ. 1)

भरतजी हृदय में अपने भैया राम का ध्यान कर रहे हैं। भैया राम ने कभी पाँव धरती पर भी नहीं रखे थे। इतने कोमल चरण हैं उनके और वे ही अब जंगल में घूम रहे हैं, ऊपर से सूर्य तप रहा है और नीचे से बालू जल रही है। उनके चरणों में फफोले हो गए होंगे। वो ध्यान करके ... पुलक गात हिय सिय रघुबीरु, जीह नाम जप लोचन नीरू... राम! राम! राम बोल रहे हैं और आंखों से आंसू गिर रहे हैं। ऐसे नाम जपना चाहिए जैसे सीता जी और भरत जी जपते थे। जीभ से भरत जी नाम जप रहे हैं और भैया राम का चिंतन कर रहे हैं और आंखों से अश्रुधारा बहा रहे हैं।

शास्त्र बोल रहा है कि सबसे बड़ा दुख क्या है? और सबसे बड़ा सुख क्या है?

नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं।

दरिद्रता सबसे बड़ा दुख है।

संत मिलन सम सुख जग नाहीं।।

संतों का मिलन ही सबसे बड़ा सुख है।

(मानस, उत्तर. दो. 120(ख) चौ. 6, गरुड़जी के सात प्रश्न तथा काकभुशुण्डि के उत्तर)

कलियुग में जो शराब पीते हैं, भक्ष्य–अभक्ष्य खाते हैं। उनकी जनता चर्चा नहीं करती। यह कलियुग है, और इसमें जो भगवान् का नाम जपता है, उसे जनता चिढ़ाती रहती है। "ओहो! भक्त बन गया है।" उन्हें चिढ़ाने दो। चिढ़ाना तो अच्छा है। जापक का पाप चिढ़ाने वाले के पास चला जाता है। इसके लिए शास्त्र बोल रहा है :

निंदक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय।।

(संत कबीर जी)

कहते हैं कि जो निंदा करते हैं, उन्हें मकान बनाकर अपने पास में रखना चाहिए। इससे क्या फायदा होगा? जितने भी तुम्हारे पाप होंगे उसके (निंदक के) यहाँ, उसके हृदय में चले जाएंगे। आप एकदम निर्मल हो जायेंगे। अब आपको कुछ करना ही नहीं पड़ेगा। सब कुछ उसके पास चला जाएगा। इसलिए जब कोई निंदा करे, तो आपको खुश होना चाहिए

कि मैं तो निर्मल बन जाऊँगा। अभी तक तो मेरा स्वभाव निर्मल नहीं है, अब अपने आप ही मेरा स्वभाव निर्मल हो जाएगा और मैं भगवान् का नाम बड़े प्यार से लूँगा। शास्त्र कह रहा है ऐसे निंदक को पास में रखने से ही बड़ा लाभ है, चाहे पास में मकान ही बना कर देना पड़े। जब वह भक्त की निंदा करेगा तो भक्त से जो पाप, अपराध बन गए हैं, वह निंदक के पास जाकर, उसके स्वभाव में आ जाएंगे। उसके हृदय में जाकर घुस जाएंगे और आपका हृदय साफ हो जाएगा। बिल्कुल निर्मल बन जाएगा। कितना सरल, सुगम साधन शास्त्र ने हमें भगवान् के पास जाने का बता दिया है। जो शराब और अभक्ष्य लेते हैं उनको कोई कुछ नहीं बोलता। लेकिन जो भगवान् का नाम लेगा, उसकी चर्चा होती है। तो यह अच्छा है। बहुत जल्दी फायदा होगा।

वेदों ने इस बात को बार–बार दोहराया है, "भगवान् चर–अचर प्राणियों में आत्मारूप में विराजमान हैं। यही अपनी आत्मा और प्रियतम हैं परंतु मूर्ख मानव इस वेदवाणी को सुनता ही नहीं है और मुझको (भगवान् को) सताता रहता है। बिना मतलब आपस में द्वेष करता रहता है। यह मुझसे ही द्वेष करता है क्योंकि यह शरीर तो आत्मा का कपड़ा है। द्वेष किससे होगा? द्वेष तो आत्मा से होगा और आत्मा दुख पाएगा। आत्मा सबकी बराबर है।" इसलिए तो कहते हैं कि किसी की आत्मा मत सताओ। ऐसा तो नहीं कहते कि किसी का शरीर मत सताओ। जैसे कोई किसी के मकान की खिड़की तोड़े तो क्या मकान रोयेगा? मकान में रहने वाला रोएगा। इसी प्रकार आत्मा का शरीर तो एक कपड़ा है, जब गंदा हो जाएगा, तब नया कपड़ा पहनना ही पड़ता है।

शरीर के सब अवयव कमजोर व शक्तिहीन हो जाते हैं, तो एक दिन शरीर गिरने लगता है। आत्मा रूपी 'सैल' को उसे (पुराने शरीर को) छोड़ना ही पड़ेगा और दूसरे शरीर में आत्मा रूपी 'सैल' चला जाएगा। दूसरा शरीर धारण कर लेगा। दूसरे शरीर में चला जाएगा, तो इसमें क्या परेशानी है? जब मानव एक फटा कपड़ा उतार कर दूसरा कपड़ा पहन लेता है तो मानव को इसमें क्या परेशानी होती है? सारी परेशानी अज्ञान के कारण होती है। जब ज्ञान हो जाएगा तो उसे कोई दुख नहीं होगा। ठीक है, एक शरीर खराब हो गया तो क्या हुआ, दूसरा शरीर मिल जाएगा। मानव को तो खुश होना चाहिए। नए कपड़े से तो मानव का मन खुश होता ही है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

ध्यान दीजिए! शास्त्र का कहना है कि धन का एकमात्र फल है धर्म। धन, धर्म में लगाना चाहिए। लेकिन धन केवल कुटुंब में लग जाता है। उससे कोई फायदा नहीं। धर्म में लगेगा तो वह धर्म तुम्हारा साथ देगा क्योंकि धर्म से ही मानव का स्वभाव, भगवान् की ओर अग्रसर होता है। धन से सुख, साधन स्वतः ही होता रहता है। जहाँ धन, धर्म में लगता रहता है वहाँ लक्ष्मी विराजमान रहती है। वहाँ पर सब प्रकार की रिद्धि, सिद्धि और सुख सुविधाएं विराजमान रहती हैं। जहाँ पर मानव धन को धर्म में नहीं लगाता है, वह धन उसे बुरे काम में लगा देता है। शराब पीता है, जुआ खेलता है, अदालतों में चक्कर काटता है, वेश्यागमन करता है आदि–आदि कुकर्मों में वह धन लग जाता है और अंत में नरक की प्राप्ति करा देता है। ऐसा कलियुग में अक्सर होता रहता है। क्योंकि कलियुग में संतानें राक्षस प्रवृत्ति की होती हैं। 99% राक्षस होते हैं केवल 1% ही सदाचारी प्रवृत्ति के होते हैं। कलियुग में खानपान जहरीला होता है। मानव, मानव को जहर खिला रहा है। लोगों का जैसा मन, वैसा कर्म होता है। दया नाम की कोई चीज भी नहीं होती। बिना कारण ही मानव, मानव को मार देता है। जिसकी राज्य में कोई सुनवाई भी नहीं है। पैसा देकर स्वतंत्र हो जाते हैं। गरीब मारा जाता है। स्त्रियां उच्छृंखल वृत्ति की हो जाती हैं, किसी का कहना नहीं मानती हैं। मनमाने ढंग से जीवन चलाती रहती हैं। पुरुष उसका गुलाम बन जाता है। स्त्रियां मेरे से नाराज नहीं हो, जैसा शास्त्र में लिखा है, वही बता रहा हूँ। हमारा शास्त्र ही ऐसा बोल रहा है अतः कोई नाराज न हो। सती स्त्री गहने बिना रहती है और कुलटा स्त्री, गहनों से लदी रहती है।

यह कलियुग का ही प्रभाव है। कोई क्या कर सकता है? जो हो रहा है, भगवान् की प्रेरणा से ही हो रहा है। किसी का भी इसमें कोई दोष नहीं है क्योंकि कलियुग को तो भगवान् ने ही बनाया है। कलियुग में ऐसा ही होगा। भाई, भाई को नहीं चाहता। आप स्वयं देख लो, ससुराल में सालों की सलाह से कर्म होते हैं भाई से सलाह नहीं लेंगे। परिवार दुश्मन बन जाता है और अन्य सभी सगे बन जाते हैं। कलियुग में सभी मर्यादाएं समाप्त हो जाती हैं। यहाँ तक कि मौसम भी बदल जाते हैं।

भगवान् बोल रहे हैं, "जिस प्रकार देह दृष्टि से जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज यह चारों प्रकार के प्राणी पंचभूत मात्र हैं, अर्थात् पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु और आकाश से निर्मित हैं। उसी प्रकार संपूर्ण जीवों में आत्मा को एवं आत्मा में अनन्य भाव से अनुगत देखें तो सब में भगवान् की आत्मा है। सब बराबर हैं। कोई छोटा बड़ा नहीं है। जिस प्रकार एक ही अग्नि पृथक्–पृथक् आश्रयों में उनकी विभिन्नता के कारण भिन्न–भिन्न आकार की दिखाई देती हैं। उसी प्रकार यह देव मनुष्यादि शरीरों में रहने वाला, एक ही आत्मा अपने आश्रयों के गुण भेद के कारण, भिन्न–भिन्न प्रकार का दिखाई देता है। भैंस में भी आत्मा है। उसका आकार अलग है। गाय में भी आत्मा है, उसका आकार अलग है। ऊंट में भी आत्मा है, हाथी में भी आत्मा है, चिड़िया में भी आत्मा है, एक कीड़े में भी आत्मा है। लकड़ी जैसे जलती है, वैसा ही लकड़ी का रूप बन जाता है। उसी तरह आत्मा बन जाती है। अतः भक्त, भगवान् की कृपा से, इस माया को जीतकर अपने स्वरूप, आत्मा में स्थिर हो जाय।"

भगवान् कहते हैं, "हे उद्धव! जो लोग अपने संपूर्ण कर्म, उनके फल तथा अपने शरीर को भी मुझे ही अर्पण करके भेदभाव छोड़ कर, मेरी उपासना करते हैं, वह सबसे श्रेष्ठ हैं। इस प्रकार मुझे ही अपने चित्त और कर्म समर्पण करने वाले अकर्ता एवं समदर्शी पुरुष से बढ़कर कोई प्राणी नहीं दिखता है। अतः यह मानकर कि जीव रूप अपने अंश से साक्षात् भगवान् ही सब से अनुगत है, इन समस्त प्राणियों को मन से प्रणाम करें क्योंकि सभी में भगवान् ही आत्मा स्वरूप बैठे हैं। सभी का आदर करते हुए छोटा बड़ा न समझे। हाथी भी वही है, चींटी भी वही है। सभी को समान दृष्टि से देखें क्योंकि सब में मैं ही आत्मा रूप में विराजित हूँ। यह भेदभाव ही जीव को अधोगति में गिराता है।" यही तो सत्संग है, जिससे आंखें खुलती हैं। जो कुछ भाग्य से भगवान् ने दिया है, उसी में संतोष रखकर अपना जीवन यापन करता रहे तो इसके पास दुख की छाया भी नहीं आ सकती है। भगवान् कह रहे हैं, "जो किसी जीव को सताता है, वह मुझे ही सताता है।" तभी तो कहा जाता है कि किसी की आत्मा मत सताओ। ऐसा कोई नहीं कहता कि शरीर को मत सताओ।

जो सब का आश्रय होने के कारण, समस्त प्राणियों में रहकर प्राणियों द्वारा, प्राणियों का संहार करता है वह जगत का शासन करने वाला, ब्रह्मा, शिव का भी प्रभु, भगवान् 'काल' किए का फल देने वाला विष्णु है। इसका न कोई मित्र है न कोई शत्रु है। न तो कोई सगा–सम्बन्धी है। यह सदा

सजग रहता है। जो धर्म शास्त्रों को नहीं मानता है, उन प्रमाद में पड़े हुए प्राणियों पर आक्रमण करके इनका संहार करता रहता है। ऐसे आदमी मारे जाते हैं, एक्सीडेंट (दुर्घटना) से चकनाचूर हो जाते हैं। इसी के भय से वायु चलती है, इसी के भय से इंद्र वर्षा करता है, इसी के भय से सूर्य तपता है, इसी के भय से तारे चमकते हैं और इसी के भय से पृथ्वी स्थिर रहती है। इसी के भय से नदियां बहती हैं, इसी की वजह से समुद्र अपनी मर्यादा के बाहर नहीं आता। पृथ्वी पर तीन भाग जल है और एक भाग धरती है। इसी के भय से औषधियों के सहित लताएं और सारी वनस्पतियां समय–समय पर फल–फूल धारण करती हैं। ऐसे भगवान् कहते हैं, "मेरे डर से काल और महाकाल भी थरथर काँपते हैं लेकिन मैं भक्त से थरथर कांपता हूँ। भक्त मेरा शिरोमणि है, मैं भक्त से बहुत छोटा हूँ, भक्त मेरा पूजनीय है।" कहने का अर्थ यह है कि भगवान् काल के डर से सभी अपनी–अपनी मर्यादा में रहते हैं। यह अविनाशी काल स्वयं अनादि है, किंतु दूसरों का आदि कर्ता है। स्वयं अनंत होकर भी दूसरों का अंत करता रहता है। यह पिता से पुत्र की उत्पत्ति करवाता है। सारे जगत् की रचना करता रहता है और अपनी संहार शक्ति मृत्यु के द्वारा, यमराज को भी मरवा कर, उसका भी अंत कर देता है।

लेकिन भगवान् से तो यह काल थरथर काँपता रहता है। भगवान् केवल भक्त से ही कांपते हैं, अन्य किसी प्राणी से नहीं कांपते। अतः जगत् में सबसे बड़ा महत्वशील भगवान् का भक्त ही है। भक्तों से लीला हेतु ही भगवान् धरातल पर अवतार लेते हैं और दूसरा कोई कारण नहीं है। वह तो भौहों (भृकुटि) मात्र के इशारे से ही सबको मार सकते हैं, भौहों के इशारे से ही भूकंप ला देंगे। सब पृथ्वी के अंदर घुसा कर छिपा सकते हैं। भौहों मात्र से ही भगवान् चर–अचर सभी प्राणियों का संहार कर सकते हैं।

जिस प्रकार वायु के द्वारा उड़ाया जाने वाला बादल समूह, इसके बल को नहीं जानता। उसी प्रकार जीव भी बलवान काल की प्रेरणा से भिन्न भिन्न अवस्थाओं तथा योनियों में भ्रमण करता रहता है, किंतु उसके प्रबल पराक्रम को नहीं जानता। प्राणी जिस–जिस अभिलाषा को पूरा करने की कोशिश करता है, उसे काल नाश कर देता है। जिसके लिए प्राणी को बहुत दुख होता है। इसका कारण है कि यह प्राणी मंदमति है, मूर्ख है। अपने नाशवान शरीर को ही सदा सँवारता रहता है, जो कि अनित्य है। अपने सम्बन्धियों के घर, खेत, धन आदि को मोह के कारण

नित्य मानता है। जिस जिस योनि में जन्म लेता है, उसी में मग्न रहता है। यही तो इसका अज्ञान है।

एक बार नारदजी वैकुण्ठ में भगवान् के पास गए। भगवान् ने पूछा, "नारदजी! तुम सभी जगह जाते रहते हो तो जगत् का क्या हाल है?" नारद जी बोले, "भगवान्! कोई सुखी नहीं है, सभी दुखी ही दुखी हैं।" भगवान् ने कहा, "नारद! अपने कर्मों से सभी दुखी ही रहेंगे। कोई किसी को दुख नहीं देता, अपना किया हुआ शुभ–अशुभ कर्म ही दुख का कारण है।" नारद जी बोले, "भगवान्! आप तो दयानिधि हो। सब को वैकुण्ठ में ले आओ न।" भगवान् बोले, "नारद! कोई भी वैकुण्ठ में आना नहीं चाहता।" नारद जी बोले, "भगवान्! ऐसा तो कभी हो नहीं सकता कि वैकुण्ठ में कोई न आना चाहे, यह तो सुख का प्रधान स्थान है। कौन नहीं आना चाहेगा?" तो भगवान् ने मुस्कुराते हुए कहा, "तुम्हें विश्वास नहीं है, तो जाओ। जो यहाँ आना चाहे, उसे लेकर आ जाओ।"

नारदजी ने उत्तर दिया, "मैं अभी जाता हूँ।" नारदजी पृथ्वी पर आए, सोचा कि जो अधिक दुखी हो, उसे जाने में क्या परेशानी होगी? वह तो जाना ही चाहेगा और नारद एक 80 साल के बूढ़े के पास गये, जो खटिया पर पड़ा–पड़ा खांस रहा था। नारदजी ने सोचा कि यह तो मना नहीं करेगा। यह तो अवश्य जाएगा, क्योंकि बड़ा ही दुखी हो रहा है। इसे ही बोलते हैं। नारदजी ने पूछा, "बाबा! वैकुण्ठ चलोगे?" बूढ़ा बोला, "अरे! वहाँ कौन नहीं जाना चाहेगा, मैं जरूर चलूँगा। वैकुण्ठ तो समस्त सुखों का स्थान है।" नारदजी बोले, "अभी चलो, मैं तुम्हारे लिए विमान लेकर आता हूँ। तुम तैयार रहना।" बूढ़ा बोला, "नारदजी! सुनो, मेरी बात सुनो। अभी तो मैं नहीं जा सकता, क्योंकि, मैं अपनी पोती की शादी करके ही जा सकता हूँ और मेरे पोते के संतान होने वाली है। उसका मुख देखकर ही मैं जाऊँगा। नारदजी! अभी विमान मत लाना। मैं अभी नहीं जाऊँगा। 6 साल के बाद में आना, मैं चलूँगा।" नारदजी बोले, "अरे! कैसा मूर्ख है जो वैकुण्ठ नहीं जाना चाहता। फिर तू रोता रह यहाँ पर।"

नारदजी सोचने लगे कि भगवान् ने सच ही कहा था, कोई नहीं आना चाहता। तो अब वह भगवान् को क्या मुंह दिखलायेंगे? अब तो बड़ी मुसीबत में फंस गये। बैठ कर विचार किया कि प्राणियों में सूअर सबसे गंदा होता है। सदा विष्ठा खाता रहता है, वैकुण्ठ के लिए राजी हो जाएगा। फिर नारदजी, एक बूढ़े सूअर के पास गये, जो एक गंदे गड्ढे में

पड़ा हुआ था। पूरा शरीर गंदगी और मिट्टी में सना हुआ था। नारदजी ने उसके पास जाकर बोला, "सूअर महाशय! मैं तुम्हें वैकुण्ठ ले जाने आया हूँ। भगवान् ने तुम्हें लेने भेजा है। तो बताओ, वैकुण्ठ चलोगे?" सुअर गड्ढे से उठा और अपने शरीर को थरथर करके झाड़ा। नारद जी के भी सारे कपड़ों को छींटों से भर दिया और उनके कपड़े खराब कर दिए। नारदजी मन में नाराज तो हुए कि इसने उन्हें पूरी तरह गंदा बना दिया लेकिन भगवान् का आदेश है, इसे ही वैकुण्ठ ले जायेंगे, यह सोच कर नारदजी बोले, "अभी तुम्हारे लिए विमान लाता हूँ, तुम स्नान करके तैयार हो जाओ।" सूअर बोला, "नारदजी! मैंने भी सुना है कि वैकुण्ठ जैसा सुख का स्थान कहीं पर नहीं है। पर क्या मुझे वहाँ पर खाने हेतु विष्ठा मिलेगी?" नारद जी बोले, "अरे! गंदे, बदमाश! वहाँ ऐसी गंदी चीज नहीं मिल सकती।" तो सूअर बोला, "नारदजी! फिर मैं नहीं जा सकता।" अब नारदजी तो बहुत परेशान हो गए। सुअर बोला, "आप जाओ। मुझे आपसे कोई मतलब नहीं है। अब मेरे पास मत आना।"

अब तो नारदजी हैरान हो कर सोचने लगे कि अब वह वापस कैसे जाये? भगवान् उन्हें क्या कहेंगे? उन्होंने, भगवान् की बात पर विश्वास नहीं किया तो अब क्या जवाब देंगे?

भगवान् की माया ही ऐसी है। नाली का कीड़ा भी अपने को खुश ही मानता है। जैसे मल का कीड़ा, मल में ही मग्न रहता है। अपनी योनि में कोई दुख महसूस नहीं करता। गंदी चीजें खाकर भी शरीर में खून संचारित रहता है क्योंकि भगवान् ने जगत् की सभी खान–पान की वस्तुओं में अपनी अपनी योनि के अनुसार खाद्य पदार्थ बनाकर रख छोड़े हैं।

गिजाई (कीड़ा), गिंडार (कीड़ा), मेंढक आदि मिट्टी ही खा कर जीवन धारण करते हैं। मिट्टी खाने वाले अनंत जीव पृथ्वी से जन्म लेते रहते हैं। इनकी आयु लगभग एक सप्ताह की होती है। सांप भी मिट्टी खाकर ही जीवन धारण करता है।

इस मूर्ख मानव की दशा पर ध्यान देकर सुनने की कृपा करें। यह मूर्ख अपने शरीर, स्त्री, पुत्र, गृह, पशुधन और बंधुओं से अपने को बहुत बड़ा भाग्यशाली समझता है। यह है मानव की दशा। उनके पालन–पोषण की चिंता से, इसके सम्पूर्ण अंग जलते रहते हैं, अर्थात् दुर्वासनाओं में

शराब, मांस भक्षण एवं दूषित पदार्थ खाने से, दूषित हृदय होने के कारण उन्हीं के लिए, निरंतर पाप की कमाई करता रहता है। स्त्रियों के कपट पूर्ण व्यवहार में, बच्चों की मीठी–मीठी तोतली बोली में, मन और इन्द्रियाँ फंस जाने से, गृहस्थ पुरुष घर के दुख–प्रधान कपट–पूर्ण कर्मों में लिप्त हो जाता है। किसी कारणवश, किसी काम में सफलता मिल भी गई तो फूला नहीं समाता। हिंसावृत्ति से कर्म करता रहता है। अपने परिवार हेतु तो इसे घोर, दुखदाई नरकों में जाना ही पड़ता है। कोई इसके साथ में नहीं जाता। अकेला ही जाता है। यमदूत इसके शरीर पर कोड़े बरसाते हैं, तो बेहोश हो जाता है। बार–बार प्रयत्न करने पर भी इसकी जीविका नहीं चलती, तो चोरी करता है। जिससे इसे राजकीय दंड भोगना पड़ता है।

जब परिवार वाले इसे असमर्थ समझते हैं, तो कोई भी इसकी इज्जत, आदर नहीं करते, जैसे बैल बूढ़ा हो जाता है तो किसान भी उसे घर से बाहर निकाल देता है, घर वाले बूढ़े मानव को वृद्धाश्रम में डाल आते हैं, फिर भी इसे वैराग्य नहीं होता। यही तो माया है। बुढ़ापे में इस का रूप बिगड़ जाता है। आंखों से दिखाई नहीं देता, दांत उखड़ जाते हैं, खाया नहीं जाता, घुटने जवाब दे देते हैं, भूख खत्म हो जाती है, अग्नि मंद पड़ जाती है, रोग इसे घेर लेते हैं। परिवार वाले इलाज तक नहीं कराते हैं, क्योंकि पैसा खर्च होता है। कुत्ते की तरह से अपमान पूर्वक टुकड़े खाकर जीवन चलाता है।

श्वास–प्रश्वास की क्रिया कफ से रुक जाती है। साँस लेना मुश्किल हो जाता है, बोल सकता नहीं। अंदर ही अंदर दुखी होता रहता है, फिर भी इसको कोई वैराग्य नहीं होता। कोई पानी भी नहीं पूछता। गला सूख जाता है, बड़ी मुश्किल से खांसता है। आंखों से दिखाई नहीं देता। बिस्तर में ही पेशाब और गंदे में पड़ा रहता है। बिस्तर से बदबू आती रहती है, कोई भी इसके पास बैठता नहीं है। अंत में इसको लेने हेतु दो यमदूत आते हैं, जो इतने भयंकर होते हैं कि यह डर की वजह से मल मूत्र कर देता है। इसके गले में फांसी लगाकर घसीटते हैं, ऊपर से कोड़े मारते हैं तो यह चिल्लाता है। अंत में बेहोश हो जाता है। तब तपती हुई बालू से इसे जाना पड़ता है। प्यासा होने पर इसे गर्म तेल पिलाते हैं। बड़ी मुश्किल से यह यमलोक पहुँचता है जो निन्यानबे हजार योजन दूर है। जीव अकेला ही पैदा होता है और अकेला ही मर जाता है। अपनी करनी–धरनी का, पाप–पुण्य का फल भी अकेला ही भोगता है।

जिस परिवार को जीव अपना समझता है, जिनके लिए जीव पाप से कमाई करता है, उसके परिवार वाले उसके धन को लूटते रहते हैं और अपना काम बनाते रहते हैं। कोई भी पाप का भाग नहीं लेता। स्वयं को ही भोगना पड़ेगा। मूर्ख मानव पुत्र होने पर खूब पैसा खर्च करता है। फिर दष्टौन (पुत्र होने के बाद समारोह) में पैसा लगाता है, पढ़ाई में पैसा लगाता है, फिर शादी में अनाप–शनाप पैसा खर्च करता है। घर पर बेटे की बहू लेकर आता है। थोड़े दिन बाद बहू इसके बेटे को काबू कर लेती है और माँ–बाप से अलग कर देती है। अलग जा कर रहती है और आनंद भोगती है। बेटा इतना नहीं समझता कि उसके माँ–बाप ने उसके लिए क्या–क्या न्योछावर नहीं किया, भूल जाता है। यही तो भगवान् की माया है। लेकिन ऐसी संतान कभी सुखी नहीं रह सकती। इसके बेटे इसकी, इससे भी बुरी गति करेंगे क्योंकि हृदय में अंदर बैठा परमात्मा सब कुछ देख रहा है। जैसा उसने अपने माँ–बाप के साथ किया है, उससे भी अधिक इसकी संतान उसके साथ बुरा करेगी क्योंकि जो भी प्रेरणा होती है, आत्मा–परमात्मा के बिना नहीं हो सकती। जैसा करोगे वैसा भरना पड़ेगा। आज हंस रहा है तो कल ही रोना पड़ेगा। जो अपने धर्म से विमुख है, सच पूछिए तो वह अपना निजी स्वार्थ ही नहीं जानता। उसे स्वप्न में भी संतोष नहीं होने वाला।

साधु की पहचान है, जो पैसे से तथा स्त्री जाति से दूर रहता है। वही सच्चा साधु है। कहते हैं कि मठ मंदिर के लिए पैसा चाहिए। भगवान् देखते नहीं हैं क्या? जो पैसे का प्रबंध नहीं करेंगे। पूर्ण श्रद्धा नहीं होने से ही ऐसा सोचते हैं। वरना पैसे की कमी नहीं है। हमारे यहाँ बिना पैसे खूब काम चलता है। भगवान् अपने आप किसी को प्रेरणा करके दे देते हैं। उनको पैसे मांगने की कोई जरूरत ही नहीं है, हमारे यहाँ कई साधु संत हैं, जो कुछ नहीं मांगते हैं। दुनिया अपने आप ही देकर चली जाती है। ट्रक के ट्रक बिना मांगे भरे हुए आते हैं, और गायों की सेवा होती रहती है। और पैसे की भी कोई कमी नहीं रहती है। अगर पूर्ण श्रद्धा भगवान् में होती है, तो किसी चीज की कमी नहीं रहती।
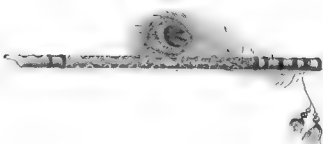
हरिनाम : एक अमर औषधि

8 सितम्बर 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण युगल में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा अहैतुकी प्रेमा भक्ति की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

जिन महात्माओं के प्राण, इंद्रिय, मन, बुद्धि समस्त चेष्टाएं बिना संकल्प के होती हैं, वह देह में रहकर भी सत, रज, तम गुणों से मुक्त रहते हैं। उन ज्ञानवान पुरुषों को चाहे हिंसक प्राणी पीड़ा पहुँचाएँ, चाहे पूजा करें। न तो सताने से दुखी होते हैं, न ही पूजा करने से सुखी होते हैं। ऐसे उच्च कोटि के महात्मा होते हैं। वह समदृष्टि महात्मा सत, रज, तम गुण से ऊपर उठ गए हैं। वह न अच्छे काम करने वाले की बड़ाई करते हैं और न बुरा काम करने वाले की बुराई करते हैं। क्योंकि उनको मालूम है कि प्राणी के अनेक जन्मों के कर्म प्रेरित करके अच्छा–बुरा कर्म करवाते रहते हैं। उनकी ज्ञान–दृष्टि सब कुछ बता देती है। महात्मा न तो कोई अच्छा काम करने वाले की प्रशंसा करते हैं, न ही बुरा काम करने वाले को झिड़कते हैं। यह व्यवहार में समान दृष्टि रखकर आनंदमग्न रहते हैं। इन महात्माओं का स्वभाव होता है, जड़ के सामान, जैसे कोई पागल हो। इस प्रकार विचरण करते रहते हैं जैसे कि जड़भरत थे। जो श्रीमद्भागवत में लिखा है। ऐसी अवस्था उच्चकोटि संतों की होती है। माया इनका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकती। यह भगवान् से हृदय से एक हो गए होते हैं। भगवान् से एकनिष्ठ होते हैं। यह साधारण जनता को बोलते हैं कि हरिनाम ही यह अवस्था प्रगट करता है।

यदि हरिनाम का प्रभाव अनुभव करना चाहो तो :

सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें।।

(मानस, बाल. दो. 20 चौ. 4)

आप नाम को जपोगे, आपने भगवान् को तो देखा नहीं है। मन से जपोगे तो प्रेम से वह हृदय में प्रकट हो जाएगा। फिर कहते हैं कि यदि हरिनाम का प्रभाव जानना चाहते हो तो :

जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ।।

(मानस, बाल. दो. 21, चौ. 2)

जीभ से नाम जप करके देख लो। हरिनाम का प्रभाव तुम्हें मालूम पड़ जाएगा। कितनी सरलता और सुगमता से हरिनाम में लगने की शिक्षा देते रहते हैं। कहते हैं :

कृत युग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग।।

(मानस, उत्तर. दो. 102 ख)

सतयुग, त्रेता, द्वापर में पूजा होती है, यज्ञ होते हैं, योग होते हैं, तपस्या होती है। लेकिन कलिकाल में तो कुछ नहीं करना पड़ता। घर बैठकर के हरिनाम जपते रहो। सर्दी लगे तो ओढ़ लो। गर्मी लगे तो पंखा चला लो। भगवान् ने सब सुविधाएं दे रखी हैं। बाकी युगों में प्राणी को कितना प्रयास करना पड़ता था। लेकिन कलियुग में तो कुछ नहीं करना पड़ता। शुद्धि–अशुद्धि का भी कोई ध्यान नहीं है, कोई नियम नहीं है। हरिनाम में मन लगे या न लगे तो भी जापक का उद्धार तो निश्चित है। बोला भी है :

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

(मानस, बाल. दो. 27, चौ. 1)

चारों दिशाओं में मंगल हो जाएगा, आनंद हो जाएगा। कलियुग में कितना बड़ा गुण है। अन्य युगों में सब तरह के नियम हैं। उनकी अवहेलना करने से कुछ उपलब्धि नहीं हो पाती। कलियुग में कितना सरलतम उपाय भगवान् ने बताया है। भगवान् कृष्ण कहते हैं कि, "प्यारे उद्धव! जो मानव वेदों का पारगामी विद्वान् हो, परंतु परब्रह्म ज्ञान से शून्य हो तो उसके परिश्रम का कोई फल नहीं होता। वह तो वैसा ही है जैसे

बिना दूध देने वाली गाय को पालने वाला। बिना दूध देने वाली गाय, व्यभिचारिणी स्त्री, पराधीन शरीर, दुष्ट पुत्र, सुपात्र उपलब्ध होने पर भी न दिया हुआ दान, धन, मेरे गुणों से रहित वाणी व्यर्थ है। इनकी रखवाली करने वाला दुख पर दुख भोगता रहता है।" भक्त लोग ध्यान से सुनें! यह श्रीमद्भागवत महापुराण की वाणी है। इसलिए, "हे उद्धव! जिस वाणी में जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय रूप मेरी पावन लीलाओं का वर्णन न हो, वह वाणी बेकार है। बुद्धिमान मानव को ऐसी वाणी का आदर नहीं करना चाहिए न श्रवण करें। न ही उच्चारण करें। हे उद्धव! जैसे कि ऊपर बोला गया है, विचार के द्वारा आत्मा में जो अनेकता का भ्रम होता है, उसे दूर कर दे और प्यारे परमात्मा में अपना मन लगा दे तथा संसार के व्यवहार से दूर हो जाए।"

"उद्धव! यदि तुम मेरे में मन को न लगा सको, तो सारे कर्म निस्वार्थता से मेरे लिए करो। तीन प्रार्थनाएं पहले भी बता रखी हैं कि निस्वार्थता से सारे काम भगवान् के लिए करो। मेरी कथाएं समस्त लोकों को पवित्र करने वाली हैं। श्रद्धा के साथ उन्हें सुनना चाहिए। बार–बार मेरे अवतार और लीलाओं का गान, स्मरण और चर्चा दूसरों के साथ करते रहना चाहिए। मेरे आश्रित रहकर, मेरे लिए ही सारे कर्म करते रहना चाहिए। किसी में गुण–दोष नहीं देखे। जो भगवान् ने दिया है, उसी में सब्र रख कर जीवन यापन करता रहे। जो ऐसा करता है, उसे मेरी प्रेममय भक्ति उपलब्ध हो जाती है। वह मेरी सन्निधि को अनुभव करता है। जो सोचता है कि मेरी बात भगवान् सुन रहे हैं, उसका अंतःकरण शीघ्र शुद्ध हो जाता है। यह सब उद्धव को भगवान्, भगवद् प्राप्ति के रास्ते बता रहे हैं।"

अब उद्धव ने पूछा, "कृष्ण भक्त को कैसे पहचानें? उसका क्या लक्षण होता है? उसका स्वभाव कैसा होता है? और ऐसे भक्त की सेवा कैसे करनी चाहिए? यह मुझे बताइए। मैं आपका शरणागत भक्त हूँ। मुझे भक्त का तथा भक्ति का रहस्य खुलासा करके बता दीजिए कि भक्त किस प्रकार जीवन यापन करता है। आप ही भक्त का लक्षण बता सकते हैं।" भगवान् कृष्ण ने कहा, "हे प्यारे उद्धव! भक्त का पहला लक्षण है कि उसके पास बैठने से अंतःकरण में आनंद का अनुभव होने लगता है, वहाँ से उठने का मन नहीं करता, ऐसा भक्त किसी प्राणी को दुख नहीं देता। संकट आने पर घबराता नहीं है क्योंकि उसकी समस्त वृत्ति भगवान् के चरणों में ही रहती है। उसके जीवन का सार है सत्य। उसका मन कपट रहित होता है। उसके अंतःकरण में कभी भी पाप वासना नहीं आती। सब को आदर देता

है। दया की मूर्ति होता है। सबका भला चाहने वाला होता है। निर्लोभी होता है। सब कुछ देना चाहता है, लेने की किंचित् मात्र भी भावना नहीं होती। कुछ नहीं लेना चाहता, केवल देना चाहता है। सरल, कपट रहित स्वभाव का होता है। समदर्शी स्वभाव का होता है। उसकी बुद्धि कामनाओं से दूषित नहीं होती। संयमी और मीठा बोलने वाला होता है। और संग्रह–परिग्रह से सदा दूर रहता है।

जितनी जरूरत है, उतने में ही संतोष रखता है। किसी भी वस्तु के लिए कोई चेष्टा नहीं करता। जो कुछ उसके पास है, उसी में जीवन यापन करता रहता है। सदा सच बोलता है। खुशामद नहीं करता, स्पष्ट बोलने वाला होता है, चाहे उससे कोई भी नाराज क्यों न हो जाए। उसे कोई परवाह नहीं रहती। सच और स्पष्ट बोल देता है। थोड़ा भोजन करता है। नारी जाति से बहुत दूर रहता है। नारी जाति को माँ समझता है। उसकी बुद्धि स्थिर रहती है। उसको मेरा ही पूरा भरोसा रहता है।" यह भक्त के लक्षण, भगवान्, बता रहे हैं। "जो उसका बुरा करता है या बुरा सोचता है, उसका भी वह कल्याण ही चाहता है। भूख–प्यास, शोक–मोह और जन्म–मृत्यु सब उसके वश में रहते हैं। काल, महाकाल भी उससे डरता रहता है, क्योंकि वह भगवान् का शरणागत भक्त है। ऐसा भक्त किसी से अपना सम्मान नहीं चाहता। अन्य को सदा सम्मान देता रहता है। मेरे सम्बन्ध में बातें दूसरों को समझाने में बड़ा कुशल और निपुण होता है एवं सभी के साथ मित्रता का व्यवहार करता रहता है। इसके हृदय में करुणा भरी रहती है। मेरे गूढ़ तत्व का, इसे पूरा ज्ञान होता है।"

तो प्रिय उद्धव! मैंने जो यह शास्त्रों के रूप में, मानव को धर्म का उपदेश दिया है, उसको पालन करने से मन शुद्ध हो जाता है और न मानने से नरक की उपलब्धि होती है। अतः मेरा सच्चा भक्त मन में विक्षेप समझकर ऐसे न मानने वाले से दूर रहता है और मेरे भजन में लगा रहता है। हे उद्धव! ऐसे ही को परम संत समझो। ऐसे को सच्चा संत समझो। ऐसे भक्त का, जो अनिष्ट करना चाहता हो, उसकी 28 पीढ़ियां नरक में जाती हैं।"

"मैं कौन हूँ? कितना बड़ा हूँ? कैसा हूँ? इन बातों को जाने या न जाने, किंतु जो अनन्य भाव से मेरा भजन करता रहता है, हे उद्धव! मैं ऐसे भक्त के आश्रित रहता हूँ। उसकी आदेश की इंतजार करता रहता हूँ कि यह मुझे कोई सेवा करने के लिए बोलें। यदि कभी बोल भी देता है, तो मैं

अति प्रसन्नता से उसके आदेश का पालन करता हूँ। मैं, किसी से नहीं डरता, पर ऐसे भक्त से तो मैं थरथर कांपता हूँ। प्यारे उद्धव! काल और महाकाल मुझसे थरथर कांपता है, जो मेरे भक्तजनों का दर्शन, स्पर्श, पूजा सेवा, सुचर्चा, स्तुति और प्रणाम करें, साक्षात् दण्डवत् करें, उसे मैं हृदय से प्यार करता हूँ। मेरी कथा सुनने में श्रद्धा और विश्वास रखे एवं निरंतर मेरा नाम जपता रहे, जो कुछ मिले, वह मुझे भेंट करे। मेरे दिव्य जन्म और कर्म की चर्चा अन्य को सुनाएं। मैं, ऐसे भक्तों से आनंदमग्न होता हूँ। लक्ष्मी और बलराम जी भी मुझे इतने प्यारे नहीं हैं, जितना प्यारा मुझे यह भक्त होता है। मैं ऐसे भक्त का चिंतन एक पल भी नहीं छोड़ सकता। मैं भक्त का ही चिंतन करने बैठता हूँ। न ही मुझ में ऐसी सामर्थ्य हैं कि मैं इसे छोड़ सकूँ। मेरे पास कोई शब्द नहीं है। ऐसे भक्त ने मुझे प्रेम की रस्सी से बांध रखा है। मैं उसके आश्रित रहता हूँ। और किसी के आश्रित नहीं हूँ।"

यह देखा जाता है कि देवताओं में और राक्षसों में लड़ाई और युद्ध होते ही रहते हैं। कलियुग में रोग ही राक्षस हैं और दवाइयां ही देवता हैं। यह दोनों आपस में लड़ते ही रहते हैं। लेकिन इस युग में देवता कमजोर रहते हैं। इनके ऊपर काल, समय अनुकूल नहीं है और राक्षस रूपी रोग, इनका समय अनुकूल है। दमा, ब्लड प्रेशर, गठिया, कैंसर आदि शक्तिशाली राक्षस हैं। इससे शक्तिशाली देवता भी हार जाते हैं। इसको जीतने की एक ही रामबाण औषधि है, केवल हरिनाम। हरिनाम बड़ा शक्तिशाली है। इसीलिए हरिनाम के पास आने से डरते रहते हैं, कि हम इसके शरीर में जाएंगे तो यह हरिनाम हमें जला कर भस्म कर देगा। इसलिए रोग, हरिनाम के पास नहीं आते हैं। कहा गया है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

(चै. च. आदि 17/21)

तीन बार बोला है, कलियुग को जीतने का एक ही बलिष्ठ देवता है वह है हरिनाम। दूसरा बोला गया है :

कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिर सुमिर नर उतरहिं पारा।।

बिबसहुँ जासुनाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं।।

(मानस, बाल. दो. 118 चौ. 2)

जबरन में भी जिसके मुखारविंद से हरिनाम निकल जाए तो अनेक जन्मों के रचे–पचे, गहरे रंग के पाप समूल जलकर भस्म हो जाते हैं।

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।।

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 1)

भगवान् कहते हैं कि, "जो मेरा नाम लेता है, उसके अनेक जन्मों के पाप समूह भस्म कर देता हूँ।" अतः कलियुगी राक्षस रूपी रोगों का नाश करने हेतु, बलिष्ठ भगवद् नाम है क्योंकि भगवान् ने गारंटी ली है कि "चिंता मत करो। मेरे नाम की शरण में आ जाओ।" क्यों? कलियुग रूपी दारुण दुख से छुटकारा मिल जाएगा। संसार की रचना ही दो से रची गई है वरना संसार हो ही नहीं सकता। जैसे सुख–दुख है, गुण–अवगुण हैं, दिन–रात है, शुभ–अशुभ है, जन्म–मरण है आदि–आदि, दो से बने हैं। जिस मानव को अपने को आनंद में रखना हो तथा भगवान् को प्रसन्न करना हो तो भक्ति की पहली क्लास में बैठना होगा। भक्ति की पहली क्लास एल.के.जी. है, जिसमें भर्ती माँ–बाप की सेवा से होती है। माँ–बाप चाहे विरोधी हो, आपके मन, भाव के विपरीत हो तो भी माँ–बाप की सेवा, भक्ति के लिए परमावश्यक है। क्यों परमावश्यक है? क्योंकि तुम माँ–बाप के कर्जवान हो, माँ–बाप ने तुम्हारे लिए तन, मन, वचन और धन न्योछावर किया है। उनका कर्जा, जब तक तुम नहीं चुकाओगे, तब तक तुम स्वप्न में भी सुखी नहीं रह सकते। क्या, कर्जवान कभी सुखी रह सकता है? सदा दुखी रहता है। शास्त्र बोल रहे हैं :

नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं। संत मिलन सम सुख जग नाहीं।।

(मानस, उत्तर. दो. 120(ख) चौ. 6, गरुड़जी के सात प्रश्न तथा काकभुशुण्डि के उत्तर)

संत के मिलने पर कितना सुख होता है, इस के बराबर कोई सुख नहीं और जो गरीब होता है, उसके बराबर कोई दुख नहीं। भगवान् की तो सभी संतान हैं, देवता भी और राक्षस भी। राक्षस धर्म का नाश करते हैं। भगवान् से दुश्मनी करते रहते हैं। फिर भी भगवान् राक्षसों की जीत करवाते रहते हैं। कुपात्र बेटे को कोई माँ–बाप क्या घर से बाहर निकाल देता है? उसको भी घर में ही रखते हैं। माँ–बाप की सेवा करना संतान का सबसे बड़ा धर्म है। तभी शास्त्र बोलता है कि जिसको पुत्र नहीं होता, वह माँ–बाप नरक में कष्ट भोगता है। जैसे चित्रकेतु का वर्णन, श्रीमद्भागवत में आता है। चित्रकेतु की करोड़ रानियां थी, लेकिन सभी बांझ थीं।

महात्मा की कृपा से पुत्र भी हुआ। किंतु राजा के पास रहा नहीं। राजा पूरे संसार का मालिक था, परंतु पुत्र बिना गहरी चिंता में था कि अब भविष्य में उसे नर्क जाना पड़ेगा। अतः गृहस्थी में संतान होना परमावश्यक है। शादी होने के बाद संतान शीघ्र होने से, संतान का भार जल्दी टल जाता है, अतः मानव को भजन का समय मिल जाता है।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।।

बुढ़ापे की संतान मानव जन्म को व्यर्थ सा बना देती है। मानव उसी में फंस जाता है और भजन से वंचित रहता है। अतः मनुष्य जन्म बेकार चला जाता है। भगवान् राम बोल रहे हैं कि

मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा।।
काम आदि मद दंभ न जाकें। तात निरंतर बस मैं ताकें।।

(मानस, अरण्य. दो. 15 चौ. 6)

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी।।

(मानस, अरण्य. दो. 42(ख) चौ. 3)

लेकिन यह ऊपर लिखी अवस्था कब आएगी? जब अपराध रहित, तीन लाख, हरिनाम नित्य होगा। तब मन, अहंकार रहित बन जाएगा। अपने आपको दिव्य (तुरीय) अवस्था का आनंद मिलने लगेगा, जिससे अच्छे स्वभाव स्वतः ही उदय हो जाएंगे। कंचन, कामिनी, प्रतिष्ठा मन से भाग जाएगी। जितना भगवान् द्वारा कर्मानुसार उपलब्ध हो रहा है, उसी में संतोष रहेगा। किसी में गुण–दोष देखने का स्वभाव नहीं रहेगा। किसी के गुण–दोष नहीं देखेगा। जब हरिनाम करेगा तो भगवान् को अपने पास में रखेगा। मन स्थिर हो जाएगा। तीन प्रार्थनाएं, उसके ह्रदय में बैठ जाएंगी। रात को सोते समय की, प्रातः जगने की और तीसरी स्नान करने के बाद की प्रार्थना कि मैं चर–अचर में आपकी मन मोहिनी आकृति देखूँ। सातवां स्वभाव होगा, संग्रह–परिग्रह उतना ही रखेगा जितने से उसका जीवन बसर हो जाएगा। उतना ही पास में रखेगा, ज्यादा बटोरेगा नहीं।

जापक कहता है कि मेरा हरिनाम में मन नहीं लगता। लगेगा कैसे? मन का झुकाव तो 80% संसार में है और केवल 20% भगवान् की ओर है। सबमें दोष देखता है। ऐसे स्वभाव का मानव, भक्ति पथ पर आगे नहीं जा

सकता। ऐसे ही मृत्यु के पास पहुँच जाएगा। लेकिन प्रभु कृपा से अगला जन्म, मानव का ही होगा। जैसे चौथी क्लास पास करके आठवीं के स्कूल में जाना पड़ता है, फिर दसवीं के स्कूल में जाना पड़ता है। इसी कारण भक्ति में होने के कारण भगवान्, इसको फिर से मानव जन्म देते हैं। जो मानव, जीवन भर कभी भक्ति पथ पर गया ही नहीं, उसे 80 लाख योनियों में जाना पड़ेगा। क्योंकि 84 लाख में चार लाख मनुष्य योनियां होती हैं। अतः मनुष्य योनियों को कम करके 80 लाख योनियों में जाना पड़ेगा। उसमें भी, जो मानव मांस, मदिरा खाता–पीता है, उसे नरक में जाना पड़ेगा। वहाँ नरक में पशु उसको खाएंगे। कई युगों तक उसको वहाँ भोग भोगना पड़ेगा। उसके बाद 80 लाख योनियों में आना पड़ेगा। नरक से 80 लाख योनियों में भोग भोगना पड़ेगा।

ऐसे कई कल्पों तक नर्क में भोग भोगना पड़ेगा तो अनेक कल्पों के बाद, केवल भगवद् कृपा से ही, जीव को मानव देह मिल जाये तो गनीमत है। वरना मानव जन्म सुदुर्लभ है। मानव विचार तो करता नहीं है। अंधा होकर सो रहा है। इसको ध्यान ही नहीं है कि मैं क्या कर रहा हूँ? सारी उम्र उधेड़बुन में ही व्यतीत कर देता है। फिर मर कर, इसी में चक्कर पे चक्कर लगाता रहता है। कितने आश्चर्य की बात है। परंतु यदि, किसी संत की सेवा, अगर किसी जीव को उपलब्ध हो जाए, तब तो शीघ्र ही उसे मानव जन्म मिल जाता है। वरना तो जीव इन योनियों में ही चक्कर काटता रहता है। जो मानव देह में मांस, मदिरा खाता पीता रहता है, उसे भगवान् मल का कीड़ा बना देते हैं। मल ही खाता रहता है या गंदी नाली में पड़ा–पड़ा, वहाँ का जल व खाद्य पदार्थ खाता रहता है। मायावश, उसी में खुश रहता है। माया भी ऐसे जीव को अंधा बना कर यातना देती रहती है। माया भगवान् की शक्ति है। इसको भगवान् ने यह अधिकार दे रखा है कि जो मुझे नहीं मानता, उसे इन योनियों में दुखी करती रहो। वहाँ सुख की तो छाया भी नहीं है। मेरा तो आप सबके सामने प्रत्यक्ष उदाहरण मौजूद है। मैं अहंकार से या घमंड से नहीं लिख रहा हूँ। आप सबकी आंख खोलने के हेतु बताता रहता हूँ, ताकि आप सही मार्ग पर अपने जीवन में चल सको।

मैं 90 साल की आयु में चल रहा हूँ। रात में 12 बजे जाग जाता हूँ। न स्नान करता हूँ, न कुल्ला करता हूँ, बैठ कर हरिनाम आरंभ कर देता हूँ। चिंतन में नर–नारायण आश्रम (बद्रीनाथ) में चला जाता हूँ, जिसे उत्तराखंड में बद्रीनाथ धाम बोला जाता है। वहाँ पर, मेरे गुरुजी को साथ

में ले जाकर, नर–नारायण कुंड में, श्री गुरुदेवजी को स्नान करवाता हूँ। स्नान के बाद नर–नारायण मंदिर में जाकर दोनों दण्डवत् प्रणाम करते हैं। फिर मंदिर की चार परिक्रमा लगाते हैं। फिर मैं, गुरुदेव के सामने, उनके चरणों में बैठकर, हरिनाम उच्चारण करता हूँ। जो भी भूतकाल में राजा–महाराजा हुए हैं, वे अपनी संतान को पृथ्वी का राज देकर, स्त्री पुरुष दोनों ही, बद्रीनाथ जाकर भजन द्वारा अपना शरीर छोड़ते हैं। पांडवों ने भी वहीं जाकर अपना शरीर छोड़ा था। नर–नारायण संसार के मंगल हेतु, तपस्या करते रहते हैं।

यह हरिनाम की असीम कृपा है जो 90 साल की उम्र में भी, कोई रोग नहीं है। ताकत भी 20 साल के युवक जैसी है। रात में 12 बजे से लेकर सुबह 6–7 बजे तक केवल हरिनाम करता रहता हूँ। न थकान होती है, न सुस्ती आती है, न शरीर में कहीं पर दर्द महसूस होता है। इसके बाद स्नान करता हूँ। 10 मिनट कुछ व्यायाम करता हूँ। इसके बाद हारमोनियम से, 1 घंटा, हरिनाम कीर्तन करता हूँ। फिर श्रीमद्भागवत महापुराण का पठन करता हूँ । श्रीमद्भागवत का 2 घंटे ध्यानपूर्वक पठन होता है। इसके बाद मंदिर में जाकर, संध्या आरती करता हूँ। इसमें अधिक देर नहीं लगती। लगभग, आधा घंटा, मंत्र जप हो जाता है। ब्रह्मगायत्री से लेकर कामगायत्री तक मंत्र जप करता हूँ। इसके बाद चैतन्य चरितामृत का 1 घंटा पठन–पाठन करता हूँ। फिर हरिनाम जप आरंभ कर देता हूँ। इसके बाद हरिनाम करते हुए, थोड़ा सा महाप्रसाद खा लेता हूँ। फिर मैं अपनी कुटिया में आकर, आधा घंटा विश्राम कर लेता हूँ। इसके बाद हरिनाम और भागवत पठन शाम तक करता हूँ। मुझे 30 हजार पेंशन मिलती है। सारी पेंशन भगवान् की खुशी के लिए, चराचर प्राणियों के लिए खर्च कर देता हूँ। मैं जो भी रात–दिन कर्म करता हूँ, वह मेरे प्यारे भगवान् को सुख पहुँचाने हेतु ही करता हूँ। उनका आशीर्वाद प्राप्त होता रहता है।

रात में दूध पीकर सो जाता हूँ। मैं बड़ाई नहीं कर रहा हूँ, मैं बता रहा हूँ कि मेरी दिनचर्या कैसी है? तो आपको भी ऐसी दिनचर्या करनी चाहिए। ऐसी दिनचर्या करने से भगवान् के पास पहुँच जाओगे। हरिनाम करते हुए, श्री गुरुदेव का आदेश है कि अपनी दिनचर्या सबको बताओ, ताकि सभी, आपकी तरह से करने लगेंगे। इसीलिए यह दिनचर्या मैंने आपको बताई है, नहीं तो मुझे क्या जरूरत है बताने की। यह तो गुरुदेव ने कहा है कि सब को बताओ, ताकि तुम्हारे कहने से सभी करने लगेंगे। सबका भला होगा, इसलिए तुम को बताना चाहिए।

निश्छल प्रेम

15 सितम्बर 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण कमलों में अधमाधम इस दासानुदास
अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो
तथा अहैतुकी प्रेमा भक्ति की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

मेरे प्रिय भक्तगणो, ध्यान देकर सुनो! भक्तों को रूपक के द्वारा समझाया जा रहा है। रूपक से अच्छी तरह समझ में आ जाता है। यह संसार, यह जगत् क्या है? यह लेनदेन की दुकान है। बहुत ध्यान से सुनोगे, तब समझ में आएगा। यह लेनदेन की दुकान है। यहाँ कर्मों का व्यापार होता है। जैसा कर्म करोगे, वही मिलेगा। दुकान में उधार भी चलती है और नकद भी सौदा खरीदा जाता है। यहाँ पर सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण के बीज माया द्वारा मिलते हैं। इस दुकान की स्वामिनी मायादेवी है। यहाँ भगवान् के खेल की सामग्री उपलब्ध होती है। इसे भगवान् की लीला बोला जाता है। जो जीव जैसा कर्म करता है, उसे उसी प्रकार का भोग उपलब्ध होता है। कर्म तीन प्रकार के होते हैं सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। यह कर्म इंद्रियों द्वारा उदय होते हैं। इनका आदेश मन द्वारा होता है। बुद्धि द्वारा कर्म करने में आग्रह उपलब्ध होता रहता है। अहंकार सभी का अधिकारी है। इसी से मेरा तेरा का आविष्कार होता रहता है। यही भगवान् की माया है। ध्यान से सुनने से समझ में आएगा। स्वप्न का खेल है, तमाशा है। स्वप्न टूटने पर यह खेल समाप्त हो जाता है। हमारा शरीर जाने के बाद सब खेल खत्म। जब तक शरीर है तब तक खेल है। यह सपना है। स्वप्न टूटने पर खेल खत्म। हमारे मरने के बाद खेल खत्म। इसी में जीव रम जाता है, अतः दुख का साम्राज्य बन जाता है। इसी को लिंग देह, सूक्ष्म देह, कारण देह, पुंज आदि बोला जाता है। यह देह जब तक नष्ट नहीं होता है, तब तक जीव को नित्य देह, चिन्मय देह नहीं उपलब्ध होता। जब

तक यह लिंग देह है, यह दुख–सुख मिलता है। जब तक चिन्मय देह नहीं मिलता तब तक लिंग देह से जन्म–मरण होता ही रहेगा। इसी देह से अगली योनि, जो दुख से भरी हुई है, मिलती रहती है।

यह अल्पबुद्धि जीव का द्योतक है। यह अज्ञान अंधेरा तभी समाप्त होगा, जब तक किसी सच्चे संत का जो भगवान् का प्यारा होता है, संग नहीं मिलता। इसी से यह अज्ञान अंधेरा, उजाले में अर्थात् ज्ञान में परिणत होगा। संत द्वारा ही भगवद्नाम की महिमा सुनकर, उजाले के मार्ग से इसकी यात्रा शुरू होगी। तब इसकी बुद्धि गलत व सही मार्ग का निर्णय कर सकेगी। धीरे धीरे उसका दुख, सुख में बदलता जाएगा।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

एक बहुत बढ़िया, आनंद की बात ठाकुरजी ने बोली है, बता रहा हूँ क्योंकि भक्तों को रूपक के द्वारा अच्छी तरह समझ में आता है इसका हैडिंग क्या है– संदेह का समाधान। 14 जुलाई 2017 और 1 अगस्त 2017 को मेरे बाबा द्वारकाधीश ने घोषणा की थी कि जो एक लाख नाम नित्य करेगा या करता है, उसका अभी से वैकुण्ठ या गोलोक का रिजर्वेशन कर दिया गया है। कितनी खुशी की बात है! लेकिन बहुत से भक्तों को इस पर कोई विश्वास नहीं है कि ऐसा हो सकता है क्या? यह जो अनिरुद्ध दास, अपने मन से भक्तों को विश्वास दिला रहा है ताकि अधिक से अधिक हरिनाम करने में लग जाएं। हम इस घोषणा को सत्य कैसे मानें कि एक लाख हरिनाम जापक का अभी से वैकुण्ठ या गोलोक का रिजर्वेशन हो गया? हम कैसे मानें? मानना पड़ेगा। हम नहीं मान सकते। अतः भगवान् को इसकी चिंता हो गई कि मेरे प्यारे भक्त, अनिरुद्ध दास की बात का विश्वास नहीं करते। अतः अब ऐसा लेख लिख रहा हूँ ताकि जिसको सुनकर नास्तिक से नास्तिक भी पूर्ण विश्वास करने लगेगा। क्या लिखाया है?

वह 11 तारीख को लिखवाया है। इसका समाधान, भक्तगण तथा जीवमात्र ध्यानपूर्वक श्रवण करें! यह तो सभी को मालूम है कि एक पापी, अपराधी अजामिल ने मरते समय अपने बेटे को पुकारा था, जिसका नाम नारायण था। लेकिन बेटा तो भक्त नहीं था। वह तो भयानक यमदूतों को देखकर, डर की वजह से उसने अपने बेटे को पुकारा था। लेकिन भगवद् नाम नारायण की वजह से भगवद् पार्षदों ने आकर उसे भयानक दूतों से छुड़ा लिया। अब ध्यान से श्रवण करें! राक्षसगण, भगवान् को दुश्मनी से

चिंतन या याद करते हैं कि नहीं? भगवान् का नाम नहीं लेते वह। दुश्मनी से उनको याद करते हैं और भगवान् के मारने पर भगवद् नाम भी उच्चारण नहीं करते। केवल भगवान् की याद में प्राण त्यागते हैं तो उनकी मुक्ति होती है कि नहीं? आप ही सोच लो। शिशुपाल ने भगवान् को गाली के माध्यम से याद किया तो भगवान् ने सुदर्शन चक्र से उसका सिर उड़ा दिया तो भगवान् की याद की वजह से उसका उद्धार हुआ।

याद ही मुख्य है। स्मरण ही मुख्य है। अच्छा! अब पूतना, अपने स्तनों पर हलाहल जहर लगाकर, भगवान् को मारने के लिए आई थी लेकिन भगवान् की याद में उसने प्राण त्याग दिए। वह बोल रही थी कि, "अरे छोड़ दे! छोड़ दे! छोड़ दे! छोड़ दे! छोड़ दे! मेरा जी घबरा रहा है!" तो नाम तो नहीं लिया भगवान् का, उसने। उसको भगवान् ने धात्री की गति दी। यह आप सभी जानते हैं। अर्थात् स्मरण, चिंतन, याद ही मुख्य है। यानी remeberence मुख्य है। इसमें भगवान् का नाम स्मरण में घुसा हुआ है। भगवान् के नाम, रूप, लीला, धाम याद में समाए हुए हैं। जैसे आप मेरे को फोन करो तो मैं आपके दिल में आऊँगा कि नहीं और मेरा घर भी आएगा, तो धाम भी आ गया। और जो मैं बात करता हूँ, वह लीलाएँ भी आ गईं तो स्मरण में सब कुछ समाए हुए हैं। इसीलिए मैं समझा रहा हूँ, आपको कि मरते समय भक्त के गले में कफ अटक जाता है, तो भगवद् नाम नहीं निकलता। लेकिन मन का चिंतन तो सदा चलता ही रहता है। 24 घंटे मन कभी फुर्सत में नहीं रहता। सो जाने के बाद भी वह तो कुछ न कुछ देखता, सुनता रहता है। आप जानते ही हैं कि सोते वक्त भी मन जाने कहाँ–कहाँ चला जाता है। क्या–क्या करता रहता है। तो यह मन का स्मरण, चिंतन ही लगातार होता रहता है। यह सबसे मुख्य है। और बाबा आगे लिखा रहे हैं कि भगवान् बोलते हैं कि यदि मरते समय मेरे प्यारे भक्त को शिक्षा गुरु व दीक्षा गुरु की याद, स्मरण, चिंतन हो जाए तो उसका इस भवसागर से उद्धार निश्चित है। यह निश्चित क्यों है? इसको जो भी अविश्वास करेगा, उसका निश्चित रूप से घोर अपराध बन जाएगा और अनंत काल तक नर्क में वास करेगा। यह तो शास्त्र कह रहा है। मैं नहीं कह रहा हूँ। अतः इस बात को 100% सत्य मानकर भगवद् नाम लेते रहें। भक्त के दोनों हाथों में लड्डू हैं। कैसे हैं? एक हाथ में तो शिक्षा गुरु और दीक्षा गुरु हैं और दूसरे हाथ में भगवान् हैं और राक्षसों के तो एक ही हाथ में लड्डू है, राक्षसों के पास भगवद् याद ही एक लड्डू है बस। अतः भक्तगण भाग्यशाली हैं।

सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें

हमने भगवान् को थोड़ी देखा है। सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखे। सुमिरिअ माने याद, रिमेम्बरेंस। रूप बिनु देखें आवत हृदय स्नेह विशेषे। हृदय में वो प्रेम से प्रगट हो जाएगा। तो स्मरण, चिंतन, याद ही मुख्य है। उच्चारण की कोई खास जरूरत नहीं है। स्मरण में ही उच्चारण घुसा हुआ है। स्मरण में ही नाम घुसा हुआ है।

इसने भगवान् को न देखा है न ही इसने भगवान् का संग किया है। अतः मरते समय भगवान् की याद असंभव है। लेकिन शिक्षा गुरु और दीक्षा गुरु को तो देखा भी है और संग भी खूब किया है। अतः इनकी याद आना संभव है। तो भगवान् बोलते हैं कि, "सच्चा शिक्षा गुरु और दीक्षा गुरु मेरे सिर का सिरमौर है।" यह तो श्रीमद्भागवत भी कह रही है। उसकी याद से प्राणी पर निश्चित रूप से जीव का उद्धार हो ही जाएगा। इसमें कोई शक न करें वरना नर्क में जाएगा। नीचे गिरेगा।

"मैंने ही 11 सितंबर, रात को यह लेख लिखवाया है। इसे सुनकर सभी भक्तगण आनंदमग्न हो जाना। ऐसा अवसर न सतयुग में, न त्रेता में, न द्वापर में उपलब्ध होगा, जो आज कलियुग में, सबको हस्तगत, हो रहा है।" लेकिन शिक्षा गुरु और दीक्षा गुरु का आचरण उत्तम होना चाहिए। कैसा आचरण होता है? सच्चा गुरु कौन होता है? उसका लक्षण क्या होता है? उसका लक्षण नीचे लिख रहे हैं। उसी का संग करो नहीं तो मत करो।

जो पैसे का दास नहीं है। पैसे की कोई परवाह नहीं करता। जो नारी जाति से बिलकुल दूर रहता है। यह दो खास माया हैं– पैसा और नारी। इसी में सब फंसे पड़े हैं। और जिस पर भगवान् की कृपा होगी, उस गुरु को ये सतायेंगें नहीं। ये उस गुरु से दूर रहेंगे। वही सच्चा संत है। इसके विपरीत याद होगी तो उद्धार नहीं होगा। ऐसी चर्चा मेरे बाबा द्वारकाधीश ने सुनाई है, जो हृदयगम्य कर लें। तो भगवान् बोल रहे हैं, "मैं खुलकर उच्च्च स्वर में घोषणा कर रहा हूँ कि काल और महाकाल मुझसे थरथर कांपता है। शास्त्र बोल रहा है। लेकिन मैं अपने प्यारे भक्त से थर–थर कांपते रहता हूँ। यह सभी को मालूम है। अतः मेरे भक्त का चिंतन मरते समय अवश्य उद्धार कर देगा। मरते समय मेरे भक्त का चिंतन हो गया तो मैं कैसे उसका उद्धार नहीं करूँगा? यदि नहीं करता तो भक्त मुझे छोड़ेगा नहीं। अतः डर की वजह से, उसका उद्धार करना मेरा कर्तव्य

है। मुझे कोई नहीं मार सकता लेकिन केवल मेरा प्यारा भक्त मुझे दंड दे सकता है। इसका जो अविश्वास करेगा, उसको दंड का भागी होना पड़ेगा।" यह बात बड़े ध्यान से सुन लो।

यह तो आप सबको मालूम हो ही गया है कि आप सब का वैकुण्ठ और गोलोक धाम का रिजर्वेशन हो ही चुका है। अपराध से बचकर कम से कम एक लाख हरिनाम तो नित्य करना ही है। अन्य साधन हो या न हो। इसकी जिम्मेदारी साधक की होगी।

संत द्वारा ही नाम की महिमा सुनकर उजाले के मार्ग से इसकी यात्रा शुरू होगी तब इसकी बुद्धि गलत व सही मार्ग का निर्णय कर सकेगी। धीरे–धीरे उसका दुख, सुख में बदलता जाएगा। संत इसे हरिनाम का अमूल्य हीरा समर्पित करेगा जिससे उसके उजाले से अंधेरा रूपी अज्ञान नहीं रहेगा। लेकिन भगवान् की आज्ञा बिना, संत (गुरु) हरिनाम रूपी हीरा नहीं दे सकता। लेकिन जो जीव अंधा है वह इस हीरे की कीमत न जान कर इसे जमीन पर फेंक देगा एवं फिर अंधेरे में भटकता फिरेगा। अब भगवान् का दूसरा संत, शिक्षा गुरु, भगवान् की आज्ञानुसार फिर उसे अंधेरे से उजाले में लाने का प्रयत्न करेगा। लेकिन इसके अज्ञानी साथी इसे इस मार्ग में आने से रोकेंगे और जीव को शिक्षा गुरु का मार्ग अच्छा नहीं लगेगा और पिछले साथियों का संग इसे अच्छा लगने लगेगा तो शिक्षा गुरु की भरसक कोशिश करने पर भी यह जीव सुख का मार्ग नहीं अपनाएगा। अतः जन्म–मरण के चक्कर में भटकता फिरेगा। बस यही है भगवान् की माया का खेल, तमाशा। क्योंकि जिस पर भगवान् के प्यारे संत का हाथ है, वह इस मार्ग की कक्षा में बैठकर लगातार शिक्षा उपलब्ध करता रहेगा और एक दिन जहाँ से वह पिता की गोद से बिछुड़ा हुआ था, उसी गोद में जाकर बैठ जाएगा। उसका सारा का सारा दुखड़ा यहीं पर समाप्त हो जाएगा। भगवान् अपनी लीला का प्रादुर्भाव करने के लिए अपने प्यारे संत से ही श्राप और वरदान दिला कर लीला करते रहते हैं। उनके बिना भगवान् का मन लगता ही नहीं है। भगवान् की प्रेरणा के बिना तो कोई जीव हिल भी नहीं सकता। इन्हीं की प्रेरणा से सच्चे ज्ञान की पुस्तकें लिखी जा रही हैं। इन्हीं की प्रेरणा से राक्षस अपने कर्म में प्रवृत्त होते हैं। इन्हीं की प्रेरणा से देवता अपने कर्म में लगे रहते हैं।

एक बहुत अच्छी कथा है। एक बार, नारदजी वैकुण्ठ में, भगवद् धाम में आए तो क्या देखते हैं कि भगवान् लक्ष्मी की गोद में लेटे हुए हैं और

जोर–जोर से चिल्ला रहे हैं कि, "मैं मरा! मैं मरा!" नारदजी घबराए। लक्ष्मी जी से पूछा, "भगवान् को क्या हो गया है जो इतनी जोर–जोर से चिल्ला रहे हैं? रो रहे हैं? मैंने तो मेरी उम्र में, भगवान् को ऐसे चिल्लाते हुए कभी नहीं देखा। तो ऐसे क्यों दुखी हो रहे हैं? माताजी! इसका क्या कारण है?" तो लक्ष्मीजी बोली कि, "आप ही उनसे पूछ लीजिए न।"

नारदजी ने भगवान् से पूछा, "भगवान्! आपको क्या हो गया है? जल्दी से बताओ मैं क्या करूँ?"

भगवान् बोले, "मुझे बहुत जोर से सिर का दर्द हो रहा है। नसें फटी जा रही हैं। एक पल का भी चैन नहीं है।" नारदजी ने पूछा, "तो बताओ न, मुझे क्या करना है? कौन सी दवा लाऊं जो आपका सिर दर्द मिट जाए।" तो भगवान् बोले, "मेरा दर्द कोई दवा से ठीक नहीं होगा। अगर कोई भक्त अपने चरणों की रज मेरे माथे पर रगड़ दे तो मेरा सिर दर्द ठीक हो सकता है।" तो नारद ने पूछा, "कौन से भक्त की चरण रज लाकर दूँ? आप बता दो।" भगवान् बोले, "मैं किस का नाम बताऊँ? कोई भी भक्त दे दे।" नारदजी बोले, "मैं अभी जाता हूँ। मैं अभी मृत्युलोक में जाता हूँ। वहाँ पर बहुत भक्त समुदाय बिराजते हैं, उनसे लेकर अभी आता हूँ।" भगवान् बोले, "तुम जल्दी जाओ। मैं व्याकुल हूँ। सिर दर्द बहुत जोर से हो रहा है और उल्टी सी आ रही है। एक पल भी चैन नहीं है।"

नारद के पास क्या चरणरज नहीं थी? लेकिन नारद ने अपने मन में सोचा, "अरे! मैं अपनी चरणरज भगवान् के सिर में कैसे लगा सकता हूँ? यह तो बहुत बड़ी समस्या मेरे सामने आ गई।" अतः नारद ने जल्दी से मृत्युलोक में जाकर देखा। उन्हें देखकर भक्तगण उनके पास आकर इकट्ठे हो गए और कहने लगे कि, "आज तो हमारा जन्म सफल हो गया नारद जी! आपके दर्शन हो गए। आप कैसे आये हो?" नारद बोले, "बात तो बाद में करना। एक महान समस्या आ गई है। मैं वैकुण्ठधाम से आ रहा हूँ। भगवान् को बहुत जोर से सिर में दर्द हो रहा है। भगवान् दर्द की वजह से तड़प रहे हैं।"

"तो भगवान् ने मुझे बोला कि मृत्युलोक में जाओ और किसी भी भक्त की चरणरज तुरंत लेकर आ जाओ और मेरे माथे पर मल दो। तो मेरा सिर दर्द मिट सकता है। अतः तुम जल्दी ही मुझे किसी की चरणरज ला कर दो ताकि मैं जाकर तुरंत उनके माथे में लगा दूँ।" नारद ने देखा कि सभी

भक्तगण एकदम चुप हो गए। कुछ उत्तर नहीं दिया। नारद जी बोले, "आप कैसे चुप हो रहे हो? जल्दी दो।" उनमें से एक बोला, "नारदजी! आप भी कैसी बात करते हो? कौन ऐसा भक्त होगा जो अपने चरणरज, पैरों की मिट्टी भगवान् के सिर पर लगाने को देगा। यह तो नरक जाने की समस्या आ गई। पूछ लो, नारदजी! कोई दे, तो ले जाओ।" एक ने फिर पूछा, "नारदजी! आपके पास भी तो आपके चरणों की रज थी। आपने क्यों नहीं दी? हम कैसे दे सकते हैं। आप भी कैसी बात करते हो।" अब नारद चुप। किसी भक्त ने पूछा, "नारदजी! अब आप कैसे चुप हो? कैसे चुप साध ली, बोलो न।" अब नारद वहाँ से भागे और वैकुण्ठ में भगवान् के पास आए। लक्ष्मी जी ने पूछा, "भक्तों की चरणरज ले आए?" नारद जी बोले, "मैं मृत्यु लोक में गया। बहुत भक्त, मुझे देखकर इकठ्ठे हुए। मैंने सारा हाल भगवान् का बताया पर सब भक्त चुप रहे, किसी ने कोई जवाब नहीं दिया। मैंने पूछा कि तुम चुप क्यों हो? चरणरज देते हो या नहीं। तो उन्होंने तुरंत जवाब दिया कि कोई भी चरणरज देने को तैयार नहीं है। अतः मैंने देर नहीं लगाई और तुरंत आ गया। अब मुझे क्या करना है?"

तब भगवान् बोले, "अरे! किसी ने भी चरणरज नहीं दी तो तुम वृंदावन जाओ न और गोपियों को मेरा हाल बता दो। वह तुम्हें चरणरज जरूर दे देंगी।" नारद जी बोले, "जब मृत्यु लोक में किसी ने नहीं दी तो गोपियाँ कैसे दे देंगी? इतनी देर से आप तड़प रहे हो। अब और भी देर हो जाएगी तो मैं क्या करूँ?" भगवान् बोले, "ज्यादा देर मत करो। जल्दी गोपियों के पास जाओ।" नारदजी ने सोचा कि बड़ी समस्या है। जब किसी ने चरणरज नहीं दी तो गोपियां कैसे दे देंगी? तो लक्ष्मी बोलीं कि, "जैसा पतिदेव कह रहे हैं। उसका पालन शीघ्र करो और वृंदावन जाकर गोपियों से भगवान् का सब हाल बता दो। तो शायद गोपियां चरणरज दे सकती हैं।" नारदजी बोले, "तुरंत जाता हूँ।" नारदजी वृंदावन पहुँचे तो गोपियां इकट्ठी हो गईं और नारदजी से पूछने लगीं कि, "आप कहाँ से आए हो? आप वैकुण्ठ भी गए होंगे। हमारे गोपाल का क्या हाल है? क्या गोपाल ने हमारे लिए पूछा?" नारदजी बोले, "अधिक बात करने की जरूरत नहीं है। भगवान् को, तुम्हारे गोपाल को सिर में बहुत दर्द है। वह चिल्ला रहे हैं। तड़प रहे हैं।" तो गोपियों ने पूछा, "बोलिए, हमें उनके लिए क्या दवाई देनी है?" तो नारदजी बोले, "उन्होंने कहा है कि यदि कोई भक्त अपने चरणों की मिट्टी दे दे, तो उसको मलने से मेरा सिर दर्द मिट सकता है।" तो गोपियों ने कहा, "नारदजी! हमारे चरणों, हमारे पैरों की

मिट्टी जल्दी से ले जाओ।" गोपियों ने अपने पैरों की मिट्टी मलमल के पोटलियां बांध दीं, और कहा, "जल्दी जाओ, जल्दी जाओ! और कुछ चाहिए तो बोलो। हम सब कुछ दे देंगे उनके लिए।" नारदजी बोले, "तुम अपने चरणों की मिट्टी गोपाल के सिर में लगाने के लिए दे रही हो, तुम्हें मालूम है कि तुम्हें नरक भोगना पड़ेगा।" गोपियां बोलीं कि, "हमारा गोपाल ठीक हो जाए। हमें नरक की परवाह नहीं है। हम तैयार हैं जाने को। आप जल्दी जाकर उसके सिर में यह लगाएं और हमें आकर उसका हाल जल्दी बताना।" ऐसा कहा, "जरूर आ जाना।" नारदजी ने कहा, "मैं जरूर आऊँगा। गोपाल का हाल बता दूँगा। आप चिंता मत करना।" गोपियां बोलीं कि, "ज्यादा बात मत करो, जल्दी जाओ और हमारी चरण धूल उनके माथे में लगा दो ताकि गोपाल ठीक हो जाएँ। हमें नरक जाने की परवाह नहीं है। हमारा गोपाल ठीक होना चाहिए और जल्दी आ कर, हमें बताना, भूल मत करना। जल्दी आना।" नारदजी बोले, "हां! मैं जल्दी ही आऊँगा।"

नारदजी वैकुण्ठ गये और माँ लक्ष्मी को बोला, "गोपियों ने अपने पैरों की मिट्टी मलमल कर दे दी है। आप जल्दी से भगवान् के सिर पर मल दो।" लक्ष्मी ने मिट्टी ली और भगवान् के सिर में गोपियों के चरणों की मिट्टी लगा दी। लगाते ही भगवान् हंसने लगे, बोले, "अब मैं बिल्कुल ठीक हो गया हूँ।" भगवान् ने पूछा, "गोपियों से क्या–क्या बात हुई?" नारदजी बोले, "कि भगवान् गोपियों जैसा तो संसार में कोई नहीं है। अनंत कोटि ब्रह्मांड में भी कोई भक्त नहीं है। क्योंकि मैंने गोपियों को बोला, कि गोपियो! तुम अपने पैरों की मिट्टी भगवान् के सिर में लगाने के लिए दे रही हो तो तुम्हारा नरक में वास होगा। तो गोपियां बोली कि हमारा कान्हा ठीक होना चाहिए। हमें नरक जाने की कोई परवाह नहीं है। न हमें कोई भय है। नारदजी! आप जल्दी जाओ और हमारी मिट्टी गोपाल के सिर पर लगा दो और आकर जल्दी से हमें उनका समाचार दो कि उनका सिर दर्द ठीक हुआ कि नहीं। हे नारदजी! आप जो बोलोगे हम करने को तैयार हैं।" भगवान् ऐसा सुनकर जोर–जोर से रोने लगे और हा गोपी! हा गोपी! कहने लगे और भगवान् बेहोश हो गये। लक्ष्मी गहरी चिंता में डूब गईं। जब भगवान् को कुछ होश आया तो नारदजी से बोले, "जल्दी जाओ और मेरा हाल गोपियों को जल्दी जाकर के बताना। मेरे बेहोश होने की बात मत बताना वरना गोपियां बेहोश हो जाएंगी। मेरे सिर दर्द की बात ही बता देना कि तुम्हारा गोपाल बिल्कुल ठीक हो गया है।" नारदजी ने वृंदावन

जाकर गोपियों को भगवान् का सारा हाल बता दिया। गोपियां सुनकर नाचने लगीं और बोलने लगीं कि, "हमारा गोपाल ठीक हो गया, हमारा गोपाल ठीक हो गया।" तब नारदजी ने कहा, "मैं अब वापस वैकुण्ठ ही जाता हूँ।" तो गोपियां बोली कि, "हां! जाओ और गोपाल से कहना कि गोपियां तुमको बहुत याद कर रही हैं। उनके पास कब आओगे? रात–दिन तड़प रही हैं, न उनको भूख लगती है न नींद आती है। ऐसा जरूर कह देना कि वह हमसे आकर मिले।" नारदजी बोले, "ठीक है, कह दूँगा।"

नारदजी भगवान् के पास वैकुण्ठ में गए और गोपियों की खुशी की बात बताई। कहा, "मैं आपको क्या कहूँ? वह तो आपके ठीक होने की बात सुनकर नाचने लगीं और उन्होंने कहा कि भगवान् से पूछना कि हमारे यहाँ कब आओगे? आपके दर्शन के बिना हम तो बेहाल हो गईं। न रात में नींद आती है न दिन में भूख लगती है। दिनभर बैचैन रहती हैं। मैं, उनके पास जाकर क्या बोलूँ? जैसा आप बोलो, मैं जाकर शांति प्रदान करूँ।" भगवान् बोले, "नारद! तुम उन्हें कह देना कि मैं तुम्हारे हृदय मंदिर में सदा ही विराजमान रहता हूँ। यह याद ही मेरी आपके पास उपस्थित है। ऐसे दिल में धारण कर लें, तो मैं एक क्षण भी तुमसे अलग दिखाई नहीं दूँगा।"

नारदजी ने विचार किया कि द्वारका धाम में नौ लाख महल हैं। सोलह हजार एक सौ आठ रानियां हैं। द्वारकाधीश इन्हें कैसे संभालते होंगे? जरा देखना तो चाहिए। नारदजी, सबसे पहले रुक्मिणी के महल में गए। तो क्या देखते हैं कि भगवान् अपने पोते अनिरुद्ध को गोद में लेकर दुलार रहे हैं, कपोलों का चुंबन कर रहे हैं और रुक्मिणी से हंस–हंस कर बातें कर रहे हैं। भगवान् नारद से पूछ भी रहे हैं कि, "नारद! कहाँ से आ रहे हो?" नारद बता रहे हैं कि, "मैं वृन्दावन जा कर आ रहा हूँ।" भगवान् ने पूछा, "गोपियों का क्या हाल है?" नारद कह रहे हैं कि, "गोपियां आपको हर क्षण याद करती रहती हैं।" नारद दूसरे महल में सत्यभामा के यहाँ गए तो भगवान् सत्यभामा के यहाँ चौपड़ खेल रहे हैं, तो भगवान् ने नारद से पूछा, "नारद! आप द्वारिका में कब आए?"

अभी भगवान् से मिलकर, रुक्मिणी के यहाँ से आ रहे हैं। फिर भी पूछ रहे हैं कि कब आये। यही तो भगवान् की अजब लीला है। अब नारदजी जामवंती के महल में गए। वहाँ भगवान् अपनी पोती को ससुराल के लिए रवाना कर रहे हैं। पोती भगवान् से लिपट कर रो रही है और

भगवान् भी उसे अपने हृदय से चिपका कर रो रहे हैं। अब नारद, लक्ष्मणा के महल में गए तो क्या देखते हैं कि भगवान् स्नान की तैयारी कर रहे हैं और नारद से कह रहे हैं कि, "मेरे बच्चे को आशीर्वाद करो कि यह बड़ों की मन से सेवा करें। मैं अभी नहा कर आता हूँ, तुम यहाँ बिराजो।" नारद ने सोचा कि भगवान् एक ही समय में सभी महलों में कुछ न कुछ करते रहते हैं। जहाँ भी जाता हूँ वहाँ उनके नए–नए कर्म देखता हूँ। भगवान् स्नान करके आए और बोले, "नारद! मैं संध्या कर लूँ। तुम कुछ कलेवा कर लो। मैं संध्या करके आता हूँ।" तो नारदजी ने पूछा, "भगवान् तुम किस की संध्या करते हो?" भगवान् बोले, "तुम जैसे मेरे प्यारे भक्तों की याद करके मैं संध्या करता हूँ। अब तुम तो पुराने भक्त हो गए। अब मैं नए–नए भक्तों को याद करके मग्न होता हूँ और संध्या करता हूँ।

भक्त ही मेरे इष्ट देव हैं। भक्तों से बड़ा तो अनंत कोटि ब्रह्मांडों में भी मेरा प्यारा नहीं है। भक्तों का चिंतन मेरे से भी उच्च कोटि का होता है। यदि मरते समय अंत में मरते समय, मेरे भक्त का चिंतन बन जाए तो वह भक्त मेरे वैकुण्ठ धाम में या गोलोक धाम में निश्चित रूप से चला जाता है। उसे मैं स्वयं लेने आता हूँ और मेरे धाम में उसका भव्य स्वागत करवाता हूँ। वहाँ पर इसे किसी भी चीज की कमी महसूस नहीं होती है। वहाँ के आनंद की बात तो मैं भी पूर्ण रूप से नहीं बता सकता। जो वहाँ जाता है उसे ही वहाँ की खुशी महसूस होती है। वहाँ न सूर्य है न चंद्रमा है। वह लोक स्वयं ही चमकता रहता है। वहाँ पर मन को भाने वाली सुगंधित वायु बहती रहती है। वहाँ की जमीन कोमल स्पर्श से मन को मोहने वाली होती है, और वहाँ की प्रत्येक वस्तु ही आकर्षणकारी होती है। यह लोक उसको प्राप्त होता है, जो चर–अचर में मुझे ही देखता है। जीव मात्र का भला करने वाला होता है। सब में समदृष्टि रखता है। जिसमें प्यार का स्वभाव होता है। दूसरे के दुख में दुखी हो जाता है। ऐसे अनेक गुण, उस प्राणी में हुआ करते हैं। हर इंसान को मेरा सानिध्य मिलना बहुत मुश्किल है और बहुत आसान है यदि वह सम रहे, अर्थात् सबको समान दृष्टि से अवलोकन करे क्योंकि सब चर–अचर मेरे ही तो पैदा किए हुए हैं। अतः सभी मेरे पुत्र समान हैं। पुत्र को पिता दूर कैसे रख सकता है?"

लेकिन यदि पुत्र ही नालायक हो तो पिता का क्या दोष है? आसक्ति इसका मुख्य कारण है। एक आसक्ति होती है संसार की, और दूसरी आसक्ति है संसार से ऊपर अर्थात् साधु, महात्माओं की व भगवान् की। एक आसक्ति दुख सागर में गोते दिलाती है, दूसरी आसक्ति चैन की बंसी

बजाती है। केवल इतना ही फर्क है। ज्ञान होने पर चैन और अज्ञान होने पर बेचैन। यही एक स्थिति है। लेकिन यह आसक्ति कैसे बदले? यह आसक्ति सत्संग से बदल जाती है। संसारी आसक्ति भी कुसंग मिलने से ही तो रमी (हुई) है तो यह आसक्ति सत्संग से भगवान् के प्रति बदल जाती है। लेकिन सत्संग भी पवित्र होना जरूरी है। जो किसी सच्चे संत से ही उपलब्ध हो सकता है। कलियुग में ऐसे भगवा कपड़े वाले संत होते हैं, जो माया से लिप्त हैं। माया क्या है? पैसा और नारी। जो इनसे दूर है वही सच्चा संत है, ऐसा मानिए। हमारे पूर्वकाल में गुरु वर्ग इन दोनों से बहुत दूर रहते थे।

उनको भजन से ही फुर्सत नहीं होती थी। 18–20 घंटे भजन में रहते थे। जिनमें माधवेंद्रपुरी, ईश्वरपुरी, रूप, सनातन, रघुनाथ गोस्वामी, नरोत्तमदास, लोकनाथ गोस्वामी, गोपाल भट्ट गोस्वामी आदि–आदि भजनशील महात्मा थे। अपनी भजन कुटी बनाकर भजन करते थे। आश्रम बनाने से भगवान् खुश नहीं होते। कलियुग में गृहस्थी ही अधिक भजनशील होते हैं। इनमें ईर्ष्या, द्वेष नहीं होता। जो भजन अधिक करते हैं, उनसे प्यार का नाता जोड़ते रहते हैं। सबसे बड़ी मुसीबत तो यह है कि मानव मन, वाणी और शरीर से पाप करता रहता है। मानव सभी जीवमात्र को दुख देता रहता है। चींटी, मच्छर, खटमल आदि। इनका तो स्वभाव ही ऐसा है, भगवान् ने उनका स्वभाव ही ऐसा बनाया है कि यह कहीं पर भी जा कर अपना पेट भरते रहते हैं। इनकी तरफ मानव देखता ही नहीं है, इन्हें मार देता है। मन से भी पाप करता है। बुरा चिंतन करके जीवमात्र को सताता रहता है। यह सताना आत्मा रूपी परमात्मा को सताना ही होता है। अपनी जबान से कड़वा बोलता है। इससे आत्मा को ठेस पहुँचती है। गाली देना, किसी को अपशब्द कहना, उचित नहीं है। इस जिह्वा से हरिनाम उच्चारण करना चाहिए। सत्संग अन्य को सुनाना चाहिए तो शुभ का विस्तार होगा। बुरा बोलने से स्वयं भी दुखी होगा और दूसरे को भी दुखी करेगा।

यदि मानव इस जन्म में हरिनाम जप कर प्रायश्चित्त न कर ले तो इसे नर्क यात्राएं भोगनी पड़ेंगी। अतः बड़ी सावधानी से रोग तथा मृत्यु से पहले ही हरिनाम जप कर अपना सुधार कर लेना चाहिए। कलियुग में यह सबसे सरल, सुगम साधन भगवान् ने बताया है। चाहे मन से करें या न करें। माला पर या बिना माला के। खाते–पीते, चलते–फिरते, सोते–जागते हरिनाम 'हरे कृष्ण हरे राम' बोलते रहना चाहिए तो अंत समय मृत्यु आने पर भगवान् जापक का उद्धार निश्चित रूप से कर देंगे। इसमें दो राय नहीं

हैं। मानव जानता भी है कि पाप करने से दुख निश्चित रूप से आएगा। फिर भी पाप करने में चूकता नहीं है। इसका मुख्य कारण है कुसंग। इसके दो तरफ कुसंग ही कुसंग की हवा बह रही है। सत्संग की तो छाया भी नहीं है। मानव जन्म से ही कुसंग में पला है। इसी प्रकार अगर मानव, जन्म से ही सत्संग में पला हो तो दोनों ओर सत्संग का रंग उसके स्वभाव पर चढ़ जाता है। यह जिम्मेदारी माँ–बाप की होनी चाहिए कि संतान पर गौर करके ध्यान रखें कि वह किसका संग कर रहा है? अच्छा कर रहा है या बुरा कर रहा है? यह गलती माँ–बाप की होती है। संतान के प्रति बेपरवाह रहता है। अतः ऐसी संतान से वह स्वयं दुखी होगा और अन्य को भी दुखी करता रहेगा। अज्ञान रहते पाप, वासनाएं नहीं मिटतीं। ज्ञान होने पर ही पाप वासनाएं दूर हो जाती हैं। यह होगा सत्संग से। सत्संग में रहने से मानव सुपथ्य का सेवन करता है। उसे रोग नहीं सताते। जैसे धर्मज्ञ और श्रद्धावान् महान पुरुष, तपस्या, ब्रह्मचर्य, इंद्रिय दमन, मन की स्थिरता, दान, सत्य और अंदर बाहर की पवित्रता, यम नियमों की साधना से बड़े–बड़े पापों को भस्म कर देता है। भगवान् की शरण में रहने वाले भक्तजन जो बहुत कम होते हैं केवल भक्ति के द्वारा ही सारे पापों को भस्म कर देते हैं। जैसे सूर्य उगने पर कोहरा गायब हो जाता है। वैसी शुद्धि उसकी भगवद्पूर्ण आत्मसमर्पण करने पर होती है और भक्तों की सेवा करने से होती है वैसी तपस्या आदि के द्वारा भी नहीं होती है।

ऐसा भगवान् उद्धव को बता रहे हैं कि उपासक लोग कहते हैं कि हमारे प्रभु हाथ पैर वाले हैं और सांख्यवादी कहते हैं कि हमारे प्रभु तो हाथ पैर से रहित हैं। निराकार हैं। अतः एक ही भगवान् के एक दूसरे के विरोधी धर्म अपनाते हैं। फिर भी विरोध नहीं है। भगवान् दोनों तरह से ही हैं। लेकिन भक्तों के लिए भगवान् अनेक लीलाएँ करने हेतु अवतार लेते हैं। भगवान् बोलते हैं कि, "तपस्या मेरा हृदय है। जब यह सृष्टि नहीं थी। जब केवल मैं ही मैं था। न कोई दृश्य था। चारों तरफ मानो, सन्नाटा ही सन्नाटा छा रहा था। तब गुणमयी माया से ब्रह्मांड शरीर प्रकट हुआ तो इसमें ब्रह्मा प्रकट हुआ। यह आदि पुरुष था। जब मैंने उसमें शक्ति संचार की, सृष्टि रची तो ब्रह्मा ने अपनी असमर्थता प्रकट की, तब मैंने कहा कि तप करो। जब तप किया, मेरा भजन किया, तब सृष्टि होने लगी। अब तक मानसिक सृष्टि होती थी। अब गृहस्थों से, स्त्री–पुरुष सहवास से धर्म को स्वीकार कर सृष्टि करो। तब से नर–नारी संग से सृष्टि होने लगी है।"

कलियुग में केवल हरिनामाश्रय

22 सितम्बर 2017
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तजनों के चरण कमलों में अधमाधम
इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार करें
और हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद करें।

कलियुग में जिसका जन्म हो गया वह बड़ा भाग्यशाली है, भगवान् बहुत जल्दी मिल जाते हैं। भगवान् के ग्राहक नहीं है। भगवान् सभी चराचर प्राणियों के बाप हैं। बाप कभी बुरा नहीं होता, बेटा ही बुरा होता है। भगवान् बाप होने के कारण अपने बेटे को अपने पास रखना चाहते हैं, परंतु बेटा नालायक है। वह बाप के पास आना ही नहीं चाहता। अतः माया इसको कई प्रकार से दुखी करती रहती है। माया भगवान् की शक्ति है, जिसको आदेश है कि जो मेरी सृष्टि को सताता रहता है, उसे दुखी किया करे। कलियुग में भगवान् बहुत जल्दी मिल जाते हैं। क्योंकि कलियुग में भगवान् के भक्त, ग्राहक बहुत कम होते हैं। यह नियम ही है कि जिस चीज की कमी होती है, उसकी चाहना अधिक हुआ करती है। यदि मानव भगवान् की चाह करे तो भगवान् इसे बहुत जल्दी मिल जाए। लेकिन मानव, भगवान् को चाहता ही नहीं है। यह तो भगवान् से अपनी सुख सुविधा चाहता है। अतः भगवान् इसे उसकी इच्छित वस्तु दे देते हैं क्योंकि यह भगवान् का पुत्र है लेकिन स्वयं भगवान् इससे दूर रहते हैं। भगवान् इसे नहीं मिलते। माया बड़ी प्रबल है। यह जीव विषय सुख को खोजते खोजते बहुत दुखी हो गया है। जहाँ पर सुख दिखता है, सुख है नहीं। ये बाण की तरह चित्त में चुभते रहते हैं। ऐसी स्थिति में ऐसा कौनसा रसिकरस का विशेषज्ञ पुरुष होगा, जो बार–बार पवित्र कीर्ति भगवान् श्री कृष्ण की मंगलमय लीलाओं का श्रवण करके भी उनसे ऊब जाएगा? जो वाणी, भगवान् के गुणों का गान करती है, वही सच्ची वाणी है। वह हाथ

सच्चे हाथ हैं जो भगवान् की तथा संतों की सेवा के लिए काम करते हैं। वही सच्चा मन है जो चराचर प्राणी जीवन में निवास करने वाले भगवान् का स्मरण करता है। वही कान सच्चे कान हैं जो भगवान् की पुण्यमयी कथाओं को श्रवण करते हैं। वही सिर, सिर हैं, जो चराचर जगत को भगवान् की चल–अचल प्रतिमा समझ कर नमस्कार करता है। जो सब जगह भगवान् का दर्शन करता है, वे ही नेत्र वास्तव में नेत्र कहलाने वाले हैं, जो भगवान् व भक्तों के दर्शन करते हैं, वही अंग, अंग कहलाते हैं, जो संत और भगवान् के काम आते हैं वही गृहस्थ सच्चे गृहस्थ हैं।

जो संग्रह–परिग्रह से दूर रहता है। जितना भगवान् ने दिया है उसी में संतोष रख कर जीवन यापन करता रहता है, वही गृहस्थ सच्चा गृहस्थ है। जो भगवान् व संत से ही संपर्क रखता है एवं ग्राम चर्चा से दूर रहता है। गृहस्थ की रक्षा करने वाला केवल श्री गुरुदेव ही होता है। यदि गुरुदेव रुष्ट हो जाएँ तो बहुत बड़ा संकट गृहस्थ पर आ जाता है।

कवच अभेद गुरु पद पूजा, एहि सम बिजय उपाय न दूजा।

(मानस, लङ्का. दो. 79 चौ. 5)

ब्रह्मा जी यदि नाराज हो जाएँ तो गुरुदेव रक्षा कर लेते हैं और गुरुदेव नाराज हो जाएं तो भगवान् भी रक्षा नहीं कर सकते।

राखइ गुर जौं कोप बिधाता। गुर बिरोध नहिं कोउ जग त्राता।।

(मानस, बाल. दो. 165 चौ. 3)

जे गुर चरन रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल बिभव बस करहीं।।

(मानस. अयोध्या. दो. 2 चौ. 3)

सच्चा संत वही है जो कंचन, कामिनी को जहर समझता है। जो इन में लिप्त है वह कपटी साधु है। वह खुद भी नर्क में जाएगा और शिष्यों को भी नर्क में ले जाएगा। कंचन में संसार की सभी विषय वासनाएं शामिल हैं और कामिनी जाति को जो साधु, माँ का दर्जा देता है, वही सच्चा साधु है। जो मठ, मंदिर, आश्रम बनाता रहता है वह एक प्रकार का गृहस्थ धर्म ही अपना रहा है। वह संन्यासी नहीं है। केवल संन्यासी का बहाना बना रखा है। ऐसे साधु से दूर रहना ही उचित है। ऐसे साधु तांत्रिक होते हैं जो सबको फांस लेते हैं। कुछ चमत्कारी होते हैं तो भोले भाले मानव फंस जाते हैं।

शास्त्रों में महापुरुषों की सेवा को मुक्ति का और स्त्री संगी कामियों के संग को नरक का द्वार बताया है। महापुरुष वही हैं जो समान चित्त, दयालु, परोपकारी, सदाचार संपन्न हों अथवा मुझ परमात्मा में ही रमे रहते हों। जो ग्राम चर्चा अथवा परिवार में आसक्त न हों। जो लौकिक कार्यों में इतना ही संपर्क रखते हों, जिनसे जीवन यापन हो जाए।

मनुष्य प्रमाद वश कुकर्म करने लगता है। इनकी यह प्रवृत्ति केवल इंद्रियों की तृप्ति करने की होती है जब तक लौकिक वैदिक कर्मों में ही फंसा रहता है इससे इसकी आत्म विस्मृति बनी रहती है एवं इसका पतन होना निश्चित है।

भगवान् कहते हैं कि, "मानव मेरे ही लिए कर्म करने से, मेरी कथाएं सुनने से, मेरे भक्तों का ही संग करने से, वैरभाव त्याग से, घर गृहस्थी की आसक्ति के त्याग से, एकांत में रहने से धीरे–धीरे मानव को सच्चा ज्ञान उपलब्ध हो जाता है।"

"जो पिता अपनी संतान को भक्ति मार्ग की शिक्षा नहीं देता, वह पिता, पिता नहीं। गुरु, गुरु नहीं। सम्बन्धी, सम्बन्धी नहीं। पति, पति नहीं।"

ब्रह्माजी बोल रहे हैं, "मेरे पुत्रों में रुद्र अर्थात् महादेव श्रेष्ठ हैं।" भगवान् कहते हैं, "महादेव ब्रह्माजी से उत्पन्न हुए हैं। अतः ब्रह्माजी महादेव से भी श्रेष्ठ हैं। ब्रह्माजी मेरे से उत्पन्न हुए हैं अतः ब्रह्माजी मेरी उपासना करते हैं। अतः मैं ब्रह्माजी को श्रेष्ठ मानता हूँ। लेकिन ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ है क्योंकि मैं ब्राह्मणों को अपने मुकुट पर धारण करता हूँ। जो ब्राह्मणों को दुख देता है, मुझे बर्दाश्त नहीं होता, उसका नाश होना निश्चित है।"

"जो श्रद्धा पूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराता है, उससे मैं तृप्त हो जाता हूँ। अग्नि में हवन करने पर मैं इतना तृप्त नहीं होता।"

"भक्त तो इतने निस्पृह होते हैं कि मुझसे कुछ नहीं मांगते। ऐसों को मैं कैसे त्याग सकता हूँ? मैं इनके लिए ही अवतार लेकर धरातल पर आता हूँ, एवं इनसे लीला वर्धन करता रहता हूँ।"

ध्यान से सुनिए! हमारा धर्मशास्त्र घोषणा कर रहा है कि जो मानव ब्राह्मण, गोविंद तथा गौ को मानता है, उसका स्वप्न में भी अमंगल नहीं हो सकता। ब्रह्मा जी ने दक्ष प्रजापति को आदेश दिया कि, "प्रजा की वृद्धि

करो।" तब दक्ष प्रजापति ने अपनी पत्नी से 60 कन्याओं को जन्म दिया। जो धर्म को, कश्यप जी को, चंद्रमा को आदि–आदि को समर्पित कीं। इनसे सारी पृथ्वी पशु–पक्षी, रेंगने वाले जानवर अर्थात् पृथ्वी पर जितने भी चर–अचर प्राणी हैं, इनसे अर्थात् 60 कन्याओं से पृथ्वी लबालब भर गई। अच्छी–बुरी जीवमात्र से प्रजा भर गई। पहले मानसिक सृष्टि होती थी। बाद में शरीर से सृष्टि होने लगी, नर–मादा से सृष्टि होने लगी।

ब्रह्माजी बोल रहे हैं, "हे अजन्मा प्रभु! जिन योगियों ने अपनी इंद्रियों एवं प्राणों को वश में कर लिया है वे भी यदि गुरुदेव की शरण न लेकर प्रमादवश अपने मन को वश में करने का प्रयत्न करते हैं, तो ये अपने प्रयास में सफल नहीं होते। बार–बार काँटों का सामना करना पड़ता है। केवल श्रम व दुख ही हस्तगत होता है। उसकी वैसी ही दशा होती है, जैसे समुद्र में बिना कर्णधार की नाव पर यात्रा करने वाले की होती है। तो कहने का मतलब है कि गुरु की परमावश्यकता होती है। वे संत पुरुष ही इस पृथ्वी तल पर असली तीर्थ हैं क्योंकि उनके हृदय में सदा आप विराजमान रहते हैं। यही कारण है कि इन संत पुरुषों का चरणामृत समस्त पाप तापों को जड़ सहित सदा के लिए नष्ट कर देता है। आप आनंद स्वरूप सब के हृदय में सदा विराजमान रहते हैं जो आप में मन लगा देते हैं, घर गृहस्थी में नहीं फंसते जो जीव विवेक, वैराग्य, धर्म, क्षमा, शांति, आदि गुणों को अपनाते हैं वे भी आप में रम जाते हैं।"

श्रीमद्भागवत महापुराण में 9वे स्कंध में बोला है कि भारत वर्ष भी एक अलौकिक स्थान है। यह पृथ्वी का टुकड़ा नहीं है। यह वैकुण्ठ का टुकड़ा है। जिसे अजनाभवर्ष बोला जाता है। इसमें जिस जीव का जन्म हो गया, उसके भाग्य की कोई सीमा नहीं है। जहाँ भगवान् प्रत्येक मनु के राज्यकाल में जन्म लेते हैं। जहाँ, वहाँ की देवियां नदियों के रूप में इस धरातल को पवित्र करती रहती हैं। जिनमें स्नान करने से जीवों के सभी पाप–ताप नष्ट होते रहते हैं। यहाँ के सभी पहाड़ देवता हैं, जिनकी गोद में बैठकर मानव तपस्या करता रहता है। पार्वती हिमालय की बेटी है जो शिवशंकर भोलेनाथ को ब्याही है। गंधमादन पर्वत जिसको उत्तराखंड बोला जाता है, उसके बीच में नर–नारायण लोक हितार्थ तपस्या करते रहते हैं जिसको बद्रीनाथ या बद्रीविशाल नाम से बोला जाता है। वहाँ वृद्धावस्था होने पर पांडवों आदि ने जाकर तपस्या में लीन होकर शरीर को छोड़ा है। भगवान् ने उन्हें वृंदावन में जाने की अनुमति नहीं दी क्योंकि वृंदावन में वही रह सकता है, जिसकी आंखें चिन्मयी हैं, वरना पग–पग

पर अपराध होने का डर है। बद्रीनाथ धाम में अपराध का विचार नहीं है। अतः बड़े–बड़े पृथ्वी के सम्राट बद्रीनाथ में जा कर ही दंपत्ति सहित तप करके शरीर छोड़ते हैं। अजनाभवर्ष के सभी पहाड़ देवलोक से आकर बसे हैं। समुद्र भी वहीं की देन है, तभी तो समुद्र, भगवान् को रत्नादि लाकर समर्पित करते हैं। प्रभास क्षेत्र में, द्वारिका क्षेत्र में, जो 84 कोस में बसा हुआ था, भगवान् के आदेश से समुद्र ने जगह दी। वहाँ कृष्ण ने द्वारिका नगरी बसाई। बाद में जब धाम पधारने लगे, तो आदेश दिया कि अब वहाँ वह अपना स्थान वापिस ले ले तो वहाँ समुद्र वापिस आ गया। समुद्र भी देवलोक से आकर ही यहाँ पर बसा है।

भारत वर्ष में ऐसे–ऐसे तीर्थ हैं जहाँ संतगण भजन करते रहते हैं। यहाँ बिंदुसार तीर्थ है, जहाँ भगवान् के आंसू गिरे हैं। आंसुओं के बिंदु से यह तीर्थ प्रसिद्ध है। यहाँ पर कर्दम महात्मा तपस्या में लीन थे। मनुजी ने अपनी बेटी देवहूति, इनको ब्याही थी। उनके पुत्र के रूप में ही कपिल भगवान् का अवतार हुआ है। देवहूति की 9 कन्याएं हुई हैं, जो बड़े–बड़े महात्माओं को ब्याही गई हैं। उनसे सृष्टि का विस्तार हुआ है। ब्रह्माजी के आदेश से मनुजी के उत्तानपाद, एवं प्रियव्रत दो पुत्र थे। जो पूरे संसार के सम्राट थे। एक बहन देवहूति थी।

कलियुग में भगवान् का नाम कितना प्रभावशाली है। शास्त्र बोलता है :

बिबसहुँ जासुनाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं।।

(मानस, बाल. दो. 118 चौ. 2)

यदि जबरन भी हरि का नाम मुख से निकल जाय, तो उसके रचे पचे पाप, जो किसी साधन से दूर नहीं हो सकते, वे दूर ही नहीं होते वरन् जल जाते हैं। जो पदार्थ जल जाए, वह दोबारा किसी काम का नहीं हो सकता। जिसे इस बात का पता नहीं है कि भगवान् ही सब का नियंत्रण करते हैं, वही इस परतंत्र जीव को कर्ता, भोक्ता मान बैठता है। स्वयं भगवान् ही प्राणियों की रचना करते हैं और उन्हीं के द्वारा मरवा भी देते हैं। जिस प्रकार इच्छा न होने पर, समय विपरीत होने पर मनुष्य को मृत्यु व अपयश मिलते रहते हैं, वैसे ही समय अनुकूल होने पर मनुष्य को आयु, यश, समृद्धि इच्छा न होने पर भी मिल जाते हैं। इसलिए सब समय में मनुष्य को सम रहना चाहिए। जैसा बिना बुलाए दुख आता है, वैसे ही

बिना बुलाए यह सुख भी आता ही है। सत, रज, तम गुण प्रकृति के हैं। आत्मा के नहीं, अतः जो मनुष्य इसका साक्षी मात्र होता है, उसे दुख होने का अवसर ही नहीं आ सकता। ऐसा ज्ञान मानव को सच्चे संत से तथा धर्म शास्त्रों से उपलब्ध होता है। भगवान् बोल रहे हैं, "जब जीव मेरे स्वरूप को भूल जाता है, तब वह अपने को अलग मान लेता है। इसी से उसको संसार के चक्कर में पड़ना पड़ता है, क्योंकि मैं तो उसके हृदय में आत्मा रूप से बैठा हूँ और वह मुझे दूर ढूंढता है। तीर्थ में जाता है, मंदिर में जाता है, साधुओं के पास जाता है। मेरे से नजदीक तो कुछ है ही नहीं।

यह मनुष्य योनि ज्ञान एवं विज्ञान का मूल स्रोत है। इसे पाकर भी अपने प्रिय आत्मा को जो नहीं जानता, उसे किसी भी योनि में शांति नहीं मिल सकती।" यह मनुष्य योनि सुदुर्लभ है। कई कल्पों के बीतने के बाद, भगवद् कृपा से उपलब्ध होती है। इसको घर गृहस्थी के झंझटों में ही खर्च कर देता है। फिर वही जन्म मरण के चक्कर में फंस जाता है। कोई किसी का नहीं है। सभी अपना लेनदेन चुकाने के लिए आते हैं और धोखा देकर चले जाते हैं। अपना है तो केवल परमात्मा ही है। जीव परमात्मा का ही दोस्त है। लेकिन परमात्मा से दोस्ती न करके अनात्मा से दोस्ती करके अपना मार्ग भूल जाता है। जाना था परमात्मा के पास और चला जाता है दुश्मन के पास।

परमात्मा के अलावा सभी लुटेरे हैं, जो उसका सब मालमत्ता लूट कर चले जाते हैं। आंख बड़ा सुंदर दृश्य देखना चाहती है। कान बहुत सुंदर मधुर गाना सुनना चाहता है। नाक सुंदर मनमोहक सुगंध सूंघने हेतु आतुर रहती है। उपस्थ इन्द्रिय सुंदर नारी को भोगना चाहती है, अर्थात् दसों इंद्रियाँ लुटेरी हैं। जो इसको लूट कर चली जाती हैं। इसमें तन, मन, धन, खर्च करना होता है। पाप कर्म में पूरा कमाया हुआ धन खर्च करना पड़ता है और जो धन, धर्म में होना चाहिए, वह बेकार के मार्ग से चला जाता है। धर्म से तो सुख साधन इकट्ठा करेगा, वह खर्च होता नहीं। पाप कर्म में खर्च हो कर दुख का बीज बोकर चला जाता है। यही तो भगवान् की माया का नाटक है। इसी से संसार का खेल होता रहता है। सब जगह अंधेरा ही अंधेरा है। उजाला तो देखने को ही नहीं मिलता।

भक्तगण ध्यान से सुनिए! माया बड़ी प्रबल है यह ब्रह्मा, शिव को भी नहीं छोड़ती। ऋषभदेवजी, जो भगवद् अवतार थे, उनके सौ पुत्र हुए। जिनमें भरत सबसे बड़े थे। भारतवर्ष उनके नाम से ही जाना जाता है।

पहले इसका नाम अजनाभवर्ष था। यह एक अलौकिक स्थान है। भरत ने एक करोड़ वर्ष तक राज्य शासन किया। इसके बाद अपने बेटों में इसे बांट कर भजन करने हरिद्वार क्षेत्र में चले गए। वहाँ गंडकी नदी के तीर पर, आसन जमाकर भजन में लीन रहते थे। गंडकी नदी में शालिग्राम शिलायें हैं। जिसमें दोनों और चक्राकार चिह्न हैं। उस दिन नदी के किनारे संध्या कर रहे थे, तो अचानक से एक हिरणी जिसके गर्भ में बच्चा था, वहाँ आई और नदी किनारे पानी पीने लगी। इतने में उसने शेर की गर्जना सुनी एवं चौकन्नी होकर नदी में भय की वजह से, छलांग लगाई, तो गर्भ से हिरण शिशु नदी में गिरकर बहने लगा तो भरत को दया आई और वह उसे निकाल लाये और उसे आश्रम पर ले आए। अब तो भरत का मोह इस हिरण के शावक में फंस गया तो उनका भजन धीरे–धीरे छूट–सा गया। जब मौत आई तो इनका मन अंत समय में हिरण शावक में फंस गया तो अगला जन्म हिरण का ही हुआ। एक करोड़ साल तक पृथ्वी का राज करके, केवल भजन के लिए राज को त्याग दिया। फिर भी मन हिरण शावक में फसने से अगला जन्म हिरण का हुआ। यह है भगवान् की प्रबल माया का तमाशा। भगवान् ही माया से दूर रख सकते हैं, अन्य उपाय से माया नहीं जा सकती है। भक्ति कभी नष्ट नहीं होती। अगला जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ। अतः भक्ति फिर से उदय हो गई और इस जन्म में भगवान् के वैकुण्ठ धाम की उपलब्धि हो गई। अतः माया से मानव को प्रार्थना करते रहना चाहिए, ताकि हावी न हो सके एवं भगवान् से तो माया से बचने की प्रार्थना करना जरूरी है ही।

यह प्रसंग श्रीमद्भागवत पुराण में अंकित है कि एक बार सरस्वती नदी के पावन तट पर यज्ञ आरंभ करने के लिए बड़े–बड़े ऋषि मुनि इकट्ठे होकर बैठे थे। उनमें इस विषय पर वादविवाद चला कि ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव में कौन सबसे बड़ा है? किसकी आराधना करना उचित है? तो यह तय हुआ कि ब्रह्माजी के पुत्र भृगुजी को इन तीनों की परीक्षा हेतु भेजा जाए। भृगुजी सर्वप्रथम ब्रह्मलोक में ब्रह्माजी, अपने पिताजी के पास गए। ब्रह्माजी अपने आसन पर विराजे हुए थे, तो भृगु जी अपने पिता को बिना प्रणाम किए ही अपने आसन पर बैठ गए तो ब्रह्माजी को गुस्सा आ गया कि, "बेटा! तुझे सभ्यता नहीं है? तू कैसा मेरा पुत्र है? तुझे मुझे प्रणाम देना तो दूर रहा, मेरे बिना पूछे जाकर आसन पर बैठ गया। यह कहकर भृगुजी को मारने को खड़े हो गए तो भृगुजी अपनी जान बचाकर भागे। फिर भृगुजी शिवजी के पास कैलाश पर्वत पर पहुँचे, तो शिवजी अपने भाई से

मिलने को उठे कि उनका भाई बहुत दिनों के बाद आया है। अपने हाथ फैलाकर भृगु को छाती से लगाना चाहा तो भृगुजी ने अपने भाई शिवजी से मिलना नहीं चाहा। शिव जी को क्रोध आ गया और त्रिशूल हाथ में लेकर भृगुजी को मारने दौड़ पड़े। अब तो भृगुजी ने देखा कि वह उन्हें त्रिशूल से मार ही देंगे तो अपनी जान बचाकर भागे। पीछे– पीछे शिवजी भागने लगे तो भृगुजी कैलाश पर्वत से नीचे दौड़कर आ गए। शिवजी के हाथ से बड़ी मुश्किल से बचे। अब भृगुजी सोचने लगे कि विष्णु तो अपने सुदर्शन चक्र से उन्हें जला ही देंगे। लेकिन महात्माओं ने उन्हें भेजा है, इसलिए जाना तो जरूर पड़ेगा ही। विष्णु भगवान्, लक्ष्मी की गोद में सिर रखकर लेट रहे थे तो भृगुजी ने अचानक जाकर अपने पैर की लात, विष्णु की छाती में जाकर जमा दी, तो विष्णु भगवान् को ध्यान आया कि ब्रह्माजी का पुत्र आया है, और उन्हें मालूम नहीं पड़ा, क्योंकि वे अपने भक्त के ध्यान में मग्न थे। लक्ष्मी को विष्णु ने बोला, "तुमने भी मुझे नहीं बताया कि ब्रह्मा जी का बेटा आ रहा है।" लक्ष्मीजी बोलीं कि, "मैं आपके सिर की मालिश कर रही थी। मेरा ध्यान भी आपके सिर की ओर रहा। तो ब्रह्मा जी के बेटे को मैंने देखा ही नहीं, कब अचानक से आ गया।" तब विष्णु और लक्ष्मी जल्दी से शैया से उतरे और भृगुजी के पैरों को सहलाने लगे। भगवान् बोले, "मेरी कठोर छाती से, आपकी लात में चोट लगी होगी मैं सहला देता हूँ। मुझे आपके आने का जरा भी मालूम नहीं पड़ा, वरना मैं आपकी अगवानी करने को आता। मुझे क्षमा करें, मेरे से गलती हो गई।" अब तो भृगुजी तीनों की परीक्षा कर चुके कि कौन बड़ा है और सभा में आकर तीनों की, जो स्थिति बनी थी, सबको खुलासे में वर्णन कर दिया। संत बोले, "ब्रह्माजी और शिवजी तथा देवता सभी जल्दी खुश हो जाते हैं और जल्दी ही नाराज हो जाते हैं। भगवान् विष्णु ने आज तक किसी को श्राप नहीं दिया, वरदान जरूर दिए हैं कि जाओ, तुम्हें मेरी भक्ति उपलब्ध हो जाएगी। श्राप, स्वयं कभी किसी को नहीं दिए। अपने भक्तों से ही दिलाएं हैं। अतः विष्णु ही सर्वोच्च हुए।"

जैसे नारद को प्रेरणा करके, रामरूप में, भगवान् को पत्नी के लिए रोने का श्राप दिया है, जिससे वे सीता के लिए जंगल–जंगल में रोते फिरे है। जय–विजय को जो, वैकुण्ठ धाम के द्वारपाल थे, उनको सनकादिकों से श्राप दिलवा दिया। जो तीन जन्म तक राक्षस योनि में भगवान् से दुश्मनी करते रहे। हिरण्याक्ष–हिरण्यकश्यप, रावण–कुंभकरण, शिशुपाल–दंतवक्र। यह तीन जन्म तक भगवान् से दुश्मनी करके भगवान् की लीला

में सहायक बनते रहे। भगवान् ही लीला हेतु प्रेरणा कर भक्तों से श्राप दिला दिया करते हैं। भगवान्, किसी को श्राप इस कारण नहीं देते क्योंकि सभी उनकी संतानें हैं। यह नियम है कि बाप कभी संतान को श्राप नहीं देता। संतान खराब हो जाती है परंतु बाप कभी बुरा नहीं होता। तो सब संतानों ने मिलकर यह ही निश्चय किया कि विष्णु भगवान् की शरण में होकर भजन करना सबसे सर्वोत्तम है। शिव, स्वयं वैरागी है फिर भी इनके भक्त धनी होते हैं एवं विष्णु भगवान् धनी होते हुए भी इनके भक्त निर्धन होते हैं। इसका कारण है भगवान् विष्णु धन, वैभव में जीव को फंसाते नहीं हैं। इन में फंसने से जीव का कभी दुख से छुटकारा नहीं हो सकता। भगवान् किसी को धन, वैभव नहीं देते। जिसके पास होता है, उसे भी छीन लेते हैं ताकि जीव निर्धन रहे तो उसे कोई भी न सम्मान दे और न उससे बात करें। तो उस जीव का मन, केवल संत की तरफ व भगवान् की ओर, एक तरफ ही झुका रहेगा। संसारी जीवों से उसका मन हट जाएगा। मन का स्वभाव है कि मन एक तरफ ही अधिक झुकता रहता है, या तो संसार की ओर या भगवान् की ओर। अतः भगवान् जिसे अपनाना चाहते हैं, उसे निर्धन बना देते हैं ताकि ऐसे जीव को कोई चाहे ही नहीं और न ही वह किसी को चाहेगा।
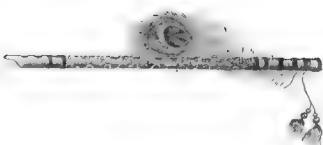
संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : जिसको नाम में रुचि नहीं आ रही है ऐसे भक्त को क्या करना चाहिए ? क्या कारण है कि रुचि नहीं आ रही है ?

उत्तर : रुचि तो इसलिए नहीं आ रही है कि उसका झुकाव–आसक्ति इस संसार की तरफ ज्यादा है। सभी जानते हैं, विचार करके देखो। जिसकी रुचि संसार की तरफ ज्यादा है उसको हरिनाम में रुचि कैसे आएगी ? और अपराध भी हो जाते हैं। अपराध की वजह से भी रुचि नहीं होती।

हरेर्नामैव केवलम्

29 सितम्बर 2017
छींड की ढाणी

समस्त भक्तों के चरण युगल में अधमाधम इस दासानुदास अनिरुद्ध दास का साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो एवं हरिनाम में रुचि होने की प्रार्थना का आशीर्वाद करें।

जब महाभारत की तैयारी होने लगी तो अर्जुन तथा दुर्योधन भगवान् के पास पधारे। तब भगवान् अपनी शैया पर लेटे हुए थे। थोड़ी–थोड़ी नींद सी आ रही थी। जब दोनों ही की आहट सुनी तो भगवान् कृष्ण को चेत (आभास) हो गया। अर्जुन तो भगवान् कृष्ण के चरणों की तरफ बैठ गए और दुर्योधन, भगवान् कृष्ण के सिरहाने की तरफ बैठ गए। जब भगवान् कृष्ण की आंख खुली तो प्रथम में अर्जुन की ओर नजर गई और भगवान् अर्जुन से बोले, "पार्थ! आज तुम कैसे आए हो?" इतने में दुर्योधन बोल उठा कि, "कृष्ण! पहले मैं ही आया हूँ। अर्जुन तो मेरे बाद में आया था।" भगवान् बोले, "दुर्योधन! मैंने तो पहले अर्जुन को ही देखा है। तुम तो सिरहाने बैठे थे। अतः मैं तुम्हें कैसे देख सकता था? मैंने तो शुरु–शुरु में अर्जुन को ही देखा है। खैर कोई बात नहीं, तुम दोनों किस वजह से मेरे पास आए हो? अपना आने की वजह बताओ?" तो दुर्योधन बोल उठा कि, "मैं आपकी सहायता चाहता हूँ।" अर्जुन बेचारा चुपचाप रहा। भगवान् बोले, "तुम्हें कैसी सहायता चाहिए?" भगवान् बोले, "मैं दोनों की सहायता तो एक साथ में कर नहीं सकता। एक तरफ तो मेरी सेना है, दूसरी तरफ मैं हूँ। लेकिन मैं बता देता हूँ कि मैं लड़ूँगा नहीं। मेरी सेना जरूर लड़कर सहायता करेगी। अब तुम दोनों सलाह मशविरा कर लो कि कौन किसको लेना चाहता है।" तो दुर्योधन बोला, "मैं तुमको लेकर क्या करूँगा? तुम तो चुपचाप बैठे रहोगे, मैं तो तुम्हारी 18 अक्षौहिणी सेना ही लूँगा।" अब अर्जुन बोला, "जब दुर्योधन ने आपकी सेना ले ली तो स्वतः ही उत्तर मिल गया।

अतः आप मेरी तरफ हो जाना।" भगवान् बोले, "अर्जुन! मैं लड़ूँगा नहीं। केवल तुम्हारा सारथि बन जाऊँगा। जहाँ तुम आदेश दोगे, वहाँ रथ को ले जाऊँगा।" अब तो दुर्योधन को आनंद का खजाना मिल गया कि कृष्ण लड़ेगा ही नहीं तो उसकी जीत, शर्तिया होगी ही। अर्जुन ने मन में विचार किया कि, "बहुत अच्छा हुआ कि भगवान् मेरी तरफ हो गए।" मन में सोचा कि, "अब तो मुझे कोई परवाह नहीं है। कृष्ण अपने आप संभाल लेंगे। मुझ पर से बोझ हट गया। विधाता ने मेरी सहायता कर दी।" अब तो कौरवों के पास जाकर दुर्योधन नाचने लगा। "भाइयो! अब तो हमारी जीत शर्तिया होगी ही। मैंने कृष्ण की 18 अक्षौहिणी सेना ले ली है। कृष्ण अर्जुन की तरफ हो गया और जबकि कृष्ण ने बोला है कि मैं अर्जुन का रथ ही हाकूँगा, लड़ूँगा नहीं। तो मैं उस ग्वाले को लेकर क्या करता?" ऐसा सुन कर, सब कौरवों ने हाथों से ताली बजाना शुरू कर दिया कि विधाता ने उनकी ओर से सहायता कर दी। भीष्म पितामह तो जान गए कि कृष्ण, जिसके पक्ष में होगा, अर्जुन की जीत निश्चित है। चाहे कृष्ण लड़े या न लड़े। लेकिन वह कौरवों के सामने चुप ही रहे। भीष्म पितामह को कौरवों की तरफ से लड़ना ही पड़ेगा, वह भी बेमन से, क्योंकि वह दुर्योधन का नमक खा रहा था।

जब महाभारत आरंभ हुआ तो कृष्ण ने अपना रथ कौरव और पांडवों की सेना के बीच में खड़ा कर दिया तो अर्जुन देखता है कि वह अपने गुरुजनों को तथा परिवार वालों को कैसे मारेगा? वह तो पाप का भागी बन जायेगा। अतः शोकमग्न होकर रथ के पिछले भाग में बैठ गया और कृष्ण से बोला, "मैं युद्ध नहीं करूँगा। मैं अपने ही परिवार वालों को तथा गुरुजनों को कैसे मारूंगा?" तब कृष्ण ने अर्जुन को समझाया कि, "तू क्षत्रिय है। तेरा स्वभाव ही तुझे युद्ध करने में लगा देगा। अतः तुझे युद्ध करना परमावश्यक है। इन सब की आत्मा तो सदा अमर रहती है। यह आत्मा का आवरण जो शरीर है, वही तो नष्ट होगा। देशहित के लिए शरीर को न्योछावर कर देने से पाप नहीं लगता। यह क्षत्रिय का धर्म है। अतः युद्ध के लिए खड़ा हो जा।" बस इसी परिवेश को लेकर भगवान् कृष्ण ने गीता को आधार बनाकर, अपने मुखारविंद से मानव का सच्चा उद्धारकारक उपदेश दिया जो भगवान् के भक्तों को शुभ मार्ग दिखला रहा है। गीता समस्त धर्म ग्रंथों का सार है। इसमें मक्खन ही मक्खन है। इसमें छाछ, दूध, दही नहीं है। जिससे सार वस्तु निकली है, मक्खन। जब मक्खन की उपलब्धि हो जाए तो अन्य खाद्य पदार्थों की आवश्यकता ही

क्या है। इसमें भगवान् कृष्ण ने कई मार्ग बताए हैं। कर्म करो, ज्ञानवर्धन करो, योग करो, अंत में 18वें अध्याय के 66वें श्लोक में गीता का प्राण अर्थात् सार है।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।।

(श्रीगीता 18.66)

"अर्जुन तू सब धर्म कर्म को छोड़ कर केवल मेरी शरण ले ले। तुझे कुछ करने की जरूरत नहीं है। मैं तुझे समस्त दुखों से पार कर दूँगा। जिस प्रकार एक शिशु, जो एक, डेढ़ साल की उम्र का होता है वह समस्त मन से, माँ की शरण में रहता है। बाप को तो वह जानता ही नहीं है। जब चंचलता करता है तो उसे कभी माँ तो कभी बाप पीट देता है तो शिशु कहीं किसी की तरफ नहीं जाता, केवल माँ के कपड़ों में ही जाकर चिपकता है। माँ बार–बार झिड़कती है, दूर हटाती है, परंतु कितना ही उसे पीटे, फिर भी माँ के पास ही जाकर कपड़ों में चिपकता है। इसी प्रकार भगवान् के भक्त का स्वभाव भी ऐसा ही होता है कि कितना भी दुख कष्ट भक्त पर आए तो भी भक्त, भगवान् के पास ही जाएगा और किसी देवता आदि की तरफ देखेगा तक नहीं। शास्त्र भगवान् के साँस से प्रगट हुए हैं। भक्त उन शास्त्रों के अनुसार ही अपना जीवन यापन करेगा। सभी देवताओं से यही मांग करेगा कि उसका मन श्री कृष्ण में लगा दे और कुछ मांग नहीं करेगा। भगवान् की प्रेरणा बिना तो पेड़ का पत्ता भी नहीं हिलता। यह प्रेरणा होती है सत, रज, तम के भावानुसार। तमोगुणी व्यक्ति को भगवान् तमोगुण की ही प्रेरणा देते हैं। रजोगुणी व्यक्ति को रजोगुण की तथा सतोगुणी व्यक्ति को सतोगुणी प्रेरणा देकर, इसका जीवन चलाते रहते हैं। भगवान् की माया ही जीवमात्र को परतंत्रता प्रदान करती है। इस माया के पर्दे से भगवान् ढके रहते हैं। जब माया हट जाएगी तो भगवान् का दर्शन स्वतः ही हो जाएगा। भगवान् को भी योगमाया को अपनाना पड़ता है जिससे भगवान् की लीलाओं का प्रादुर्भाव होता है।

राजसी और तामसी वृत्ति को दूर करने हेतु सच्चे भक्त का संपर्क बहुत जरूरी है, ताकि सतोगुण की वृत्ति, इसमें जागृत हो जाए। भक्त के यहाँ सदा भगवान् की ही चर्चा होती रहती है, तो संसार की चर्चा धीरे–धीरे दबती रहती है। एक दिन संसार की आसक्ति नष्ट हो जाती है, तो मानव को सुख विधान उपलब्ध हो जाता है। दुख का आविर्भाव, संसार की आसक्ति ही है। संसार की आसक्ति हटी नहीं कि सुख का उदय स्वतः

ही हो जाता है। संसार की आसक्ति क्या है? घर, खेत, कुटुंब में मन की फँसावट ही संसार की आसक्ति कहलाती है। यह आसक्ति कलियुग में केवल हरिनाम जप से ही दूर होती है। श्री चैतन्य महाप्रभुजी ने स्वयं आचरण करके मानव को शिक्षा दी है। स्वयं थैली में वृंदा माँ की माला रखकर हरिनाम जप करते रहते थे। तीन युगों के मानव तथा देवता तक कलियुग में जन्म लेने की कामना करते रहते हैं। इतना सरल, सुगम साधन तीन युगों में नहीं है। सतयुग, त्रेता, द्वापर में भगवान् को पाना बहुत कठिन होता है।

धन का एकमात्र फल है कि धर्म में खर्च करना। लेकिन मानव घर–गृहस्थी में खर्च करता रहता है। इसे मालूम नहीं है कि यह शरीर क्षणभंगुर है। धर्म करेगा तो परलोक में सुख देगा। धर्म करने से परम तत्व का ज्ञान और निष्ठा अनुभूति सिद्ध होती है एवं जो पैसा धर्म में नहीं लगता, वह जहरीले कर्मों में ही खर्च होता है। शराब, जुआ आदि बुरे कर्मों में ही खर्च होता है। जिसका दुख अगले जन्म में भोगना पड़ता है। यज्ञ में भी शराब को सूंघने का ही विधान है पीने का नहीं। लेकिन अपनी जीभ की तृप्ति हेतु पीते हैं। यज्ञ में पशुओं का स्पर्श ही माना गया है लेकिन पशुओं के मांस का भक्षण करते हैं। यही पशु, अगले जन्म में खाने वाले को खाते हैं। इसी प्रकार विषय भोग के लिए, अपनी धर्म पत्नी से मैथुन की आज्ञा भी नहीं है, केवल संतान की प्राप्ति के लिए ही है। संतान, नरक से माँ–बाप का उद्धार करती है। लेकिन जो लोग विषयी हैं, उन्हें विशुद्ध धर्म का ज्ञान ही नहीं है।

जो शास्त्रीय बात को नहीं जानते, वे घमंडी तथा दुष्ट ही हैं लेकिन समझते हैं अपने को पंडित। उनको मालूम होना चाहिए कि तुम्हारे सामने ही सभी मर–मर कर जा रहे हैं। क्या तुम यहाँ पर जिंदा रहोगे? जो लोग इस शरीर से तो प्रेम करते हैं और दूसरे शरीरों में रहने वाले, अपनी ही आत्मा एवं सर्वशक्तिमान भगवान् से द्वेष करते रहते हैं, ऐसों का नरक–वास निश्चित है। जो लोग आत्मज्ञान प्राप्त करके मोक्ष के मार्ग पर नहीं गए हैं, जो पूरे–पूरे मूढ़ भी नहीं हैं, वह अधूरे न इधर के हैं, न उधर के हैं। वह अर्थ, धर्म, काम इन तीनों पुरुषार्थों में फंसे रहते हैं। एक क्षण के लिए भी इन्हें शांति नहीं मिलती। यह अपने हाथों से ही अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार रहे हैं। ऐसों को ही आत्मघाती कहा जाता है। काल भगवान्, इनके मनोरथों पर पानी फेरते रहते हैं। इनके हृदय की जलन, विषाद कभी मिटने वाली नहीं है। इसी भाव से मर जाएंगे। यह अत्यंत परिश्रम करके

गृह, पुत्र, मित्र एवं धन संपत्ति इकट्ठी करते हैं, लेकिन इनको अंत में यहीं छोड़कर जाना होता है एवं न चाहने पर भी घोर यातनामय नर्क में जाना पड़ता है। भगवान् को न मानने वालों की यही गति होती है। यह पापी लोग भगवान् के भक्तों की हंसी उड़ाया करते हैं। यह मूर्ख, बड़े, बूढ़ों की नहीं, स्त्रियों की उपासना करते रहते हैं। यही नहीं, यह एक जगह बैठकर बड़े–बड़े मंसूबे बांधते रहते हैं। संसार का सबसे बड़ा सुख स्त्री सहवास में ही होता है। इनकी सारी उम्र, व्यर्थ के कामों में व बातों में ही कट जाती है। मनुष्य जन्म जो बहुत महत्वशील है। यूं ही बेकार में गवां देते हैं। श्रीमद्भागवत पुराण बोल रही है कि जो मनुष्य ब्राह्मण, गो और गोविंद को अपना सर्वस्व मानते हैं, उनपर कभी अमंगल, दुख, कष्ट नहीं आ सकता है। देवता भी भारतवर्ष अर्थात् अजनाभवर्ष की महिमा गाते हैं। "आहा! जिन जीवों ने भारतवर्ष में भगवान् की सेवा के योग्य, मनुष्य जन्म प्राप्त किया है, उन्होंने ऐसा कौन सा शुभ कर्म किया है अथवा स्वयं हरि ही प्रसन्न हो गए हैं। इसमें जन्म के लिए हम ही तरसते रहते हैं।"

हमने कठोर तप, यज्ञ, व्रत, दानादि करके, इस तुच्छ स्वर्ग का अधिकार प्राप्त किया है। इससे क्या लाभ हुआ? भोगों के भोगने में भगवान् को भूले रहते हैं। यह स्वर्ग तो क्या, जहाँ निवासियों की एक–एक कल्प की आयु होती है। फिर इस संसार चक्र में आना पड़ता है। उन ब्रह्मलोक आदि की अपेक्षा, भारत में थोड़ी आयु होने पर जन्म लेना सर्वोत्तम है क्योंकि यहाँ पर संपूर्ण कर्म, भगवान् को अर्पण करके, अभय पद प्राप्त हो जाता है। जहाँ कथामृत नदियां बहती रहती हैं, जहाँ साधु जन निवास करते हैं, जहाँ यज्ञों का विस्तार होता रहता है। कलियुग के समय भगवान् सरलता से मिल जाते हैं।

प्रश्न उठता है कि फिर भी क्यों नहीं मिलते? इस कारण से नहीं मिलते कि मानव, भगवान् को दुखी करता रहता है। चर–अचर प्राणियों में भगवान् आत्मा रूप से विराजते हैं। मानव दूसरे प्राणियों से राग–द्वेष करता रहता है। राग–द्वेष आत्मा से ही होता है। यह शरीर तो आत्मा का कपड़ा है। कपड़ा तो जड़ होता है, निर्जीव होता है। कष्ट होगा तो आत्मा को होगा। कहावत है कि किसी की आत्मा को मत सताओ। ऐसा कोई नहीं बोलता कि किसी के शरीर को मत सताओ। मानव हरे पेड़ को तने में से काटता है तो पेड़ तो मर जाएगा। तो दुखी हुई आत्मा। आत्मा के अभाव में पेड़ सूख कर गिर जाएगा। आत्मा तो प्यार का टुकड़ा है, क्योंकि भगवान् कृष्ण का अंश है। भगवान् कृष्ण ही बनाने वाले हैं और भगवान्

कृष्ण ही बनने वाले हैं। देखा जाए तो सभी संसार भगवान् का ही है। ऐसी दृष्टि मानव की जब हो जाएगी तब हरिनाम एकाग्रता से जपा जाएगा। नाम भगवान् को जप रहे हैं और मन जा रहा है बाजार में, खेत में, कार्यालय में तो यह नामाभास हुआ, शुद्ध नाम नहीं है। शुद्ध नाम उसी को बोला जाएगा, जब जापक के पास में भगवान् मौजूद हो। 99% जापक नामाभास ही कर रहे हैं।

जगत् का काम ही मन के रुके बिना नहीं हो सकता तो हरिनाम शुद्ध कैसे हो सकेगा? इतना ही नहीं है, जापक को 10–20 साल हरिनाम जपते हुए हो गए, फिर भी नाम में रुचि नहीं, अश्रुपात नहीं, पुलक नहीं तो क्या कहना होगा कि नामापराध हो रहा है। जगत् में आसक्ति फंसी पड़ी है। मन से हरिनाम नहीं हो रहा है। टी.वी. देख रहे हैं और हरिनाम कर रहे हैं। कितनी बड़ी भूल हो रही है। बातें कर रहे हैं और हरिनाम कर रहे हैं। जब तक जिज्ञासा नहीं होगी, न कथा में रुचि होगी, न हरिनाम में रुचि होगी। एक तरह से घास काट रहे हैं। घास काटने से भगवान् नहीं मिलेगा। न सुख मिलेगा। कहते रहते हैं कि हम इतना जप कई सालों से कर रहे हैं, लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ। होगा भी नहीं। अपने मन से पूछो कि मन हरिनाम करता है क्या? मन तो संसार को जपता है। हरिनाम तो कोसों दूर बैठा है। अपना दोष तो देखते नहीं हैं और हरिनाम में कमी निकालते रहते हैं।

मानव अपना धंधा करता है। वह होना चाहिए, धर्म के लिए। परंतु होता है धन, परिवार के लिए जो इसे कोई सुख नहीं देगा। पुत्र के दष्टौन (पुत्र होने के बाद समारोह) में खूब पैसा लगा देगा। फिर पढ़ाई में खूब खर्च कर देगा। इसके बाद शादी में खूब खर्च कर देगा। इसके बाद पोते के दष्टौन आदि आदि में खर्च कर देगा। जो इसको 1% भी सुख नहीं देगा। यह सब लुटेरे का धन लूट रहे हैं। सैर–सपाटे के लिए प्रेरित करके पैसा खर्च करवाएंगे। लेकिन धर्म में एक पैसा नहीं लगेगा। लाखों रुपया मकान में खर्च कर देंगे, जो यहीं पर छोड़ कर संसार से कूच कर जाएगा। अगले जन्म में भूखा मरेगा क्योंकि धर्म करने से ही भविष्य में पेट भरता है। धर्म तो किया नहीं। अधर्म में पैसा खर्च हुआ तो अगला जन्म, भीख मांगकर पेट भरना होगा। शास्त्र कहता है कि कमाई होनी चाहिए धर्म के लिए, एवं होती है अधर्म के लिए। जो जैसा किया वैसा भोगो। किसका दोष है? दोष खुद का है। जैसा बोया, वैसा काटो। इसमें दूसरे को दोष क्यों देते हो?

श्रीमद्भागवत पुराण में श्रीकृष्ण उद्धव को समझा रहे हैं कि, "साधक को चाहिए कि सब तरह से मेरी शरण में रहकर, शास्त्र के द्वारा, मेरे द्वारा उपदिष्ट अपने धर्मों का सावधानी से पालन करें। साथ ही जहाँ तक विरोध न हो, वहाँ तक निष्काम भाव से अपने वर्णाश्रम और कुल के अनुसार सदाचार का अनुष्ठान करें। किसी जीव को दुखी न करें। निष्काम होने का उपाय यह है कि स्वधर्मों का पालन करने से, शुद्ध हुए अपने चित्त में, यह विचार करें कि जगत् के विषयी प्राणी शब्द, स्पर्श, रूप आदि विषयों को सत्य समझ कर, उनकी प्राप्ति के लिए जो प्रयत्न करते हैं, उनमें उनका उद्देश्य तो सुख पाने का होता है परंतु मिलता है दुख। जैसे स्वप्न अवस्था में व जागृत अवस्था में चित्त में कितने संकल्प–विकल्प आते रहते हैं। लेकिन उनका सारा चिंतन सारहीन ही होता है, कुछ प्राप्ति नहीं होती। जो पुरुष, मेरी शरण में है, उसे अंतर्मुख करने वाले निष्काम अथवा नित्यकर्म ही करने चाहिए। उन कर्मों को त्याग देना चाहिए जो बहिर्मुख करने वाले हैं तथा सकाम हैं। जब आत्मज्ञान की इच्छा जाग उठे, तब तो कर्म विधि विधान का आदर भी न करें। अहिंसा आदि नियमों का ही पालन, आदर सहित करना चाहिए। परंतु शौच अर्थात् पवित्रता का आदर तो शक्ति अनुसार ही करना उचित है।

"उद्धव! यदि ऐसा भी मान लिया जाए कि लोग सुख की प्राप्ति एवं दुःख के नाश का उपाय जानते हैं, तो यह मानना पड़ेगा कि उसको भी सुख पाने का उपाय मालूम नहीं है क्योंकि उनके सिर पर मृत्यु खड़ी है। तो कौन सी सुख की सामग्री है, जो उन्हें सुखी कर सके? जैसे किसी को फांसी पर लटकाने को ले जाया जा रहा है, तो क्या उसे जगत की वस्तुएं सुखी कर सकेंगी? यहाँ की सभी वस्तुएं नाशवान हैं तो जिस पदार्थ का नाश सामने दिख रहा है, क्या वह पदार्थ उसे सुखी कर सकेगा? प्यारे उद्धव! लौकिक सुख के समान पारलौकिक सुख भी बेकार ही है क्योंकि वहाँ भी बराबरी वालों से ईर्ष्या, द्वेष चलता रहता है। सुख है तो उसी को है, जो मन का शांत है। नानक जी कह रहे हैं।

कोई तन दुखी, कोई मन दुखी, और कोई धन बिन फिरे उदास।
अरे! थोड़े थोड़े सभी दुखी नानका एक सुखी राम का दास।।

राम के दास का मन स्थिर रहता है। संसारी संकल्प–विकल्प उसको उठते नहीं हैं। केवल भगवान् में ही चित्त लगा रहता है। जितने भी रोग हैं, वह राक्षस हैं। यह भी भगवान् ने ही जगत् में भेजे हैं। यह सब

दवाईयां, देवता हैं, यह भी भगवान् ने ही धन्वन्तरि का अवतार लेकर, जड़ी–बूटियां पहाड़ों में प्रकट करके, देवताओं के रूप में, राक्षस रोगों से लड़ने हेतु प्रगट की हैं। कुछ राक्षस लोग इस प्रकार के होते हैं, जो दवा रूपी देवताओं से जीते नहीं जाते। वे रोग हैं गठिया अर्थात् शरीर के प्रत्येक जोड़ में दर्द होता है। दमा, जो साँस लेने में अटकाव करता है। इसमें चलना फिरना दुविधाजनक होता है। साँस फूलता रहता है। कई इस प्रकार के दमा होते हैं, जो बैठे–बैठे ही साँस का आना जाना मुश्किल से होता है। कैंसर रोग, एक प्रकार का फोड़ा होता है, जिसकी जड़ें चारों और फैलती रहती हैं। इस रोग से मानव का बचना बहुत मुश्किल है। जलोदर रोग, पेट में पानी भरता रहता है। बुखार भी कई तरह के होते हैं, जो अधिकतर मच्छरों से व गंदा पानी पीने से फैलता है। इसमें अधिकतर मौतें होती रहती हैं। एक होता है दिमागी बुखार, इसमें भी बचना मुश्किल से होता है। लकवा, जिसे पक्षाघात भी बोला जाता है। इस प्रकार से कुछ असाध्य रोग होते हैं, उनसे देवता हार जाते हैं। देवता रूपी दवा असर नहीं करती और चर–अचर प्राणी मर ही जाता है। कुछ रोग रूपी राक्षस, देवता रूपी दवाओं से हार जाते हैं। जैसे सादा बुखार, दस्त, सिर दर्द, जुखाम, वातरोग, पेट दर्द, प्रमेय, प्रदर आदि–आदि राक्षस रोग, देवता रूपी दवाइयों से हार जाते हैं।

लेकिन एक रामबाण दवा ऐसी है, जो असाध्य रोगों को भी अपने पैरों नीचे कुचल डालती है। वह है शक्तिशाली हरिनाम जप। जिसके शरीर में रम जाता है, राक्षस रूपी रोग उसके पास आने में डर जाते हैं, यदि हम इसके शरीर में घुस जाएंगे, तो यह हरिनाम रूपी शक्तिशाली देवता, हमें जलाकर भस्म कर देगा। अतः सभी को हरिनाम का सहारा लेना परमावश्यक है। हरिनाम से रोगों से बचना हो जाएगा और जन्म–मरण रूपी जघन्य दुखदाई रोग भी हमेशा के लिए समाप्त हो जाएगा। गर्भाशय रूपी गुफा में 8 से 10 माह घुसा नहीं रहना पड़ेगा। यह भी एक नरक का ही भाग है। फिर 6–7 माह तक हिलना डुलना नहीं होगा। खटमल, मच्छर कोमल त्वचा को खाते रहेंगे। कुछ कर सकते नहीं। दुख पाते रहो। बड़े होने पर तरह तरह के दुष्ट–कष्ट आते रहेंगे। सुख की तो हवा भी नहीं लगेगी। अतः हरिनाम ही इससे बचने का एकमात्र उपाय है। उसी का सहारा लेना ठीक होगा।

पिछले अनेक बुरे कर्म मानव से होते रहते हैं। उनका अच्छा बुरा फल मानव जीवन में अवश्यमेव मिलता रहता है। भीष्म पितामह काँटों की शैया

पर क्यों सोये? क्या उनके लिए सेजों की कमी थी? कोई कमी नहीं थी। कई जन्म पहले भीष्म पितामह कहीं रथ पर बैठकर जा रहे थे, तो मार्ग में एक सांप पड़ा हुआ था। उसको बचाने हेतु भीष्म पितामह ने अपने चाबुक से उसे उठाकर फेंका, वह सांप एक काँटों की झाड़ी पर पड़ गया, जिससे उसका शरीर काँटे गड़ने से छलनी हो गया। उसका फल, नतीजा इस जन्म में मिला। उनको भी काँटों पर सो कर ही देह त्यागनी पड़ी, जैसे सांप को देह त्यागनी पड़ी थी।

आजकल देख रहे हो, कितनी दुर्घटनाएं होती रहती हैं। यह भी पूर्व जन्मों के कुकर्मों के ही नतीजे हैं। कौन किस को मारता है? जिस ने, जिस को मारा है, वही उसे किसी भी कारणवश मार देता है। नाम होता है ट्रोला से मारा गया, बस से मारा गया, ट्रक से मारा गया, ट्रेन से मारा गया, जल में डूब कर मर गया, आग में जलकर मर गया। जिसने जगत् में जन्म लिया है, वह एक दिन अवश्य मरेगा ही। प्रत्येक मनु के राजकाल में भगवान् अवतार ले कर, अपना काम करके जाते हैं। काल व महाकाल, सब चर–अचर की आयु को अपने गाल में धर दबाता है। किसी को छोड़ता नहीं है। केवल भगवान् के भक्तों पर उसका वश नहीं चलता है। यह अपनी मर्जी अनुसार देह छोड़ते रहते हैं क्योंकि इनको हरिनाम, शक्तिशाली का आसरा रहता है। हरिनाम ही इन से पूछ कर, अपनी आत्मा, इनके तन से बाहर करता है। भक्त परमात्मा का सिरमौर है। अतः भक्त के आदेश बिना, आत्मा शरीर से बाहर नहीं आता।

भक्तगण ध्यान से सुनिए! भगवान् स्वयं अपने मुखारविंद से घोषणा कर रहे हैं कि –

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।।

(मानस, सुन्दर. दो. 43 चौ. 1)

"मेरा नाम ऐसा शक्तिशाली सुदर्शन चक्र है कि मेरा नाम जिसके मुख से निकल जाए तो मरते समय वह एक ही नाम, अनंत कोटि जन्मों के पापों को भस्मीभूत कर देता है। फिर कह रहे हैं :

जिन्ह कर नामु लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं।।

(मानस, बाल. दो. 314 चौ. 1)

जड़ सहित ही दुख नाश हो जाते हैं। दुख की जड़ ही खत्म हो गई तो दुख आने का सवाल ही कहाँ होगा।

फिर कह रहे हैं :

बिबसहुँ जासुनाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं।।

(मानस, बाल. दो. 118 चौ. 2)

करोड़ों जन्मों के रचे–पचे गहरे पाप जलकर भस्म हो जाते हैं।
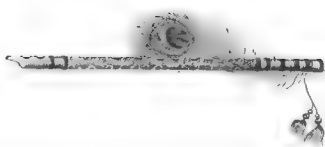
संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : अगर कोई व्यक्ति अभी पैसा कमाने के लिए हरिनाम करता है, ताकि आगे जाकर उसे पैसा कमाने की चिंता न हो और सिर्फ हरिनाम ही करे। उसको इधर उधर की कोई टेंशन न हो। क्या यह ठीक है ?

उत्तर : बिल्कुल गलत, बिल्कुल गलत! उसको मालूम है क्या कि एक साँस आया, दूसरा साँस आयेगा कि नहीं आएगा। पहले तो पैसा कमाने के लिए हरिनाम करेगा। भगवान् पैसा तो दे देगा, लेकिन क्या उसे मालूम है कि उसकी कितनी उम्र है ? क्या पता, एक साँस आने के बाद दूसरा साँस आए कि न आए। और सारी जिंदगी पैसे के लिए हरिनाम करता रहा। उसी में मर जाएगा। बाद में ऐसी आदत पड़ जाएगी कि निष्काम हरिनाम कर ही नहीं पाएगा। उसकी कामनाएं करने की आदत हो जाएगी, कामनाएं बढ़ती जाएंगी। पहले पैसा मिल जाये, फिर बेटे की शादी हो जाए, अब मेरे पोता हो जाए, अब मेरे बेटे की नौकरी लग जाए। उस की कामनाएं कभी खत्म नहीं होंगी। ऐसा भक्त, भगवान् को कभी प्राप्त नहीं कर सकता।

गंभीर व मार्मिक प्रश्न

30 अक्तूबर, 2017
छींड़ की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में इस दासानुदास
अधमाधम अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो
तथा हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

(गंभीर प्रश्न का मतलब है जो साधारण व्यक्ति नहीं बता सकता, कितना बड़ा महात्मा भी हो वह भी नहीं बता सकता। गंभीर प्रश्न केवल भगवान् ही बता सकते हैं।)

पंचभौतिक शरीर से एक दिन आत्मा निकल जाती है फिर सजा कौन से शरीर को भोगनी पड़ती है?

प्रथम में कोई सृष्टि नहीं थी सभी जगह सुनसान स्थिति थी, भगवान् को खेलने की अर्थात् लीला रचने की स्फुरणा हुई तो भगवान् को योगमाया के सत, रज, तम गुणों को अपनाना पड़ा और उनके चिन्मय शरीर से ही सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ।

जीव भगवान् का अंश है। जीव शुभ-अशुभ कर्म करता है, इस कर्म से ही जन्म मरण अवस्था प्रकट हुई। शुभ कर्म करने से सुखकारी उच्चतम लोक प्राप्त हुए और अशुभ कर्म करने से दुखमय नरक लोकों की उपलब्धि हुई। अब सभी का प्रश्न है कि जब शरीर से आत्मा निकल जाती है तो शरीर जड़ अवस्था में हो जाता है तो सजा आत्मा के बिना कौन से शरीर को मिलती है ? घड़ी का सैल (Cell) निकल गया तो घड़ी कैसे चलेगी तो आत्मा जब निकल गयी तो आत्मा के बिना नरक में जा के, जो बुरा काम किया है, उसको जीव कैसे भोगेगा ? यह प्रश्न बहुत गंभीर है जो ठाकुरजी ने ही बताया है।

आत्मा के निकलते ही यमदूत आते हैं और जिसने पाप किये हैं उसके गले में फांसी लगा कर उसको कोड़ों से पीटते हुए ले कर जाते हैं।

पीटते किसको हैं अब ? यह प्रश्न है। यह यातनामय शरीर आत्मा के निकलने पर मिलता है जिसे लिंग शरीर, सूक्ष्म शरीर, स्वभाव का शरीर, आदत का शरीर तथा इन्द्रियमय शरीर भी बोला जाता है। आत्मा एक दम स्वच्छ पदार्थ होता है इसको आग जला नहीं सकती, हवा सुखा नहीं सकती, जल गीला नहीं कर सकता, इसको दुःख-सुख अनुभव नहीं होता, यह तो जीव का कर्म देखता रहता है। आत्मा भोक्ता है, जीव भोग्य है लेकिन जीव भोक्ता बन जाता है तो उसको सजा दी जाती है, इस सजा का रूप है यातनाएं, कष्ट, दुख आदि। जब शरीर में कोई भी कष्ट होता है तो वह जीव को होता है न कि आत्मा को। आत्मा तो निर्लिप्त है आत्मा शरीर से निकलने पर तुरन्त दूसरा शरीर धारण कर लेती है अर्थात् कर्मानुसार दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाती है, आत्मा कहीं पर भी क्षण भर भी नहीं रुकती। सुख-दुख जीव को महसूस होता है, लिंग शरीर से, जिसके अन्दर की आँखों से हम दूर की वस्तु देख लेते हैं, जिसके अन्दर के कान से सुन लेते हैं, बस उस शरीर को ही नरक में जाना पड़ता है। लिंग शरीर से ही नरक-स्वर्ग मिलता है। उदाहरण के तौर पर, एक शराब पीता है और एक उसको शराब पीने से मना करता है, एक चोरी करता है और एक कहता है चोरी मत किया करो, एक मांस खाता है और एक कहता है मांस मत खाया करो, एक तो कहता है अच्छी बात है और एक कहता है बुरी बात है तो यह आदत ही तो हुई जिसको लिंग शरीर, स्वभाव शरीर और कारण शरीर आदि बोलते हैं।

भगवान् भगवद्गीता में कहते हैं, "इन्द्रियों में, मैं स्वयं ही मन हूँ।" तथा मरने के बाद मन भी साथ जाएगा तो मन सब कुछ बता देगा कि इसने क्या-क्या कर्म किए हैं और फिर उसके अनुरूप ही जीव को कष्ट दिया जाता है। मन (भगवान्) केवल देखता रहता है और सजा जीव (भगवान् के अंश) को दी जाती है। जैसे अगर हमारी उंगली में दर्द हो तो पूरे शरीर में दर्द होता है लेकिन आत्मा को दर्द नहीं होता, दर्द केवल जीव को ही होता है। शरीर में एक आत्मा है और एक जीव है, दुख हमेशा जीव को ही होता है।

चिकित्सक (Surgeon) ऐसा इंजेक्शन लगाता है कि मन को सुला देता है, मन सो जाता है तभी तो दर्द नहीं होता, जब दवा का

असर खत्म हो जाए तो मन जग जायेगा तो फिर दर्द महसूस होगा। एक पेड़ पर दो पक्षी बैठे हैं एक परमात्मा है और दूसरा पक्षी है, जीव। सब कुछ है तो उस परमात्मा का, पर जीव ने उस पर अपना अधिकार जमा लिया। अधिकार परमात्मा का है, परन्तु जीव अपना अधिकार जमाता है, तो उसको दण्ड मिलेगा या नहीं ? जैसे मेरे पास 100 रुपए हैं और आपने जबरदस्ती ले लिए, तो आपको सजा तो मिलेगी ही। दूसरे का अधिकार छीनना ही सजा का कारण है। जब भजन कर-कर के भगवान् में पूर्ण रूप से मन लग जाता है, तो यह लिंग शरीर खत्म हो जाता है और दिव्य शरीर मिल जाता है।

शरीर पंचतत्त्व से बना हुआ है, पंचतत्त्व के बिना किसी का भी शरीर बनता नहीं है। ये पंचतत्त्व हैं : पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। इनमें से एक का भी अभाव होने पर शरीर समाप्त हो जाता है अर्थात् आत्मा शरीर को छोड़ देती है। अन्नमय शरीर तो खत्म हो जाता है पर सूक्ष्म शरीर (लिंग शरीर, स्वभाव शरीर, इन्द्रियमय शरीर) तो खत्म नहीं होता वो खत्म तब होगा जब हमारा स्वभाव एक दम स्वच्छ हो जाएगा। स्वभाव जीव से ही जुड़ा रहता है, जीव परमात्मा का अंश है, इस अंश को ही सुख-दुख भोगना होता है। अनंत जन्मों से, स्वभाव गन्दा हो जाता है तो भगवान् को याद करने से स्वभाव स्वच्छ हो जाता है, इसे ही भजन कहते हैं। हम भजन इसलिए करते हैं कि हमारा मन अभी ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि में घुसा हुआ है और यह सब मैल के रूप में मन पर जमें हुए हैं। हरिनाम करने से यह मन शुद्ध हो जायेगा तो लिंग शरीर खत्म हो जायेगा और दिव्य शरीर उपलब्ध हो जायेगा, यह शरीर पंच भौतिक नहीं होता, यह अप्राकृतिक शरीर होता है, इसको दुख की छाया भी नहीं होती, यह आनन्दमय शरीर होता है जो भगवान् के भजन से उपलब्ध होता है। जैसे अन्नमय शरीर खत्म हो जाता है उसी प्रकार लिंग शरीर को खत्म करने के लिए स्वभाव अच्छा बनाना चाहिए, भजन करना चाहिए, हरिनाम करना चाहिए। लिंग शरीर के खत्म होते ही हमें एक दिव्य शरीर मिलेगा और वह शरीर भगवान् के पास ले जाता है जब तक वह नहीं होगा तब तक जीव इस संसार में ही रहेगा, लिंग शरीर में ही रहेगा। लिंग शरीर खत्म होगा तो ही जन्म-मरण छूटेगा, जितनी देर लिंग शरीर रहेगा तब तक जन्म-मरण होता ही रहेगा और हम दुख पाते ही रहेंगे, कभी नरक में जायेंगे, कभी स्वर्ग में जायेंगे और कभी कहीं चले जाएंगे परन्तु ठाकुर

नहीं मिलेगा। जब स्वभाव ठीक हो जायेगा व पूरा निर्मल हो जायेगा तब दिव्य शरीर अपने आप मिल जाएगा। जब रात खत्म हो जाती है तो सूर्य का दर्शन हो जाता है। रात खत्म होने का मतलब है जब अवगुण खत्म हो जायेंगे, तो भगवान् का दर्शन हो जायेगा।

जीव नरक भोगने के बाद 84 लाख योनियों में जाकर दुख, कष्ट भोगता है, अनन्त चतुर्युगी के बाद अर्थात् अनन्त कल्पों के बाद भगवान् दया करके दुख से छूटने हेतु मानव शरीर देते हैं फिर यह जीव अशुभ कर्म करके इसी माया की चक्की में पिसने को चला जाता है। किसी सच्चे संत की कृपा से ही वह जीव वापस भगवान् की गोद में जा सकता है दूसरा कोई रास्ता नहीं है सुख पाने का। कलियुग में तो सच्चा संत मिलना टेढ़ी खीर है यदि किसी जीव को मिलता है तो उस पर भगवद्कृपा ही है, भगवद्कृपा भी तब ही होगी जब जीव को किसी सच्चे संत की सेवा करने का अवसर मिल जाए। सच्चे संत की पहचान है कि पैसा व नारी उसके लिए शत्रु का काम करें। उसके लिए पैसा मिट्टी तथा नारी माँ के समान हो। इसके पीछे अहंकार तो विलीन ही हो जाता है। पैसा व नारी ही खास माया का रूप हैं जो जीव को माया में फंसाते हैं, भगवद्कृपा के बिना यह जीव से दूर नहीं होते।
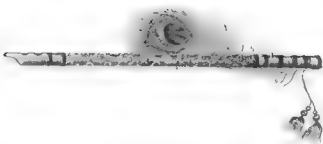
संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : हमारे भजन का लक्ष्य क्या होना चाहिए वैकुण्ठ प्राप्ति या ठाकुरजी की सेवा ?

उत्तर : हमारा लक्ष्य यह होना चाहिए, भगवान् आप में हमको प्रीति होती रहे और हमें साधु संग मिलता रहे, बस! पूरे शास्त्रों का सार यही है कि, "प्रभु मैं आपको भूलूँ नहीं और संतों का संग मुझको मिले।" जिसने भी मांगा है, यही मांगा है। इससे बढ़कर क्या कुछ कीमती वस्तु है ? कि साधु का संग मिले और मैं आपको स्मरण करता रहूँ और मैं भूलूँ नहीं। आपका स्मरण होता रहे।

भगवत् प्रसाद

22 अप्रैल 2018
छींड की ढाणी

अनंत कोटि भक्तों के चरण कमलों में इस दासानुदास अधमाधम
अनिरुद्ध दास का दण्डवत् प्रणाम स्वीकार हो तथा
प्रार्थना है हरिनाम में रुचि होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

मेरे गुरुदेव कह रहे हैं कि भगवान् हाथ फैलाए खड़े हैं। अरे! मेरे पुत्र! मेरे पास आ जा। लेकिन जीव ऐसा मस्त हो रहा है कि उसकी तरफ देखता ही नहीं है। आप बहुत ध्यान से सुनो! गुरुदेव बहुत जल्दी भगवान् से मिला देंगे। मैं बताता हूँ, बहुत जल्दी भगवान् मिल जाएंगे। हरे कृष्ण! ध्यान से सुनो! गुरुदेव भक्तगणों को बता रहे हैं कि भगवान् जल्दी कैसे मिल सकते हैं? अतः ध्यान से सुनो! भगवान् मिले मिलाएं हैं केवल, बस थोड़ी सी कसर है। भक्तगण ध्यान से सुनें ! जिसको सुनने से, साधन करने से, भगवान् में प्रीति स्वतः ही हो जाती है एवं सांसारिक आसक्ति स्वतः ही दूर भाग जाती है। यही सबसे बड़ा रोड़ा है। संसारी आसक्ति का ही रोड़ा है। इस रोड़े को हटाने के लिए, मेरे गुरुदेव बोल रहे हैं, ऐसी युक्ति मेरे गुरुदेवजी बता रहे हैं कि खानपान व पानी शुद्ध होने से माया की दाल, उस साधक पर हावी नहीं हो सकती।

खानपान और पानी शुद्ध होने से माया की दाल, उस साधक पर हावी नहीं हो सकती। पहला साधन है कि कमाई अपने पसीने की हो। दूसरे के हक की कमाई जहरीली होती है। दूसरे के हक की कमाई घर में आ गई तो कलह करा देगी, झगड़े करवा देगी।

भगवान् की भक्ति का जन्म तब होता है कि जैसे जब माताएं गेहूं आदि अनाज को छानकर साफ करती हैं, तो इसके पहले माताएं हाथ पैर धोएँ। ध्यान से सुनिए! सभी माताएं हाथ पैर धोएँ और कुल्ला करके मुंह

साफ करें। फिर हरिनाम मन–ही–मन अथवा धीरे–धीरे उच्चारण करते हुए अनाज को साफ करती रहें। इसके बाद पिसाई करते समय भी हरिनाम को छोड़ें नहीं। फिर रसोई बनाने की तैयारी करती हैं तो भगवद् नाम लेते हुए सब्जी को छीलें। रसोई–घर में जाकर पहले रसोई को झाडू से अथवा पानी से साफ करें और सब्जी अग्नि पर चढ़ा कर तैयार करें और हरिनाम न छोड़ें। साथ साथ हरिनाम करती रहें। फिर आटा गूंधकर चपाती आदि चूल्हे पर तैयार करती रहें और हरिनाम करती रहें, हरिनाम को छोड़ें नहीं। यह हुआ माताओं का कर्म, जिससे भक्ति का जन्म हुआ।

भगवद् नाम जप करते हुए वे कर्म करती रहें। अब अमणिया को प्रसाद हेतु तुलसीदल डालकर भगवान् को भोग हेतु अर्पण करें। भोग को अमणिया कहते हैं, फिर बाद में प्रसाद हो जाएगा। दो थालियों में अर्पण करें। एक गुरु का और एक भगवान् का। केवल 5 मिनट ही ऐसा ध्यान करें कि गुरुजी और भगवान् बड़े प्यार से खा रहे हैं। केवल 5 मिनट, ज्यादा देर नहीं क्योंकि भगवान् तो भाव के भूखे हैं। इतना भाव करते ही भगवान् खाने के लिए आ जाएंगे। यह चिंतन करते रहें कि भगवान् खा रहे हैं।

फिर से बता देता हूँ कि जब प्रसाद बनाने के लिए जाएं तो हाथ, मुँह, पैर धो कर रसोई घर में घुसते ही हरिनाम का स्मरण आरंभ कर दिया जाए। रसोईघर में घुसते ही हरिनाम का स्मरण आरंभ कर दें तो भगवान् और उनके पार्षद रसोई घर में घुस जाएंगे और उनके घुसते ही रसोईघर में शुद्ध वातावरण हो जाएगा। वही रसोईघर स्वच्छ हो जाएगा। हरिनाम जप एवं स्मरण टूटना नहीं चाहिए। अब सब्जी बनेगी या जो भी खाद्य पदार्थ बनेगा, उसमें निर्गुण रस घुसता रहेगा। जैसे रोटी बनेगी, जैसे रबड़ी बनेगी, चटनी बनेगी, ककड़ी, खीरा, टमाटर, मूली के टुकड़े आदि एक प्याले में या तश्तरी में रखते जाएं। हरिनाम क्रमबद्ध होता रहे, हरिनाम को नहीं छोड़ें। अब प्रसाद भगवान् को भोग लगाकर घर के मेंबर (सदस्य) खाने को बैठे हैं तो थाली के प्रसाद को नमस्कार करें और अनुभव एवं स्मरण करें कि इसको मेरे गुरुदेवजी और भगवान् ने आरोगा हैं, खाया है और अब मैं पाऊँगा तो मेरा मन शुद्ध बनता जाएगा। मेरा अंतःकरण शुद्ध हो जाएगा। मेरे अंतःकरण से निर्गुण धारा बहेगी।" सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण यह तो माया की धाराएं हैं और निर्गुण धारा भगवान् की धारा है। निर्गुण धारा से भगवान् मिल जाते हैं। निर्गुण धारा से विरह हो जाता है, छटपट हो जाती है। निर्गुण धारा बहाने के लिए ही तो यह सब बताया है, जो ऊपर लिखा हुआ है। फिर तो, अपने आप बहुत जल्दी होगा। आप लोग करो।

ऐसा करके फिर दाहिने हाथ में जल लो और चार बार थाली के चारों तरफ घुमाओ ताकि प्रसाद की परिक्रमा बन जाए। फिर जल को अपने पास सामने छोड़ दो। प्रसाद चिन्मय होता है। फिर एक–एक ग्रास खाते हुए कम से कम आठ–आठ बार हरिनाम मन–ही–मन करते रहो, तो खाने वाले का मन इधर उधर जाएगा ही नहीं। मन इधर उधर जाने से जब हम खाते हैं तो तामसिक, राजसिक धारायें अंतःकरण में बहती रहती हैं, तो मन में बुरे भाव उदय हो जाते हैं। अब, जब निर्गुण धारा बह रही है तो तामसिक और राजसिक धारा कहाँ से आएगी? फिर प्रत्येक ग्रास के साथ धीरे–धीरे मन में हरिनाम करते रहो। 20–25 ग्रास लेते हुए, हरिनाम करने से मन इधर उधर भटकेगा ही नहीं, रस ज्यादा बनेगा तो रोगों का आना बंद हो जाएगा। कोई रोग आएगा ही नहीं। जब अमृत अंदर जा रहा है तो रोग कैसे आएंगे क्योंकि अमृत रोग का भक्षण कर देगा। इस तरह से जो भी यह अभ्यास एक माह करेगा तो 90% मन स्वच्छता को प्राप्त कर लेगा। ह्रदय स्वच्छ हो जाएगा, अवगुण जलते जाएंगे और गुणों का रस शरीर में भरता जाएगा। ऐसे कोई करता ही नहीं है, करके देखो! अंतःकरण शुद्ध होता जाएगा। प्रत्यक्ष में प्रमाण की आवश्यकता नहीं है, आजमा कर कोई भी देख सकता है। 100% उपलब्धि होगी। 20–25 ग्रास तो कोई खाएगा ही, तभी तो पेट भरेगा। 20–25 बार ग्रास खाने से बहुत बार भगवत् नाम हो जाएगा। फिर जब पानी पिये तो भी भगवान् का नाम मन ही मन जपें, तो भगवान् का चरणामृत बनकर पेट में जाएगा। तो उससे अंतःकरण में शुद्ध विचारों का तांता बंध जाएगा। ऐसा जिस घर में होगा वहाँ पर भक्ति महारानी नाच पड़ेगी और भक्ति के पीछे भगवान् होते हैं। इससे दुख का साम्राज्य जड़ सहित नाश हो जाएगा। दुख का तो नाम ही नहीं रहेगा, जड़ ही खत्म हो जाएगी। इससे दुख साम्राज्य का जड़ सहित नाश हो जाएगा और भगवान् की माया भी उसकी मदद करेगी। अच्छी मदद करेगी, दुखी नहीं करेगी।

हो सकता है अभ्यास न होने से बीच में भूल हो जाए तो 2 माह में तो अवश्य ही अभ्यस्त हो जाओगे। अभ्यास करते–करते समय लग सकता है, एक महीना लग सकता है, सवा महीना लग सकता है, ऐसा मेरे गुरुदेव ने स्पष्ट कृपावर्षण की है और यदि आलस्य–प्रमाद करोगे तो कुछ नहीं मिलेगा। यह सबसे बड़ा दुश्मन है यदि आलस्य–प्रमाद करोगे तो।

सबसे अनंतकोटि दुखी जन्मों का सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि संसार की फँसावट अर्थात् आसक्ति स्वतः ही बड़ी आसानी से भगवान् व

संतों में जाकर मुड़ जाएगी। अभी माया की तरफ है फिर अध्यात्म की तरफ मुड़ जाएगी। इससे दुखों का जड़ सहित नाश हो जाएगा।

आप सब भक्तगण विचारपूर्वक महसूस भी करो कि वास्तव में यह युक्ति 100% सही और सत्य है। ऐसा आपको भी अनुभव हो रहा है, ऐसा आपका अंतःकरण ही बता देगा कि ऐसा शर्तिया होगा ही। यह सब ऊपर लिखी शास्त्रीय चर्चा है, गुरुजी अपने मन से नहीं बोल रहे हैं। चैतन्य महाप्रभुजी की माँ शची माता तथा पिता जगन्नाथ ऊपर लिखे अनुसार ही रोज जीवनयापन किया करते थे। यह शास्त्रीय बात है, तथा चैतन्य महाप्रभुजी प्रसाद सेवन ऊपर लिखे अनुसार ही किया करते थे। हाथ–पैर धोते थे, मुँह धोते थे, फिर आसन लगाकर ऊपर बैठते थे, फिर थाली की चार परिक्रमा करते थे, फिर हरिनाम करते हुए प्रसाद को पाते थे। जो भक्त इसको अपने जीवन में उतारेगा, वह 100% इसका लाभ उठाएगा। जिसको संशय होगा, दुर्भाग्य होगा, वह इस अमृत को नहीं पी सकेगा।

ध्यान से सुनो! रजस्वला महिला के हाथ का भोजन खाने से गर्भ का बच्चा निश्चित रूप से बाप को मारेगा। इस समय के गर्भ का बच्चा माँ–बाप को निश्चित रूप से मारेगा। माँ–बाप को दुख सागर में डुबोता रहेगा। यह स्वभाव को इतना बिगाड़ता है कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। ऐसा जो बच्चा प्रकट होगा, इतना खराब स्वभाव का होगा कि किसी को चैन नहीं लेने देगा। इससे तो मरना ही अच्छा है। जहरीली मदिरा से भी करोड़ गुना ज्यादा नुकसान कारक होगा।

यह मेरे गुरुदेव ने कृपा करके आप सब को सुनाया है। इसको आप आजमा कर देखो। ऐसा करोगे तो 24 घंटे का ही आनंद हो जाएगा और निर्गुण धाराएं बहने लगेंगी। हम इससे वंचित हैं इसीलिए तो हम दुखी हैं क्योंकि कोई बताता ही नहीं है।

हमारा श्रीमद्भागवत क्या कह रहा है, कृष्ण भगवान् कह रहे हैं, "उद्धव! मैं किसी चीज से नहीं मिलता मैं केवल सत्संग से मिलता हूँ। उद्धव! जो सत्संग करता है सुनता है वह तो इसी जन्म में भगवान् को प्राप्त कर लेगा।" जब आप ऐसा करोगे तो भगवान् आपको दर्शन देगा। ऐसा नहीं है जो कहते हैं कि कलियुग में दर्शन ही नहीं होता है, कभी ऐसा हुआ ही नहीं है। हमारे गुरुवर्गों को भगवान् के दर्शन होते थे। माधवेंद्रपुरीजी को, रूप सनातन को, सबको हुआ है। मीराजी को तो, अभी की बात है। मीराजी को, सूरदासजी को हुए हैं। सभी को हुए हैं और हमें भी हो सकते

हैं। इसलिए यह लेख गुरुदेव ने लिखवाया था जो मैंने आपको सुना दिया है। अब आप इसको प्रेक्टिकल रूप में आजमाओ और करो और यह तो आपका हृदय भी कह रहा है कि हां! ऐसा करने से होगा। होगा कैसे नहीं यह 100% होगा।

उपरोक्त लेखों में बताई गईं तीन प्रार्थनाएँ एक करोड़ हरिनाम के बराबर हैं क्योंकि ये पूरे 18 पुराण, 6 शास्त्र और 4 वेदों का सार है। इसलिए ठाकुर जी ने इन तीनों प्रार्थना का इतना प्रभाव बताया है। पूरे शास्त्रों भगवद् गीता, भागवत, रामायण आदि में इन तीन प्रार्थनायों के अलावा कुछ है ही नहीं। इन तीन प्रार्थनाओं को करने वाले का उद्धार निश्चित है क्योंकि इसमें लिखा है कि आप (भगवान्) भूल मत करना, जब मरूं तब अपना नाम उच्चारण करवा लेना तो भगवान् उसको भूलते नहीं हैं हम भूल जाते हैं। और इन तीन प्रार्थनाओं में लिखा है कि सब में मैं भगवान् ही भगवान् देखूँ तो हरिनाम भी तो यही करता है कि तुम्हारा हृदय एकदम स्वच्छ हो जाए और यह तीन प्रार्थनाएँ तुम्हारे हृदय में बैठ जाएँ। हरिनाम और यह तीन प्राथनाएँ करने से रोगी निरोगी हो जाएगा। इन तीन प्रार्थनाओं की बहुत वैल्यू (मूल्य) है।
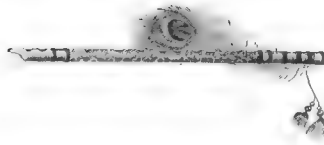
संशय आत्मा विनश्यति

प्रश्न : लीला स्मरण नाम जप से ऊपर है या नाम जप में उत्तम रस है ? अर्थात नाम जप में रस ज्यादा है या लीला स्मरण में रस ज्यादा है ?

उत्तर : सभी में रस है। बीज नहीं होगा तो लीला स्मरण कैसे होगा ? कहाँ से होगी ? अगर बीज ही नहीं होगा, नाम ही नहीं होगा, तो लीला कहाँ से आएगी ? मान लो जैसे हम कोई बीज बोते हैं। बीज बोने के ऊपर ही तो पेड़ आता है। बीज ही नहीं होगा, तो पेड़ कहाँ से आएगा। वही रस बीज में है और वही रस लीलाओं में है। लेकिन अभी हम इसमें घुले नहीं हैं, इसलिए हमको मालूम नहीं पड़ता।

भगवान् के साक्षात् दर्शन करने का स्वच्छ दर्पण

सात आचरण के स्वभाव वाले भक्त के पीछे,
श्रीकृष्ण छायावत् चिपके रहते हैं।

श्रीमद् भागवत महापुराण से उद्धृत
श्रीमद् भागवत पुराण शब्द ब्रह्म साक्षात् श्रीकृष्ण

पहला है

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः।।

(श्री शिक्षाष्टकम् श्लोक 3)

जिसका ऐसा स्वभाव होगा वह ही नाम का कीर्तन कर सकता है। तृणादपि यानि अपने आपको तृण से भी नीचा समझे और पेड़ से भी सहनशील हो। पेड़ को हम पत्थर मारते हैं तो भी हमें फल देता है। ऐसा सहनशील होना चाहिए और दूसरे को इज्जत दो, अपनी इज्जत की अपेक्षा मत करो। दूसरों को मान दो अपने मान की अपेक्षा मत करो। ऐसा स्वभाव होना चाहिए।

दूसरा कंचन, कामिनी, प्रतिष्ठा से वैराग्य हो। कंचन में सब आ गया जैसे पैसा, मकान, दुकान, वैभव जितना भी है। इसमें उसकी आसक्ति न हो। कामिनी, जो सभी स्त्रियों को, नारियों को अपनी माँ समझे। प्रतिष्ठा, जब प्रतिष्ठा हो या बड़ाई हो तो समझे कि यह तेरी बड़ाई नहीं है। यह तो हरिनाम की बड़ाई हो रही है। यह तो हरिनाम की वजह से बड़ाई है, इससे उसको अहंकार नहीं आएगा।

तीसरा है- तीन प्रार्थनाएं हैं। ये प्रार्थनाएं क्या हैं?

रात को सोते समय प्रार्थना करो, "हे मेरे प्राणनाथ! जब मेरी मौत आए और मेरे तन से आत्मा रूप में आप बाहर निकलो तो आप अपना नाम उच्चारण करा देना और भूल मत करना।" भगवान् को बांध दिया। भगवान् भूलेंगे नहीं। हम भूल सकते हैं।

जब सुबह जागो तब बोलो, "हे मेरे प्राणनाथ! अब से लेकर रात में जब तक मैं सोऊँ तब तक, जो भी काम करूँ वह आपका ही समझ कर करूँ और भूल जाऊँ तो मुझे याद दिला देना।" भगवान् नहीं भूलेंगे।

फिर स्नानादि करके बोलो, "हे मेरे प्राणनाथ! कृपया मेरी ऐसी दृष्टि बना दो, ऐसी निगाह बना दो कि मैं कण-कण में और हर प्राणी में आपका दर्शन करूँ और भूल जाऊँ तो मुझे याद दिला देना।"

इन तीन प्रार्थनाओं के सिवा शास्त्रों में कुछ भी नहीं है। फिर वह किससे दुश्मनी करेगा? सबमें भगवान् को देखेगा। ऐसी आदत बना लो, ऐसा स्वभाव बना लो, तो तुमको इसी जन्म में, भगवद् प्राप्ति, अभी हो जाएगी।

चौथा है जब हरिनाम जपो तो भगवान् को पास में रखो। ऐसा नहीं कि हरिनाम जपते हैं और एक मिनट में ही मन स्कूल में, बाजार में, खेत में, दुकान में चला जाए और भगवान् को छोड़ दिया। भगवान् कहते हैं कि, "मुझे बुलाया क्यों था और अब तू कहाँ भाग गया, यहाँ से?" जैसे आप किसी को फोन करके बुलाओ। बात करने लगो और फिर थोड़ी देर बात करके आप उठ कर बिना बताए चले जाओ और फिर आओ भी नहीं तो वह बेचारा क्या बोलेगा कि, "मुझे क्यों बुलाया था तुमने? मुझे बुलाया क्यों?" ऐसे ही भगवान् कहते हैं कि, "पहले मुझे बुलाते हो फिर कहाँ चले जाते हो?" इसलिए भगवान् को पास में रखो।

पांचवा है कि किसी में गुण दोष मत देखो। किसी में अगर गुण-दोष देखोगे तो वह आप में आ जाएगा। गुण दोष तो पिछले जन्म के संस्कारवश सत, रज, तम के द्वारा होते हैं। इसमें उसका क्या वश है बेचारे का? गुण दोष तो सभी में होते हैं। गुण-दोष तो हम में भी हैं, लेकिन किसी और में मत देखो।

गुण भी मत देखो, दोष भी मत देखो।

छठा है कि भगवान् ने जो कुछ तुमको दिया है, उसी में संतोष रखो कि हमें भगवान् ने बहुत दे दिया।

जब आवे संतोष धन तब सब धन धूल समान।

सातवां है कि संग्रह-परिग्रह इतना ही रखो जिससे आपका जीवन चल जाए। जीवन बसर हो जाये। ज्यादा संग्रह-परिग्रह रखोगे तो मन उसमें फंस जाएगा। मन इसमें फंसेगा, तो भगवान् में कम लगेगा। इसी कारण से भगवान् में कम लगता है। हमारे गुरुवर्ग तो एक झोंपड़ी में रहते थे और दो करवे रखते थे, एक शौच के लिए और एक खाने पीने के लिए और हाथों से खाते थे। कोई बर्तन भी नहीं रखते थे, तो ऐसे वैराग्यवान बनेंगे, तभी तो होगा। गृहस्थी भी ऐसा वैराग्यवान हो सकता है, जैसे राजा अम्बरीष पूरी दुनिया के राजा थे, लेकिन उनको आसक्ति नहीं थी। वह बिल्कुल निर्लिप्त थे। ऐसा कर सकते हो, अगर करना चाहो तो। मनुष्य जन्म फिर दोबारा नहीं मिलेगा। यह सब मैंने श्रीमद्भागवत से लिया है, अपने मन से नहीं लिया।